भारतवर्ष का इतिहास

भाग २

महाभारत काल से
बुद्ध के पूर्व तक

आचार्य रामदेव

भारतवर्ष का इतिहास

भाग २ - महाभारत काल से बुद्ध के पूर्व तक

अग्निवीर दुर्लभ ग्रंथ-संग्रह - एक परिचय

अग्निवीर द्वारा संकलित यह ग्रंथ-संग्रह धर्म, आध्यात्म, इतिहास और अन्य विषयों पर अत्यंत दुर्लभ और मौलिक पुस्तकों का संग्रह है। अपने समय के विख्यात विद्वान, चिंतकों और लेखकों द्वारा रचित ज्ञान के इन अमूल्य मोतियों ने अपने रचनाकारों को अमर कर दिया है। दुनिया की अंधी दौड़ में ज्ञान के ये अमूल्य मोती खो ना जाएँ, इसलिए इन सबको यथा स्वरूप आपके सामने लाने का अग्निवीर का यह प्रयास है। इन पुस्तकों में लिखी सब बातों से हम सहमत हों यह आवश्यक नहीं। परंतु धर्म मार्ग में अग्रसर एक साधक के लिए इनसे बढ़कर कोई निधि नहीं हो सकती, ऐसा निश्चित है। सृष्टि के आरम्भ से अब तक के सब विद्वान-मनीषी जिन्होंने मनुष्य को मनुष्य बनाने में अपना भाग डाला, ऐसे सब ऋषियों और पूर्वजों के ऋण से मुक्त होने का यह एक छोटा सा प्रयास है।

भारतवर्ष का इतिहास

भाग २ - महाभारत काल से बुद्ध के पूर्व तक

आचार्य रामदेव

भूमिका

सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ सीले का कथन है—"मैं तुम्हें निश्चय से कहता हूँ कि जब तुम अंग्रेज़ जाति का इतिहास पढ़ रहे होते हो, तब तुम इङ्गलैण्ड के भूतकाल का नहीं अपितु उस के भविष्यत का अध्ययन कर रहे होते हो। इस इतिहास में तुम्हारे देश का हित और तुम्हारी नागरिकता के सम्पूर्ण अधिकार सन्निहित हैं।" यह तथ्य प्रत्येक देश के इतिहास पर समानरूप से घटता है। भारतवर्ष के इतिहास के सम्बन्ध में भी हम ठीक यही बात कह सकते हैं। भारतवर्ष का भविष्य उस के भूतकाल पर आश्रित है। यह आवश्यक है कि आने वाली सन्तति अपने पूर्वजों के चरित्र और वस्तुस्थिति से पूर्णतया परिचित हो, ताकि वह अपने पूर्वजों के अनुभव से लाभ उठा कर उन भूलों से बच सके जो कि पूर्व-पुरुषों के मार्ग में बाधक थीं और उन के गौरव को भली प्रकार स्थिर रख सके।

परन्तु यह खेद का विषय है कि इस जागृति काल में भी भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की गवेषणा की ओर यथोचित ध्यान नहीं दिया गया। बहुत कम भारतीय विद्वानों ने इस आवश्यक विषय के लिये यत्किञ्चित यत्न किया है। जिन विदेशी विद्वानों ने भारत के प्राचीन इतिहास की खोज में हिस्सा बटाया है, वे हमारे लिये धन्यवाद के पात्र अवश्य हैं, परन्तु भारतीय न होने से वे लोग भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास को उचित ढङ्ग पर विकसित ही नहीं कर सके हैं। हम इसके लिये उन सब विदेशी ऐतिहासिकों को दोष नहीं दे सकते, यह होना स्वभाविक ही था। इस बात का हमें हर्ष है कि भारतवर्ष के कतिपय अर्वाचीन प्रतिभाशाली ऐतिहासिक इस बड़ी कमी को पूरा करने के लिये आजकल भरसक यत्न कर रहे हैं। इस विषय की अत्यन्त आवश्यकता अनुभव करके ही मैंने अपना यह तुच्छ प्रयास किया है।

इस खण्ड में महाभारत काल से लेकर प्राग्बौद्धकाल तक का सामाजिक, राजनीतिक व सभ्यता का इतिहास वर्णित है। यह काल भारतवर्ष के इतिहास में नितान्त अन्धकार पूर्ण है, प्रायः ऐतिहासिक भारतवर्ष का इतिहास लिखते हुवे इस काल को यूंही छोड़ जाया करते हैं। कुछ लोग तो इसी कारण इस काल की सत्ता से ही इन्कार कर देते हैं। यह सब होते हुवे भी मैं अपने पाठकों को विश्वास दिलाता हूँ कि इस खण्ड में एक भी बात मैंने बिना प्रमाण के नहीं लिखी है।

तिथि क्रम के सम्बन्ध में भी एक बात कह देना उचित होगा। भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में प्रायः ऐतिहासिक जिस तिथि क्रम को स्वीकार करते हैं, उससे मेरा मतभेद है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि महाभारत का महायुद्ध ईसवी सन् से ३१०० वर्ष पूर्व हुआ। यही बात स्वीकार करके मैंने प्राग्बौद्ध कालीन राजनीतिक इतिहास का वर्णन इस खण्ड में किया है।

भारतवर्ष के इतिहास का प्रथम खण्ड प्रकाशित हुए बहुत समय हो चुका है, यह खण्ड बहुत देर में प्रकाशित हो रहा है। इस के अनेक कारणों में से एक मुख्य कारण गंगा की पिछली भयंकर बाढ़ है। बाढ़ से पूर्व यह खण्ड लगभग सम्पूर्ण ही लिखा जा चुका था, परन्तु गंगा की बाढ़ अन्य बहुत ही छोटी बड़ी वस्तुओं के साथ इस ग्रन्थ की मूल हस्तलिखित प्रति को भी अपने साथ बहा लेगई। अब इस खण्ड को दुबारा नये सिरे से लिखना पड़ा है। आशा है प्रेमी पाठक इस विलम्ब के लिये क्षमा करेंगे। इस ग्रन्थ के अगले खण्ड भी यथावसर प्रकाशित करने का यत्न किया जायगा।

इस खण्ड के लिखने में जिन ग्रन्थों से सहायता ली गई है, उन की सूची अन्यत्र दी गई है। मैं उन ग्रन्थों के लेखकों, विशेष कर अपने मित्र प्रो० विनय कुमार सरकार, का हार्दिक धन्यवाद करता हूँ। प्रो० सरकार के ग्रन्थों द्वारा मुझे इस खण्ड के तृतीय भाग के लिखने में पर्याप्त सहायता मिली है। अन्त में मैं अपने प्रिय शिष्य प्रो० सत्यकेतु विद्यालंकार और पं० चन्द्रगुप्त विद्यालंकार का भी हार्दिक धन्यवाद करता हूँ, इन्होंने मुझे यह खण्ड लिखने में बहुत सहायता दी है।

१ चैत्र १९८३
गुरुकुल भूमि

रामदेव

विषय सूची

प्रथम भाग

महाभारत कालीन सभ्यता.

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पञ्चम अध्याय

द्वितीय भाग

राजनीतिक इतिहास.

[महाभारत काल से प्राग्बौद्धकाल तक.]

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चौथा अध्याय

पाँचवाँ अध्याय

छठा अध्याय

सातवाँ अध्याय

आठवाँ अध्याय

तृतीय भाग

शुक्रनीतिसार कालीन भारत.

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

सातवाँ अध्याय

आठवाँ अध्याय

नौवाँ अध्याय

चतुर्थ भाग

भारतीय सभ्यता का विदेशों में प्रसार

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तीसरा अध्याय

चौथा अध्याय

पाँचवाँ अध्याय

छठा अध्याय

सातवाँ अध्याय

आठवाँ अध्याय

नौवा अध्याय

दसवाँ अध्याय

सहायक पुस्तकों की सूची.

१. अथर्व वेद

२. अनेकार्थ रत्नमाला

३. अभिज्ञान शाकुन्तल,–कालीदास

४. अष्टादश पुराण

५. अक्षर विज्ञान,– रघुनन्दन शर्मा

६. ऋग्वेद

७. कौटिल्य अर्थशास्त्र,–आचार्य चाणक्य– (श्याम शास्त्री द्वारा सम्पादित)

८. गीता,– श्रीकृष्ण

९. दस उपनिषदें

१०. धम्मपाद

११. नैषद काव्य,– श्री हर्ष

१२. पञ्चतन्त्र,– पण्डित विष्णु शर्मा

१३. वाल्मीकि रामायण,– वाल्मीकि

१४. बौद्धायन गृह्यसूत्र

१५. ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य,–श्री शङ्कराचार्य

१६. ब्राह्मण ग्रन्थ

१७. मनुस्मृति,– मनु

१८. महाभारत,– व्यास– (कलकत्ता संस्करण)

१९. यजुर्वेद

२०. यात्रातत्त्व

२१. योगदर्शन,– पतञ्जलि

२२. राजतरङ्गिणी,–कल्हण– (स्टाइन द्वारा सम्पादित)

२३. शब्दार्थ चिन्तामणि

२४. शिव संहिता

२५. शुक्रनीति–, आचार्य शुक्र

२६. सामवेद

२७. साँख्यतत्त्व कारिका

28. Asiatic Researches. (Seven Volumes.)

26. Bart, John L.—The Origion of Civilisation and the Primitive Condition of Man.

30. Besant, Annie–The Ancient Wisdom.
31. Bluntschli,–Theory of the State.
32. Breasted, J. H.–A History of Ancient Egiptians.
33. Budge, E. A. Wallis–The Teaching of Amen-am-apt.
34. Chaudhari, Roy–Political History of India
35. Collins, Clifton, W.–Plato.
36. Cook, Kenningale–The Fathers of Jasus.
37. Doane, T. W.–Bible Myths.
38. Encyclopidia Britainica.
39. Encyclopidia of Religion and Ethics.
40. Exodus.
41. Farnell, L. R.–Higher Aspects of Greek Religion.
42. History of Greece.
43. Hutchinson,–Customs of the World. First Volume.
44. Iliod and Ramayan.
45. Indian Antiquery. Vol. VIII.
46. Jaswal.–Hindu Pality.
47. Jones, M. E. Monkton–Ancient Egipt from Records.
48. Junod, Hanri H.–The Life of a South African Tribe. Two Volumes.
49. Kennedy, Vanes–Hindoo Mythology.
50. Kwangze Book.
51. Lillie., Arthur–India in Primitive Christianity.
52. Massey, Garald–A Book of the Beginning. Vol. I.
53. " " –The Natural Genesis. " II.
54. Megasthenese–Fragments of Indica.
55. Mukerji, R. Kumud–History of Indian Shipping.
56. Oppert, Gustav–Weapons in Ancient India.
57. Parjitar–Ancient Historical Traditions.
58. Pattison, A. S. Pringle–The Idia of Immortality.
59. Pattrie, W. M. Flinders–Social Life in Ancient Egipt.
60. Perry, W. J.–The Children of the Sun.
61. Phillips, Maurice–The Teaching of the Vedas.
62. Plato–Laws of Plato.
63. " –Republic.
64. Potter–Antiquities of Greece.

65. Priscott, William H.-History of the Conquest of Maxico.
66. " " -History of the Conquest of Peru.
67. Quatrafages, A. De-The Human Spicies.
68. Regozin, Jenaide A.-Vedic India.
69. Rouse, W. H. Denham-Greek Votive Offerings.
70. Russel, Rev. Michael-A Vew of Ancient and Modern Egipt.
71. Sachu, Edward C.-Elbaruni's India. 2 Vol.
72. Sarkar, Binoy Kumar-Chines Religion through Hindu Eyes.
73. " " " -Palitical Institutions and theories of the Hindoos.
74. " " " -Positive Backgrounds of Hindu Sociology. Vol. I. (Non-political.)
75. " " " " " Vol. II. (Political.)
76. " " " -Shukraniti. (Footnotes.)
77. Schure, Edward-Pathagoras.
78. Shastri, Narayan-Age of Shankar.
79. Syce,-Religion Among Balilonians.
80. Text of Toism. S. B. E.
81. Vidyarthi, Gurudatta-Our Past, Present and Future.
82. Ward, William-A Vew of the History, Literature and Mythology of the Hindus. I. &. IV. Vol.
83. Weighall, Arthur-Tutakhamen and Other Esseys.

पत्र पत्रिकाएँ

1. Letarary Digest. Newyark (Amarica.)
2. Modern Review. Calcutta.
3. Thiosophist. Madras.
4. Vedic Magazine. Lahore.
५. माधुरी. लखनऊ.
६. अलङ्कार. गुरुकुल काँगड़ी.

प्रथम भाग

महाभारत कालीन सभ्यता.

"स्वायम्भुव राजा से लेकर पाण्डव पर्यन्त आर्यों का चक्रवर्ती राज्य रहा, तत्पश्चात् परस्पर के विरोध से लड़कर नष्ट होगये, क्योंकि इस परमात्मा की सृष्टि में अभिमानी, अन्यायकारी, अविद्वान लोगों का राज्य बहुत दिन नहीं चलता। और यह संसार की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जब बहुत सा धन प्रयोजन से अधिक होता है तब आलस्य, पुरुषार्थ रहितता, ईर्ष्या, द्वेष, विषयासक्ति और प्रमाद बढ़ता है, इससे देश में सुशिक्षा नष्ट होकर दुर्गुण और दुष्ट व्यसन जैसे कि मद्यमांस सेवन, विषयासक्ति, बाल्यावस्था में विवाह और स्वेच्छाचारादि बढ़ जाते हैं, और जब युद्ध विभाग में युद्ध विद्या कौशल और सेना इतनी बढ़े कि उसका सामना करने वाला भूगोल में दूसरा न हो तब उन लोगों का पक्षपात अभिमान बढ़ कर अन्याय बढ़ जाता है; और जब ये दोष हो जाते हैं तब परस्पर में विरोध होकर अथवा उन से अधिक दूसरे छोटे कुलों में से कोई ऐसा समर्थ पुरुष खड़ा होता है जो कि उनका पराजय करने में से समर्थ होवे, जैसे मुसलमानों की बादशाही के सामने शिवाजी, गोविन्द सिंह जी ने खड़े होकर मुसलमानों के राज्य को छिन्न भिन्न कर दिया।" (सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास ११)

—स्वामी दयानन्द.

* प्रथम अध्याय *

युद्ध प्रबन्ध तथा शस्त्रास्त्र.
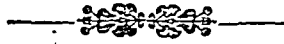
पूर्व वचन.

महाभारत कालीन सभ्यता पर प्रकाश डालने वाला सम्पूर्ण साहित्य आज हमें उपलब्ध नहीं होता । उस समय के राजनीतिक तथा सभ्यता के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाला केवल एक ही ग्रन्थ "महाभारत" नाम से प्राप्त होता है । यह ग्रन्थ पूर्णरूप से ऐतिहासिक नहीं है, इसमें समय २ पर पर्याप्त मिलावट भी होती रही है । परन्तु वह सम्पूर्ण मिलावट प्राचीन गाथाओं (Mythology) से संबन्ध रखने वाली है, इस कारण इस ग्रन्थ से महाभारत कालीन राजनीतिक तथा सभ्यता का इतिहास जानने में कोई बड़ी बाधा उपस्थित नहीं होती ।

महाभारत एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्न्थ है ; इस देश की वह एक अतुल सम्पत्ति है । यह ग्न्थ बड़ा विस्तृत है, अष्टादश पुराण और गीता भी इसी महद् ग्रंथ के भाग हैं । महाभारत द्वारा तत्कालीन भारतवर्ष का इतिहास, सभ्यता, दार्शनिक विचार, सामाजिक और भौतिक दशा आदि बहुत सी ज्ञातव्य बातें प्रामाणिक रूप से जानी जा सकती हैं । इसी ग्रंथ के आधार पर हम अपने इतिहास के प्रथम खण्ड के अन्त में भारतवर्ष के राजनीतिक इतिहास का वर्णन कर चुके हैं; इस भाग में महाभारतकालीन सभ्यता पर प्रकाश डालने का यत्न किया जायगा ।

भारतवर्ष के लम्बे इतिहास में जिस प्रकार उन्नति, अवनति, जय, पराजय, शान्तिपूर्ण राज्य और अराजकता के एक दूसरे से सर्वथा प्रतिकूल काल उपस्थित होते रहे हैं, उस प्रकार के दृश्य सम्भवतः संसार के किसी अन्य देश के इतिहास में प्राप्त न होंगे । परन्तु इस सम्पूर्ण इतिहास में भी महाभारत का काल विशेष रूप से महत्वपूर्ण है । इस काल में भारतवर्ष किसी दृष्टि से तो उन्नति के शिखर पर चढ़ा हुवा प्रतीत होता है और किसी दृष्टि से वह बहुत अवनत प्रतीत होता है । महाभारत की घटना भारतवर्ष के इतिहास में जो महान युगपरिवर्तन लाई है, वैसा युगपरिवर्तन इस देश के इतिहास में अन्य कोई अकेली घटना नहीं ला सकी ।

राजनीतिक दृष्टि से महाभारत कालीन भारत बहुत उन्नत प्रतीत होता है। इस समय सम्पूर्ण भारतवर्ष राजनीतिक शासन की दृष्टि से एक हो चुका था; हस्तिनापुर सम्पूर्ण देश की राजधानी था। हस्तिनापुर के सम्राट् भारतवर्ष तथा उसके अन्य उपनिवेशों के सम्राट् हुवा करते थे। विभिन्न प्रान्तों तथा भारतवर्ष के उपनिवेशों में आधीनस्थ विभिन्न माण्डलिक राजा लोग शासन किया करते थे; ये लोग केन्द्रीय सार्वभौम सम्राट् को कर दिया करते थे। बहुत से अन्य देशों के साथ भारतवर्ष का ऐसा गौरवपूर्ण सम्बन्ध था कि वे देश भारतवर्ष को, आपत्तिकाल में सहायता लेने के लिए, समय २ पर स्वयं कर दिया करते थे। इसी प्रकार सरकार की रचना आदि अन्य राजनीतिक पहलुवों से भी तत्कालीन भारतवर्ष बहुत उन्नत प्रतीत होता है।

परन्तु महाभारत कालीन सभ्यता के सम्बन्ध में हम एक साथ किसी एक परिणाम पर नहीं पहुंच सकते। इस के हमें दो भाग करने होंगे-भौतिक सभ्यता और सदाचार। भौतिक सभ्यता की दृष्टि से भी इस समय का भारतवर्ष बहुत उन्नत प्रतीत होता है। भौतिक सभ्यता के कुछ अङ्गों में इस समय का भारतवर्ष जितना अधिक उन्नत था, उन अङ्गों में वह उस से अधिक उन्नत महाभारत से पूर्व कभी भी न हो पाया था। युद्धनीति, शस्त्रास्त्र, प्राकृतिक विज्ञान, शिल्प, वाणिज्य, व्यवसाय, आवागमन का प्रबन्ध-इन सब में महाभारत कालीन भारतवर्ष बहुत उन्नति कर चुका था, इन अङ्गों इतनी उन्नति वर्तमान यूरोप १८ वीं सदी के अन्त तक भी न कर पाया था। परन्तु सभ्यता के दूसरे अङ्ग सदाचार की दृष्टि से हम महाभारत कालीन भारतवर्ष को बहुत उन्नत नहीं कह सकते। महाभारत के युद्ध से बहुत समय पूर्व ही इस देश के निवासियों का सदाचार प्राचीन काल की अपेक्षा अवनत होने लगा था।

महाभारत काल में जूए का प्रचार, राक्षस विवाह, सदाचार का नाश, मद्यमाँस सेवन आदि बुराइयाँ भारतवासियों में प्रवेश कर चुकी थीं। परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि उस समय साधारण जनता का आचार बिल्कुल अवनत हो चुका था। समाज में उपर्युक्त बुराइयाँ अवश्य थीं परन्तु इन बुराइयों को श्रद्धा और अभिमान की दृष्टि से नहीं देखा जाता था; इन्हें मनुष्य समाज की कमज़ोरी ही समझा जाता था। सामाजिक आचार की उन्नति और पवित्रता के लिये सरकार भरसक यत्न किया करती थी। उस समय भी व्यास और भीष्म जैसे विद्वान मौजूद थे। इन का समाज में

यथेष्ट मान था, और ये लोग सामाजिक आचार की उन्नति के लिए भरसक यत्न किया करते थे । इस समय स्त्रियों की अवस्था अच्छी नहीं रही थी । स्त्रीजाति को पूज्य दृष्टि से न देखा जाता था । भरी सभा में सती द्रौपदी का घोर अपमान महाभारत काल पर सब से बड़ा कलंक है । इसी प्रकार, राक्षस विवाह, बहु विवाह आदि घृणित प्रथाओं के उदाहरण भी महाभारत काल में पाये जाते हैं ।

इस में सन्देह नहीं कि महाभारत के युद्ध से भारतवर्ष को बहुत भारी धक्का पहुंचा ; इस का यह परिणाम हुआ कि साम्राट् युधिष्ठिर के कुछ काल अनन्तर ही भारतवर्ष का साम्राज्य छिन्न भिन्न होगया , यह विशाल देश भिन्न २ भागों में विभक्त होगया ; अलग २ प्रान्तों पर भिन्न २ वंश राज्य करते लगे । परन्तु इस से यह न समझ लेना चाहिये कि इस महायुद्ध के बाद भारतवर्ष फिर कभी उन्नति ही नहीं कर सका । महाभारत के युद्ध से लगभग २५०० बरस बाद मौर्य काल में फिर से सम्पूर्ण भारत मगध के एक छत्र शासनाधीन होकर केन्द्रित होगया । इस काल में भारतवर्ष राजनीतक दृष्टि से फिर से उतना ही उन्नत होगया जितना कि वह महाभारतकाल में था ।

एक और बात भी ध्यान रखने योग्य है । भारतवर्ष की वर्तमान राजधानी दिल्ली नगर की नींव साम्राट् युधिष्ठिर ने रक्खी थी । दिल्ली को सब से प्रथम इसी काल में भारतवर्ष की राजधानी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुवा था ।

सैन्य प्रबन्ध— महाभारत के महायुद्ध में भारतवर्ष के भिन्न २ प्रान्तों की सेनायें लाखों की संख्या में सम्मिलित हुई थीं । इस युद्ध में अन्य देशों से भी सैन्य सहायता पहुंचाई गई थी । महाभारत द्वारा प्रतीत होता है कि उस समय सैन्य प्रबन्ध बहुत अच्छे ढंग पर किया जाता था । सेना दो प्रकार की होती थी–I. स्थिर सेना II. स्वयंसेवक सेना ।

I. स्थिर सेना का प्रबन्ध बहुत पूर्ण था । सैनिकों को वेतन ठीक समय पर दे दिया जाता था । सभापर्व में नारद ने युधिष्ठिर से प्रश्न किया है—"क्या तुम अपने सैनिकों को उन का पूरा वेतन और भोजन का हिस्सा ठीक समय पर देते हो ? सैनिकों का वेतन उन्हें सदैव ठीक समय पर दे देना चाहिये । मेरा विचार है कि तुम ऐसा ही करते हो और साथ ही अपने सैनिकों पर अत्याचार

भी नहीं करते ।"[1]

II. देश पर आपत्ति आई हुई देख कर देश के नवयुवक स्वयंसेवक बन कर सेना में भर्ती होते थे । बहुत से स्वयं सेवक बिना वेतन लिये, देश प्रेम से वशीभूत होकर ही इस सेना में सम्मिलित होते थे। उद्योग पर्व में भीष्म कहते हैं— "मैं सेना के सब कार्यों से परिचित हूं । मैं स्थिर वेतन भोगी सैनिकों और अवैतनिक स्वयंसेवकों से भी कार्य करा सकता हूँ ।"[2]

इस से प्रतीत होता है कि उस समय देश के साधारण नवयुवक भी व्यूहाभ्यास तथा शस्त्र चालन का अभ्यास किया करते होंगे ।

युद्धसामग्री— उस समय राज्य की ओर से शस्त्रादि सामग्री को उचितरूप में रखा जाता था । सभापर्व में नारद युधिष्ठिर से पूछते हैं- राजन्, तुम्हारे दुर्ग में सब धनधान्य और आयुधादिक उचित रीति से संग्रहीत हैं या नहीं? तुम्हारा कोष, भण्डार, वाहन (सवारियें), द्वार पर प्रयुक्त होने वाले आयुध, तथा तुम्हारे कल्याण चाहने वालों से प्रदत्त आय आदि सभी ठीक हैं या नहीं ।"[3]

युद्ध विभाग के डाक्टर— सेनाएँ दुर्गों में रहा करती थीं और उन में युद्ध विभाग के डाक्टर रहा करते थे। उद्योग पर्व में हम पढ़ते हैं— "युधिष्ठिर अपनी सेना के कोष, यन्त्र, शस्त्र और वैद्यों को लेकर चला ।"[4]

इसी प्रकार भीष्म पर्व में लिखा है—"जब भीष्म शरशय्या पर पड़े हुए थे, तो उन के लिये शल्य और लोह कीलकों के निकालने में चतुर,

---

१. कच्चिद्बलस्य भक्तञ्च वेतनञ्च यथोचितम् ।
सम्प्राप्तकाले दातव्यम् ददासि नविकर्षसि ॥ ४८ ॥ (सभा० अ० ५.)

२. सेना कर्मण्यभिज्ञोऽस्मि व्यूहेषु विविधेषु च ।
कर्मकारयितुं चैव भृतामप्यभृतांस्तथा ॥ ८ ॥ (उद्योग० अ० १५४.)

३. कच्चित्कोष्ठश्च कोषश्च वाहनं द्वारमायुधम् ।
आयश्च कृतकल्याणैस्तव भक्तैरनुष्ठितः ॥ ६७ ॥
कच्चिद्दुर्गाणि सर्वाणि धनधान्यायुधादिकैः ।
यन्त्रैश्च परिपूर्णानि तथा शिल्पिधनुर्धरैः ॥ ३५ ॥ [सभा० अ. ५]

४. कोषयन्त्रायुधञ्चैव येचवैद्याश्चिकित्सकाः ॥ [उद्योग, अ० १५ । ५८]

अनेक सुशिक्षित वैद्य अपनी सब सामग्री, औज़ार आदि, लेकर उपस्थित हुए। इस पर भीष्मपितामह बोले कि सब वैद्यों को उचित धन देकर उन्हें सन्तुष्ट करो, मैंने क्षात्र धर्म में रह कर यह प्रशान्त परमगति प्राप्त की है अब मुझे वैद्यों से क्या प्रयोजन है।"[1]

उद्योगपर्व में रणभूमि में लगे हुए राजाओं के कैम्पों का वर्णन करते हुए लिखा है—"वहां पर सैकड़ों इस प्रकार के शल्य—विशारद वैद्य उपस्थित थे, जिन के पास सम्पूर्ण उपकरण (Instruments) विद्यमान थे और जिन को नियमित रूप से वेतन मिलता था।"[2]

विविध प्रकार के अस्त्र—इस में सन्देह नहीं कि महाभारत काल में बहुत भयंकर अस्त्र विद्यमान थे । तोप और बन्दूक के सदृश अग्नि की सहायता से चलने वाले भयंकर अस्त्र भी उस समय विद्यमान थे । भीष्मपर्व में युद्ध का वर्णन करते हुए लिखा है— "रथी लोग अपने रथों पर चढ़ कर कर्णि-पत्र वाले बाणों और नालिकास्त्रों (बन्दूक) से वीरों को युद्ध में मार कर सिंहनाद करने लगे।"[3]

द्रोणपर्व में लिखा है— "उस समय राक्षस, जिन का बल सन्ध्या-काल होने से और भी बढ़ गया था, चारों ओर से पत्थरों की बहुत अधिक वर्षा कर रहे थे। लोहे के बने हुए चक्र, भुशुण्डि, तोमर, शक्ति, शूल, पट्टिश और शतघ्नियां (तोपें) बराबर चल रही थीं।"[4]

इसी प्रकार भीष्मपर्व में युद्ध भूमि का वर्णन करते हुए लिखा है—

---

१. उपतिष्ठन्नथो वैद्याः शल्योद्धरणकोविदाः ।
सर्वोपकरणैर्युक्ताः कुशलैः साधुशिक्षिताः ॥ १७ ॥
तान्दृष्ट्वा जान्हवीपुत्रः प्रोवाच तनयं तव ।
धनंदत्वाविसृज्यन्तां पूजयित्वा चिकित्सकाः ॥ १८ ॥ [भीष्म पर्व. अ. १२२]

२. तत्रासन् शिल्पिनः प्राज्ञः शतशोदत्तवेतनाः ।
सर्वोपकरणैर्युक्ता वैद्याः शास्त्रविशारदाः ॥ [उद्योग० अ. १५१]

३. रथिनस्त्वरथैः राजन् कर्णिनालीकसायकैः ।
निहत्य समरे वीरान् सिंहनादान् विनेदिरे ॥ ३१ ॥ [भीष्म० अ० ८६]

४. ततोऽश्मवृष्टिरत्यन्तमासीत्तत्रसमन्ततः ।
सन्ध्याकालाधिकबलैर्विमुक्ताः राक्षसैः क्षितौ ॥ ६८ ॥
आयसानि च चक्राणि भुशुण्ड्यः शक्तितोमराः ।
पतन्त्यविरताः शूलाः शतघ्न्यः पट्टिशास्तथा ॥ ६९ ॥ [द्रोण० अ० ११६]

"युद्धमें गिरते हुए शक्ति, तोमर, तलवार, पट्टिश, प्रास, परिघ, भिन्दिपाल और शतघ्नी (तोपों) आदि शस्त्रों से आहत योद्धाओं की लाशों से सारी पृथिवी ढक गयी ।"[1]

भीष्मपर्व में कलिङ्ग देश के राजा के हाथियों का वर्णन इस प्रकार किया है— "उसके पर्वत के तुल्य हाथी, मशीनों, तोमरों, तूणीरों, और ध्वजाओं से सुशोभित थे ।"[2]

इसी प्रकार—"भीष्म ने कभी शरों और कभी नालीकास्त्र से छोड़े लघु बाणों से उसकी सम्पूर्ण सेना को ढक दिया ।"[3]

द्रोणपर्व में"—शकुनि ने अर्जुन और कृष्ण पर लगुड़, लोहगोलक, पत्थर, तोप, शक्ति, गदा, परिघ, तलवार, शूल, मुद्गर, पट्टिश, सकम्पन-ऋष्टि, नखर, मुसल, कुठार, क्षरप्र, नालिकास्त्र, बन्दूक, आदि शास्त्रास्त्रों की वर्षा की ।"[4]

भीष्मपर्व में—"भीष्म ने भी बाणों से शतघ्नी (तोपों) को भेद दिया ।"[5]

"जिस प्रकार खूब भड़कती हुई आग वायु की सहायता पाकर सब ओर फैल जाती है उसी प्रकार भीष्म अपने दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करता हुआ जल उठा ।"[6]

उद्योगपर्व में—"जिस समय गाण्डीव को धारण करने वाला अर्जुन कर्णीशर और नालीकास्त्र और मर्मभेदी बाणों को चलाता है, तब उस के मुकाबले पर कोई भी नहीं आ सकता ।"[7]

शान्तिपर्व में राज धर्म के प्रकरण में दुर्गनिर्माण बताते हुए लिखा है— "युद्ध कोट बना कर नगरों की रक्षा करनी चाहिये । द्वारों पर बड़े बड़े यन्त्र रखवा देने चाहियें और दीवारों पर शतघ्नियां (तोपें) चढ़ानी चाहियें । राजा को यह सब कार्य अपने हाथ में रखना चाहिये ।"[8]

---

१. परिघैर्भिन्दिपालैश्च शतघ्नीभिस्तथैव च ।
शरीरैः शस्त्रभिन्नैश्च समास्तीर्यत मेदिनी ॥ ५८ ॥, [भीष्म अ. ९७]

२. तस्य पर्वतसंकाशाः व्यरोचन्त महागजाः ।
यन्त्रतोमरतूणीर पताकाभिश्चशोभिताः ॥ ३४ ॥ [भीष्म० अ. १७]

३. कर्णिनालिकनाराचैश्छादयामास तद्बलम् ॥ १३ ॥ [भीष्म०, १०७ अ०]

४. द्रोण० अ० ३० श्लो० १६-१७. ५. भीष्म० अ० ११४ श्लो० ४१.

६. भीष्म० अ० ११७ श्लो० ६१. ७. उद्योग० अ० ५१ श्लो० ३.

८. शान्ति० अ० ६९ श्लो० ४४-४५

"वनपर्व में इन्द्र द्वारा अर्जुन के लिये भेजे रथ का वर्णन करते हुए अशनि शस्त्र का अद्भुत वर्णन आता है। "अशनिशस्त्र ऐसा होता था कि उस में एक एक मन का गोला डाला जाता था। उस के नीचे चक्र लगे रहते थे। गोले वायु में ही फूट जाते थे और बड़ा भारी धक्का पहुँचाते थे। उस से बादलों की तरह घोरनाद होता था।" १

द्रोणपर्व में नारायणास्त्र का वर्णन आता है कि—"प्रथम अगले भागों से जलते हुए बाण प्रगट हुए और सारी दिशाओं में फैल गये। उसके बाद तारों की तरह दीप्यमान सीसे (कार्ष्णायस) के चमकते हुए गोले छोड़े गये। फिर चार चक्रों वाली विचित्र प्रकार की शतघ्नियां, बड़े २ गोले और ऐसे चक्र जिन की धाराएँ छुरे के समान तेज थीं, प्रगट हुए। वे ज्यों २ बढ़ते चले गये, त्यों २ वह अस्त्र भी बढ़ता गया। उस नारायण अस्त्र द्वारा वे सब शत्रु ऐसे मारे गये जैसे आग ने उन्हें भून दिया हो। जिस प्रकार शीतकाल के चले जाने पर अग्नि बाँस को जला देती है उसी प्रकार उस अस्त्र ने भी पाण्डवों की सारी सेना को भस्म कर दिया।" २

कतिपय विचित्र अस्त्र—इन के अतिरिक्त अन्य भी विचित्र प्रकार के अस्त्रों का वर्णन महाभारत में आया है, जिन का प्रयोग सम्भवतः पृथ्वी-मण्डल के किसी अन्य भाग में कभी भी नहीं हुआ होगा।

---

१. तथैवाशनयश्चैव चक्रयुक्तास्तुलागुडाः।
वायुस्फोटाःसनिर्घाता महामेघस्वनास्तथा ॥ ५ ॥ [वनपर्व० अ० ४२]

२. प्रादुरासंस्ततो बाणा; दीप्ताग्राश्च सहस्रशः।
पाण्डवान्व्यथयिष्यन्तः दीप्तास्या इव पन्नगाः ॥ १७ ॥
ते दिशः खं च सैन्यं च समावृण्वन् महाहवे।
तथापरे द्योतमाना ज्योतींषीवाम्बरेऽमले ॥ १८ ॥
प्रादुरासन् महीपाल कार्ष्णायसमया गुडाः ॥ १९ ॥
चतुश्चक्रा विचित्राश्च शतघ्न्योऽगुरुकामदाः।
चक्राणि च क्षुरान्तानि मण्डलानीव भास्वतः ॥ २० ॥
यथा यथास्मयुद्धयन्त पाण्डवानां महारथाः।
तथा तथा तदस्त्रं वै व्यवर्धत जनाधिप ॥ २१ ॥ [द्रोण पर्व० अ० २००]

अन्तर्धानास्त्र—धनाध्यक्ष कुवेर अपना अन्तर्धान नामक अस्त्र अर्जुन के प्रति देता है। वह उस का इस प्रकार वर्णन करता है कि "यह मेरा प्रिय अन्तर्धान नामक अस्त्र तू ग्रहण कर, यह ओज और तेज के बरसाने वाला, दीप्ति को करने वाला, शत्रु के सुलाने और नाश करने वाला है, शङ्कर ने त्रिपुर का नाश करने के लिये भी इसी का प्रयोग किया था, इस से बड़े २ असुर जल गये थे। १ "

अशनिः—"आठचक्रों से युक्त अशनि बड़ा भयानक अस्त्र था। इसे रुद्र ने बनाया था। उस से कर्ण ने लेकर धनुष द्वारा रथ पर प्रयोग किया तो उस के प्रभाव से घोड़ों सहित रथ भस्मसात् हो गया और बिजली की लपट पृथ्वी में प्रवेश कर गयी। २ "

युद्ध के नियमः—इस प्रकार अन्य कितने ही विचित्र भयंकर संहारक अस्त्रों का प्रयोग महाभारत के महायुद्ध में हुवा था। युद्ध विद्या में, प्राचीन आर्यों ने उन्नति की पराकाष्ठा की हुई थी। युद्ध के नियम भी मर्यादित हो चुके थे; जिनका भंग करना सर्व साधारण की दृष्टि तथा विचारों में बहुत ही घृणित पाप समझा जाता था। यह हो सकता है कि इन नियमों का पालन उस समय के सब योद्धा जन न करते हों परन्तु फिर भी इन नियमों की विद्यमानता अवश्य थी।

युद्ध होने के पूर्व ही कौरव पाण्डव दोनों पक्षों ने युद्ध के धर्म की स्थापना की। उसका वर्णन भीष्मपर्व में इस प्रकार उपलब्ध होता है।

"उन दोनों तरफ की सेनाओं का वह अद्भुत सङ्गम था। मानों युगान्त काल में दो समुद्रों का संगम हो। सारी पृथ्वी के युवा पुरुष सेनाओं में आ जाने के कारण अन्यत्र केवल बाल और वृद्ध ही शेष रह गये थे। उस समय कौरव पाण्डव और सोमक वंशी राजाओं ने परस्पर प्रतिज्ञाएं कर युद्धों के ये नियम बनायेः—

---

१. तदिदं प्रति गृह्णीष्व अन्तर्धानं प्रियं मम।
ओजस्तेजो द्युतिकरं प्रस्वापनमरातिनुत् ॥ ३९ ॥
महात्मना शङ्करेण त्रिपुरं निहतं पुरा।
तदैतदस्त्रं निर्मुक्तं येन दग्धा महासुराः ॥ ४० ॥ [वन पर्व अ० ४१]

२. अष्टचक्रां महाघोरामशनीं रुद्रनिर्मिताम्।
तामवप्लुत्य जग्राह कर्णोन्यस्य रथे धनुः ॥ ९५ ॥
चिक्षेप चैनांतस्यैव स्यन्दनात्सोऽवपप्लुवे।
साश्वसूतध्वजं यानं भस्मकृत्वा महाप्रभा ॥ ९६ ॥
विवेश वसुधां भित्वा सुरास्तत्र विसिस्मियुः ॥ ९७ ॥ [द्रोण० १७९]

(१) युद्ध के प्रारम्भ तथा समाप्त होने पर परस्पर में हमारी प्रीति ही रहे। उस समय अपने प्रति पक्षी के साथ उचित और यथायोग्य ही व्यवहार करना चाहिये। आपस में एक दूसरे को छलना ठीक नहीं।

(२) वाग्युद्ध प्रवृत्त होजाने पर, प्रति पक्षी को भी वाणी से ही युद्ध करना चाहिये।

(३) सेना से युद्ध छोड़ भागे हुवों को नहीं मारना चाहिये।

(४) रथी रथी से, गजारोही गजारोही से, घुड़सवार घुड़सवार से, पदाति पदाति से यथोचित रूप में यथेच्छ उत्साह और बल के साथ युद्ध करे।

(५) प्रहार करने से पहिले बतला कर प्रहार करना चाहिये। विश्वास दिलाकर तथा घबराहट में डाल कर दूसरे पर प्रहार करना उचित नहीं।

(६) किसी के साथ युद्ध में लगे हुवे को, युद्ध से विमुख पीठ दिखाने वाले को, निःशस्त्र और निष्कवच को नहीं मारना चाहिये।

(७) घोड़ों, घोड़ों के सारथियों, तथा शस्त्रादि बना कर देने वालों या शस्त्रों को उठा कर लाने वाले नौकरों को न मारना चाहिये। प्रति पक्षी के झांझ भेरी, मृदंग आदि बाजे भी न तोड़ने चाहिए। १

राजदूत का वधः—राजदूत या संदेशहर का जीवन बहुत ही पवित्र होता था इसी से उसे कारागार में रखना भी महापाप समझा जाता था। उद्योग पर्व में दुर्योधन, दूतरूप से आये कृष्ण को कैद करना चाहता था। इस पर धृतराष्ट्र बोलाः—

"हे राजन्! ऐसा मत करो यह सनातन धर्म नहीं है। कृष्ण इस समय दूत बन कर आया है, यह हमारा प्रिय सम्बन्धी भी है। उसने कोई

१. ततस्ते समयं चक्रुः कुरुपाण्डवसोमकाः।
धर्मान्संस्थापयामासुः युद्धानां भरतर्षभ ॥ २६ ॥
निवृत्ते विहिते युद्धे स्यात्प्रीतिर्नः परस्परम्।
यथापरं यथायोग्यं नच स्याच्छलनं पुनः ॥ २७ ॥
वाचा युद्धे प्रवृत्तानां वागेव प्रतियोधनम्
निष्क्रान्ताः पृतनामध्यान्न हन्तव्याः कदाचन ॥ २८ ॥
रथीच रथिना योध्यो गजेन गजधूर्गतिः।
अश्वेनाश्वः पदातिश्च पादातेनैव भारत ॥ २९ ॥
यथायोग्यं यथाकामं यथोत्साहं यथाबलम्
समाभाष्य प्रहर्त्तव्य न विश्वस्ते न विह्वले ॥ ३० ॥
एकेन सह संयुक्तः प्रपन्नो विमुखस्तथा।
क्षीणशस्त्रोविवर्माच नहन्तव्यः कदाचन ॥ ३१ ॥
नसूते ष्वनधुर्येषु नच शस्त्रोपजीविषु।
नभेरीशङ्खवादेषु प्रहर्त्तव्यं कथंचन ॥ ३२ ॥ (भीष्म अ० १)

अपराध नहीं किया फिर उसे किस प्रकार कारागार में डाला जा सकता है ?" १

ब्राह्मणों का युद्धों तक को रोक देने का अधिकारः— महाभारत के शान्ति पर्व में बहुत से धर्म या नियम मर्यादा इस प्रकार की हैं जो कि स्वर्गीय समय की बनाई हुई प्रतीत होती हैं। उन मर्यादाओं को पालने में यद्यपि महाभारत के जमाने के लोग बहुत कुछ शिथिल थे तथापि उन को वे बहुत आदर की दृष्टि से देखते थे। उनको पढ़ने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि अत्यन्त प्राचीन समयों में विद्वान श्रोत्रिय आदि वेदज्ञ ब्राह्मणों को युद्धों को कराने और रोक देने का पूरा अधिकार होता था। यह नियम हमें शान्त पर्व में निम्नलिखित रूप में प्राप्त होता है।

"यदि दोनों पक्षों की सेनायें युद्ध करने के लिये जुटी खड़ी हों और उन दोनों के मध्य में शान्ति कराने की इच्छा से कोई ब्राह्मण आजावे तब दोनों को युद्ध नहीं करना चाहिये। जो ब्राह्मण की आज्ञा का उल्लंघन करता है वह सनातन से चली आयी मर्यादा को तोड़ता है। यदि नीच क्षत्रिय इस मर्यादा को तोड़ देवे तो उसकी गणना क्षत्रियों में नहीं करनी चाहिए, न उसे किसी और सभ्य समाज में बैठने योग्य समझना चाहिए।२"

रण व्यूह शिक्षाः— महाभारत काल में क्षत्रियों को रण की विशेष रूप से शिक्षा दी जाती थी। उन्हें नियम पूर्वक व्यूह-रचना का अभ्यास कराया जाता था। युद्ध के लिये उपयोगी, सभी प्रकार की ड्रिल नियम पूर्वक कराई जाती थी। द्रोणपर्व में व्यूहों का इस प्रकार वर्णन आता हैः—

"भारद्वाज वंश में उत्पन्न द्रोणाचार्य ने इस प्रकार का चक्र सहित शकट व्यूह बनाया जो १२ गव्यूती (४८ मील) लम्बा और ५ गव्यूती (२० मील) चौड़ा था। इस व्यूह में अनेक राजा और अनेक वीर अपने २ स्थान पर नियत किये गये थे। हाथी और घोड़ों के समूह के समूह उसमें लग गये थे। इसका अगला भाग सूचि की तरह से था, और सूची मुख में वीर कृतवर्मा स्थित था।३"

---

१. ततोदुर्योधनमिदं धृतराष्ट्रोऽब्रवीद्वचः ॥
मैवं वोचः प्रजापाल नैषधर्मः सनातनः ॥ १७ ॥
दूतश्चहि हृषीकेशः सम्बन्धी च प्रियश्चनः ॥
अपापः कौरवेयेषु सकथंबन्धमर्हति ॥ १८ ॥ [उद्योग० अ० ८७]

२. अनीकयोः संहतयो यदीयाद् ब्रह्मणोऽन्तरा ॥
शान्तिमिच्छन्नुभयतो न योद्धव्यं तदाभवेत् ॥ ८ ॥
मर्यादां शाश्वतींभिन्द्यात्ब्राह्मणंयोऽभिलङ्घयेत् ॥
अथचेल्लंघयेदेतां मर्यादां क्षत्रिय ब्रुवः ॥ ९ ॥
असंख्येयस्तदूर्ध्वं स्यादनादेयश्च संसदि ॥ १० ॥ [शान्ति० अ० ९६]

३. दीर्घो द्वादशगव्यूतिः पश्चार्धेपञ्चविस्तृतः ॥
व्यूहः सचक्रशकटो भारद्वाजेन निर्मितः ॥ २२ ॥
नानानृपतिभिर्वीरैर्यत्रतत्र व्यवस्थितैः ॥
रथाश्वगजपत्योघैर्द्रोणेन विहितः स्वयम् ॥ २३ ॥

शिविर रचना—महाभारत के जमाने में सेना के ठहरने के लिये बड़े बड़े शिविर (कैम्प) बनाये जाते थे—छोलदारियां तथा बड़े २ तम्बू और शामियाने सजाये जाते थे, जिस में सैनिक आनन्द पूर्वक युद्ध की तय्यारियां कर सकते थे। उद्योग पर्व में सेनाओं का वर्णन करते हुवे लिखा है—

"राजाओं के पृथक् पृथक् बहूमूल्य शिविर अर्थात् डेरे ऐसे सजे हुवे थे मानों पृथ्वी तलपर विमान ही उतर आये हों।" १

निशायुद्ध—महाभारत काल के आर्य वीर रात्रि के समय भी बहुत वार युद्ध करते थे। रात्रि के घोर अन्धकार होने से युद्ध करना तथा शत्रु और मित्र को पहचानना और घोड़ों रथों व गजों का मार्ग देखना तथा सेनाओं का ठीक प्रकार से शासन करना कठिन था। इस लिये प्राचीन योद्धाओं ने अपने घोड़ों रथों और गजों के साथ किसी अगम्य विधि से दीपकों या लैम्पों के जोड़ लेने का प्रबन्ध कर रखा था। द्रोणपर्व में रात्रि युद्ध की तय्यारी का वर्णन करते हुवे लिखा है:—

"प्रत्येक रथ पर पांच लैम्प या प्रदीप जगाये गये। इसी तरह प्रत्येक गज पर तीन प्रदीप और प्रत्येक घोड़े पर १ महा प्रदीप रखा गया क्षणभर में सब दीपक ही दीपक जल गये" २

शब्द न करने वाले चक्रों से युक्त रथः—प्रायः सभी प्राचीन सभ्यता का अनुसरण करने वाली जातियां और उन में भी विशेषतः यूनानी और भारतवर्ष की आर्यजातियां रथों पर सवार होकर युद्ध किया करती थीं। महाभारत के काल में शिल्पियों ने ऐसे रथों का भी आविष्कार कर लिया था जिन के चलते हुए चक्रों में से किसी प्रकार का शब्द तक नहीं होता था। उस के चक्र की परिधि पर रबर के टायर लगाये जाते थे या किसी और वस्तु का प्रयोग किया जाता था, इसका कुछ भी पता नहीं चलता; परन्तु शब्द रहित रथों का वर्णन महाभारत में निस्सन्देह आता है।

उद्योगपर्व में सहदेव के विषय में लिखा है:—"जिस समय सरलतया गति करते हुवे, अक्ष द्वारा भी शब्द न करते हुवे, सुवर्ण के बने तारों से सुशो-

---

सूचीपद्मस्यगर्भस्थोगूढो व्यूहः कृतः पुनः ॥ २४ ॥
एवमेतं महाव्यूहं व्यूह्य द्रोणो व्यवस्थितः ॥
सूचीमुखे महेश्वासः कृतवर्माव्यवस्थितः ॥ २५ ॥

१. शिबिराणि महार्हाणि तत्रराज्ञां पृथक् पृथक् ॥
विमानानीव राजेन्द्र निविष्टानि महीतले ॥ ११ ॥ [उद्योग० अ० १५१]

२. महाधनैराभरणैश्च दीप्तै शस्त्रैश्च दिव्यैरभिसम्पतद्भिः ॥ १५ ॥
रथे रथे पञ्चत्रिदीपिकास्तु प्रदीपिकामत्तगजेत्र यश्च ॥
प्रत्यश्वमेकश्च महाप्रदीप कृतास्तुताः पाण्डव कौरवेयैः ॥ १६ ॥ [द्रोण० अ० १६३]

मित, सुशिक्षित घोड़ों से युक्त रथ पर चढ़ कर सहदेव राजाओं के गले काटेगा तब दुर्योधन को युद्ध के लिये पश्चात्ताप करना पड़ेगा ।" १

प्राचीन आर्यों की वीरता इस बात की अपेक्षा करती थी कि शत्रु के साथ भी आपत्ति में बड़े अनुग्रह का वर्त्ताव करना चाहिये और घायल हुवे हुवे शत्रु के घावों और व्रणों की चिकित्सा करनी चाहिये ।

शान्तिपर्व में भीष्म पितामह धर्मयुद्ध के नियमों का प्रतिपादन करते हुवे कहते हैं—

"ऐसे शत्रु को न मारना चाहिये, जिस के प्राण निकलने वाले हों, जिसका कोई पुत्र नहीं, जिसका शस्त्र टूट गया हो, जो विपत्ति में पड़ा हुवा हो, जिसके धनुष की डोरी कट गई हो, या जिसके घोड़े मरगये हों, व्रणों और जख्मों से पीड़ित शत्रु की अपने देश में चिकित्सा करानी चाहिये और अच्छा होने पर उसे उसके देश में भेजदेना चाहिये ।" २

इसी प्रकार युद्ध में पकड़ी गयी कन्या के साथ भी बहुत सम्मान का व्यवहार होता था । शान्तिपर्व में लिखा है—

"विक्रम से लायी गयी कन्या से एक वर्ष तक यह भी न पूछे कि तू मुझे वरती है या किसी और को ?" ३ इसी प्रकार सालभर तक अन्य आहृत धन को भी अपने उपयोग में न लाना चाहिये ।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल में युद्ध के समयों में कमसर्यट का महकमा बहुत नियमित था । अन्य भी सब प्रकार के खाद्य पदार्थोंकी आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रबन्ध किया जाता था । उद्योगपर्व के अन्तिम अध्याय में युधिष्ठिर की युद्ध यात्रा का वर्णन किया गया है । वहां इस प्रकार उल्लेख उपलब्ध होता है:— ४

"महाराज युधिष्ठिर ने आज्ञा दी कि वहनों के अश्वों, गजों और मनुष्यों के लिये उत्तम २ भोजनों को साथ ले चला जाय ।"

---

१. यदागतो द्वाहन कूजनाद्यं सुवर्णतारं रथमाततायी ॥
दान्तैर्युक्तं सहदेवोऽधिरूढः शिरांसिराज्ञां क्षेप्स्यते मार्गणौघैः ॥२२॥ [उद्योग० अ०४७]

२. निष्प्राणो नाभिहन्तव्यो नानपत्यः कथञ्चन ॥ १२ ॥
भग्नशस्त्रो विपन्नश्च कृत्तज्यो हतवाहनः ।
चिकित्स्यः स्यात्स्वविषये प्राप्यो वा स्वगृहे भवेत् ॥ १३ ॥
निर्व्रणः स च मोक्तव्यः एषधर्मः सनातनः ॥ १४ ॥ (शान्ति अ० ९५)

३. नार्वाक् संवत्सरात्कन्या प्रष्टव्याविक्रमाहृता
एवमेवधनं सर्वं यच्चान्यत्सहसा हृतम् ॥ ५ ॥ (शान्ति अ० ९६)

४. व्यादिदेश सवाह्यानां भक्ष्यभोज्यमनुत्तमम् ।
सगजाश्वमनुष्याणां येचशिल्पोपजीविनः ॥ ७ ॥
शकटापणवेशाश्च यानं युग्यञ्च सर्वतः ।
मत्तनागसहस्राणि हयानामयुतानिच ॥ २९ ॥ (उद्योग पर्व १९७)

"इसी तरह गाड़ियां, दुकानें, यानें, बैल आदि सभी कुछ साथ ले लिया जाय। तदनुसार सहस्रों हाथी और असंख्य घोड़े साथ ले लिये गये।"

इस प्रकार आलोचन करने से महाभारत कालीन सभ्यता भूमण्डल की किसी अन्य सभ्यता से नीची नहीं प्रतीत होती। प्रत्युत अस्त्र शस्त्रों का वैभव सम्पत्ति, सेनासन्नाह और युद्ध के नियम, युद्ध के समय पारस्परिक वर्त्ताव आदि-सभी बातें महाभारत कालीन सभ्यता की उच्चता को प्रगट करती हैं। जहां एक तरह हमें यह मालूम होता है कि महाभारत काल में भारतीयों ने सैनिक दृष्टि से अपूर्व उन्नति की हुई थी, वहां वे युद्ध के धर्मानुकूल नियमों को भी सदा अपनी दृष्टि में रखते थे।

ॐद्वितीय-अध्यायॐ

राजा-शासन पद्धति और शासन

भारतीय इतिहास के महाभारत काल में राजा एक प्रकार से एकायत्त शासक होता था, वह राज्य को अपनी सम्पत्ति समझता था। वह अपनी इच्छा से राज्य को ठीक उसी तरह दूसरे को दे सकता था, जिस प्रकार कि सर्वसाधारण अपनी मल्कियत वा सम्पत्ति दे सकता है। यदि ऐसा न होता तो युधिष्ठिर इतनी बे परवाही से अपने राज्य को जूए में न हरा देता। वह काल आचार के अधः पतन का था। महाराजा और क्षुद्र राजा सभी अपनी प्रजाओं के अधः पतन में कारण बन रहे थे। प्रजा भी उन की पतित अवस्था को बुरा नहीं समझती थी। इसी कारण जब दुर्योधन कलिङ्ग के राजा चित्राङ्गद को कन्या को स्वयंम्वर में से ही बलात्कार हर लेगया तब भी सर्वसाधारण जनता ने इस निर्लज्जता के कार्य के विरुद्ध एक वचन भी कहने का साहस नहीं किया। शान्ति पर्व में कलिङ्ग देशाधिपति चित्राङ्गद की कन्या के स्वयम्बर का वृत्तान्त आया है। उस समय की प्रथा के अनुसार स्वयम्वर के योग्य नियत रङ्ग भूमि में नाना स्थानों से आये हुवे राजा महाराजा इकट्ठे हुवे। महाभारत में उनके समागम और दुर्योधन के लज्जास्पद कार्य का इस प्रकार वर्णन किया गया है:—

एक बार कलिङ्गदेश की राज कन्या के स्वयम्बर के लिये सब राजाओं को निमन्त्रित किया गया। इस लिये राजपुर नामक नगर में सैकड़ों राजा एकत्रित हुवे। दुर्योधन भी कर्ण को साथ लेकर शीघ्र ही रथ पर आरूढ़ हो कर उपस्थित हुआ। शिशुपाल, जरासन्ध, भीष्मक, वक्र, कपोतरोमा, नील रुक्मी, स्त्रीराज्य का अधिपति शृगाल, अशोक, शतधन्वा भोज इत्यादि दक्षिण दिशा के राजा और म्लेच्छाचार्य आदि पूर्व उत्तर दिशाओं के राजा उपस्थितहुवे। सभी सोने के कड़ों और हारों से सुशोभित थे। सभी व्याघ्र के सदृश बलशाली और पराक्रमी थे। सब राजाओं के यथास्थान बैठ जाने पर धायी और सेवक के साथ वह राजकन्या रङ्गशाला में प्रविष्ट हुई। जब उसको एक क्रम से राजाओं के नाम और प्रशंसा सुनायी जा रही थी, उस समय वह कन्या धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन को बिना ध्यान दिये हुवे ही आगे चल दी। दुर्योधन इस बात को न सह सका और सब राजाओं का अपमान करके उसने कन्या का मार्ग रोक लिया।

अपनी सेना और बल से मत्त दुर्योधन, भीष्म और द्रोण के भरोसे कन्या को रथ पर चढ़ा कर हर ले गया। उस की रक्षा के लिये शस्त्रादि से सज्जित होकर कर्ण भी साथ ही चला। इस पर सभी राजाओं का उस से बड़ा भारी युद्ध हुवा।" १

यह कार्य कितना निर्लज्जता से पूर्ण था! परन्तु उस काल के अग्रिणी नेता, राजनीति के धुरन्धर विद्वान् भीष्म और द्रोण ने भी पापात्मा दुर्योधन के एक राजकन्या को बलात्कार से हरण करने का विरोध नहीं किया। दुर्योधन जैसे भोगी विलासी राजा का वृद्ध पितामह भीष्म के भरोसे पर रहना आश्चर्यकर है। परन्तु इस में आश्चर्य भी क्या है? क्या भीष्म ने स्वयं अपने भाई विचित्र वीर्य के लिये यही लज्जास्पद नीच कार्य नहीं किया था। इतना ही नहीं, भीष्म तो इस घृणित कार्य को न्यायानुकूल तक प्रतिपादित करते हैं—

"बलात्कार से हर ली गई कन्या को धर्मज्ञाता लोग सब से उत्तम कहते हैं।" (आदि० अ० १०२) २

युधिष्ठिर को धर्मराज कहा जाता था। वह यद्यपि दुर्योधन के समान अभिमानी और दुरात्मा नहीं था तथापि उस में कुछ क्षुद्र और धैर्यनाशक निर्वलतायें अवश्य थीं। युधिष्ठिर की इन निर्वलताओं को कर्णपर्व में एक स्थान पर बड़ी अच्छी तरह संग्रहीत किया गया है। अर्जुन स्वयं अपने बड़े भाई की इन शब्दों में निन्दा करता है—

"तुम से हमें कुछ भी लाभ नहीं। हमने अपने तन मन यहाँ तक कि अपने पुत्रों तक को अर्पित करके तेरा ही इष्ट किया। फिर भी तू हमें इस प्रकार वाग्शरों से छेद रहा है? ३

"बस, द्रौपदी के साथ आमोद करता हुवा हमें अब और अधिक अपमानित मत कर। तेरे लिये मैं महारथियों को मारता था, इसी से निडर होकर तू हम पर ही क्रूर होगया। तेरे कारण ही हमें ज़रा भी सुख प्राप्त नहीं हुवा।" ४

---

१. ततः संश्राव्यमाणेषु राज्ञां नामसु भारत।
अत्यक्रामद्धार्तराष्ट्रं सा कन्या वरवासिनी॥ १५॥
दुर्योधनस्तु कौरव्यो नामर्षतलंघनम्।
प्रत्यषेधच्च तां कन्यामसत्कृत्य नराधिपान्॥
सवीर्यमदमत्तत्वाद् भीष्मद्रोणावुपाश्रितः।
रथमारोप्यतां कन्यामाजहार नरधिपः॥

२. प्रमथ्यतु हृतामाहु ज्यायसीं धर्मवादिनः॥ ११॥

३. यत्ते हि नित्यं तव कर्तुमिष्टं, दारैः सुतैर्जीवितेनात्मना च।
एवं यन्मांवाग्विशिखेन हंसित्वत्तः सुखं न वयं विद्मः किञ्चित्॥ १३॥

४. मा मावमस्थो द्रौपदी तल्प संस्थो महारथान्प्रति हन्मि त्वदर्थे।
तेनाविशङ्की भारत निष्ठुरोसि त्वत्तः सुखं नाभिजानामि किञ्चित्॥ १४॥

"तेरा राजा बनना भी हमें अच्छा नहीं लगता, क्योंकि तू सदा जूए में मस्त रहता है। स्वयं इस प्रकार पाप कार्य करके तू हमारे द्वारा शत्रुओं को पराजित करना चाहता है।" १

इसी प्रकरण में युधिष्ठिर स्वयं अर्जुन के उक्त कथन का इस प्रकार उत्तर देता है—

"मैं पापी हूं; मुझे पाप करने का अभ्यास है। मैं मूढ़मति, आलसी, भीरू, वृद्ध का तिरस्कार करने वाला और कठोर वादी हूं। मेरा कटुवचन सुन कर या मेरा अनुसरण करके तुम क्या बना लोगे।" २

एक सत्तात्मक राज्य की सुवर्णीय प्रथाएं—यह दुरवस्था होने पर भी दुर्योधन, जरासन्ध और युधिष्ठिर आदि व्यसनी और निरङ्कुश एकात्मक राजाओं और उन की कमज़ोर प्रजाओं के पास प्राचीन काल की अनेक सुवर्णीय प्रथाएं पैतृक सम्पत्ति की भांति शेष थीं।

भारत के प्राचीन सुवर्णीय युग में राजा की शक्ति तथा अधिकारों पर बहुत से प्रतिबन्ध स्थापित थे। उस समय का शासन एक प्रकार से प्रजा-सत्तात्मक होता था, इस के नेता ब्राह्मण होते थे। यह जनतन्त्र शासन व्यवस्था सब को मान्य थी। ये प्रजा के अधिकारों की व्यवस्थाएं केवल कागज़ पर लिखी हुई न होती थी, इन का व्यवहार क्रियात्मक रूप से होता था। इस प्रकार के उदाहरण पहले दिये जा चुके हैं जब कि सर्वसाधारण प्रजा ने मिल कर स्वयं अथवा ब्राह्मणों को अपना प्रतिनिधि बना कर शासन में अधिकार प्राप्त करने और उनका लाभ उठाने में प्रभावशाली कार्य कर दिखाया। उस समय के ब्राह्मण जनता की केन्द्रीभूत सद्भावना के प्रतिनिधि और बुद्धिसत्ता, न्याय तथा त्याग की मूर्ति हुवा करते थे।

राष्ट्र के शासनादि कार्यों में साधारण जनता की सम्मतियों का बहुत बल था। जब कभी किसी राजा ने साधारण जनता की आवाज़ की उपेक्षा की, वह अवश्य नष्ट हो गया। प्रजा की दुःखभरी आहों ने राज्य के राज्य उलट दिये। प्रजा की सम्मति चाहे नियमानुकूल हो चाहे नियम के प्रतिकूल, शासन व्यवस्था से स्वीकृत संस्था द्वारा प्रकाशित की गई हो या साधारण व्यक्तियों द्वारा ही प्रगट की हो-सब अवस्थाओं में उस में इतना बल होता था कि उस पर ध्यान दिये बिना काम ही नहीं चल सकता था। महाभारत काल के गुरुजन-भीष्म और द्रोणादि-प्राचीन काल के वसिष्ठ और विश्वमित्रादि के अवशिष्ट प्रतिनिधि

---

१. नचाभिनन्दामि तवाधिराज्यं यतस्त्वमक्षेष्वहिताय सक्तः ।
स्वयं कृत्वा पापमनार्यजुष्टमस्माभिर्वै तर्तुमिच्छस्यरींस्त्वम् ॥ १६ ॥
(कर्ण पर्व, अ० ७०)

२. पापस्य पापव्यसनान्वितस्य विमूढबुद्धेरलसस्य भीरोः ।
वृद्धावमन्तुः पुरुषस्य चैव किं ते चिरं मेऽद्यनुसृत्य रूक्षम् ॥ ४५ ॥
(कर्ण पर्व, अ० ७०)

मात्र ही रह गए थे। प्राचीन काल में वसिष्ठ विश्वामित्रादि प्रभावशाली ब्राह्मण ही जनता के प्रतिनिधि रूप से कार्य करते थे। वे न्याय मार्ग को छोड़ कर निरङ्कुशतापूर्वक आचरण करते हुए राजाओं की बड़ी प्रबलता से निन्दा करते थे। वे उन को न्यायानुकूल और प्रजा की इच्छा के विरुद्ध न चलने के लिये बाधित करते थे। इस उपर्युक्त स्थापना के लिये महाभारत में ही प्रबल और विश्वास करने योग्य प्रमाण प्राप्त होते हैं। उन में से कुछ प्रमाण यहां दिये जाते हैं।

प्राचीन काल की शासन पद्धति

प्राचीन काल में राजा का मुख्य उद्देश्य ही प्रजारञ्जन करना था। 'राजा' शब्द की व्युत्पत्ति और निरुक्ति के अनुसार यही भाव सूचित होता है। शान्ति पर्व में भीष्म कहते हैं—

"उस महात्मा महाराज पृथु ने (जो सब से प्रथम राजा कहलाया) धर्म पूर्वक शासन करते हुए प्रजा को प्रसन्न किया; इसी से उसे 'राजा' कहा जाने लगा।"[1]

राजा की प्रतिज्ञाएं— राष्ट्र के महान् कार्य का भारी उत्तरदायित्व अपने पर लेने से पूर्व राजा जो प्रतिज्ञा करता था उस से प्रतीत होता है कि वह अपना मुख्यतम कर्तव्य प्रजा को सुखी करना ही समझता था। महाभारत के अनुसार मनुष्य समाज के इतिहास में सब से प्रथम राजा ने जो प्रतिज्ञाएं की थीं उन में से एक प्रतिज्ञा का वर्णन शान्ति-पर्व में इस प्रकार किया है—

"तब हाथ जोड़ कर वेन के पुत्र पृथु ने ब्रह्मर्षियों के सामने कहा कि मुझ में धर्मार्थ को देखने वाली सूक्ष्म बुद्धि पैदा हो चुकी है। इस बुद्धि से मैं क्या करूँ यह मुझे समझाकर कहिये। आप मुझे जिस बात का आदेश देंगे मैं वही कार्य करूँगा, यह निश्चित मानिये।"[2]

यह सुन कर ऋषियों ने उत्तर दिया—

"जो कार्य धर्मानुकूल है वह तुम्हें सर्वथा निश्शङ्क होकर करना चाहिये। अपने वैयक्तिक सुख का ध्यान न करते हुए तुम्हें काम, क्रोध, मोह, लोभ और मान को दूर ही से त्याग कर बरतना चाहिये। जो व्यक्ति पापाचरण करे उसको

---

१. तेन धर्मोत्तरश्चायं कृतो लोको महात्मना।
रञ्जिताश्च प्रजाःसर्वास्तेन राजेति शब्द्यते ॥ १२५ ॥

(शान्ति पर्व. अ० ५९)

२. ततस्तु प्राञ्जलिर्वैण्यो महर्षीं तानुवाच ह ॥ १०० ॥
सुसूक्ष्मा मे समुत्पन्ना बुद्धि धर्मार्थ दर्शिनी।
अनया किं मया कार्यं तन्मे तत्वेन शंसत ॥ १०१ ॥
यन्मां भवन्तो वक्ष्यन्ति कार्यमर्थ समन्वितम्।
तदहं वै करिष्यामि नात्र कार्या विचारणा ॥ १०२ ॥

(शान्ति पर्व. अ० ५८)

सदैव सजग होकर रहनेवाले तुम दण्ड दो। अपने मन, कर्म और वचन से सदैव इस प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहो कि मैं जब तक जीऊँगा, तब तक प्रजा की आवाज़ को ईश्वर की आवाज़ मान कर उस का पालन करूँगा। जो कार्य दण्डनीति तथा राज्य शासन के अनुकूल होगा उसे अवश्य पालन करूँगा,— मनमाना कार्य नहीं करूँगा। हे राजन्! प्रतिज्ञा करो कि मैं द्विज और ब्राह्मणों को दण्ड नहीं दूँगा; प्रजा को संकर होने और अव्यवस्था में पड़ने से बचाऊँगा।" १

तब पृथु ने कहा— "ब्राह्मण लोग अवश्य ही मेरे पूज्य हैं। आप ने जो आदेश दिया है उसे अवश्य पूरा करूँगा।" पृथु के यह वचन देने पर आचार्य शुक उसके पुरोहित और बालखिल्य उसके मन्त्री बने। महर्षिगण उसके पुरोहित हुए, ये सब मिला कर सात व्यक्ति थे और आठवाँ वह स्वयं था।" २

इस प्रकार महाभारत के अनुसार मानवीय सृष्टि के सब से प्रथम राजा ने दण्डनीतिशास्त्र के अनुकूल चलने और मनमाना कार्य न करने की प्रतिज्ञा की।

यहां एक आशंका हो सकती है, इस प्रकरण में राजा द्वारा की गई प्रतिज्ञाओं का तो वर्णन है परन्तु उन्हें तोड़ने के लिये किसी दण्ड का विधान नहीं है। परन्तु वास्तव में पृथु को प्रतिज्ञा भङ्ग का दण्ड बताने की आवश्यकता ही नहीं थी, क्यों कि उस के पिता को इन प्रतिज्ञाओं के भङ्ग करने के अपराध में राज्यच्युत कर के उसे राजा बनाया गया था। इसी शान्ति पर्व में ही लिखा है कि—

---

१. तमुचुस्तत्र देवास्ते ते चैव परमर्षयः ।
नियतो यत्र धर्मो वै तमशङ्कः समाचर ॥ १०३ ॥
प्रिया प्रिये परित्यज्य समः सर्वेषु जन्तुषु ।
काम क्रोधौ च लोभञ्च मानञ्चोत्सृज्य दूरतः ॥ १०४ ॥
यश्च धर्मात् प्रतिचलेल्लोके कश्चन मानवः ।
निग्राह्यस्ते स्व बाहुभ्यां शश्वद्धर्ममवेक्षता ॥ १०५ ॥
प्रतिज्ञाञ्चाधिरोहस्व मनसा कर्मणा गिरा ।
पालयिष्याम्यहं भौमं ब्रह्म इत्येव चासकृत् ॥ १०६ ॥
यश्चात्र धर्म नित्योक्तो दण्डनीति व्यपाश्रयः ।
तमशङ्कः करिष्यामि स्ववशो न कदाचन ॥ १०७ ॥
अदण्ड्या मे द्विजाश्चेति प्रतिजानीहि हे प्रभो ।
लोकं च संकटात्कृत्स्नं त्रातास्मीति परन्तप ॥ १०८ ॥

२. वैण्यस्ततस्तानुवाच देवानृषि पुरोगमान् ।
ब्राह्मणा मे महा भागा नमस्याः पुरुषर्षभाः ॥ १०९ ॥
एवमस्त्विति वैण्यस्तु तैरुक्तो ब्रह्मवादिभिः ।
पुरोधाश्चाभवत्तस्य शुक्रो ब्रह्ममयो निधिः ॥ ११० ॥
मन्त्रिणो बालखिल्यश्च सारस्वत्यो गणास्तथा ।
महर्षिर्भगवान् गर्गस्तस्य सांवत्सरोऽभवत् ॥ १११ ॥
आत्मनाष्टम इत्येव श्रुतिरेषा परा नृषु ॥ ११२ ॥

"राग द्वेश के वश हो कर राजा वेन ने प्रजा पर अत्याचार किया तब नियमों के ज्ञाता ऋषियों ने मन्त्रों से शुद्ध की गई कुशाओं द्वारा (कानून और तप के बल पर) उसे राज्यच्युत कर दिया।"[१]

राजसत्ता पर लोक मत के प्रतिबन्ध के कुछ दृष्टान्त

केवल वेन ही नहीं अपितु महाभारत में अन्य भी बहुत से अत्याचारी राजाओं को राज्यच्युत करने के दृष्टान्त मौजूद हैं।

राजा खनी नेत्र—"राजा विविंश के १५ पुत्रों में से सब से बड़े पुत्र खनीनेत्र ने अपने भाइयों को बहुत तंग किया; एक बड़ी सेना लेकर उसने सारा राज्य अपने आधीन कर लिया। परन्तु इतने बड़े राज्य को वह सम्भाल न सका; उस की प्रजा उस से असन्तुष्ट हो गई। तब प्रजा ने उसे राज्यच्युत करके उसके बड़े पुत्र सुवर्चा को राजसिंहासन पर बैठाया। सुवर्चा ने प्रजा को बहुत सुखी किया। अपने पिता को राज्यच्युत हुआ देख कर ही वह सत्याचरण और शुद्धाचार से युक्त हो कर प्रजा हित की दृष्टि से राज्य करने लगा। प्रजा भी उसको धर्मात्मा और तेजस्वी देख कर उसकी भक्त बन गई।"[२]

ज्येष्ठ पुत्र को राज्य न मिलना—"राजा ययाति अपने बाद अपने सब से छोटे पुत्र पुरु को राज्य देना चाहता था। इस पर प्रजा के प्रतिनिधि हो कर ब्राह्मणों ने उस से कहा—"राजन्, शुक्राचार्य के नाती और देवयानी के ज्येष्ठ पुत्र यदु को त्याग कर तुम पुरु को क्यों युवराज बनाने लगे हो? यदु सब से बड़ा पुत्र है; उस के बाद तुर्वसु है; तुर्वसु के छोटे भाई शर्मिष्ठा के पुत्र द्रुह्यु और अनु

---

१. तं प्रजासु विधर्माणं रागद्वेश वशानुगम्।
मन्त्र पूतैः कुशैर्जघ्नुः ऋषयो ब्रह्मवादिनः ॥ ९४ ॥
(शान्ति पर्व, अध्याय ५९)

२. तेषां ज्येष्ठः खनीनेत्रः सुतान् सर्वानपीडयत् ॥ ७ ॥
खनीनेत्रस्तु विक्रान्तो जित्वा राज्यमकण्टकम्।
नाशकद्रक्षितुं राज्यं नान्वरज्यन्त तं प्रजाः ॥ ८ ॥
तमपास्य च तद्राज्ये तस्य पुत्रं सुवर्चसम्।
अभ्यषिञ्चन्त राजेन्द्र मुदिताश्चाभवंस्तदा ॥ ९ ॥
स पितुर्विक्रियां दृष्ट्वा राज्यान्निरसनं च तत्।
नियतो वर्तयामास प्रजा हित चिकीर्षया ॥ १० ॥
ब्रह्मण्यः सत्यवादी च शुचिः शमदमान्वितः।
प्रजास्तं चान्वरज्यन्त धर्म नित्यं मनस्विनम् ॥ ११ ॥
(अश्वमेध पर्व, अ० ४)

हैं, इन सब के बाद पुरु का अधिकार है । राज्य की प्रथा देखते हुए हमें बताओ कि इस अवस्था में पुरु क्यों कर युवराज बनाया जा सकता है ?" १

इस पर ययाति ने कहा–"हे प्रजा के नेता ब्राह्मणादि वर्णो ! बड़े पुत्र को युवराज न बनाने की सफाई मैं इस प्रकार देता हूँ । यदु ने मेरी आज्ञा नहीं मानी इस कारण बुद्धिमानों के कथनानुसार वह मेरा पुत्र कहाने योग्य भी नहीं । पुत्र को धर्मानुकूल माता पिता की आज्ञा का अवश्य पालन करना चाहिये । यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु और अनु इन चारों ने मेरी आज्ञा न मान कर मेरा अपमान किया है, केवल पुरु ने ही मेरा कहना माना है । इस लिये मेरा उत्तराधिकारी पुरु ही है । आचार्य शुक्र ने भी यही वर दिया था अतः मैं आप से निवेदन करता हूँ कि आप भी मुझे इस की अनुमति दीजिये ।" इस पर सब ने कहा–"जो पुत्र गुणवान और माता पिता का हित करने वाला है वह छोटा होता हुवा भी राज्य का अधिकारी है । तुम्हारी आज्ञा पालन करने के कारण पुरु अवश्य राज्य के योग्य है, आचार्य शुक्र का वर भी यही है अतः हम इस का विरोध नहीं करते ।" २

---

१. अभिषेक्तुकामं नृपतिं पुरुं पुत्रं कनीयसम् ।
ब्राह्मण प्रमुखाः वर्णा इदं वचनमब्रुवन् ।। १८ ।।
कथं शुक्रस्य नप्तारं देवयान्याः सुतं प्रभो ।
ज्येष्ठं यदुमतिक्रम्य राज्यं पूरोः प्रयच्छसि ।। १९ ।।
यदुर्ज्येष्ठस्तव सुतो जातस्तमनु तुर्वसुः ।
शर्मिष्ठायास्सुतो द्रुह्युस्ततोऽनुः पुरुरेव च ।। २० ।।
कथं ज्येष्ठानतिक्रम्य कनीयान्राज्यमर्हति ।
एतत्संबोधयामस्त्वां धर्मं त्वं प्रतिपालय ।। २१ ।।

२. ययातिरुवाच—

ब्राह्मण प्रमुखा वर्णाः सर्वे शृण्वन्तु मे वचः ।
ज्येष्ठं प्रति यथा राज्यं न देयं मे कथञ्चन ।। २२ ।।
मम ज्येष्ठेन यदुना नियोगो नानुपालितः ।
प्रतिकूलः पितुर्यश्च न स पुत्रः सतां मतः ।। २३ ।।
माता पित्रोर्वचनकृद् हितः पथ्यश्च यः सुतः ।
सुपुत्रः पुत्रवद्यश्च वर्त्तते पितृमातृषु ।। २५ ।।
यदुनाहमवज्ञातः तथा तुर्वसुनापि च ।
द्रुह्युना चानुनाचापि मय्यवज्ञाकृता भृशम् ।। २६ ।।
पुरुणानुकृतं वाक्यं मानितञ्च विशेषतः ।
कनीयान् मम दायादो धृता तेन जरा मम ।। २७ ।।
मम कामः स च कृतः पुरुणा मित्र रूपिणा ।
शुक्रेण च वरो दत्तो काव्येनोशसा स्वयम् ।। २८ ।।
पुत्रो यस्त्वानुवर्तेत स राजा पृथिवी पतिः ।
भवतोऽनुनयाम्येवं पुरुराज्ये ऽभिषेच्यताम् ।। २९ ।।

इसी प्रकार महाभारत के उद्योगपर्व में वर्णन आता है कि प्रतीप राजा ने अपनी सब वैयक्तिक आकांक्षाओं और मनोरथों को प्रजा को सुखी करने के लिए त्याग दिया। यह वर्णन इस प्रकार है।

"सुप्रसिद्ध राजा प्रतीप के तीन पुत्र थे। इन में देवापि सब से बड़ा बाल्हीक बीच का और शान्तनु सब से छोटा था। देवापि पिता भक्त, सत्यवादी और सब राष्ट्र के नागरिकों का प्रिय था; परन्तु उसे कुष्ठ रोग था। राजा प्रतीप ने स्वयं बूढ़ा हो जाने पर देवापि को ही अपना युवराज नियुक्त करने का निश्चय किया। परन्तु साधारण प्रजा तथा उनके नेताओं ने राजा के इस विचार का तीव्र विरोध किया, उन्होंने कहा कि यद्यपि देवापि बहुगुण सम्पन्न है तथापि उसे कुष्ठ होने के कारण हम उसे राजा बनाना पसन्द नहीं करते। हीनाङ्ग राजा प्रभाव-शाली नहीं हो सकता। प्रजा की यह मांग सुन कर राजा को बहुत अधिक दुःख हुवा। देवापि भी संतप्त होकर वन में चला गया। तब अपने चचा के घर से आकर प्रतीप का द्वितीय पुत्र बाल्हीक राजगद्दी बैठा। बाल्हीक ने भी अपने वृद्ध पिता की मृत्यु पर राज्य छोड़ दिया। अन्त में शान्तनु ने राज्य कार्य संभाला।" [१]

प्रकृतयः ऊचुः—यः पुत्रो गुण सम्पन्नो माता पित्रोर्हितः सदा।
सर्वमर्हति कल्याणं कनीयानपिसत्तम॥ ३०॥
अर्हः पूरुरिदं राज्यं यः सुतः प्रिय कृत्तव।
वरदानेन शुक्रस्य न शक्यं वक्तुमुत्तरम्॥ ३१॥
अभ्यषिञ्चत्ततः पूरुं राज्ये स्वे सुतमात्मनः॥ ३२॥
(आदि० अ० ८५)

१. प्रतीपः पृथिवीपालस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः॥ १४॥
तस्य पार्थिवसिंहस्य राज्यं धर्मेण शासतः।
त्रयः प्रजज्ञिरे पुत्राः देवकल्पा यशस्विनः॥ १५॥
देवापिरभवज्ज्येष्ठो बाल्हीकस्तदनन्तरम्।
तृतीयः शान्तनुस्तात धृतिमान्मे पितामहः॥ १६॥
देवापिस्तु महातेजास्त्वग्दोषी राजसत्तमः।
धार्मिकः सत्यवादी च पितुः शुश्रूषणे रतः॥ १८॥
पौर जानपदानांच सम्मतः साधुसत्कृतः॥
सर्वेषां बाल वृद्धानां देवापि र्हृदयङ्गमः॥ १९॥
वदान्यः सत्यसन्धश्च सर्वभूतहिते रतः।
वर्त्तमानः पितुः शास्त्रे ब्राह्मणानांतथैव च॥ २०॥
अथ कालस्य पर्याये वृद्धो नृपतिसत्तमः।
सम्भारानभिषेकार्थं कारयामास शास्त्रतः॥ २१॥
तं ब्राह्मणाश्च वृद्धाश्च पौर जानपदैः सह।
सर्वेनिवारयामासुः देवापेरभिषेचनम्॥ २२॥
सतच्छ्रुत्वा तु नृपतिरभिषेकानिवारणम्।

व्यवस्थापिका सभा (Legislative Council.)

महाभारत शान्ति पर्व में पितामह भीष्म ने युधिष्ठर के सन्मुख एक-सतात्मक राज्य के दोषों का वर्णन कर के प्रजा के प्रतिनिधियों की सभा बनाने की अनुमति दी है। इस सभा में चारों वर्णों का यथायोग्य प्रतिनिधित्व होना चाहिये। इस सभा की रचना इस प्रकार होनी चाहिये—

"इस सभा में चार ब्राह्मण हों जो आयुर्वेद में निपुण, विचार शील, प्रगल्भ स्नातक और शुद्ध हृदय हों। आठ युद्धविद्या में निपुण क्षत्रिय हों। इक्कीस धन शान्ति से सम्पन्न वैश्य हों। एक सूत हो जो आठ गुणों से युक्त, ५० वर्ष की अवस्था वाला, उच्च भावों वाला और ईर्ष्यारहित हो।"[१]

निर्णयों का प्रकाशन— प्राचीन राज्य शासकों ने नियामक सभा के निर्णयों को साधारण प्रजा तक पहुँचाने का भी पूर्ण प्रबन्ध किया हुआ था। उपर्युक्त प्रकरण में ही हम पढ़ते हैं कि—

"इस सभा के निश्चय को तथा सभा द्वारा विचारित विषयों को राजा जनता तक पहुंचादे। जनता के मुख्य नेता भी उसे भली प्रकार जानलें। इस प्रकार के व्यवहार से राजा को सदैव प्रजा का निरीक्षण करना चाहिये।"[२]

आनुपूर्व्या भवद्राजा पर्यशोचत चात्मजम् ॥ २३ ॥
एवं वदान्यो धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च सोऽभवत् ॥ २४ ॥
प्रियः प्रजानामपि स त्वग् दोषेण प्रदूषितः ।
हीनाङ्गं पृथिवीपालं नाभिनन्दन्ति देवताः ॥ २५ ॥
इतिकृत्वा नृप श्रेष्ठं प्रत्यषेधन्द्विजर्षभाः ॥
ततः प्रव्यथिताङ्गोऽसौ पुत्रशोक समन्वितः ॥ २६ ॥
निवारितं नृपं दृष्ट्वा देवापिः संश्रितो वनम् ॥
वाल्हीको मातुलकुलं त्यक्त्वा राज्यं समाश्रितः ॥ २७ ॥

१. चतुरो ब्राह्मणान् वैद्यान् प्रगल्भान् स्नातकाञ्शुचीन् ।
क्षत्रियांश्च तथा चाष्टौ बलिनः शस्त्रपाणिनः ॥ ७ ॥
वैश्यान् वित्तेन सम्पन्नान् एकविंशतिसङ्ख्यया ।
त्रींश्च शूद्रान् विनीतांश्च शुचीन् कर्मणिपूर्वके ॥ ८ ॥
अष्टाभिश्च गुणैर्युक्तं सूतं पौराणिकं तथा—
पञ्चाशद्वर्षं वयसं प्रगल्भमन सूत्रकम् ॥ ९ ॥

(शान्ति० अ० ८५)

२. ततः संप्रेषयेद् राष्ट्रे राष्ट्रियाय च दर्शयेत्
अनेन व्यवहारेण द्रष्टव्यास्ते प्रजाः सदा ॥ १२ ॥

(शान्ति० अ० ८५)

राजा के कर्तव्य और उत्तरदायित्व—प्राचीन समय में राजा ही राष्ट्र का मुख्य शासक होता था; इस लिये तत्कालीन विचारक और नीतिज्ञ राजा की सुशिक्षा पर बहुत अधिक बल देते थे। शान्ति पर्व में महाराज मान्धाता के सम्मुख ऋषि उतथ्य ने राजा के कर्तव्यों का वर्णन इस प्रकार किया है—

"हे राजन्! कमज़ोर की, तपस्वी की और सांप की दृष्टि बहुत असह्य होती है, इस लिये तुम कमज़ोर को कभी मत सताओ॥ १४॥ अधिक बल होने से दुर्बल होना ही अधिक अच्छा है क्यों कि अधिक बल वाले का जब पतन होता है तब वह सर्वथा बलशून्य होकर दुर्बल से भी दुर्बल रह जाता है॥ १७॥ बलवान् राजा यदि दुर्बल का अपमान करे, उसे मारे या उसे गाली दे तो घटना चक्र से तैयार हुवा हुवा दण्ड उस राजा का नाश करदेता है॥१८॥ इस लिये हे मान्धातः! अगर तुम बली हो तो कमज़ोर के अधिकार को मत हथियाओ, क्यों कि जिस प्रकार आग घरों को जला देती है उसी प्रकार दुर्बल की दृष्टि कहीं तुझे भी भस्म न कर दे॥ १६॥ जब राजा अपने वचन, शरीर और क्रिया सभी से न्यायाचरण का दावा करता है तब उसे अपने पुत्र का भी अपराध क्षमा नहीं करना चाहिये॥ ३२॥ राजा का धर्म है कि वह अपने भाग में से भी दुर्बलों को देकर उन्हें शक्तिशाली बनावे॥ ३३॥ राजा का धर्म है कि जहां वह अपनी साधारण प्रजा को सुखी करे वहां वह अभागे, अनाथ और बूढ़ों के आंसू भी पोंछ दे॥ ३८॥"[1]

इसी प्रकार वसुमना राजा के प्रति दिए गए वामदेव के उपदेश का कुछ अंश हम यहां उद्धृत करते हैं—

---

१. दुर्बलस्य च यच्चक्षुर्मुनेराशीविषस्य च।
अविषह्यतमं मन्ये मास्म दुर्बलमासदः॥ १४॥
अबलं नैव बलाच्छ्रेयो यच्चातिबलवद्बलम्।
बलस्याबलदग्धस्य नकिञ्चिदवशिष्यते॥ १७॥
विमानितो हतः क्रुष्टस्त्रातारं नैव विन्दति।
अमानुष कृतस्तत्र दण्डोहन्ति नराधिपम्॥ १८॥
मास्म तात बलेस्थित्वा भुञ्जीथा दुर्बलं जनम्।
मात्वा दुर्बलचक्षूंषि दहन्त्वग्निरिवाश्रयम्॥ १९॥
जायतेहि यदा सर्वं वाचा कायेन कर्मणा।
पुत्रस्यापि न मृष्येच्च सराज्ञो धर्मउच्यते॥ ३२॥
सम्विभज्य यदा भुंक्ते नृपतिर्दुर्बलान् नरान्।
तदाभवन्ति बलिनः सराज्ञः धर्म उच्यते॥ ३३॥
कृपणानाथवृद्धानां यदाश्रु परिमार्जति।
हर्षं स जनयन् नृणां सराज्ञो धर्म उच्यते॥ ३८॥ (शान्ति० अ० ९१)

"किला, युद्ध, धर्मानुकूल शासन, मन्त्रचिन्तन और साधारण प्रजा का सुखी होना इन पाचों द्वारा ही राष्ट्र की उन्नति होती है ॥ २३ ॥ अकेला राजा इन सब कार्यों का पूर्ण निरीक्षण नहीं कर सकता अतः उसे ये कार्य अलग अलग मन्त्रियों पर छोड़ कर स्थिरता पूर्वक राज्य का शासन करना चाहिये ॥ २६ ॥ लोग उसी को राजा चुनते हैं जो उदार, अपनी सम्पत्ति को बाँट कर भोग करने वाला, कोमल स्वभाव, शुद्ध हृदय और अपनी प्रजा को आपत्ति में भी न छोड़ने वाला हो ॥ २७ ॥ जो राजा विद्वानों से कर्तव्य का उत्तम उपदेश सुन कर उस का पालन करते हुए स्वेच्छाचारी नहीं बनता लोग उसी राजा के वश में होकर रहते हैं ॥ २८ ॥" [1]

ये सब महाभारत में वर्णित राजा के आदर्श स्वरूप हैं। अब हम तत्कालीन राजाओं की वास्तविक दशा का वर्णन करते हैं--

राज चिन्ह— महाभारत आदि पर्व में, अङ्गदेश के राजा कर्ण के राज्याभिषेक का वर्णन करते हुए, राजचिन्हों का वर्णन इस प्रकार किया है--

"उसी समय ब्राह्मणों ने पुष्प रस से मिश्रित सोने के घड़ों में रक्खे हुए जल से कर्ण का अभिषेक किया। इस प्रकार वह पराक्रमी अङ्गदेश का शासक बनाया गया। उस के सिर पर श्वेत छत्र रक्खा गया, इधर उधर चँवर डुलाये जाने लगे। सब लोग उसकी जय जयकार करने लगे।" [2]

अभिषेक-उत्सव और प्रदर्शनियां— महाभारत कालमें राज्याभिषेक के अवसर पर प्रजा के मनोरञ्जनार्थ और ज्ञानवृद्धि के लिये बड़ी बड़ी प्रदर्शनियों की आयोजना भी की जाती थी। महाराज युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ करने पर भी एक इसी प्रकार के चिड़ियाघर का वर्णन उपलब्ध होता है--

"यज्ञ में निमन्त्रित विदेशी राजाओं ने वहां दूर दूर देशों से लाए गए जल और स्थल के पशुओं को देखा। वहां उन्होंने गाय, भैंस, बूढ़ी औरतें, पानी

---

१. रक्षाधिकरणं युद्धं तथा धर्मानुशासनम् ।
मन्त्र चिन्ता सुखं लोके पञ्चभिवर्धतेमही ॥ २३ ॥
नैता व्येकेन शक्यानि सातत्येनानुवीक्षितुम् ।
तेषुसर्वं प्रतिष्ठाप्य राजा भुङ्क्ते चिरं महीम् ॥ २६ ॥
दातरं संविभक्तारं मार्दवोपगतं शुचिम् ।
असन्त्यक्तस्मनुष्यञ्च जनाः कुर्वते नृपम् ॥ २७ ॥
यस्तुनिश्रेयसं श्रुत्वा ज्ञानं तत् प्रतिपद्यते ।
आत्मनो मतमुत्सृज्य तं लोके ऽनु विधीयते ॥ २८ ॥ (शान्ति० अ० ११)

२. ततस्तस्मिन्क्षणे कर्णः सलाजकुसुमैर्घटैः ।
काञ्चनैः काञ्चनेपीठे मन्त्र विद्भिर्महारथः ॥ ३७ ॥
अभिषिक्तोङ्गराज्यस्य श्रिया युक्तोमहाबलः ।
सच्छत्रवालव्यजनो जयशब्दोत्तरेणच ॥ ३८ ॥ (आदिपर्व० अ० १३८)

के जीव, जंगली जीव, पक्षी, जेरज अण्डज तथा स्वेदज प्राणी और वनस्पति पर्वत तथा जल में पैदा होने वाले जीवों को देखा।"[1]

राजधानी— शान्ति पर्व में राजधानी का वर्णन करते हुए इन बातों पर ध्यान देने को लिखा है—

"राजा को ऐसे नगर में अपनी राजधानी बनानी चाहिये जिस नगर में किला हो, पर्याप्त हथियारों का सुभीता हो, ज़मीन उपजाऊ हो, चारों ओर कोट और खाई हो, जहां हाथी घोड़े रथादि खूब हों, जहां विद्वान् कारीगर और विश्वस्त प्रजा रहती हो, जहां कई वीर और लड़ाकू जातियों का वास हो, जिस का व्यापार खूब उन्नत हो, जो सब ओर से सुरक्षित और सुन्दर हो; जिस के निवासी वीर और धनी हों, जिस में वेद पाठ, उत्सव और सभायें होती हों, जहां देवताओं की सदा पूजा होती हो। ऐसे नगर ही में राजा को अपनी सेना तथा मन्त्रियों सहित रहना चाहिये। इस प्रकार के नगर में रहता हुवा राजा अपनी सेना, कोष और व्यापार को बढ़ावे। वह प्रजा और नगर के सब दोषों का निवारण करे।"[2]

"राजा बड़ी पहिचान से प्रजा की सुशिक्षा के लिये इस नगर में आचार्य ऋत्विग्, पुरोहितों, आयुधवीरों, शिल्पियों, ज्योतिषियों और वैद्यों को नियुक्त

---

१. स्थलजा जलजा येच पशवः केचन प्रभो।
सर्वानेव समानी तानपश्यंस्तत्र ते नृपाः॥ ३२॥
गावश्चैव महिषीश्चैव तथा वृद्धस्त्रियोपिच।
औदकानि च सत्वानि श्वापदानि वयांसिच॥ ३३॥
जरायुजाण्डजातानि स्वेदजान्युद्भिदानिच।
पर्वतानूपजातानि भूतानिददृशुश्चते॥ ३४॥
(अश्वमेध पर्व अ० ८५)

२. यत्पुरं दुर्गसम्पन्नं धान्यायुधसमन्वितम्।
दृढप्राकारपरिखं हस्त्यश्वरथसङ्कुलम्॥ ६॥
विद्वांसः शिल्पिनो यत्र निचयाश्च सुसंचिताः।
धार्मिकश्च जनोयत्र दाक्ष्यमुत्तममास्थितः॥ ७॥
ऊर्जस्विनरनागाश्वं चत्वरापणशोभितम्।
प्रसिद्ध व्यवहारञ्च प्रशान्तमकुतोभयम्॥ ८॥
सप्रभं सानुनादं च सुप्रशस्त निवेशनम्॥
शूराढ्य जन सम्पन्नंब्रह्मघोषानुनादितम्॥ ९॥
समाजोत्सव सम्पन्नं सदा पूजित दैवतम्॥
वश्यामात्यबलो राजा तत्पुरं स्वयमाविशेत्॥ १०॥
तत्र कोशं बलं मित्रं व्यवहारञ्चवर्धयेत्।
पुरे जनपदे चैव सर्व दोषान्निवर्तयेत्॥ ११॥
(शान्ति० अ० ८६)

करे। इन सब पदों पर बुद्धिमान, उदार, चतुर, विद्वान और गुणी कुलीन ही नियुक्त किये जाँय।" १

राजा के शिक्षक— राजा का यह कर्तव्य है कि वह अभिमान रहित निष्काम और निष्पक्ष सन्यासी तथा विद्वानों की सम्मति को अत्यन्त आदर व श्रद्धा के साथ सुने—

"सर्वस्व त्यागी, कुलीन विद्वान का राजा सदैव आसन, भोजन, निवास आदि द्वारा यथायोग्य सत्कार करे। कोई आपत्ति आने पर उन पर पूरा विश्वास करे क्यों कि प्रायः ऐसे साधु जन पर दस्यु तक भी विश्वास कर लेते हैं। उस विद्वान को वह अपना अर्थ सचिव बनाये, विशेष कार्य पड़ने पर उससे सलाह ले। बार बार पूछ कर उसे तंग न करे परन्तु उसका सत्कार बहुत अधिक करे। इसी प्रकार के एक विद्वान को स्वराष्ट्र सचिव और एक को परराष्ट्र दूत नियुक्त करे। एक को वनाध्यक्ष और एक को आधीन राज्यों का निरीक्षक (उपनिवेश सचिव) नियुक्त करे। राजा इनके साथ सम्मान का व्यवहार करे इनकी आवश्यकताओं का पूर्ण ध्यान रक्खे। परराष्ट्र दूत और वनाध्यक्ष का भी स्वराष्ट्र सचिव के बराबर सम्मान करे। ये तपस्वी लोग मौका पड़ने पर राजा को पूरी सहायता देंगे।" २

इस प्रकरण में कितनी सुन्दरता से राजा के सन्यासी और विद्वानों के प्रति कर्तव्यों तथा सम्बन्धों का निर्देश किया है। एक सबल राजा को एक

---

१. सत्कृताश्च प्रयत्नेन आचार्यर्त्विक् पुरोहिताः ॥
महेष्वासाः स्थपतयः सम्वत्सर चिकित्सकाः ॥ १६ ॥
प्राज्ञाः मेधाविनोदान्ता दक्षाः शूरा बहुश्रुताः ॥
कुलीनाः सत्वसम्पन्नाः युक्ताः सर्वेषु कर्मसु ॥ १७ ॥ (शान्ति अ० ८६)

२. सर्वार्य त्यागिनं राजा कुलेजातं बहुश्रुतम्
पूजयेत्तादृशं दृष्ट्वा शयनासन भोजनैः ॥ २७ ॥
तस्मिन् कुर्वीत विश्वासं राजा कस्याञ्चिदापदि
तापसेषु हि विश्वासमपिकुर्वन्ति दस्यवः ॥ २८ ॥
तस्मिन्निधीनादधीत प्रज्ञां पर्याददीत च ।
नचाप्यभीक्ष्णं सेवेत भृशं वा प्रति पूजयेत् ॥ २९ ॥
अन्यः कार्यः स्वराष्ट्रेषु पराष्ट्रेषुचापरः ।
अटवीषु परः कार्यः सामन्तनगरेष्वपि ॥ ३० ॥
तेषु सत्कार मानाभ्यां सम्विभागांश्चकारयेत् ।
परराष्ट्राटवीस्थेषु यथा स्वविषये तथा ॥ ३१ ॥
ते कस्याञ्चिदवस्थायां शरणं शरणार्थिने ।
राज्ञे दद्युर्यथाकामं तापसाः संश्रित व्रताः ॥ ३२ ॥

(शान्ति० अ० ८६)

निष्पक्ष विद्वान परराष्ट्र दूत द्वारा कितना अधिक लाभ पहुँच सकता है। यदि आज कल भी इसी प्रकार के वीतराग पक्षपात हीन सन्यासी संसार भर के राष्ट्रों में दूत के तौर से नियुक्त होकर अन्तर्जातीय विश्वास की स्थापना कर दें तो वर्तमान युग का बढ़ता हुवा जातियों का भयङ्कर संघर्ष सरलता से शान्त किया जा सकता है। परन्तु आज कल तो संसार के अग्रिणी नेता स्वयम् ही सङ्कुचित साम्राज्यवाद के भावों का प्रचार कर रहे हैं।

दरिद्र पोषण—आज कल सभ्य संसार में दरिद्र और अपाहिजों का पालन करना राष्ट्र का कर्तव्य समझा जाता है। सभ्य देशों में इसके लिये "दरिद्र-पोषण नियम" (poor laws) बने हुए हैं। प्राचीन समय में भारत में भी यह कर्तव्य राजा का ही समझा जाता था। शान्ति पर्व में लिखा है--

"राजा सदैव अनाथ, वृद्ध, निस्सहाय और विधवाओं की रक्षा करें, उन की आजीविका का प्रबन्ध करे।" [1]

पुरोहितों और शासकों का सम्बन्ध—शान्ति पर्व में पितामह भीष्म ने महर्षि कश्यप के वचनों को उधृत करते हुए कहा है कि ब्राह्मणों (राष्ट्र के धर्म तथा आचार के प्रतिनिधि) और क्षत्रियों (राष्ट्र के शासक और अधिकारी) में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है।

"क्षत्रिय और ब्राह्मण ये दोनों सदा एक दूसरे के पूरक और परस्पर मिले रहने वाले हैं। क्षत्रियों के कारण ब्राह्मण सुरक्षित हैं और ब्राह्मणों के कारण ही क्षत्रियों की उत्पत्ति बन्द नहीं होती। ये दोनों मिल कर एक बहुत बड़ी ताकत बन जाते हैं अगर इन का प्राचीन काल से आता हुआ यह मेल टूट जाय तो राष्ट्र भर में अज्ञान और मोह का राज्य हो जाता है।" [2]

चक्रवर्ती राज्य — कुछ पुरातत्व वेत्ताओं और ऐतिहासिकों का यह नितान्त अशुद्ध और भ्रमपूर्ण विचार है कि ब्रिटिश राज की स्थापना से पूर्व कभी सम्पूर्ण भारतवर्ष एक शासन छत्र के नीचे शासित नहीं हुआ।

महाराजा युधिष्ठिर अपने समय का सम्पूर्ण भारत वर्ष का चक्रवर्ती राजा हुआ है। उसका विशाल राज्य हिन्दू कुश पर्वत से ले कर कुमारी अन्तरीप तक फैला हुवा था। इस के अतिरिक्त कतिपय अन्य देश भी उस के शासनाधीन थे। महाभारत सभा पर्व में वर्णन आता है कि--

---

१. कृपणानाथ वृद्धानां विधवानाञ्चयोषिताम्।
योगक्षेमञ्च वृत्तीनां नित्यमेव प्रकल्पयेत् ॥ २४ ॥ (शान्ति पर्व, अ० ८६)

२. एतौ हि नित्यं संयुक्तावितरेतरधारणे।
क्षत्रं वै ब्रह्मणो योनिः योनि क्षत्रस्य वै द्विजाः ॥ ११ ॥
उभावेतौ नित्यमभिप्रपन्नौ सम्प्रापतुर्महतीं सुप्रतिष्ठाम्।
तयोः सन्धिर्भिद्यते चेत्पुराणः ततः सर्वं भवति हि सम्प्रमूढम् ॥ १२ ॥
(शान्ति अ० ७३)

"महाराज युधिष्ठिर के अभिषेक पर चोल, पाण्ड्य, कम्बोज (अफगानिस्तान), गांधार (कंधार), यवन(फारस) , चीन, काश्मीर, रोमक (रोम), अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग, ताम्रलिप्त (लङ्का), हिमालय (तिब्बत) ; अफ्रीका और बर्बर देश—इन सब देशों के राजा और महाराजा अपने अपने हिस्से का कर लेकर इन्द्रप्र य आए थे ।" १

इसी प्रकार सभा पर्व के ३७ वें अध्याय में सिंहपुर और उत्तरीय यूरोप (हरिवर्ष देश) का विजय वर्णित है । इसी पर्व के ३१ वें अध्याय में द्राविड़ देश, और सुराष्ट्र (गुजरात या सूरत) के विजय का भी वर्णन है । २

महाभारत के इन प्रमाणों से प्रतीत होता है कि महाराजा युधिष्ठिर का चक्रवर्ती राज्य था । केवल भारत ही नहीं अपितु कतिपय अन्य देश भी उन के आधीन थे ।

कर विभाग

महाभारत काल में राजा की आय के बहुत से साधन थे । भूमि की उपज व्यापार, कान तथा समुद्र और वनों की उत्पत्ति पर कर लिया जाता था; इसी प्रकार अन्य भी कई प्रकार के कर लिये जाते थे । परन्तु राष्ट्र की आय का मुख्य भाग भूमि तथा व्यापार पर लगाए कर से ही पूरा होता था ।

कर संग्रह का प्रबन्ध— शान्ति पर्व के ८७ वें अध्याय में राष्ट्र रक्षा तथा कर संग्रह के सम्बन्ध में पर्याप्त निर्देश प्राप्त होते हैं ।

"प्रत्येक गांव का एक प्रबन्ध कर्ता हो; फिर क्रमशः दस, बीस, सौ और

---

१. (१) और्णान् बैलान् वार्षदंशान् काम्भोजः प्रददौ बहून् ॥ ३ ॥
(२) बलिञ्च सकृत्समादाय मरुकच्छ निवासिनः ।
(३) उपनिन्युर्महाराज हयान् गन्धारदेशजान् ॥ ९ ॥
(४) प्राग्ज्योतिपाधिपः शूरोम्लेच्छानामधिपो बली ।
यवनैः सहितो राजा भगदत्तो महारथः ॥ १३ ॥
(५) और्ष्णीकानन्तवासांश्च रोमकान् पुरुषादकान् ॥ १६ ॥
(६) चीनांस्तथाशकाश्चौण्ड्रान् बर्बरान् वनवासिनः ॥ २२ ॥
(७) शकास्तुखाराः कङ्काश्च रोमांश्च शृङ्गिणोनराः ॥ २९ ॥
(सभा० अ० ५१)
(८) वङ्गाः कलिङ्ग मगधास्ताम्रलिप्ताः सपुण्ड्रकाः ।
दौवालिका सागरकाः.............................॥ १९ ॥
(९) शतशश्चकुथांस्तत्र सिंहलाः समुपाहरन् ॥ ३७ ॥
(१०) मलयाद्दर्दुराच्चैव चन्दनागुरुसंञ्चयान्

२. वशं चक्रे महा बाहुः सुराष्ट्राधिपतिंतदा ॥ ६२ ॥
(सभा० अ० ३१)

एक हज़ार ग्रामों पर बड़े शासक हों। इन शासकों का कार्य शान्तिरक्षा और कर संग्रह है।" १

ग्राम का अधिकारी ग्राम से इकट्ठे किये कर को अपने से ऊपर के अधिकारी, १० ग्रामों के शासक, के पास पहुँचा देता था। वह अपनी कुल आय का निश्चित अंश अपने से ऊपर के अधिकारी को दे देता था। इस प्रकार राष्ट्र का कर क्रमशः राजा के कोष में पहुंच जाता था।

कर का उद्देश्य—प्रजा पर लगाए करों द्वारा जो आय होती थी उसका उद्देश्य केवल राजा की वैयक्तिक आय नहीं था। यह एक सर्व सम्मत बात थी कि राजा प्रजा की आय का जो षष्ठांश लेता है वह प्रजा के सार्वजनिक सुख के लिये ही है। महाभारत शान्ति पर्व में एक जगह कहा है--

"हे कुरुनन्द, बुद्धिमान राजा प्रजा की रक्षा के लिये उन की आय का छटा भाग कर रूप में ले। इमानदारी से कमाये गए धन पर कुछ कर प्रजा पर व्यय करने के लिये लगाए। कान, नमक, सड़कों, जहाज़ों और हाथियों पर लगाए कर को इकट्ठा करने के लिये राजपुरुषों को नियुक्त करे।" २

उस समय भूमि कर के अतिरिक्त अन्य कर भी लगाए जाते थे। भिन्न भिन्न वस्तुओं पर भिन्न भिन्न अनुपात से कर लगाया जाता था। ये कर बहुत भारी न थे-सदैव इस बात का ध्यान रक्खा जाता था कि कहीं करों द्वारा देश के व्यापार व्यवसाय आदि पर तो बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। प्राचीन प्रथा के अनुसार राजा प्रजा को पुत्र के समान समझता था अतः यद्यपि राष्ट्रीय आय प्रजा पर ही व्यय कर दी जाती थी तथापि उसे राजा की आय कहा जाता था। युद्ध के समय अथवा राष्ट्र पर आई किसी अन्य आपत्ति के समय राजा प्रजा के धनिक पुरुषों से धन उधार भी लेता था। यह धन आज कल की तरह प्रायः लम्बी अवधि के बाद ही चुकाया जाता था। कर इस तरह लगाया जाता था कि ग्वाले से ले कर धनी से धनी व्यापारियों तक उस का बोझ उचित अनुपात से पड़े, कोई भी उस बोझ से सर्वथा वञ्चित न रह जाय। आवश्यकता पड़ने पर कर वृद्धि भी की जाती थी। जनता के नेताओं में भेद डाल कर राजा कर बढ़ाने का नीतिपूर्ण यत्न करता था। अमीर और रईसों का खूब सत्कार किया जाता था। कर संग्रह के सम्बन्ध में शान्ति पर्व में लिखा है:--

---

१. (महाभारत, शान्ति पर्व, अ० ८७ श्लो० ३-७)

२. आददीत बलिञ्चापि प्रजाभ्यः कुरुनन्दन।
सषड्भागमपि प्राज्ञः, तासामेवाऽभिगुप्तये ॥ २५ ॥
दशधर्मगतेभ्यो यद् वसु बह्वल्पमेव च।
तदाददीत सहसा पौराणां रक्षणायवै ॥ २६ ॥
आकरे लवणे शुल्के तरे नागबले तथा।
न्यसेदमात्यान्नृपतिः स्वाप्तान् वा पुरुषाहितान् ॥ २७ ॥
(शान्ति० अ० ६९)

" कई राजकर्मचारी प्रजा को लूटने वाले और पापाचारी होते हैं। राजा उन से सदैव प्रजा की रक्षा करे। व्यापारी ने कितना माल खरीदा है, उस पर अन्य व्यय कौन २ से हुए हैं तथा उसके परिवार का व्यय और आय क्या है यह सब बातें देख कर ही उस पर कर लगाना चाहिये जिस से कि प्रजा को यथा सम्भव कम कष्ट हो। फल (उत्पत्ति) और कर्म, (श्रम) को देख कर ही कर निश्चित करना चाहिए। किसी भी उद्योग धन्धे पर इस प्रकार कर लगाना चाहिये जिस से कि व्यवसायी और राष्ट्र दोनों का उस उद्योग में भाग हो सके। लोभ में पड़कर राजा को बहुत कर बढ़ा कर अपने और राष्ट्र के व्यवसाय पर कुठाराघात नहीं करना चाहिये। कर बहुत बढ़ा देने वाले राजा से प्रजा द्वेश करती है—इस प्रकार राजा को सदैव राज्य जाने का भय बना रहता है। राष्ट्र को बछड़ा समझ कर ही प्रजा पर कर लगाना चाहिये। गौ को अधिक दुह लेने से बछड़ा भी काम का नहीं रहता। इसी प्रकार प्रजा पर अत्यधिक कर लगा देने से राष्ट्र की अगामी आय बहुत कम हो जाती है। राजा को चाहिये कि वह प्रत्येक नागरिक, राष्ट्रवासी, उपनिवेश तथा आधीन देशवासियों से अनुकम्पा पूर्वक यथाशक्ति सब उचित करों को प्राप्त कर ले।" १

---

१. जिघांसवः पापकामाः परस्वादायिनःशठाः ।
रक्षाभ्यधिकृता नाम तेभ्यो रक्षेदिमाः प्रजाः ॥ १२ ॥
विक्रयं क्रयमध्वानं भक्तञ्च सपरिच्छदम् ॥
योगक्षेमञ्च संप्रेक्ष्य वणिजां कारयेत्करान् ॥ १३ ॥
उत्पत्तिं दानवृत्तिञ्च शिल्पं सम्प्रेक्ष्यचासकृत् ।
शिल्पप्रति करानेवं शिल्पिनः प्रतिकारयेत् ॥ १४ ॥
उच्चावचकरा दाप्या महाराज्ञा युधिष्ठिर ।
यथा यथा नसीदेरन् तथा कुर्यान्महीपतिः ॥ १५ ॥
फलं कर्मच सम्प्रेक्ष्य ततः सर्वं प्रकल्पयेत् ।
फलं कर्म च निर्हेतु नकश्चित्संप्रवर्त्तते । १६ ॥
यथा राजा च कर्त्ताच स्यातांकर्मणि भागिनो ।
समवेक्ष्य तथा राज्ञा प्रणेयाः सततं कराः ॥ १७ ॥
नोच्छिन्द्यादात्मनो मूलं परेषाञ्चापि तृष्णया ।
ईहाद्वाराणि संरुध्य राजा संप्रीतदर्शनः ॥ १८ ॥
प्रद्विषन्ति परिख्यातं राजानमतिखादिनम् ।
प्रद्विष्टस्य कुतः श्रेयो नाप्रियोलभते फलम् ।
वत्सौपम्येन दोग्धव्यं राष्ट्रमक्षीण बुद्धिना ।
भृतो वत्सो जातबालः पीड़ां सहति भारत ॥ २० ॥
न कर्म कुरुते वत्सो भृशंदुग्धो युधिष्ठिर ॥
राष्ट्रमप्यतिदुग्धं हि न कर्म कुरुतेमहत् ॥२१ ॥
पौर जान पदान् सर्वान् संश्रितोपाश्रितांस्तथा ।
यथा शक्त्यनुकम्पेत सर्वान् स्वल्पधनानपि ॥ २४ ॥ (महा० शान्ति० ८७)

ऋण—राष्ट्र पर अचानक आई आपत्ति तथा युद्धादि के समय राजा प्रजा से उधार भी लेता था। यह धन प्रजा को अवश्य चुका दिया जाता था। शान्ति पर्व में कहा है-

"कभी राष्ट्र पर आपत्ति आए तो राजा को अपने सलाहकारों से सलाह लेकर यह घोषणा करनी चाहिये कि देशपर सहसा इस प्रकार की विपत्ति आपड़ी है। फलाने प्रबल शत्रु ने राष्ट्र पर आक्रमण किया है, परन्तु अगर प्रजा सहायता दे तो उसे डण्डे से सांप की तरह कुचला जा सकता है। शत्रु ने राष्ट्र पर आक्रमण करने के लिये बड़े ज़ोरशोर से तैयारी की है। इस घोर आपत्ति के समय मैं रक्षा के लिये आप से धन चाहता हूँ। इस भय के नष्ट हो जाने पर यह धन लौटा दिया जायगा। अगर आप ने राष्ट्र की उचित सहायता न की तो शत्रु जीत जायगा, तब आप का कुछ भी नहीं बच सकेगा। मैं आपके परिवार का प्रतिनिधि बनकर आप के परिवारिक हित की दृष्टि से ही आप से यह धन चाहता हूं। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि राष्ट्र को किसी प्रकार का अनुचित कष्ट न देकर करसंग्रह करूंगा। इस प्रकार आदर पूर्वक मधुरता से राजा को धनका प्रबन्ध करना चाहिये।"[1]

ग्वालों पर कर— राजा को 'गोमि' लोगों (जंगल में रह कर गाय भैंसादि को पाल कर उनके दूध का व्यवसाय करने वाले लोगों) पर भी कर लगाने को कहा है। परन्तु यह कर मात्रा में बहुत कम होना चाहिये-

---

१. प्रागेव तु धनादानमनुभाष्य ततःपुनः।
सन्निपत्य स्वविषये भयं राष्ट्रे प्रदर्शयेत् ॥२६॥
इयमापत्समुत्पन्ना परचक्रभयं महत्।
अपि चान्ताय कल्पन्ते वेणोरिव फलागमः॥ २७॥
अरयो मे समुत्थाय बहुभिर्दस्युभिः सह।
इदमात्मवधायैव राष्ट्रमिच्छन्ति बाधितुम्॥ २८॥
अस्यामापदि घोरायां सम्प्राप्ते दारुणे भये।
परित्राणाय भवतः प्रार्थयिष्ये धनानि वः॥ २९॥
प्रतिदास्ये च भवतां सर्वं चाहं भयक्षये।
नारयः प्रतिदास्यन्ति यद्धरेयुर्बलादितः॥ ३०॥
कलत्रमादितः कृत्वा सर्वं वो विनशेदितः।
अपि चेत्पुत्रदारार्थमर्थ सञ्चय इष्यते॥ ३१॥
नन्दामि वः प्रभावेण पुत्राणामिव चोदये।
यथाशक्त्युपगृह्णामि राष्ट्रस्यापीड़या च वः॥ ३२॥
इतिवाचा मधुरया श्लक्ष्णया सोपचारया।
स्वरश्मीनभ्यवसृजेद् योगमाधाय कालवित्॥ ३४॥
(महा० शान्ति०, अ० ८७)

"क्योंकि गोमि लोगों को भी राजा द्वारा की गई रक्षा की परम आवश्यकता है अतः उन पर भी कुछ न कुछ कर अवश्य लगाना चाहिये। इन गोमि लोगों पर भी साम दानादि द्वारा राष्ट्र के सब नियम लागू होने चाहिये क्योंकि इन लोगों का कृषि व्यवसाय आदि पर बहुत प्रभाव होता है।" १

मुक्त चरागाहें— महाभारत काल में जंगल और चरागाहें राजा की सम्पत्ति नहीं गिने जाते थे। जंगल में बसने, विचरने तथा पशुओं को चराने में प्रजा को पूर्ण स्वतन्त्रता थी। केवल वे जंगल पूर्ण रूप से राज्य द्वारा सुरक्षित थे जिन में कि हाथियों को पाला या उन्हें फंसाया जाता था। लोग हाथी को छोड़ कर अन्य जंगली जीवों का शिकार कर सकते थे; उन्हें जंगल से पकड़ कर अपने काम में लाने की भी उन्हें स्वतन्त्रता थी। उस समय आजकल की तरह प्रायः साधारण जंगल सुरक्षित (Reserved) नहीं किये जाते थे। कृषि प्रधान भारतीय लोगों को इस से बहुत सुख था। महाभारत अनुशासन पर्व में राजा के अधिकारों की गणना करते हुए कहा है "वन, पर्वत, नदी और तीर्थ इनपर किसी का वैयक्तिक अधिकार नहीं।" परन्तु इस का यह अभिप्राय नहीं कि राष्ट्र की ओर से इनकी उत्पत्ति आदि पर सर्वथा नियन्त्रण नहीं किया जाता था। राज्य की ओर से वनोंको अधिक उपयोगी बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया जाता था। यह वन-प्रबन्ध शुक्राचार्य के समय का वर्णन करते हुए विस्तार से लिखा जायगा।

---

१. उपेक्षिता हि नश्येयुः गोमिनोऽरण्यवासिनः ।
तस्मात्तेषु विशेषेण मृदु पूर्वं समाचरेत् ॥ ३६ ॥
सान्त्वनं रक्षणं दानमवस्था चाप्यभीक्ष्णशः ।
गोमिनां पार्थ कर्तव्यः संविभागः प्रियाणि च ॥ ३७ ॥
अजस्रमुपयोक्तव्यं फलं गोमिषु भारत ।
प्रभावयन्ति राष्ट्रञ्च व्यवहारं कृषिन्तथा ॥ ३८ ॥ (महा० शान्ति० अ० ८७)
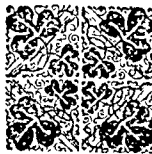
※ तृतीय अध्याय ※

सामाजिक आचार व्यवहार.

महाभारत काल में धन और वैभव की दृष्टि से भारतवर्ष खूब सम्पन्न देश था। साथ ही उस समय आचार और व्यवहार की प्राचीन मर्यादाएँ ढीली होती चली जारही थीं। जो देश भौतिक ऐश्वर्य से खूब सम्पन्न होजाता है उस के निवासी प्रायः स्वाभाविक रूप से विलासी बन जाते हैं। इसी समय भारतवासियों के वैयक्तिक तथा सामाजिक आचार में अवनति प्रारम्भ हुई। वेदज्ञों की न्यूनता, बहु विवाह, नर बलि, वेश्या गमन, जूआ, भरी सभा में देवियों का अपमान ये सब बुराइयाँ इसी समय से खूब बढ़ने लगीं; महाभारत में ही इन बुराइयों के पर्याप्त उदाहरण मौजूद हैं। तथापि इस समय प्राचीन उत्तम प्रथाओं और आचार नियमों का सर्वथा अभाव नहीं होगया था।

वेदज्ञों का अभाव— शान्ति पर्व में महाराज युधिष्ठिर को उपदेश देते हुए पितामह भीष्म ने कहा है—

"आज कल वेदोक्त-व्यवस्था के अनुकूल आचरण करने वाले विद्वान् बहुत दुर्लभ हैं। प्रायः लोग अपना मतलब पूरा करने के लिये ही वेदोक्त आचरण करने का ढोंग करते हैं।" १

ब्राह्मणों का अपमान— उस समय, समाज के प्राचीन काल से चले आते हुए नेता- ब्राह्मणों का अपमान प्रारम्भ होगया था। ब्राह्मण और क्षत्रिय इन दोनों वर्णों में थोड़ा बहुत संघर्ष भी शुरु होगया था। दुर्योधन ने महर्षि व्यास और विदुर के उपदेश को न मान कर उन की अवहेलना थी, द्रौपदी के स्वयम्बर में ब्राह्मण रूप में बैठे हुए अर्जुन को देख कर क्षत्रियों ने अपमान पूर्वक कहा था—

"आज क्षत्रियों के मुकाबले में ब्राह्मणों की खूब धज्जियाँ उड़ेंगी।" २

"राजा द्रुपद एक ब्राह्मण (ब्राह्मण वेष धारी अर्जुन) को अपनी कन्या

---

१. दुर्लभा वेदविद्वांसो वेदोक्ते सुव्यवस्थिताः।
प्रयोजन महत्वात्तु मार्गमिच्छन्ति संस्तुतम्॥ (शान्ति० मो० ध० अ० २१२)

२. अवहास्या भविष्यन्ति ब्राह्मणाः सर्वराजसु॥ ६॥ (आदि० अ० १९०)

देने लगा है यह देख कर क्षत्रिय बहुत क्रुद्ध हुए ।"[१]

समाज ब्राह्मणों की इस प्रकार अवहेलना करने लगा था, इस में केवल समाज का ही दोष नहीं था। ब्राह्मणों का अपना आचार भी क्रमशः हीन होचला था, इसी से समाज में उनका पहले का सा प्रभाव शेष नहीं रहा था। हम ब्राह्मणों के पतन के कुछ दृष्टान्त यहां देते हैं—

ब्राह्मणों को दास-दक्षिणा— लोग अपने विद्यागुरु ब्राह्मणों को दास दासी भी भेंट करने लगे थे। सभा पर्व में युधिष्ठिर की सम्पत्ति का वर्णन करते हुए दुर्योधन कहता है—

"अट्ठाइस सहस्र गृहस्थी ब्राह्मण स्नातकों को उन की तीस तीस दास दासियों सहित युधिष्ठिर पालता है।"[२]

ब्राह्मणों की अनाधिकार चर्चा— प्राचीनकाल में स्वयंवर की प्रथा केवल क्षत्रियों में ही थी। परन्तु महाभारत के समय ब्राह्मणों ने भी स्वयंवरों में सम्मिलित होना प्रारम्भ कर दिया था। द्रौपदी के स्वयंवर में जब ब्राह्मण वेष में अर्जुन सम्मिलित हुवा था तब उस के साथ बैठे हुए तपस्वियों और ब्राह्मणों ने उसे खूब उत्साहित करने का यत्न किया था। इस पर क्रुद्ध होकर क्षत्रियों ने कहा—

"स्वयंवर में सम्मिलित होने का अधिकार ब्राह्मण को नहीं है। यह प्रथा केवल क्षत्रियों में ही है- यही प्राचीन प्रथा है। यह क्षत्रिय कन्या अगर किसी क्षत्रिय को अपना पति नहीं चुनती तब इसे आग में फेंक कर हमें अपने राज्यों में लौट जाना चाहिये।"[३]

इसी प्रकार तत्कालीन ब्राह्मणों में अर्थ लोलुपता भी बहुत बढ़ रही थी। आज कल की तरह उन दिनों देश भर इस बात को मानने लगा था कि मनुष्य धन का दास है। भीष्म पर्व में युधिष्ठिर को आशीर्वाद देते हुए भीष्म, कृप, द्रोणादि अग्रिणी नेताओं ने कहा था—

"धन मनुष्य का दास नहीं है अपितु मनुष्य ही धन का दास है। इसी धन के कारण ही दुर्योधन ने हमें अपनी ओर बाँध लिया है।"[४]

---

१. तस्मैदित्सति कन्यान्तु ब्राह्मणाय तदानृपे।
कोपमासीन्महीपानामालोक्यान्योन्यमन्तिकात् ॥ १ ॥ (आदि० अ० १९१)

२. अष्टाशीति सहस्राणि स्नातकाः गृहमेधिनः।
त्रिंशद्दासीक एकैको यान्बिभर्त्ति युधिष्ठिरः ॥ १८ ॥ (सभा० अ० ४९)

३. न च विप्रेष्वधीकारो विद्यते वरणं प्रति।
स्वयंवरः क्षत्रियाणामितीयं प्रथिता श्रुतिः ॥ ७ ॥
अथवा यदि कन्येयं न च कञ्चिद् बुभूषति।
अग्नावेनां प्रतिक्षिप्य यामराष्ट्राणि पार्थिवाः ॥ ८ ॥ (आदि० १९१)

४. अर्थस्यपुरुषो दासो दासत्वर्थो नकर्हिचित्।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥ ५७ ॥ (आदि० ४३)

ब्राह्मणों में इस प्रकार कमज़ोरियां आ जाने से ही समाज में उनका पुराना प्रभाव स्थिर नहीं रहा।

स्त्री-समाज

ब्राह्मणों के साथ ही साथ अन्य वर्णों में भी बहुत सी कमज़ोरियां आ गई थीं। विशेष कर क्षत्रियों में कुछ रिवाज, जो किसी समय विशेष उद्देश्य से चलाए गए थे, बहुत ही बुरा और लज्जाजनक रूप धारण कर चुके थे। उन में बहु विवाह और कन्या हरण आदि की प्रथाएं चल पड़ी थीं।

राक्षस विवाह—उस समय क्षत्रियों में राक्षस विवाह बहुतायत से होने लगे थे। राक्षस विवाह का अर्थ है कन्या का बल पूर्वक हरण करके उस से विवाह कर लेना। अर्जुन का सुभद्रा हरण, कृष्ण का रुक्मणी हरण और दुर्योधन का कलिङ्गराजपुत्री का हरण इस के उदाहरण हैं। तत्कालीन धर्म शास्त्र वेत्ताओं के अनुसार गुण, कर्म, विद्या और स्वभाव देख कर समान गुणशील कन्या से विवाह करना गन्धर्व विवाह है। ब्राह्मणों को इसी प्रकार विवाह करना चाहिये। कन्या और उस के पिता की अनुमति प्राप्त कर के क्षत्रिय को उस से विवाह कर लेना चाहिये। राक्षस विवाह के सम्बन्ध में वह कहते हैं—

"कन्या के सम्बन्धियों को धन का लालच दिखलाकर उससे विवाह करना असुरों का कार्य है। राक्षस लोग कन्या के सम्बन्धियों को मार कर उस से बल पूर्वक विवाह भी कर लेते हैं। पांच प्रकार के विवाहों में से पहले तीन धर्मानुकूल हैं और राक्षस विवाह के ये दो रूप धर्म विरुद्ध हैं। यह असुर और पिशाच विवाह कभी नहीं करना चाहिये।"[1]

इस प्रकरण में असुर और राक्षस विवाह को निन्द्य ठहराया गया है। परन्तु भीष्म ने स्वयं काशिराज की तीनों कन्याओं का हरण किया था अतः उस ने अपने कार्य को उचित सिद्ध करने के लिये एक जगह कहा है—

"कन्या का पिता गुणवान पुरुष को बुला कर अपनी कन्या को अलंकृत करके दहेज सहित कन्या दान करे। कई लोग में दहेज गौ देकर और कई धन देकर कन्या दान करते हैं। कई लोग बल पूर्वक कन्या का हरण करके उस से विवाह कर लेते हैं। सत्कार पूर्वक कन्या को लेना आर्ष विवाह है। सब से उत्तम आठवां प्रकार स्वयंवर विवाह का है। क्षत्रिय इसे बहुत पसन्द करते हैं। परन्तु

---

१. धनेन बहुधा क्रीत्वा सम्प्रलोभ्य च बान्धवान्।
असुराणां नृशंसं वै धर्ममाहुर्मनीषिणः॥ ६॥
हत्वा छित्वा च शीर्षाणि रुदती रुदतीं गृहात्।
प्रसह्य हरणं तात राक्षसो विधिरुच्यते॥ ७॥
पञ्चानां तु त्रयो धर्म्याः द्वावधर्म्यौ युधिष्ठिर।
पैशाचश्चासुरश्चैव न कर्त्तव्यौ कथञ्चन॥ ८॥ (अनुशा० अ० ४४)

बल पूर्वक कन्या हरण करके विवाह करना उस से भी अधिक उत्तम है। इसी लिये; हे राजन्, मैं इन कन्याओं को हर लाया हूं।"[1]

इसी प्रकार उद्योग पर्व में काशिराज की कन्या हरण की कहानी सुनाते हुए भीष्म ने कहा है—

"सब राक्षसों को हरा कर काशिराज की इन तीनों कन्याओं को मैं विचित्र वीर्य के लिए लाया हूँ। ये कन्याएं बहुबल द्वारा ही लाई गई हैं।"[2]

परन्तु इस लज्जा जनक प्रथा का बिल्कुल खुले आम प्रचार नहीं था। इस प्रथा के घोर विरोधी भी उस समय पर्याप्त संख्या में मौजूद थे। स्वयं पितामह भीष्म को ऋषि जामदग्न्य ने इस अनुचित कार्य का दण्ड देने का प्रयत्न किया था। काशिराज की बड़ी कन्या अम्बा शाल्वराज को चाहती थी परन्तु भीष्म उसे बलपूर्वक हर ले आया था। परन्तु अम्बा का विवाह विचित्र वीर्य से न हुआ। शाल्वराज ने इस अवस्था में उसे लेना अस्वीकार कर दिया। तब अम्बा भीष्म से बदला देने के लिये तपस्विनी बन गई। अम्बा ने ऋषि जामदग्न्य को अपना कष्ट इस प्रकार सुनाया—

"मुझ रोती हुई को महारथी भीष्म बलपूर्वक सभा स्थल से उठा लाया।"[3]

इस कुमारी-हरण प्रथा के साथ ही साथ उस समय बहुविवाह और एक स्त्री के बहुत से पति होने की लज्जाजनक प्रथाएं भी चल पड़ी थीं। तत्कालीन राजाओं में स्त्रियों के कारण ही परस्पर बहुत सी लड़ाइयां हुआ करती थीं। यहां तक कि कतिपय नराधम राजा लोग पराई पत्नियों तक को चुराने का यत्न करने लगे थे। इसके अतिरिक्त पांचों पाण्डवों ने एक ही स्त्री—द्रौपदी—से विवाह कर लिया था। महाभारत काल से पूर्व यह प्रथा नहीं थी। इस सम्बन्ध में आदि पर्व में लिखा है—

---

१. आहूय दानं कन्यानां गुणवद्भ्यः स्मृतं बुधैः ७ ॥
अलंकृत्य यथा शक्ति प्रदाय च धनान्यपि ॥
प्रयच्छन्त्यपरे कन्यां मिथुनेन गवामपि ॥ ८ ॥
वित्तेन कथितेनान्ये बलेनान्येनुमान्य च ।
प्रमत्तामुपयान्त्यन्ये स्वयमन्ये च विन्दते ॥ ९ ॥
आर्षं विधिं पुरस्कृत्य दारान्विन्दन्ति चापरे ॥
अष्टमं तमथो वित्त विवाहं कविभिर्वृतम् ॥ १० ॥
स्वयंवरन्तु राजन्याः प्रशंसन्त्युपयान्ति च ॥
प्रमथ्यतु हृतामाहुर्ज्यायसीं धर्मवादिनः ॥ ११ ॥ (आदि०, अ० १०२)

२. इमाः काशिपतेः कन्या मयानिर्जित्य पार्थिवान् ।
विचित्रवीर्यस्य कृते वीर्यशुल्का हृताइति ॥ २ ॥
(उद्योग० अ० १७३)

३. बलान्नीतास्मि रुदती विद्राव्य पृथिवीपतीन् ॥
(उद्योग० अ० १७४)

"एक राजा की तो बहुत सी रानियें हुआ करती हैं परन्तु एक रानी के बहुत से पति होना कभी सुना नहीं गया। हे युधिष्ठिर, तू इस लोक और धर्म से विरुद्ध कार्य को किस प्रकार करने लगा है?" [1]

इस युग में देवियों का मान भी सुरक्षित नहीं रहा था। भरी सभा में प्रतापी पाण्डवों की धर्मपत्नि द्रौपदी का भयंकर अपमान होना इसका ज्वलन्त उदाहरण है। [2]

भर्ता-वशीकरण— स्त्रियों में भी बहुत सी अनुचित प्रथाएं तथा भ्रममूलक विश्वास मौजूद थे। वे अपने पतियों को छल कपट और जादू टोने आदि द्वारा वश में करने का प्रयत्न किया करती थी। इस सम्बन्ध में वनपर्व में सत्यभामा ने द्रौपदी से इस प्रकार पूछा है--

"हे द्रौपदी, तूने जिस व्रत, तप, मन्त्र, औषधि, विद्या, जादू, होम अथवा उपचार से अपने पतियों को वश में किया है वह विधि मुझे भी बतादे ताकि मैं उससे अपने कृष्ण को वश में कर सकूं।" [3]

द्रौपदी ने उत्तर दिया—"सत्यभामा, तू यह कुलटा और बुरी स्त्रियों का कार्य मुझ से किस प्रकार पूछती है, इस भयङ्कर पाप के विषय में मैं तुझे किस प्रकार उपदेश दे सकती हूं। कुलटा स्त्रियां अपने पतियों को विष देकर, उन पर जादू करके उन्हें मार भी देती हैं। भोजन और स्पर्श में विषचूर्णादि का प्रयोग कर के कई स्त्रियों ने अपने पतियों को बूढ़ा, जलोदरी, कोढ़ी, नपुंसक, गूंगा या बहरा भी बना डाला है। पापिनी स्त्रियां ही ऐसा करती हैं-तुम से मैं कभी ऐसी आशा नहीं करती।" [4]

---

१. एकस्य बह्व्यो विहिता महिष्यः कुरुनन्दन।
नैकस्या बहवः पुंसः श्रूयन्ते पतयः क्वचित्॥ २७॥
लोकवेदविरुद्धं त्वं नाधर्मं धर्मविच्छुचिः।
कर्तुमर्हसि कौन्तेय कस्मात्ते बुद्धिरीदृशी॥ २८॥
(आदि० अ० १९७)

२. सभायां पश्यतो राज्ञः पातयित्वा पदा हनम्।
न चैवालभते त्राणमभिपन्ना बलीयसा॥ ८॥
(विराट० अ० २२)

३. व्रतचर्या तपो वास्ति स्नान मन्त्रौषधानि वा।
विद्यावीर्यं मूलवीर्यं जयहोमागदास्तथा॥ ७॥
ममाद्याचक्ष्व पाञ्चालि यशस्यं भगदैवतम्।
येन कृष्णे भवेन्नित्यं मम कृष्णो वशानुगः॥ ८॥

४. असत्स्त्रीणां समाचारं सत्ये मामनुपृच्छसि।
असदाचरिते मार्गे कथं स्यादनुकीर्त्तनम्॥ १०॥
अमित्र प्रहितांश्चापि गदान् परमदारुणान्।

आदि पर्व में महिष्मती नगरी की स्त्रियों के सम्बन्ध में लिखा है--"इस नगरी की स्त्रियें किसी के वश में नहीं आती थी। अग्नि ने उन्हें उच्छृङ्खलता का वर दिया हुआ था। इस कारण इस नगरी में स्त्रियें व्यभिचारिणी हो कर यथेष्ट विचरा करती थीं।"[1]

इसी प्रकार कर्ण पर्व में शल्य द्वारा शासित मद्रप्रदेश के विपय में कर्ण ने कहा है—

"मद्र देश के बाल्हीक जाति की शील रहित स्त्रियां गुड़ की शराब पीकर गोमांस प्याज के साथ खाकर नंगी होकर नाचती और हंसती हैं। वे निर्लज्ज होकर खुले आम व्यभिचार करती हैं।"[2]

इस प्रकरण में क्रोध में आकर कर्ण ने मद्र देश की स्त्रियों के सम्बन्ध में और भी बहुत सी बातें कहीं हैं। ये बातें क्रोध में कही गई हैं अतः इन्हें अतिशयोक्त भी मान लिया जाय तो भी इस कथन में कुछ न कुछ सचाई माननी ही पड़ेगी।

राजघराने की स्त्रियां— राज परिवारों की स्त्रियों में जल-विहार की प्रथा खूब प्रचलित थी। आज कल भी राजपूतों में इस प्रथा का थोड़ा बहुत अवशेष पाया जाता है। इन जल विहारों में स्त्री और पुरुष दोनों शराब पीकर यथेष्ट विहार करते थे। गन्धर्व जाति की जल-क्रीड़ा विशेष प्रसिद्ध थी। आदि पर्व में कृष्ण के जल विहार का दृश्य इस प्रकार वर्णित है—

मूलप्रचारैर्हि विषं प्रयच्छन्ति जिघांसवः ॥ १४ ॥
जिह्वया यानि पुरुषस्त्वचा वाप्युप सेवते ।
तत्र चूर्णानि दत्तानि हन्युः क्षिप्रमसंशयम् ॥ १५ ॥
जलोदरसमा युक्ताः श्वित्रिणः पलितास्तथा ।
अपुमांसकृताःस्त्रीभिः जड़ान्ध बधिरास्तथा ॥ १६ ॥
पापानुगास्तु पापास्ता पतीनुपसृजन्त्युत ॥ १७ ॥ (वन० अ० २३२)

1. तस्यांपुर्यां तदाचैव माहिष्मत्यां कुरूद्वह ।
बभूवुरनतिग्राह्या योषितः छन्दतः किल ॥ ३७ ॥
एवमग्निर्वरंप्रादात् स्त्रीणामप्रतिवारणे ।
स्वैरिण्यस्तत्र नार्योहि यथेष्टं विचरन्त्युत ॥ ३५ ॥
(सभापर्व अ० ३१)

2. धानागौडासवं पीत्वा गोमांसं लशुनैःसह ।
अपूपमांसवाट्यानामाशिनः शीलवर्जिताः ॥ ११ ॥
हसन्त्यथ च नृत्यन्ति स्त्रियोमत्ता विवाससः ।
नगरागारवप्रेषु बहिर्माल्यानुलेपनाः ॥ १२ ॥
मत्तावृत्ता मैथुने ताः कामचाराश्च सर्वाशः ॥ १३ ॥ (कर्ण० ४४)

"कोई प्रसन्न होकर नाचती है, कोई शोर करती हुई हँसती है और कोई शराब पीती है।"[1]

बाल विवाह— इस समय बाल-विवाह भी प्रारम्भ होगया था। वीर अभिमन्यु का १८ वर्ष की अवस्था में ही विवाह होगया था। महाभारत अनुशासन पर्व में भीष्म ने व्यवस्था दी है— "३० वर्ष का पुरुष १० वर्ष की कन्या से विवाह कर सकता है, और २१ वर्ष का मनुष्य ७ वर्ष की बालिका से विवाह कर सकता है।"[2]

नियोग— प्राचीन शास्त्रकारों ने आपत्काल के लिये नियोग की आज्ञा दी है। विधवा स्त्री पुत्रप्राप्ति की इच्छा होने पर नियोग कर के अपने वंश को चला सकती है। इसी प्रकार पति के रोगी व असमर्थ होने पर भी स्त्री पति की आज्ञा प्राप्त कर नियोग द्वारा सन्तानवती बन सकती है। यह प्रथा महाभारत के समय तक भी प्रचलित थी। नियोग के सम्बन्ध में महाभारत में कहा है कि—

"पति के मर जाने पर स्त्री अगर ब्रह्मचर्य पूर्वक न रह सके, तो वह देवर से सन्तानोत्पत्ति कर सकती है।"[3]

महाभारत में इस प्रथा के कई दृष्टान्त भी उपलब्ध होते हैं। आदि पर्व में सत्यवती ने अपने पुत्र की बिना सन्तान मृत्यु होजाने पर उसके भाई भीष्म को उसकी स्त्रियों से नियोग करने का आदेश दिया है—

"मेरा पुत्र और तेरा भाई विचित्र वीर्य निस्सन्तान बचपन में ही चल बसा है। उस की धर्मपत्नियाँ पुत्र की अभिलाषा करती हैं। उन से नियोग कर के तुम मेरे कुल की रक्षा करो। मेरी आज्ञा से तुम्हें यह धार्मिक कार्य अवश्य

---

१. कश्चित्प्रहृष्टा ननृतुश्चुक्रुशुश्च तथापराः।
जहसुश्च परानार्यः पपुश्चान्या वरासवम् ॥ २४ ॥ (आदि० २२४ अ०)

२. त्रिंशद्वर्षो दशवर्षां भार्यां विन्देतनग्निकाम्।
एकविंशति वर्षो वा सप्तवर्षामवाप्नुयात् ॥ १२ ॥ (अनुशासन० अ० ४४)

३. यथेष्टं तत्र देया स्यात् नात्र कार्या विचारणा।
कुर्वते जीवतोऽप्येवं मृतेनैवास्ति संशयः ॥ ५० ॥
देवरं प्रविशेत्कन्या तप्येद्वापि तपः पुनः।
तमेवानुव्रता भूत्वा पाणिग्राहस्य काम्यया ॥ ५१ ॥ (अनुशा० ४४)

करना चाहिये। अगर यह न कर सको तो स्वयं विवाह करके राज्य सम्भालो। महाराज भरत के वंश का यूं ही नाश न होने दो।" [1]

इस पर भीष्म ने उत्तर दिया— "चाहे सूर्य प्रकाश रहित हो जाय, चाहे आग बर्फ के समान ठण्डी हो जाय और चाहे चाँद सूर्य के समान गरम हो उठे मैं अपनी प्रतिज्ञा भंग नहीं कर सकता।"

सत्यवती ने कहा— "मैं तेरे दृढ़ स्वभाव को जानती हूं। परन्तु तू आपद्धर्म समझ कर वंशरक्षा के लिये ही राज्य स्वीकार कर ले। अथवा कोई ऐसा कार्य कर जिस से कि वंश और धर्म की रक्षा के साथ ही साथ हमारा सम्मान भी कायम रहे।"

तब भीष्म ने कहा— "अपने वचन से गिर जाना क्षत्रिय के लिये सब से बड़ा पाप है। इस लिये इस सम्बन्ध में तुम मुझसे कोई आशा न रक्खो। हाँ, महाराज शान्तनु के वंश का नाश भी नहीं हो जाना चाहिये इस लिये विद्वान पुरोहितों और आपद्धर्म बताने वाले बुद्धिमानों की सलाह लेकर इस समय के कर्तव्य का निश्चय करो।" [2]

---

१. सत्यवती उवाचः—

मम पुत्रस्तव भ्राता वीर्यवान् सुप्रियश्च यः।
बाल एव गतः स्वर्गमपुत्रः पुरुषर्षभ ॥ ८ ॥
इमे महिष्यौ भ्रातुस्ते काशिराज सुते शुभे।
रूप यौवन सम्पन्ने पुत्रकामे च भारत ॥ ९ ॥
तयोरुत्पादयापत्यं सन्तानाय कुलस्य नः।
मन्नियोगान्महाबाहो धर्मं कर्त्तुमिहार्हसि ॥ १० ॥
राज्ये वै चाभिषिच्यस्व भारताननुशाधि च।
दारांश्च कुरुधर्मेण मा निमज्जीः पितामहान् ॥ ११ ॥ (आदि०, अ० १०३)

२. भीष्म उवाच—

प्रभांसमुत्सृजेदर्को धूमकेतुस्तथोष्मताम्।
नत्वहं सत्यमुत्स्रष्टुं व्यवस्येयं कथञ्चन ॥ १८ ॥

सत्यवती उवाच—

जानामि चैव सत्यं तन्मदर्थे यच्च भाषितम्।
आपद् धर्मं त्वमावेक्ष्य वह वैनामहीं धुरम् ॥ २१ ॥
यथाते कुल तन्तुश्च धर्मश्च न पराभवेत्।
सुहृदश्च प्रहृष्येरंस्तथा कुरु परन्तप ॥ २२ ॥

भीष्म उवाचः—

राज्ञि धर्मानवेक्षस्व मानः सर्वान् व्यनीनशः।
सत्याच्च्युतिः क्षत्रियस्य न धर्मेषु प्रशस्यते ॥ २४ ॥
शान्तनोरपिसन्तानं यथा स्यादक्षयं भुवि।
तत्तेधर्मं प्रवक्ष्यामि क्षात्रं राज्ञि सनातनम् ॥ २५ ॥
श्रुत्वा तां प्रतिपद्यस्व प्राज्ञैः सहपुरोहितैः।
आपद्धर्मार्थ कुशलै लोकतन्त्रमवेक्ष्य च ॥ २६ ॥

महाभारत में जामदग्न्य परशुराम द्वारा किए गए क्षत्रियों के कत्लेआम का भी वर्णन आता है। क्षत्रियों को बहुत बड़ी संख्या में मार देने पर भी क्षत्रिय वंश नष्ट नहीं हो सका, इस का कारण क्षत्रिय पत्नियों का ब्राह्मणों के साथ नियोग कर के सन्तानोत्पत्ति करना ही है। [1]

आदि पर्व में राजा बलि की धर्मपत्नि रानी सुदेष्णा के साथ ऋषि दीर्घतमा द्वारा किए नियोग का वर्णन आता है। विचित्र वीर्य की धर्मपत्नियों ने भी महर्षि व्यास के साथ नियोग किया था, जिस से पाण्डु आदि तीन पुत्र पैदा हुए थे।

इसी प्रकार कोई सन्तान न होने पर महाराज पाण्डु ने अपनी धर्मपत्नि कुन्ती को इन शब्दों में नियोग करने की आज्ञा दी थी—"हे कुन्ति! अपना, बनाया हुवा, खरीदा हुवा, कृत्रिम आदि कई प्रकार के पुत्र होते हैं। इनमें से पहले के अभाव में अगले की इच्छा करनी चाहिये। आपत्काल में देवर से भी सन्तानोत्पत्ति कर लेनी चाहिये। इस देवर से उत्पन्न हुए पुत्र को मनु ने अपने पुत्र से भी बढ़ कर कहा है। इस लिये स्वयं पुत्रोत्पन्न करने की शक्ति न होने के कारण मैं तुझे आज्ञा देता हूँ कि तू मेरे समान या मुझ से भी श्रेष्ठ किसी व्यक्ति से सन्तान लाभ कर। शरदण्डायनी नामक एक वीर पत्नि ने भी एक द्विज से नियोग कर के तीन शूरवीर पुत्रों को प्राप्त किया था। इसी प्रकार तू भी किसी तपस्वी ब्राह्मण द्वारा मेरे लिये सन्तान लाभ कर।" [2]

इस पर कुन्ती ने पतिव्रत धर्म पर दृढ़ रहने की इच्छा प्रगट करते हुए नियोग न करने की इच्छा जतलाई। तब पाण्डु ने कहा—"पति की जीवितावस्था में उस की सहमति के बिना नियोग करना महापाप है परन्तु उसकी आज्ञा होने पर नियोग न करना भी महापाप है। प्राचीन समय में ऋषि श्वेतकेतु ने भी यही बात कही थी। सौदास ने अपनी पत्नि मदयन्ती को ऋषि वसिष्ठ के साथ नियोग करने की आज्ञा दी थी, और इस प्रकार उसने पुत्र लाभ किया था। स्वयं मेरा जन्म भी नियोग ही से हुवा है। इन सब कारणों से तू

---

१. एवमुच्चावचैरस्त्रैः भार्गवेण महात्मना।
त्रिःसप्तकृत्वा पृथिवी कृतानिःक्षत्रिया पुरा॥ २७॥
एवं निःक्षत्रिये लोके कृते तेन महर्षिणा।
उत्पादितान्यपत्यानि ब्राह्मणैर्वेदपारगैः॥ ५॥
पाणि ग्राहस्य तनय इति वेदेषु भाषितम्।
धर्मं मनसि संस्थाप्य ब्राह्मणांस्ताः समभ्ययुः॥ ६॥
लोकेप्याचरितो दृष्टः क्षत्रियाणां पुनर्भवः।
ततः पुनः समुदितं क्षत्रं समभवत्तदा॥ ७॥ (आदि० अ० १०४)

२. स्वयं जातः प्रणीतश्च, परिक्रीतश्च यः सुतः।
पौनर्भवश्च कानीनः स्वैरिण्यां यश्च जायते॥ ३२॥
दत्तः क्रीतः कृत्रिमश्च उपगच्छेत्स्वयं च यः।
सहोढो ज्ञातिरेताश्च हीनयोनिधृतश्च यः॥ ३३॥

मेरी यह आज्ञा मान कर धर्म च्युत न होगी। मेरी आज्ञा से तू किसी तपस्वी ब्राह्मण से गुणी पुत्र उत्पन्न कर। इस प्रकार मैं भी पुत्रवान बन सकूंगा।"[1]

इस पर कुन्ति ने युधिष्ठिरादि तीन पुत्ररत्न पैदा किये थे।

नियोग की संख्या मर्यादा— महाभारत में नियोग द्वारा उत्पन्न सन्तान की संख्या सीमा का भी एक स्थान पर उल्लेख है। रानी कुन्ति के तीन पुत्र हो जाने पर भी पाण्डु को सन्तोष नहीं हुवा। उस ने उसे चौथा पुत्र

पूर्वऽपूर्वतमाभावे मत्वा लिप्सेत वै सुतम्।
उत्तमाद् देवरात्पुंसः कांक्षन्ते पुत्रमापदि ॥ ३४ ॥
अपत्यं धर्म फलदं श्रेष्ठं विन्दन्ति मानवाः।
आत्म शुक्रादपि पृथे मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥ ३५ ॥
तस्मात्प्रहेष्याम्यद्य त्वां हीनः प्रजननात्स्वयम्।
सदृशाच्छ्रेयसोवात्वं विद्धयपत्यं यशस्विनम् ॥ ३६ ॥
शृणु कुन्ति कथामेतां शरदाण्डायनीं प्रति।
सा वीरपत्नी गुरुणा नियुक्ता पुत्र जन्मनि ॥ ३७ ॥
पुष्पेण प्रयता स्नाता निशि कुन्ति चतुष्पथे।
वरयित्वा द्विजं सिद्धं हुत्वा पुंसवनेऽनिलम् ॥ ३८ ॥
कर्मण्य वसिते तस्मिन् सा तेनैव सहावसत्।
तत्र त्रीन् जनयामास दुर्जयादीन्महारथान् ॥ ३९ ॥
तथा त्वमपि कल्याणि ब्राह्मणात्तपसोऽधिकात्।
मन्नियोगाद् यतक्षिप्रमपत्योत्पादनंप्रति ॥ ४० ॥ (आदि० १२०)

१. व्युच्चरन्त्याः पतिं नार्या अद्यप्रभृति पातकम्।
भ्रूणहत्या समंघोरं भविष्यत्यसुखावहम् ॥ १७ ॥
भार्यां तथा व्युच्चरतः कौमार ब्रह्मचारिणीम्।
प्रतिव्रतामेतदेव भविता पातकं भुवि ॥ १८
पत्या नियुक्ता या चैव पत्नी पुत्रार्थमेव च।
न करिष्यति तस्याश्च भविष्यति तदवेहि ॥ १९ ॥
इति तेन पुरा भीरु मर्यादा स्थापिता बलात्।
उद्दालकस्य पुत्रेण धर्म्या वै श्वेतकेतुना ॥ २० ॥
सौदासेन चरम्भोरु नियुक्ता पुत्र जन्मनि।
मदयन्ती जगामर्षिं वसिष्ठमिति नः श्रुतम् ॥ २१ ॥
तस्माल्लेभे च सा पुत्रमश्मकं नाम भाविनी।
भर्त्तुः कल्माषपादस्य भार्या प्रिय चिकीर्षया ॥ २२ ॥
अस्माकमपि ते जन्म विदितं कमलेक्षणे।
कृष्णद्वैपायनाद् भीरु कुरूणां वंश वृद्धये ॥ २३ ॥
अतः एतानि कारणानि सर्वाणि समीक्ष्य वै।
ममैतद् वचनं धर्म्यं कर्त्तुमर्हस्यनिन्दिते ॥ २४ ॥
मन्नियोगात्सुकेशान्ते द्विजातेस्तपसाधिकात्।
पुत्रान् गुण समायुक्तानुत्पादयितुमर्हसि ॥ २५ ॥
(आदि०, अ० १२२)

उत्पन्न करने को कहा। इस पर कुन्ती ने उत्तर दिया—"धर्मशास्त्र आपत्काल में नियोग द्वारा अधिक से अधिक तीन पुत्र उत्पन्न करने की आज्ञा देते हैं। नियोग द्वारा चौथा पुत्र उत्पन्न करने पर स्त्री व्यभिचारिणी और पांचवां पुत्र उत्पन्न करने पर वेश्या बन जाती है। इस लिये तुम मुझे इस अधर्म की आज्ञा न दो।"[1]

रंगशाला में दर्शक स्त्रियें— आचार्य द्रोण ने अपने शिक्षणालय में शिक्षाप्राप्त क्षत्रिय स्नातकों की परीक्षा के लिये एक रंगशाला तैयार कराई थी। इस रंगशाला में स्त्रियों के लिये भी मञ्चों तथा गैलरियों का प्रबन्ध किया गया था। इस रंगशाला में दर्शक रूप से राज घराने की स्त्रियें भी सम्मिलित हुई थी।

"राजा के कारीगरों ने बड़ी निपुणता से रंग भूमि में दर्शकों के लिये स्थान तैयार किया। राजाओं, स्त्रियों और नगरवासियों के लिये अलग अलग मञ्च (गैलरियां) बनाए।"[2]

"महारानी गान्धारी और कुन्ती राज परिवार की अन्य स्त्रियों और सहेलियों के साथ देव-स्त्रियों के समान मञ्च पर आकर बैठ गई।"[3]

पति से सहानुभूति— स्त्रियां विदा होते हुए अपने पति के सम्मान के लिये उन्हें छोड़ने जाया करती थीं। आश्रमवासिक पर्व में महाराज धृतराष्ट्र और गान्धारी राजगृह छोड़ कर तपोवन जा रहे हैं। द्रोपदी उत्तरा आदि राज प्रवार की स्त्रियें भी उन के साथ चलने को तैयार होगई।"[4]

---

१. पाण्डुस्तु पुनरेवैनां पुत्रलोभान्महायशाः।
वक्तुमैच्छद्‌ धर्मपत्नीं कुन्तीत्वेनमथाब्रवीत्॥ ८५॥
नातश्चतुर्थं प्रसव मापत्स्वपि वदन्त्युत।
अतः परं स्वैरिणी स्याद्‌ बन्धकी पञ्चमे भवेत्॥ ७६॥
स त्वं विद्वान्‌ धर्ममिममधिगम्य कथं नुमाम्‌।
अपत्यार्थं सुमुत्क्रम्य प्रमादादिव भाषसे॥ ७७॥
(आदि० अ० १२३)

२. प्रेक्षागारं सुविहितं चक्रुस्ते तस्य शिल्पिनः।
राज्ञः सर्वायुधोपेतं स्त्रीणाञ्चैव नरर्षभ॥ १०॥
मञ्चांश्चकारयामासुः तत्र जानपदा जनाः॥ ११॥ (आदि० अ० २३६)

३. गान्धारी च महाभागा कुन्ती च जयतांवर।
स्त्रियश्च राज्ञः सर्वास्ताः सप्रेष्याः सपरिच्छदाः॥ १४॥
हर्षादारुरुहुर्मञ्चान्मेरुं देवस्त्रियो यथा॥ १५॥ (आदि० अ० १५६)

४. ततो निष्पेतुर्ब्राह्मण क्षत्रियाणां।
विशां शूद्राणाञ्चैव भार्याः समन्तात्॥ ११॥ (आश्रमवासिक० अ० १५)

इसी प्रकार महाराज युधिष्ठिर तथा उन के भाइयों के महाप्रस्थान के समय भी यही दृश्य देखने को मिलता है।[1]

पर्दा— प्राचीनकाल में स्त्रियों में परदे का रिवाज बिल्कुल नहीं था यह बात आदि पर्व में पाण्डव के कुन्ती के प्रति कहे गए इस वचन द्वारा सिद्ध होती है—"प्राचीन काल में स्त्रियां बिना किसी प्रकार के आवरण के यथेच्छ घूमती फिरती थीं।"[2]

परन्तु महाभारत के समय पर्दे का रिवाज अवश्य प्रचलित हो गया था। महाभारत में इस के लिये पर्याप्त साक्षियां प्राप्त होती हैं। स्त्री पर्व में पति पुत्रादि के शोक से युद्ध भूमि में रोती हुई स्त्रियों के सम्बन्ध में लिखा है—

"जिन नारियों को पहले देवता भी नहीं देख सकते थे वे आज खुले आम सब लोगों के सामने रो रही थीं।"[3]

पति को नाम से सम्बोधन— महाभारत काल में स्त्री और पुरुष गृहस्थ के एक समान आवश्यक भाग समझे जाते थे। पत्नि भी पति का नाम लेकर उसे बुला सकती थी। विराट पर्व में कीचक से अपमानित होकर द्रौपदी ने कहा है—"हे भीम! तुम्हारे अपमानित होने पर और युधिष्ठिर के शोक मग्न होने पर मैं किस प्रकार जीवित रह सकती हूँ।"[4]

सामाजिक लोकाचार और प्रथाएं

महाभारत युग के सामान्य लोकाचार में कतिपय अद्भुत विशेषताएं प्रतीत होती हैं। इन लोकाचारों द्वारा तत्कालीन सामाजिक दशा पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। हम संक्षेप से इन व्यवहारों का निदर्शन करेंगे—

राजाओं की विलासिता— तत्कालीन साधारण नागरिकों में सहभोज, उत्सव, और अभिनय आदि करने की प्रवृत्ति खूब बढ़ गई थी। ग्रीक लोगों के ओलिम्पस के मेले की तरह महाभारत काल में भी नागरिकों और राजपरिवारों के मनोरञ्जन के लिये बड़े २ सान्मुख्यों की आयोजना की जाती थी। विशेषकर राजा लोगों में विलास की पराकाष्ठा होगई थी। प्रायः राजाओं का अधिकांश समय मद्यपान, जुआ, स्त्रियों और खेलों में ही बीत जाता था। सभा पर्व में नारद ने युधिष्ठिर से पूछा है—

---

१. आत्मना सप्तमो राजा निर्ययौ गजसाह्वयात्।
पौरैरनुगतो दूरं सर्वैरन्तःपुरैस्तथा ॥ २५ ॥ (महाप्रस्थानिक, अ० १)

२. अनावृताः किल पुरा स्त्रिय आसन् वरानने।
कामचार विहारिण्यः स्वतन्त्रश्चारुहासिनि ॥ ४ ॥ (आदि० अ० १२२)

३. अदृष्ट पूर्वाः या नार्यः पुरा देवगणैरपि।
पृथग् जनेन दृश्यन्ते तास्तदा निहतेश्वराः ॥ ८ ॥

४. त्वय्येवं निरयं प्राप्ते भीमे भीम पराक्रमे।
शोके यौधिष्ठिरे मग्ना नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ १३ ॥ (विराट०, १९)

"क्या तुम्हारे अमात्य तुम्हारे मद्यपान, जुआ, स्त्री विलास और अन्य व्यसनों के व्यय का हिसाब रखते हैं ?"[1]

रिश्वत— राज्य के अधिकारी लोग उस समय रिश्वत भी लेने लगे थे। इसी प्रकरण में नारद ने युधिष्ठिर से पूछा है—

"कहीं राजधानी में रहने वाले लोग या राष्ट्र वासी शत्रुओं से रिश्वत ले कर तुम्हारा विरोध तो नहीं करते।"[2]

"कहीं तुम्हारे न्यायकर्ता धन के लोभ में आकर धनी और गरीब के मुकदमों का झूठा निर्णय तो नहीं करते।"[3]

नरबलि— महाभारत के समय तान्त्रिक सम्प्रदाय जन्म ले चुका था। ये लोग घोर तान्त्रिक विधि से देवताओं की पूजा करते थे। जरासंध शिव का उपासक था। उसने एक युद्ध में हारे हुए राजाओं को पशुपति पर बलि चढ़ाने के लिये कैद किया था। सभापर्व में कृष्ण ने जरासन्ध से कहा है—

"राजा को श्रेष्ठ राजाओं की हत्या कभी नहीं करनी चाहिये और तू इन राजाओं को पकड़ कर रुद्र पर बलि चढ़ाना चाहता है। आज तक कभी मनुष्यों को बलि चढ़ाने की बात हमने नहीं सुनी, इस नरबलि द्वारा देवगण कभी प्रसन्न नहीं हो सकते।"[4]

इस से प्रतीत होता है कि पशुबलि तो महाभारत के कुछ समय पूर्व भी प्रचलित थी परन्तु नरबलि उस समय के लिये एक नई बात थी। इसके बाद कृष्ण कहते हैं— "तू इन राजाओं का समान वर्ण हो कर इन्हें बलि का पशु बनाने लगा है, तेरे समान नासमझ और कौन होगा।"[5]

अशकुन— उस समय शकुनों पर लोगों का बहुत अधिक विश्वास हो गया था। लोग प्रत्येक शुभ या अशुभ कार्य के लिये पहले शकुन देखा

---

१. कच्चिन्नपाने द्यूते वा क्रीड़ासु प्रमदासु च।
प्रतिजानन्ति पूर्वाण्हे व्ययं व्यसनजं तव॥ ६९॥ (सभा० अ० ५)

२. कच्चित्पौरा नसहिता येच ते राष्ट्रवासिनः।
त्वयासहविरुद्धयन्ते परैः क्रीता कथञ्चन॥ ९४॥ (सभा० अ० ५)

३. उत्पन्नान् कच्चिदाढ्यस्य दरिद्रस्य च भारत।
अर्थान्नमिथ्या पश्यन्ति तवामात्या हृताधनैः॥ १०६॥ (सभा० अ० ५)

४. राजा राज्ञः कथं साधून् हिंस्यान्नृपतिसत्तम।
तद्राज्ञः संन्निगृह्य त्वं रुद्रायोपजिहीर्षसि॥ ९॥
मनुष्याणां समालम्भो न च दृष्टः कदाचन।
सकथं मानुषै र्देवं यष्टुमिच्छसि शंकरम्॥ ११॥ (सभा० अ० २२)

५. सवर्णोहि सवर्णानां पशुसंज्ञां करिष्यसि।
कोऽन्यएवं यथाहि त्वं जरासन्ध वृथामति॥ १२॥
(सभा० अ० २२)

करते थे। महाभारत का महायुद्ध प्रारम्भ होने पर इसी प्रकार के भयङ्कर अशकुनों का वर्णन मिलता है। इन में से प्रायः अशकुन असम्भव प्रतीत होते हैं। भीष्म पर्व के दूसरे और तीसरे अध्याय में विस्तार से इन अशकुनों का वर्णन है। हम नमूने के तौर पर उन में से कुछ अशकुनों का यहां निर्देश करते हैं-देव मूर्त्ति का कांपना, उस का खून उगलना या उस के शरीर में पसीना आना। बिना बजाए युद्ध के बाजों का बजना, बादलों से धूलि और मांस की वर्षा होना, गाय के पेट से गधे का पैदा होना, बिना मौसम के वृक्षों का फूलना और फलना-इस प्रकार के बीसियों अशकुनों का इस प्रकरण में वर्णन है।

शपथ और गालियां-समाज की वास्तविक आचार सम्बन्धी अवस्था का ज्ञान करने के लिये गालियों और शपथों के द्वारा पर्याप्त सहायता मिल सकती है। उस समय जैसी शपथें की जाती थीं या जैसी गलियां दी जाती थी उन से समाज के असली चित्र पर अच्छा प्रकाश डलता है।

महायुद्ध में त्रिगर्त और संशप्तक लोगों ने क्रुद्ध होकर अर्जुन को मारने की प्रतिज्ञा की। अर्जुन को मारने की शपथ खाते हुए उन्होंने कहा कि यदि वे अर्जुन को न मारेंगे तो—

"झूठ बोलने वाले, ब्रह्महत्या करने वाले, शराबी, गुरुपत्नियों से व्यभिचार करने वाले, ब्राह्मण या राजा का धन चुराने वाले, शरणागत को छोड़ने वाले, भिखमंगों को मारने वाले, दूसरों के घरों में आग लगाने वाले, श्राद्ध के दिनों में मैथुन करने वाले तथा आत्मघाती लोग जिस लोक में जाते हैं अथवा अमानत को हजम कर जाने वाले, वेद नाशक, नपुंसक से युद्ध करने वाले, दीनों को दुःख देने वाले, नास्तिक या माता को निस्सहाय छोड़ देने वाले लोग जिस लोक को जाते हैं हम भी उसी लोक में जावें,-यदि हम अर्जुन को मारे बिना युद्धक्षेत्र से वापिस लौटें"[1]

---

१. ये वै लोकाश्चानृतिनां येच वै ब्रह्मघातिनाम्।
मद्यपस्यंच ये लोका गुरदार रतस्य च॥ २८॥
ब्रह्मस्वहारिणश्चैव राजपिण्डापहारिणः।
शरणागतं वा त्यजतः याचमानं तथाघ्नतः॥ २९॥
अगारदाहिनाञ्चैव, ये च गां निघ्नतामपि।
न्यासापहारिणाञ्चैव श्रुतंनाशयतां च ये॥ ३०॥
स्वभार्यामृतुकालेषु यो मोहान्नाभिगच्छति।
श्राद्धमैथुनिकानां च येचाप्यात्मापकारिणाम्॥ ३१॥
अपकारिणां च ये लोकाः येच वृह्मद्विषामपि।
क्लीवेन युद्धयमानानां येच दीनानुसारिणाम्॥ ३२॥
श्राद्धमैथुनिकानाञ्च ये च गांनिघ्नतामपि।
नास्तिकानाञ्च येलोका येग्निमातृ परित्यजाम्॥ ३३॥
तानाप्नुयामहे लोकान् येच पापकृतामपि।
मद्यहत्वा निवर्त्तेम वयं सर्वेधनञ्जयम्॥ ३४॥ (द्रोणपर्व अ० १७)

इस का अभिप्राय यह हुआ कि उपर्युक्त कार्य करने वाले लोग उस समय बहुत घृणा की दृष्टि से देखे जाते थे। तत्कालीन समाज का यह चित्र पर्याप्त सन्तोष जनक है।

इसी प्रकार महारथी अर्जुन ने जयद्रथ को मारने की प्रतिज्ञा करते हुए जो शपथें ली थीं, वह इस प्रकार हैं–

"मातृ घाती, पितृ घाती, गुरुदारा गामी, क्षुद्र, साधुनिन्दक, साधुओं से द्वेश करने वाले, विश्वासघाती, स्त्री निन्दक, ब्रह्मघाती, गोहत्यारे, स्वादु वस्तुओं द्वारा मुफ्त में बिना काम किए पेट भरने वाले, वेदपाठी के अपमान कर्त्ता, ब्राह्मण गौ या अग्नि को पैर से छूने वाले, पानी में कफ या मलमूत्र करने वाले, नंगे, शोकार्त, वन्ध्या स्त्रियें, रिश्वत लेने वाले, असत्यवादी, धूर्त, छली, अकेले स्वादु चीज़ खाने वाले, आश्रित की रक्षा न करने वाले, अयोग्य ब्राह्मण को श्राद्ध में खिलाने वाले, मद्यप, मर्यादा तोड़ने वाले, कृतघ्न, भ्रातृ निन्दक और धर्म भ्रष्ट लोग जिस लोक को जाते हैं, अगर मैं जयद्रथ को न मार सकूं तो मैं भी उसी लोक को जाऊं।"[1]

इन शपथों द्वारा भी तत्कालीन सामाजिक दशा के पक्ष में पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। उपर्युक्त कार्यों को उस समय अतीव निन्दनीय और हेय समझा जाता होगा जब कि अर्जुन भीषण प्रतीज्ञा करते हुए इन घृणास्पद कार्यों का निर्देश कर रहा है।

---

१. ये लोका मातृहन्तॄणां येचापि पितृघातिनाम्।
गुरुदार रतनां च पिशुनानाञ्च ये सदा॥ २५॥
साधूनसूयतां ये च येचापि परिवादिनाम्।
ये च निक्षेपहर्तॄणां येच विश्वास घातिनाम्॥ २६॥
भुक्तपूर्वां स्त्रियं येच निन्दतामयशस्विनाम्।
ब्रह्मघ्नानां च ये लोकाः येचं गोघातिनामपि॥ २७॥
पायसं वा यवान्नं वा शाकं कृशरमेववा।
संयावापूप मांसानि ये च लोका वृथाश्नताम्॥ २८॥
अवमन्यमानो यान् याति वृद्धान् साधून् गुरूंस्तथा।
स्पृशतोब्राह्मणाम् गाञ्च पादेनाग्निञ्च या भवेत्॥ २९॥
अप्सु श्लेष्म पुरीषञ्च मूत्रंच मुञ्चतांगतिम्।
तां गच्छेयं गतिं कष्टां न चेद्धन्यां जयद्रथम्॥ ३१॥
नग्नस्य स्नायमानस्य या च वन्ध्यातिथेर्गतिः॥
उत्कोचिनां मृषोक्तीनां वञ्चकानांच यागतिः॥ ३२॥
स्वात्मापहारिणां याच याच मिथ्याभिशंसिनाम्।
भृत्यैः संदृश्यमाणानां पुत्रदाराश्रितैस्तथा॥ ३३॥
असंविभज्य क्षुद्राणां यागतिर्मिष्टमश्नताम्।
तांगच्छेयं गतिं घोरं न चेद्धन्यां जयद्रथम्॥ ३४॥
मद्यपो भिन्नमर्यादः कृतघ्नो भ्रातृनिन्दकः।
तेषां गतिमियां क्षिप्रं न चेद्धन्यां जयद्रथम्॥ ३७॥ (द्रोणापर्व अ० ७३)

नैत्यिक अनुष्ठान और श्रेष्ठाचार — शान्ति पर्व में साधारण नैत्यिक कर्तव्यों के सम्बन्ध में भीष्म कहते हैं—

"मनुष्यों को मार्ग में, गउओं के बीच में, धान्य और अनाज के खेतों में मलमूत्र का त्याग नहीं करना चाहिये। शौच के अनन्तर देवताओं का तर्पण कर के नदी में नहाना चाहिये, इस से पुण्य होता है। सूर्य की ओर मुख कर के सन्ध्या करनी चाहिये, सूर्य उदय हो जाने पर सोते रहना अत्यन्त अनुचित है। प्रातः और सायं दोनों समय सन्ध्या करनी चाहिये। हाथ, पैर और मुख ये पांच अङ्ग धोकर पूर्व दिशा की ओर मुख कर के चुपचाप भोजन करना चाहिये। अन्न तथा भक्ष्य पदार्थों की निन्दा नहीं करनी चाहिये, गीले पैर सोना हानिकर है। स्वादु भोजन खाना चाहिये। प्रातः काल उठते ही हाथ धोने चाहिये; शुद्ध स्थान, बैल, देव, गोशाला, चौराहा, ब्राह्मण, धार्मिक मनुष्य और चैत्य इन को प्रदक्षिणा करनी चाहिये। गृहपति, अतिथि, नौकर और बन्धुओं को एक समान भोजन करना चाहिये। सायं और प्रातः इन दो समयों को छोड़ कर अन्य समय भोजन नहीं करना चाहिये। इस प्रकार केवल दो समय भोजन करने वाला व्यक्ति सदोपवासी कहाता है। नियम पूर्वक यज्ञ करता हुवा, केवल ऋतु और काल में ही स्त्रीगमन करने वाला पुरुष गृहस्थ में भी ब्रह्मचारी ही कहलाता है। बैठे बैठे ढेले तोड़ना, तिनके छेदना और दाँतों से नाखून काटना दीर्घायु में बाधक हैं। केवल आयुर्वेद से स्वीकृत मांस ही खाना चाहिये, अन्य मांस, यथा पीठ का मांस, खाना हानि कारक है। गृहस्थ चाहे स्वदेश में हो चाहे विदेश में, अतिथि को भूखा न रहने दे। उचित लाभ अपने पास रख कर शेष गुरुओं को दान कर देना चाहिये। गुरुओं को आसन देकर उन का सत्कार करने से आयु यश और धन प्राप्त होता है। उदय होते हुए सूर्य और नंगी स्त्री को नहीं देखना चाहिये। धर्मानुकूल मैथुन भी सदैव गुप्त स्थान पर ही करना चाहिये। जब जब कोई मिले,-कुशल प्रश्न अवश्य करना चाहिये। सायं प्रातः ब्राह्मणों को नमस्कार करना चाहिये। भोजन में दायाँ हाथ ही काम में लाना उचित है। सूर्य की ओर मुख करके मूत्र करना और अपना मलमूत्र देखना अनुचित है। स्त्री के साथ कभी नहीं सोना चाहिये। बड़ों को 'तू' नहीं कहना चाहिये, बराबर वालों और छोटों को 'तू' कर के बुलाना बुरा नहीं। जान बूझ कर पाप कर के मूर्ख लोग ही फिर उसे छिपाया करते हैं।" [१]

---

१. पुरीषं यदि वा मूत्रं ये न कुर्वन्ति मानवाः।
राजमार्गे गवां मध्ये धान्यमध्ये च ते शुभाः ॥ ३ ॥
शौचमावश्यकं कृत्वा देवतानाञ्च तर्पणम्।
धर्ममाहुर्मनुष्याणा मुपस्पृश्य नदीं भवेत् ॥ ४ ॥
सूर्यं सदोपतिष्ठेत न च सूर्योदये स्वपेत्।
सायं प्रातर्जपेत् सन्ध्यां तिष्ठन्पूर्वां तथेतराम् ॥ ५ ॥

दासी दान— महाभारत में दास प्रथा के प्रमाण प्राप्त होते हैं। दासों को बेचने, खरीदने आदि का पूर्ण अधिकार उन के स्वामियों को होता था। प्रायः स्त्रियाँ ही दासी बनाई जाती थीं। कर्ण पर्व में कर्ण अर्जुन को दिखला देने वाले के लिये इनाम की घोषणा करता है—

पश्चार्द्रभोजनं भुञ्ज्यात् प्राङ् मुखो मौनमास्थितः।
ननिन्द्यादन्न भक्ष्यांश्च स्वादु स्वादु च भक्षयेत् ॥ ६ ॥
आर्द्रपाणिः समुत्तिष्ठेत् नार्द्रपादः स्वपेन्निशि।
देवर्षिर्नारदः प्राह एतदाचार लक्षणम् ॥ ७ ॥
शुचि देशमनड्वाहं देवं गोष्ठञ्चतुष्पथम्।
ब्राह्मणं धार्मिकं चैत्यं नित्यं कुर्यात् प्रदक्षिणम् ॥ ८ ॥
अतिथीनाञ्च सर्वेषां प्रेष्याणां स्वजनस्य च।
सामान्यं भोजनं भृत्यैः पुरुषस्य प्रशस्यते ॥ ९ ॥
सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं देवनिर्मितम्।
नान्तरा भोजनं दृष्टमुपवासी तथा भवेत् ॥ १० ॥
होमकाले तथा जुह्वत् ऋतुकाले तथा व्रजन्।
अनन्य स्त्रीजनः प्राज्ञो ब्रह्मचारी तथा भवेत् ॥ ११ ॥
लोष्टमर्दी तृणच्छेदी नखखादी तु यो नरः
नित्योच्छिष्टः सङ्कुलको नेहायुर्विन्दते महत् ॥ १३ ॥
यजुषा संस्कृतं मांसं निवृत्तोमांस भक्षणात्।
नभक्षयेद् वृथामांसं पृष्ठ मांसंच वर्जयेत् ॥ १४ ॥
स्वदेशे परदेशे वा अतिथिं नोपवासयेत्।
काम्य कर्म फलं लब्ध्वा गुरूणामुपपादयेत् ॥ १५ ॥
गुरुभ्य आसनं देयं कर्तव्यंञ्चाभिवादनम्।
गुरूनभ्यर्च्य युज्यन्ते आयुषा यशसा श्रिया ॥ १६ ॥
नेक्षेतादित्यमुद्यन्तं न च नग्नां परस्त्रियम्।
मैथुनं सततं धर्म्यं गुह्ये चैव समाचरेत ॥ १७ ॥
दर्शने दर्शने नित्यं सुख प्रश्नमुदाहरेत्।
सायं प्रातश्च विप्राणां प्रदिष्टमभिवादनम् ॥ १९ ॥
देवागारे गवांमध्ये ब्राह्मणानां क्रिया पथे।
स्वाध्याये भोजने चैव दक्षिणं पाणिमुद्धरेत् ॥ २० ॥
प्रत्यादित्यं नमेहेत नपश्येदात्मनाः शकृत्।
सह स्त्रियाथ शयनं सह भोज्यं च वर्जयेत् ॥ २४ ॥
त्वंकारं नामधेयञ्च ज्येष्ठानां परिवर्जयेत्।
अवराणां समानाना मुभयेषां न दुष्यति ॥ २५ ॥
ज्ञानपूर्वं कृतं पापछादयन्त्य बहु श्रुताः।
नैनं मनुष्याः पश्यन्ति पश्यन्त्येव दिवौकसः ॥ २७ ॥

"अगर कोई मुझे अर्जुन को दिखा दे तो मैं उसे श्यामा, जवान, अच्छे स्वर वाली, चतुर और अलंकारों युक्त स्त्रियां दूँगा।"[1]

छाती पीट कर रोना— भारतवर्ष में स्त्रियें किसी की मृत्यु होजाने पर इकट्ठी होकर छाती पीटती हुई रोती हैं। किसी की मृत्यु के बाद यह एक आवश्यक प्रथा सी बन गई है। महाभारत काल में भी स्त्रियां इसी प्रकार शोक के अवसरों पर छाती पीट कर रोया करती थीं। धृतराष्ट्र के सभी पुत्रों का नाश सुन कर राज घराने की स्त्रियाँ खूब ज़ोर से रोने लगीं—

"राज घराने की स्त्रियाँ ज़ोर ज़ोर से रो रही थीं। वे अपने बालों को नोचती और चिल्लाती थीं, हाय हाय करके छाती और सिर पीट रही थीं।"[2]

राज परिवार रक्षक— राज घराने की स्त्रियों, उनकी सखियों और कुमारियों की रक्षा के लिये दाराध्यक्ष नाम से कुछ पुरुष नियुक्त किए जाते थे। इन का काम राजपरिवार की स्त्रियों की रक्षा तथा निरीक्षण करना था, ये रक्षक प्रायः बूढ़े और नपुंसक होते थे।

"स्त्रियों के बूढ़े रक्षक राजपरिवार की स्त्रियों को लेकर नगर की तरफ गए। ये दाराध्यक्ष हाथों में बेंत लिये हुए थे।"[3]

सिर सूँघना— वयोवृद्ध लोग अपने प्रिय लोगों के प्रति अपना प्रेम दिखाने के लिये उनके सिर सूंघते थे। उद्योग पर्व में आता है कि—

"कन्या के प्रदक्षिणा कर लेने पर उसका सिर सूंघ कर ऋषि कण्व उससे विदा हुए।"[4]

---

१. तथा प्यस्मै पुनर्दद्यां स्त्रीणां शतमलंकृतम् ।
श्यामानां निष्क कण्ठीनां गीतवाद्य विपश्चिताम् ॥ ७ ॥
(कर्ण पर्व अ० ३८)

२. ततस्तु योषितो राजन्क्रन्दन्त्यो वै मुहुर्मुहुः ।
कुरर्य इव शब्देन नादयन्त्यो महीतलम् ॥ ६५ ॥
आजघ्नुःकरजैश्चापि पाणिभिश्च शिरांस्युत ।
लुलुञ्चुश्च तदा केशान् क्रोशन्त्यस्तत्र तत्र ह ॥ ६६ ॥
हाहाकार निनादिन्यो विनिघ्नानां उरांसिच ।
क्रोशयन्त्यस्तत्र रुरुदुः क्रन्दमानाः विशाम्पते ॥ ६७ ॥
(शल्य० अ० २९)

३. (क) ततो वृद्धा महाराज योषितां रक्षिणोनराः ।
राजदारानुपादाय प्रययुर्नगरं प्रति ॥ ६३ ॥
(ख) वेत्रव्यासक्त हस्ताश्च दाराध्यक्षाः विशाम्पते ॥ ६८ ॥
(ग) वाहनेषु समारोप्य स्त्र्यध्यक्षाः प्राद्रवन् भयात् ॥ ९० ॥
(शल्य० अ० २९)

४. इत्यामन्त्र्य सुधर्मा स कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम् ।
कन्यां शिरसि उपाघ्राय प्रविवेश महीतलम् ॥ २१ ॥ (उद्योग० अ० ९९)

प्रदक्षिणा करना— विदाई के समय छोटे बड़ों की प्रदक्षिणा करते थे, स्त्री पर्व में आता है— "कृप, कृतवर्मा, अश्वत्थामा आदि ने विदा होते समय धृतराष्ट्र की प्रदक्षिणा कर के गंगा की तरफ अपने घोड़ों को बढ़ाया।"[1]

इसी प्रकार जब युधिष्ठिरादि वारणावत की ओर जाने लगे तब सब पुरवासी उनके पीछे चल दिये। परन्तु—

"युधिष्ठिर के बहुत समझाने पर वे उन की प्रदक्षिणा कर के वापिस चले आये।"[2]

भक्ष्याभक्ष्य—उस समय भक्ष्याभक्ष्य का धार्मिक दृष्टि से प्रायः कोई विशेष विवेक नहीं किया जाता था। मांस भक्षण साधारण रूप से प्रचलित हो चुका था। मांस भक्षण के सम्बन्ध में महाभारत में जगह जगह प्रमाण प्राप्त होते हैं। शान्तिपर्व तथा अनुशासन पर्व में एक स्थान पर भक्षाभक्ष्य का प्रश्न उठाया गया है, परन्तु इन स्थानों पर मांस भक्षण का निषेध नहीं किया गया।[3] राजा युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ में पशु हिंसा का निदर्शन है।[4] इसी प्रकार श्राद्ध के समय भी मांस प्रयोग का निर्देश है।

---

१. इत्येवमुक्त्वा राजानं कृत्वाचाभि प्रदक्षिणम्।
कृपश्च कृतवर्मा च द्रोणपुत्रश्च भारत ॥ १८ ॥
अवेक्षमाणा राजानं धृतराष्ट्रं मनीषिणम्।
गङ्गामनु महात्मानस्तूर्णमश्वानचोदयन् ॥ १९ ॥ (स्त्री पर्व अ० ८१)

२. एवमुक्त्वा ततः पौराः कृत्वा चापि प्रदक्षिणम्।
आशीर्भिरभि नन्द्यैतान् जग्मुर्नगरमेव हि ॥ १८ ॥ (आदिपर्व अ० १४७)

३. (अनुशासन अ० ११५, शान्ति अ० २६२)

४. (अश्वमेध पर्व अ० ८९, श्लो० ४०)
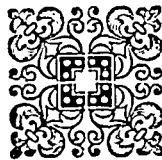
❀ चतुर्थ अध्याय ❀

प्राकृतिक विज्ञान

प्रथम अध्याय में महाभारत कालीन युद्ध कौशल और अस्त्र शस्त्र आदि पर हम पर्याप्त प्रकाश डाल चुके हैं, इस अध्याय में तत्कलोन प्राकृतिक विज्ञान के कतिपय निदर्शनों को उद्धृत किया जायगा । उस समय ज्योतिप, वृक्ष विद्या, गर्भविद्या आदि विज्ञान पर्याप्त व्यापक रूप से पढ़े जाते थे, महाभारत में इस के लिये पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध होते हैं ।

ज्योतिष— नक्षत्र विद्या भारतवर्ष की अत्यन्त प्राचीन सम्पत्ति है । वेदों में ग्रहों और नक्षत्रों के सम्बन्ध में अनेक सूक्त हैं । ज्योतिप सम्बन्धी बहुत सी बातें भारतवासियों के नैतियक अनुष्ठानों का अङ्ग बन गई थीं । महाभारत के समय भी साधारण प्रजा तक नक्षत्र विज्ञान की बहुत सी बातों से साधारणतया परिचित थी । आदिपर्व में द्रौपदी को द्रुपद उपदेश देता है कि—

"जो सम्बन्ध रोहिणी नक्षत्र का सोम से, भद्रा का श्रवण से और अरुन्धती नक्षत्र का वसिष्ठ से है तू वही घनिष्ट सम्बन्ध अपने पतियों से जोड़े रहना ।"[1]

महायुद्ध के समय घोर नक्षत्रों का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

"सूर्य का राहु से ग्रस्त होना, श्वेतग्रह का चित्रा को अतिक्रमण करना, धूम केतु का पुष्य नक्षत्र में उदय होना, अङ्गारक की महानक्षत्रों में वक्रगति, श्रवण नक्षत्र में बृहस्पति का भग नक्षत्र को अतिक्रमण करके राहु का ग्रास बनना, शुक्रका पूर्व प्रोष्टपदा नक्षत्र में उदय होना, श्वेत ग्रह का धूम सहित अग्नि के समान चमकना, ऐन्द्र नक्षत्र का ज्येष्ठा में आना, ध्रुव का खूब प्रज्वलित होकर बाईं ओर को हट जाना । चित्रा और स्वाति में क्रूर ग्रह का होना, वक्र और अनुवक्र चाल से अग्नि रूप में होकर श्रवण नक्षत्रका ब्रह्मराशि नक्षत्र मण्डल में लाल रूप धारण करना, बड़े सप्तर्षियों का प्रकाश नष्ट हो जाना, बृहस्पति और शनि का विशाखा नक्षत्र के पास आकर वर्ष भर तक उदय रहना, चतुर्दशी पञ्चदशी और भूतपूर्वा शोडषी इन तिथियों में भी सूर्य और चन्द्र दोनों

---

१. रोहणी च यथासोमे दमयन्ती यथानले ।
यथा वै श्रवणेभद्रा वसिष्ठे चाप्यरुन्धती ।
यथा नारायणे लक्ष्मी स्तथात्वं भव भर्तृषु ॥ ६ ॥ (आदि० अ० २०१)

का ग्रहण होना, और उल्कापात ये सब चिन्ह जनता के भयंकर विनाश और भारी विपत्ति के सूचक हैं।"[1]

इस का अभिप्राय यह है कि तत्कालीन भारतवासी इन उपर्युक्त ग्रहों की गति, स्थिति और अवस्था का ज्ञान खूब गहराई तक रखते थे। परन्तु इस से यह न मान लेना चाहिये कि उनका सम्पूर्ण ज्योतिष ज्ञान बिल्कुल शुद्ध था; कई नक्षत्रों के विषय में उनका ज्ञान सर्वथा भ्रम पूर्ण था, उदाहरणार्थ चन्द्र में वह एक खरगोश को बैठा हुवा मानते थे। भीष्मपर्व में सुदर्शन द्वीप का वर्णन करते हुए लिखा है—

"महाराज, यह द्वीप चारों ओर से मण्डलाकार है। इस द्वीप पर नदियां झीलें, बादल के समान पर्वत, नाना प्रकार के नगर और उद्यान हैं, इसे चारों ओर से समुद्र ने घेरा हुआ है। जिस प्रकार मनुष्य दर्पण में अपना मुख देखता है उसी प्रकार सुदर्शन द्वीप में चन्द्र मण्डल का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। प्रतिबिम्ब के अनुसार अगर हम चन्द्र के चार भाग करें तो उन में से दो भागों में पीपल का एक बड़ा वृक्ष है और शेष दो भागों में एक बहुत बड़ा खरगोश है।"[2]

---

१. अभीक्ष्णं कम्पते भूमिरर्कं राहुरुपैति च ।
श्वेतोग्रहस्तथा चित्रां समतिक्रम्य तिष्ठति ॥ १२ ॥
धूमकेतुर्महाघोरः पुष्यमाक्रम्य तिष्ठति ।
सेनयोरशिवं घोरं करिष्यति महाग्रहः ॥ १३ ॥
मघास्वङ्गारको वक्रः श्रवणे च बृहस्पतिः ।
भगं नक्षत्रमाक्रम्य सूर्यपुत्रेण पीड्यते ॥ १४ ॥
शुक्रः प्रोष्ठपदे पूर्वे समारुह्य विरोचते ।
उत्तरे तु परिक्रम्य सहितः समुदीक्ष्यते ॥ १५ ॥
श्वेतोग्रहः प्रज्वलितः सधूम इव पावकः ।
ऐन्द्रं तेजस्वि नक्षत्रं ज्येष्ठामाक्रम्य तिष्ठति ॥ १६
ध्रुवः प्रज्वलितो घोरमपसव्यं प्रवर्त्तते ।
रोहिणीं पीडयन्त्येतावुभौ शशिभास्करौ ॥ १७ ॥
चित्रास्वात्यन्तरे चैवाधिष्ठितः परुष ग्रहः ।
वक्रानुवक्रं कृत्वा च श्रवणं पावक प्रभः ॥ १८ ॥
ब्रह्मराशिं समावृत्य लोहिताङ्गो व्यवस्थितः ॥ १९ ॥
पतन्त्युल्काः सनिर्घाता शक्राशनि सम प्रभाः ॥ ३५ ॥
विनिसृत्य महोल्काभिस्तिमिरं सर्वतो दिशम् ।
अन्योन्यमुपतिष्ठन्त्रिस्तत्रचोक्तं महर्षिभिः ॥ ३६ ॥
भूमिपाल सहस्राणां भूमिः पास्यति शोणितम् ॥ ३७ ॥
(भीष्मपर्व अ० ३)

२. सुदर्शनं प्रवक्ष्यामि द्वीपन्तु कुरुनन्दन ।
परिमण्डलो महाराज द्वीपोऽसौ चक्रसंस्थितः ॥ १३ ॥
नदी जल प्रतिच्छन्नः पर्वतैश्चाभ्र संभमैः ।
पुरैश्च विविधाकारैः रम्यैर्जनपदैस्तथा ॥ १४ ॥

ज्योतिष विज्ञान के अनुसार चन्द्र का यह चित्र नितान्त अशुद्ध है।

चिकित्सा— उस समय चिकित्सा दो प्रकार से की जाती थी-मन की प्रबल इच्छा शक्ति के आधार पर-जिसे आज कल मैस्मरिक होलिङ्ग कहते हैं-और औषधियों द्वारा। कर्ण पर्व में युधिष्ठिर के सम्बन्ध में लिखा है कि "वह औषधि और मन्त्र चिकित्सा के प्रभाव से शीघ्र ही स्वस्थ होकर कर्ण और अर्जुन का युद्ध देखने के के लिये चला गया।"[1]

उस समय घावों को भरने के लिये 'विशल्यं करणी' नाम की एक औषधि प्रयुक्त की जाती थी। गहरे से गहरे घावों को भरने में भी यह औषधि आश्चर्य कारी प्रभाव दिखाती थी। युद्ध के समय इस औषधि का खूब प्रयोग किया जाता था। भीष्म पर्व में लिखा है—"विशल्यंकरणी औषधि का उपचार करने से दुर्योधन के घाव बहुत शीघ्र अच्छे हो गए।"[2]

गर्भ विज्ञान— स्त्री पर्व में विदुर ने महाराज धृतराष्ट्र से कहा है—

"जन्म होने के बाद से ही प्रणियों की सब क्रियाएं दृष्टिगोचर होनी प्रारम्भ होती है। पांच मास बीत जाने पर उस में कुछ चेतनता आने लगती है। इस समय वह सर्वाङ्ग सम्पूर्ण हो जाता है, वह चारों ओर से मांस और रक्त से घिरा रहता है। अन्त में वात के वेग से सिर नीचे और पैर ऊपर किये हुए योनिद्वार में आकर अत्यन्त कष्ट अनुभव करता है।"[3]

वृक्षैः पुष्पफलोपेतैः सम्पन्न धनधान्यवान् ।
लवणेन समुद्रेण समन्तात् परिवारतः ॥ १५ ॥
यथा हि पुरुषः पश्येदादर्शे मुखमात्मनः ।
एवं सुदर्शन द्वीपो दृश्यते चन्द्रमण्ले ॥ १६ ॥
द्विरंशे पिप्पलस्तत्र द्विरंशे च शशो महान् ।
सर्वौषधि समावायः सर्वतः परिवारतः ॥ १७ ॥
(भीष्म० अ० ५)

१. एवमुक्त्वा ददौ चास्मै विशल्यंकरणीं शुभाम् ।
औषधीं वीर्यसम्पन्नां विशल्यश्चाभवस्तदा ॥ ११ ॥
(भीष्म० अ० ८२)

२. अथोपयात्स्त्वरितो दिदृक्षु र्मन्त्रौषधिभ्यां विरुजो विशल्यः ॥ ७० ॥
(महा० कर्ण० ८९)

३. जन्म प्रभृति भूतानां क्रिया सर्वोपलक्ष्यते ।
पूर्वमेवेहकलले वसते किञ्चिदन्तरम् ॥ २ ॥
ततः सपञ्चमेतीते मासेवासमकल्पयत् ॥
ततः सर्वाङ्ग सम्पूर्णो गर्भो वै स तु जायते ॥ ३ ॥
अमेध्य मध्येवसति मांस शोणित लेपने ।
ततस्तु वायुवेगेन ऊर्ध्वपादोह्यधः शिराः ॥ ४ ॥
योनि द्वारमुपगम्य बहून्क्लेशान् स मृच्छति ॥ ४ ॥ (महा० स्त्री० अ० ४)

अश्व चिकित्सा—उस समय अश्व चिकित्सा के उत्तम उत्तम साधनों का अविष्कार हो चुका था। माद्री के बड़े पुत्र नकुल को अश्वविद्या का एक विशेषज्ञ समझा जाता था। विराट पर्व में नकुल ने स्वयं कहा है—

"मैं अश्व शिक्षा और अश्व चिकित्सा में खूब निपुण हूं।"[1]

शरीर ज्ञान— शान्ति पर्व १८५ अध्याय में शरीर विज्ञान के सम्बन्ध में थोड़ा बहुत निर्देश है। पांच भूतों से बने शरीर को पञ्चवायुएं ही स्थिर रखती हैं। प्राण वायु मूर्धा और शरीर की अग्नि में क्रिया करती है। बुद्धि, अहंकार, विषय और पञ्चभूत ये सब प्राण से ही गतियुक्त होते हैं। अपान समान के साथ ही मनुष्य के मध्य भाग में कार्य करता है। मनुष्य के प्रयत्न कर्म और बल; में उदान सब से अधिक आवश्यक है। यह शरीर के सब जोड़ों में रहता है, इत्यादि। प्राचीन वैद्य तथा चिकित्सक इसी शरीर विज्ञान के आधार पर अपनी चिकित्सा करते थे।

विश्व की उत्पत्ति का सिद्धान्त— विश्व की उत्पत्ति के सम्बन्ध में शान्ति पर्व में लिखा है—"उस वायु और जल के पिण्ड में सम्पूर्ण तम को निवारण करने वाला अग्नि उत्पन्न हुआ। तब अग्नि, वायु और जल मिल कर एक बादल के रूप में हो गया, वही बादल धीरे धीरे कठिन होकर भूमि बन गया।"[2]

आज कल के वैज्ञानिक भी विश्व की उत्पत्ति के सम्बन्ध में लगभग इस से मिलता जुलता सिद्धान्त ही मानते हैं।

वृक्षों में जीव— आर्ष सिद्धान्त के अनुसार संसार के प्रत्येक पदार्थ में एक चेतन शक्ति काम कर रही है। वृक्ष और वनस्पतियों में चेतनता है, वे स्वयं बढ़ती हैं। इस सम्बन्ध में हम शान्ति पर्व में वर्णित भृगु और भारद्वाज के सम्वाद का कुछ अंश उद्धृत करते हैं—

"भृगु ने कहा—कठिन वृक्षों में भी निस्सन्देह आकाश होता है, उन में कभी नए फूल निकलते हैं, कभी नये पत्ते। गर्मी से पत्ता मुरझा जाता है, फल फूल भी कुम्हला जाते हैं, इस से वृक्षों में स्पर्श की शक्ति

---

१. कुशलोऽस्म्यश्व शिक्षायां तथैवाश्व चिकित्सने ॥ ३ ॥
(विराट० अ० ३)

२. तस्मिन् वाय्वम्बु संघर्षे दीप्ततेजा महाबलः।
प्रादुरभूदूर्ध्वशिखः कृत्वा निस्तिमिरं नभः ॥ १४ ॥
अग्निः पवन संयुक्तः खं समाक्षिपते जलम् ॥
सोऽग्निर्मारुत संयोगाद् घनत्वमुपजायते ॥ १५ ॥
स संघातत्व मापन्नो भूमित्वमनुगच्छति ॥ १६ ॥
(शान्ति० अ० १८३)

सिद्ध होती है। वायु, मेघ गर्जन और बिजली के गिरने से फल फूल झड़ जाते हैं, इस लिये वृक्ष में सुनने की शक्ति भी माननी चाहिये। लता वृक्ष पर चढ़ जाती है, उस के चारों ओर लिपट जाती है, इस लिये उस में देखने की शक्ति भी माननी चाहिये। अच्छी गन्ध और अनुकूल वायु के प्रभाव से वृक्ष फलते फूलते हैं, रोग रहित हो जाते हैं अतः उन में गन्ध शक्ति भी स्वीकार करनी होगी। वे पैरों से पानी सींचते हैं, रोगी हो जाते हैं, उन के रोग की चिकित्सा भी की जाती है इस लिये उन में रसना शक्ति भी माननी चाहिये। वृक्ष को वृद्धि के लिये जल वायु दोनों की आवश्यकता होती है। उन्हें दुख सुख भी अनुभव होता है। कटा हुवा वृक्ष फिर उग आता है अतः मेरा विश्वास है कि वृक्ष अचेतन नहीं हैं।"[1]

तत्कालीन शिल्पके कुछ नमूने पहले अध्यायों में दिखाए जाचुके हैं। महाराज युधिष्ठिर ने अश्वमेध के समय जो प्रदर्शनी की थी वह इसका एक उत्तम उदाहरण है। तत्कालीन रंग शालाएं, वेध शालाएं, राज प्रासाद और इन्द्र प्रस्थ में मयकी बनाई अद्भुत वस्तुएं भी शिल्प कला का अच्छा उदाहरण हैं। चित्रकारी, धातु का कार्य, गान्धर्व विद्या और धनुर्वेद आदि कलाओं और शिल्पों के प्रमाण तो महाभारत में जगह जगह प्राप्त होते हैं। इन सब उदाहरणों से तत्कालीन भौतिक शिल्प पर्याप्त उन्नत प्रतीत होता है।

---

१. भृगुरुवाचः—

घनानामपि वृक्षाणामाकाशोऽस्ति न संशयः।
तेषां पुष्प फल व्यक्तिर्नित्यं समुपपद्यते ॥ १० ॥
ऊष्मतो म्लायते पर्णं त्वक् फलं पुष्पमेवच।
म्लायते शीर्यते चापि स्पर्शस्तेनात्र विद्यते ॥ ११ ॥
वाय्वग्न्यशनि निर्घोषैः फलं पुष्पं विशीर्यते।
श्रोत्रेण गृह्यते शब्दः तस्माच्छृण्वन्ति पादपाः ॥ १२ ॥
वल्ली वेष्टयते वृक्षं सर्वतश्चैव गच्छति।
न ह्यदृष्टेश्च मार्गोऽस्ति तस्मात् पश्यन्ति पादपाः ॥ १३ ॥
पुण्या पुण्यैस्तथागन्धै धूपैश्चैव गच्छति।
अरोगाः पुष्पिताः सन्ति तस्माज्जिघ्रन्ति पादपाः ॥ १४ ॥
पादैः सलिल पानाच्च व्याधीनाञ्चापि दर्शनात्।
व्याधिप्रतिक्रियत्वाच्च विद्यते रसना द्रुमे ॥ १५
वक्त्रेणोत्पल नालेन यथोर्ध्वं जलमाददेत्।
तथा पवन संयुक्तः पादैः पिबति पादपः ॥ १६ ॥
सुख दुःखयोश्च ग्रहणात् छिन्नस्यच विरोहणात्।
जीवं पश्यामि वृक्षाणामचैतन्यं न विद्यते ॥ १७ ॥

(शान्ति० अ० १८४)

पञ्चम अध्याय
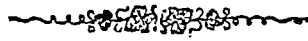
शिल्प वैभव तथा वाणिज्य व्यवसाय

महाभारत काल में भौतिक उन्नति की दृष्टि से भारत वर्ष संसार भर में सब से उन्नत देश था। भारत वर्ष का शिल्प तथा आन्तरिक और बाह्य व्यापार खूब बढ़ा चढ़ा था। उन दिनों भौतिक उन्नति के व्यापार, शिल्प, कृषि और गोरक्षा (पशु पालन) ये चार मुख्य साधन समझे जाते थे, इन का सम्मिलित नाम 'वार्ता' था। संस्कृत के प्राचीन साहित्य में वार्ता विद्या पर कोई एक ग्रन्थ नहीं मिलता है। हाँ; कृषि, व्यापार, समुद्र यात्रा आदि विषयों पर भिन्न २ तन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। पशु पालन पर हस्त्यायुर्वेद और नकुल कृत शालि होत्र आदि दो चार ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। वाणिज्य के लिये ब्राह्मण काल का मायावेद प्रसिद्ध है, इस के द्वारा तत्कालीन महाजनी के सम्बन्ध में बहुत सी बातें ज्ञात होती हैं। महाभारत द्वारा भी यद्यपि तत्कालीन वार्ता का पूर्ण ज्ञान उपलब्ध नहीं होता तथापि उसमें बहुत से स्थलों पर वार्ता की चर्चा अवश्य है। सभा पर्व में नारद ने युधिष्ठिर से जो प्रश्न किए हैं उन में इस सम्बन्ध के भी कुछ प्रश्न हैं—

"क्या तुमने हस्तिसूत्र, अश्वसूत्र और रथ सूत्रों का अध्ययन किया है ? क्या तुम धनुर्वेद और मन्त्र सूत्र के अनुसार अभ्यास करते हो ?"[1]

इस से प्रतीत होता है कि इन विषयों पर उस समय प्रभूत मात्रा में साहित्य उपलब्ध होता था जो कि आज कल प्राप्त नहीं होता।

व्यापार व्यवसाय को राज्य की सहायता— उस समय व्यापार और शिल्प के कार्यों की राज्य की ओर से भी सहायता की जाती थी। भिन्न २ व्यवसायों को भिन्न २ अनुपात में राज्य की ओर से सहायता और परितोषक आदि देकर उत्साहित किया जाता था। उपर्युक्त प्रकरण में ही नारद पूछते हैं—

"क्या तुम अपने सजातियों, गुरुओं, वृद्धों, व्यापारियों और आश्रित शिल्पियों की धन द्वारा सहायता करते हो ?

"क्या तुम्हारे कर संग्रह करने वाले अधिकारी धन लाभ के लिये आए विदेशी व्यापारियों से ठीक और उचित कर लेते हैं ? क्या तुम्हारे राष्ट्र के

---

१. कच्चित्सूत्राणि सर्वाणि गृह्णासि भरतर्षभ।
हस्ति सूत्राश्वसूत्राणि रथसूत्राणि वा विभो॥ १२०॥
कच्चिदभ्यस्यते सम्यक् गृहे ते भरतर्षभ।
धनुर्वेदस्य सूत्रं वै यन्त्र सूत्रञ्च नागरम्॥ १२१॥

व्यापारी बिना धोखेबाजी के अच्छा माल तैयार करते हैं ?

"क्या तुम राष्ट्र के सब शिल्पियों को चार चार मास बाद नियत किया हुआ धन और उपकरणादि देते हो ?

"क्या तुम्हारा कृषि विभाग और उद्यान विभाग ठीक २ चल रहा है ?

"क्या देश का व्यापार व्यवसाय तुम्हारी सहायता से सज्जनों के हाथ में ठीक चल रहा है ? राष्ट्र की उन्नति के लिये व्यापार व्यवसाय का उन्नत होना नितान्त आवश्यक है ।" [२]

पशु पालन— पशु पालन वार्ता का एक मुख्य भाग है । प्राचीन समय के वार्ता विद् (अर्थ शास्त्रज्ञ) पशु पालन को बहुत महत्ता देते थे । चल सम्पत्ति में पशु ही सब से मुख्य थे । पशुओं की चिकित्सा और शिक्षा के लिये राज्य की ओर से इस कार्य में निपुण मनुष्य नियुक्त किए जाते थे । महाभारत के समय युद्धों के लिये हाथी और घोड़ों को इतना निपुण कर दिया जाता था कि वे एक साथ हज़ारों की संख्या में युद्ध के लिये विधिपूर्वक सहायक हो सकें । गो पालन के लिये भी राज्य की ओर से यथेष्ठ प्रबन्ध किया जाता था । विराट पर्व में सहदेव अपना नाम तन्त्रपाल रख कर राजा विराट के पास जाकर कहता है—

"पांचों पाण्डवों में युधिष्ठिर सबसे बड़ा है । उसके प्रथम विभाग में सौ सौ गौवों के १८ हज़ार रेवड़ थे । दूसरे विभाग में १० हज़ार और तीसरे में २० हज़ार रेवड़ थे । मैं राजा युधिष्ठिर का 'गोसंख्य' (Registrar of the cattle records) था । मैं ने इन गौओं का पूरा हिसाब रक्खा हुवा था । मैं पशु पालन, पशु वृद्धि और पशु चिकित्सा के सब उपाय जानता हूँ । मैं अच्छे बैलों की पहिचान और लक्षण भी जानता हूं । मैं ऐसे बैलों को भी जानताहूँ जिन

---

२. कच्चित्त्वातीन गुरून् वृद्धान् वणिजः शिल्पिनः श्रितान् ।
अभीक्ष्णमनुगृह्णासि धनधान्येन दुर्गतान् ॥ ७१ ॥
कच्चिदभ्यागता दूराद् वणिजो लाभ कारणात् ।
यथोक्तमवहार्यन्ते शुल्कं शुल्कोपजीविभिः ॥ ११४ ॥
कच्चित्ते पुरुषाः राजन् पुरे राष्ट्रे च मानिताः ।
उपानयन्ति पण्यानि उपधाभिरवञ्चिताः ॥ ११५ ॥
द्रव्योपकरणं कच्चित् सर्वदा सर्व शिल्पिनाम् ।
चातुर्मास्यवरं सम्यङ् नियतं सम्प्रयच्छसि ॥ ११८ ॥
कच्चित्ते कृषितन्त्रेषु गोषु पुष्प फलेषु च ॥ ११७ ॥
कच्चित्स्वनुष्ठिता तात वार्त्ता ते साधुभिर्जनैः ।
वार्त्तायां संश्रितस्तात लोकोयं सुखमेधते ॥ ७९ ॥

के मूत्र को सूंघ कर ही वन्ध्या गौएं सन्तान उत्पन्न करने लायक बन जाती हैं।”[1]

इस पर विराट् ने उत्तर दिया- “मैं घोड़ों के स्वभाव और उन्हें सधाने के सम्पूर्ण उपाय जानता हूँ। दुष्ट घोड़ों को सधाने के उपाय और कमज़ोर घोड़ों को मज़बूत करने के आयुर्वेदीय उपाय जानता हूं। मेरा सिखाया हुआ घोड़ा कभी नहीं बिगड़ता। मेरे पास एक भी बिगड़ी हुई घोड़ी नहीं है। फिर घोड़े बिगड़ ही कैसे सकते है।”[2]

सूती और ऊनी वस्त्र— महाभारत के समय तक भारत का वस्त्र व्यवसाय बहुत उन्नत हो चुका था। यहाँ से बहुत महीन २ वस्त्र तैयार होकर विदेशों में भी जाया करते थे। यूनानी ऐतिहासिक हिराडोटस ने लिखा है कि भारतवर्ष में ऊन वृक्षों पर लगती है! इस समय भारत में रुई, ऊन, केले के पत्तों और नाना प्रकार के रेशम से कपड़े बना करते थे। सभा पर्व में महाराज युधिष्ठिर के लिये अन्य देशीय राजाओं द्वारा लाए गए उपहारों का वर्णन इस प्रकार है—

“कार्पासिक देश की जो सैंकड़ों दास दासियां उपहार लेकर आई थीं, वे सभा में प्रवेश ही न पा सकीं।”[3]

---

१. पञ्चानां पाण्डु पुत्राणां ज्येष्ठो भ्राता युधिष्ठिरः।
तस्याष्टशतसाहस्रा गवांवर्गाः शतंशतम् ॥ ९ ॥
तेषां गोसंख्य एवासं तन्त्रपालेति मां विदुः।
अपरे दशसाहस्राः द्विस्तावन्तास्तथापरे ॥ १० ॥
भूतं भव्यं भविष्यञ्च यच्च संख्यागतं गवाम्।
नमेऽस्त्यविदितं किञ्चित्समन्ताद्दशयोजनम् ॥ ११ ॥
क्षिप्रं च गावोबहुला भवन्ति न तासु रोगो भवतीह कश्चन।
तैस्तैरुपायै विदितं ममैतद् एतानि शिल्पानि मयि स्थितानि ॥ १३ ॥
ऋषभाश्चापि जानामि राजन् पूजित लक्षणान्।
येषां मूत्रमुपाघ्राय अपि वन्ध्या प्रसूयते ॥ १४ ॥ (विराट० अ० १०)

२. अश्वानां प्रकृतिं वेद्मि विनयं चापि सर्वशः।
दुष्टानां प्रतिपत्तिंच कृत्स्नंच चिकित्सितम् ॥ ७ ॥
न कातरं स्यान्मम जातुवाहनं नमेऽस्तिदुष्टा वड़वाः कुतो हयाः ॥ ८ ॥
(विराट० अ० १२)

३. एवं बलिं समादाय प्रवेशं लेभिरे न च।
शतंदासी सहस्राणां कार्पासिक निवासिनाम् ॥ ७ ॥ (सभा० ५१)

"चोल और पाण्डय देश के लोग उपहार में हीरे मोती और महीन वस्त्र लाए।"[1]

"सिंहलद्वीप से सैकड़ों शानदार गद्दे आए थे।"[2]

"दक्षिण देश का राजा अपने साथ पेटियां, मालाएं और पगड़ियां लाया।"[3]

"उत्तर देश वासियों ने अपनी भेंट में दिव्यवस्त्र, गहनें दुशाले और मृगचर्म दिये।"[4]

"कम्भोज देश के राजा ने चूहे और बिल्ली के बालों से बने और सोने की पच्चीकारी से युक्त परदे भेंट किए।"[5]

"हिमालय वासियों ने हिमालय के पहाड़ी बकरों की ऊन के वस्त्र और सुन्दर सूत तथा रेशम के वस्त्र उपहार में दिए।"[6]

"पूर्व देश के राजा अपने साथ कीमती आसन, सवारियां, सेजें, कवच और शस्त्र अस्त्र लाए।"[7]

इस के साथ ही महाभारत में जगह जगह आए हुए 'सूक्ष्म कम्बल-वासिनो' और 'पीत कौशेय वासिनो' आदि विशेषण उस समय के उन्नत शिल्प वैभव का प्रमाण दे रहे हैं।

धातु शिल्प

प्राचीनकाल में धातु शिल्प पर्याप्त उन्नत था। सोना, चांदी, टीन और सीसा इन धातुओं की अनेक सुन्दर और उपयोगी वस्तुएं तैयार की जाती थी।[8] आज कल की तरह लोहे का उपयोग उस समय भी अन्य सब धातुओं

---

१. मणि रत्नानि भास्वन्ति काञ्चनं सूक्ष्म वस्त्रकम् ॥ ३५ ॥ (सभा० ५२)

२. शतशश्च कुथास्तत्र सिंहलाः समुपाहरन् ॥ ३७ ॥ (सभा० अ० ५२)

३. ततो दिव्यानि वस्त्राणि दिव्यान्याभरणानि च ।
क्षौमाजिनानि दिव्यानि तस्य ते प्रददुः करम् ॥ १६ ॥

४. दाक्षिणात्यः संनहने स्रगुष्णीषे च मागधः ॥ ७ ॥ (सभा०, अ० ५३)

५. और्णान् बैलान् वार्षदंशान् जातरूप परिष्कृतान् ।
प्रावाराजिन मुख्यांश्च कम्बोजः प्रददौ वहून् ॥ ३ ॥ (सभा० ५१)

६. ऊर्णाञ्च राङ्कवञ्चैव कीटजं पट्टजं तथा ।
कुटीकृतं तथैवात्र कमलाभं सहस्रशः ॥ २६ ॥
सूक्ष्मं वस्त्रं सकार्पासं आविकं मृदु चाजिनम् ॥ २७ ॥ सभा० अ० ५१ ॥

७. आसनानि विचित्राणि यानानि शयनानि च ॥ ३१ ॥ (सभा०, ५१)

८. सुवर्णस्य मलं रूप्यं रूप्यस्यापि मलं त्रपु ।
ज्ञेयं त्रपुमलं सीसं सीसस्यापि मलं मलम् ॥ ८१ (उद्योग० ३८)

की अपेक्षा अधिक किया जाता था। तीर के फल, तलवार, शतघ्नि आदि शस्त्रास्त्र लोहे से ही बनाए जाते थे।

सोने का उपयोग— उस समय सजावट के लिये सोने और चांदी का बहुत प्रयोग किया जाता था। महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में आए हुए राजा लोग निम्नलिखित सोने का सामान उपहार रूप में लाए थे—

"राजा लोग बहुत सा सोना चांदी देकर सभा मण्डप में प्रवेश पासके।" [1]

"पूर्व देश के राजा मणि और सोने आदि की चित्रकारी से युक्त हाथी दांत के कवच, नाना प्रकार के शस्त्र और सोने के पत्रों से मढ़े रथ देकर अन्दर प्रविष्ट हो सके।" [2]

"खश और दीर्घवेणु आदि देशों के राजा 'पिपीलिक' नामक सोना लाए। इस सोने को चींटियां खोदती हैं।" [3]

इस पीपीलिक सोने का वर्णन मैगस्थनीज़ के यात्रा वृत्तान्त में भी उपलब्ध होता है।

"किरात लोगों ने रत्नों और सोने के ढेर महाराज युधिष्ठिर को दिए।" [4]

"अङ्ग वङ्गादि देशों के सब राजाओं ने एक २ हजार हाथी दिए, राजा विराट् ने दो हज़ार हाथी तथा सुराष्ट्र के राजा ने २६ हाथी और २००० घोड़े भेंट किए। इन सब हाथियों के हौदों पर तथा घोड़ों की ज़ीनों पर सोने चांदी का काम किया हुवा था।" [5]

---

१. प्रमाणराग सम्पन्नान् वहुनीर समुद्भवान्।
वल्यर्थं ददतस्तस्मै हिरण्यं रजतं वहु ॥ ११ ॥ (सभा० ५१)
दत्वापयैषं प्राप्तास्ते युधिष्ठिर निवेशने ॥ ३० ॥ (सभा०-५१)

२. मणि काञ्चन चित्राणि गजदन्त मयानि च।
कवचानि विचित्राणि शस्त्राणि विविधानिच ॥ ३३ ॥
रथाश्च विविधाकारान् जातरूप परिष्कृतान् ॥ ३३ ॥ (महा० सभा० ५१)

३. तद्वैपिपीलिकं नाम उधृतं यत्पिपीलकैः।
जातरूपं द्रोणमेयं महार्षुः पञ्जशो नृपाः ॥ ४ ॥ सभा० ५२०)

४. चर्मरत्न सुवर्णानां गन्धानांच राशयः ॥ १० ॥

५. दत्वैकैकोदश शततान्कुञ्जरान् कवचावृतान् ॥ २१ ॥ (सभा० ५२)
विराटेन तु मत्स्येन वल्यर्थं हेममालिनाम्।
कुञ्जराणां सहस्रे द्वे मत्तानां समुपाहृते ॥ २६ ॥
याशुराष्ट्राद्वसुदानो राजाषड्विंशतिं गजान्।
अश्वानां च सहस्रे द्वे राजन् काञ्चन मालिनाम् ॥ २७ ॥

"युधिष्ठिर के दान से प्रतिदिन ८८ हज़ार गृहस्थी स्नातक और १० हज़ार यती सोने चाँदी के बर्तनों में भोजन करते थे।"[1]

"मत्स्य देश के राजा ने सोने से मढ़े हुए जुआ खेलने के पांसे महाराज युधिष्ठिर को भेंट किये।"[2]

मणि— सोना चाँदी के अतिरिक्त मोती और मणियां भी उस समय प्रभूत मात्रा में प्रयोग में लाई जाती थीं। समुद्रों से मोती निकाले जाते थे। मणियों में वैदूर्य मणि विशेष कीमती समझी जाती थी। उपर्युक्त प्रकरण में ही आता है-"लंका के राजाने समुद्र के सारभूत वैदूर्य मणिके ढेर भेंट में दिये।"[3]

पाण्डु के साथ माद्री का विवाह होने पर भीष्म ने सच्चा और नकली सोना, रत्न, आभूषण, मोती आदि उपहार रूप में दिए थे।

स्वर्ण मुद्रा— आदि पर्व में वर्णन आता है कि— "पाण्डु के वन जाने पर उसकी दोनों स्त्रियों ने अपने सिर में लगाने की मणि, सोने के सिक्के, बहुमूल्य आभूषण आदि वस्तुएं ब्राह्मणों को दान में दीं।"[4]

सोने की कुर्सियां— "श्री कृष्ण जब पाण्डवों के समीप आए तब पाण्डवों ने उनका यथा योग्य सत्कार किया। उन्हें सोने के एक बहुमूल्य आसन पर बैठाया गया। उन के बैठ जाने पर सब पाण्डव भी अपने२ आसनों पर बैठ गये।"[5]

प्रेमोपहार— "श्री कृष्ण ने पाण्डवों के विवाह पर उन्हें वैदूर्य मणि से चित्रित सोने के आभूषण, बहुमूल्य वस्त्र, विविध प्रकार के शाल दुशाले,

---

१. अष्टाशीति सहस्राणि स्नातका गृहमेधिनः।
दशान्यानि सहस्राणां यतीनामूर्ध्व रेतसाम् ॥ ४७ ॥
भुञ्जते रूक्मपात्रीभिः युधिष्ठिर निवेशने ॥ ४८ ॥ (सभा० ५२ ॥)

२. मत्स्यः स्वक्षान् एकलव्यःहेमबद्धानुपानहौ ॥ ८ ॥ (सभा० ५२)

३. समुद्रसारं वैदूर्यं मुक्तासंघास्तथैव च ॥ ३६ ॥ (सभा० ५२)

४. ततश्चूडामणिं निष्कमङ्गदे कुण्डलानिच।
वासांसि महार्हाणि स्त्रीणामाभरणानि च
प्रदाय सर्वं विप्रेभ्यः पाण्डुः पुनरभाषतः ॥ ३८ ॥ (आदि० अ० ११९)

५. आसने काञ्चने शुद्धे निषसाद महामनाः।
अनुज्ञातास्तु ते तेन कृष्णेनामित तेजसा।
आसनेषु महार्हेषु निषेदुर्द्विपदां वराः ॥ ३ ॥

महीन खालें तथा वस्त्र, कुर्सियें, रथ, सोने चाँदी के वर्तन, नौजवान सुन्दर दासियें तथा लाखों सिक्के उपहार में दिये ।" १

गृहनिर्माण विद्या — भवन निर्माण विद्या का प्राचीन नाम वास्तु विद्या है । प्राचीन काल का सब से बड़ा शिल्पी और इञ्जनीयर विश्वकर्मा हुवा है । भारत के शिल्पी आज तक अपने को उस का वंशज कहते हुए अभिमान अनुभव करते हैं । महाभारत के समय तक गृह निर्माण विद्या बहुत उन्नत अवस्था तक पहुंच चुकी थी । खाण्डव वन के दाह के अनन्तर महाराज युधिष्ठिर ने जो किला बनवाया था उस के भग्नावशेष आज भी उस की मज़बूती का परिचय दे रहे हैं । इसी किले में मय नामक असुर जाति के एक व्यक्ति ने जिस गौरव पूर्ण राज सभा का निर्माण किया था उस का वर्णन ऋषिवर व्यास के शब्दों में इस प्रकार है—

"उस राज सभा के वृक्षों को सोने द्वारा सजाया गया था । उस की लम्बाई १० हज़ार हाथ थी । उस के भवन अग्नि, चांद और सूर्य के समान चमकते थे । उस की ऊंची अट्टालिकाओं ने बादल की तरह आकाश को घेर रक्खा था । उस में लगाया हुवा सम्पूर्ण सामान बहुत बढ़िया था, उस के कोट में सुन्दर पत्थर लगे थे । विश्वकर्मा ने उस के लिये नाना प्रकार के अमूल्य चित्र तैयार किए । इस सभा-भवन के मुकाबले का संसार भर में एक भी भवन नहीं था । उस की रक्षा के लिये बड़े बड़े बलवान योद्धा नियुक्त किए गए । इस के आंगन में एक तालाब बनाया गया इस में नकली बेलें बनाई गई; इन बेलों के पत्ते वैडूर्य मणि से बनाए गए थे, इन की तन्तुएँ अन्य मणियों से और फूल सोने से बनाए गए । इस तालाब में सुगन्धित पानी भरा रहता था । इस तालाब में नकली मछलियाँ और कछुए भी थे । इस तालाब की सीढ़ियाँ

---

१. ततस्तु कृतदारेभ्यः पाण्डुभ्यः प्राहिणोद्धरिः ।
वैडूर्य मणि चित्राणि हैमान्याभरणानि च ॥ १३ ॥
वासांसिच महार्हाणि नानादेश्यानि माधवः ।
कम्बलाजिन रत्नानि स्पर्शवन्तिशुभानि च ॥ १४ ॥
शयनासन यानानि विविधानि महान्ति च ।
वैडूर्यमणि चित्राणि शतशोभा जनानिच ॥ १५ ॥
रूप यौवन दाक्षिण्यैरुपेताश्च स्वलङ्कृताः ।
प्रेष्यासम्प्रददौ कृष्णो नानादेश्याः सहस्रशः ॥ १६ ॥
रथाँश्च दान्तान् सौवर्णान् शुभ्रैः पटैरलंकृतान् ।
कोटिशश्च सुवर्णञ्च तेषामकृतकं यथा ॥१७ ॥
प्रीतीकृतमने मात्मा प्राहिणोन्मधुसूदनः ॥ १९ ॥ (आदि० अ० २०१)

बिल्लौरी पत्थर की थी। सब से विचित्र बात यह थी कि यद्यपि तालाब में लबालब पानी भरा हुवा था तथापि यह एक जल रहित सुन्दर वाटिका के समान प्रतीत होता था। इस तालाब के चारों ओर सुन्दर चबूतरे बने हुए थे। इस सुन्दर तालाब को देख कर सभी राजा लोग धोखा खा जाते थे। इस विशाल सभा भवन के चारों ओर सुगन्धित फूलों से लदे हुए सुन्दर वृक्ष थे।

इस सभाभवन को १४ मासों में तैयार कर के इस की सूचना मय ने महाराज युधिष्ठिर को दी॥ [1]

---

१. सभा च सा महाराज शातकुम्भ मय द्रुमा ॥ २२ ॥
दश किष्कुसहस्राणि समन्तादायता भवत् ।
यथा वन्हेर्यथार्कस्य सोमस्य च यथा सभा ॥ २३ ॥
भ्राजमाना तथात्यर्थं दधार परमं वपुः ।
प्रतिघ्नतीव प्रभया प्रभामर्कस्य भास्वराम् ॥ २४ ॥
प्रभवौ ज्वलमानेव दिव्यादिव्येन वर्चसा ।
नवमेघ प्रतीकाशा दिनमावृत्य विष्ठिता ॥ २५ ॥
आयता विपुला रम्या विपाप्मा विगतक्लमा ।
उत्तम द्रव्यसम्पन्ना रत्नप्राकार मालिनी ॥ २६ ॥
वहु चित्रा वहुधना निर्मिता विश्वकर्मणा ।
नदाशार्ही सुधर्मा वा ब्रह्मणोवाथ तादृशी ॥ २७ ॥
सभा रूपेण सम्पन्ना यांचक्रे मतिमान् मयः ।
तां स्म तत्र मयेनोक्ताः रक्षन्ति च वहन्ति च ॥ २८ ॥
सभामष्टौ सहस्राणि किङ्करा नामराक्षसाः ।
अन्तरिक्षचराः घोरा महाकाया महावला ॥ २९ ॥
रक्ताक्षा पिङ्गलाक्षाश्च शुक्तिकर्णाः प्रहारिणः ।
तस्यां सभायां नलिनीं चकाराप्रतिमां मयः ॥ ३० ॥
वैदूर्य पत्र विततां मणिनालोज्ज्वलाम्बुजाम् ।
हैम सौगन्धिकवतीं नानाद्विज गणाकुताम् ॥ ३१ ॥
पुष्पतैः पंकजैश्चित्रां कूर्मैर्मत्स्यैश्च काञ्चनैः ।
चित्रस्फटिक सोपानां निष्पङ्क सलिलां शुभाम् ॥ ३२ ॥
मन्दानिलसमुद्धूतां मुक्ता विन्दुभिराचिताम् ।
महामणि शिलापट्ट वद्धपर्यन्त वेदिकाम् ॥ ३३॥
मणिरत्नचितां तान्तु केचिदभ्येत्य पार्थिवाः ।
दृष्टापि नाभ्यजानन्त तेऽज्ञानात्प्रपतन्त्युत ॥ ३४ ॥
यां सभामभितो नित्यं पुष्पवन्तोमहाद्रुमाः ।
आसन्नाना विधा नीला शीतच्छाया मनोरमाः ॥ ३५ ॥
ईदृशीं तां सभां कृत्वा मासैः परिचतुर्दशैः ।
निष्ठितां धर्मराजाय मयो राजन् न्यवेदयत् ॥ ३८ ॥ (सभा० अ० ३)

इसी सभा भवन में विश्वकर्मा ने एक विचित्र चमत्कार दिखाया था। उस ने स्फटिकों द्वारा एक ऐसा फ़र्श बनाया था जो पानी से भरा हुआ तालाब मालूम होता था। और ऐसे तालाब बनाए थे जो जल पूर्ण होने पर भी सूखे फर्श के समान जान पड़ते थे। एक ऐसे ही तालाव में दुर्योधन गिर पड़ा था, एक सूखे फर्श पर वह कपड़े उठा कर चला था।"[1]

इसी प्रकार ऐसे दरवाजे बनवाए गए थे जो खुले होने पर भी दीवार के समान प्रतीत होते थे, दूसरी ओर दीवारों के कुछ भाग इस प्रकार बनाए गए थे जो खुले हुए फाटक के समान जान पड़ते थे। दुर्योधन ने इस से भी धोखा खाया था। महाभारत के समय ये, सब शिल्प के अद्भुद चमत्कार उपलब्ध होते हैं।"[2]

कतिपय अन्य शिल्प

कृत्रिम पशु—महाभारत के समय और उस से पूर्व भी पशुओं के चर्म द्वारा उनका जीता जागता हुवा सा रूप बना कर बड़े बड़े भवनों की सजावट की जाती थी। मनु ने भी 'काष्ठमयो हस्ति' और 'चर्ममयो मृगः' का जिकर किया है। सभापर्व एक स्थान पर पाण्डवों की उपमा कृत्रिम चर्ममय मृग से दी है।"[3]

गुप्त मार्ग—उन दिनों युद्ध के समय सैन्य शिवरों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिये गुप्त मार्ग भी हुवा करते थे। वन पर्व में शाल्वराज के सैन्य शिवरों में इस प्रकार के गुप्त मार्गों का वर्णन उपलब्ध होता है।"[4]

---

१. स्फटिकं स्थलमासाद्य जलमित्यभिशंकया ॥ ३ ॥
स्व वस्त्रोत्कर्षणं राजा कृतवान् बुद्धिमोहितः ॥ ४ ॥
ततः स्फाटिकतोयां वै स्फाटिकाम्बुज शोभिताम् ।
वापीं मत्वा स्थलमिव सवासाः प्रापतज्जले ॥ ६ ॥
आकारं रक्षमाणस्तु न स तान् समुदैक्षत ।
पुनर्वसनमुत्क्षिप्य प्रतरिष्यन्निव स्थलम् ॥ १० ॥

२. द्वारन्तु पिहिताकारं स्फाटिकं प्रेक्ष्य भूमिपः ।
प्रविशन्नाहतो मूर्ध्नि व्याघूर्णित इवस्थितः ॥ ११ ॥
तादृशं चापरं द्वारं स्फाटिकोरु कपाटकम् ।
विघट्टयन् कराभ्यां तु निष्क्रम्याग्रे पपातह ॥ १२ ॥
द्वारन्तु विततकारं समापेदे पुनश्च सः ।
तद्वृत्तं चेति मन्वानो द्वारस्थानादुपारमत् ॥ १४ ॥ (सभा० अ० ४७)

३. यथाफला षण्डतिला यथा चर्ममया मृगाः ।
तथैव पाण्डवाः सर्वे यथा काक यवा इति ॥ १३ ॥ (सभा० अ० ७६)

४. अनीकानां विभागेन पन्थानः संवृताभवन् ॥ ४ ॥ (वन० अ० १६)

छत्र—भारत में राजाओं पर छत्र रखने का रिवाज बहुत पुराना है। राजा पर प्रति समय राजछत्र अवश्य रहता था। संस्कृत में छत्र का दूसरा नाम आतपत्र है जिसका अर्थ धूप से रक्षा करने वाला है। इस से प्रतीत होता है कि उन दिनों धूप से रक्षा करने के लिये साधारणतया छाते का प्रयोग होता था। भीष्मपर्व में युधिष्ठिर के छाते का वर्णन आता है—

"हाथी दांत की मूंठ वाला वह सफेद छाता बहुत ही सुन्दर प्रतीत होता था।"[१]

पगड़ी और फैशन—भीष्म पर्व में योद्धाओं की पगड़ियों का वर्णन आता है। इसी प्रकरण में सैनिकों ने जिन फैशनों से दाढ़ी मूंछ कटाए हुए थे उनका भी वर्णन है।"[२]

युद्ध के दिनों में राजा युधिष्ठिर के कैम्प में सोने के लैम्पों में सुगन्धित तेल जला कर प्रकाश किया जाता था। कैम्प के चारों ओर सुनहरी पगड़ियां पहिन कर शरीर रक्षक लोग पहरा देते थे।"[३]

कपड़े रंगना—द्रोण पर्व में भीम के कवच का वर्णन इस प्रकार है—वह लोहे का बना हुवा था। सोने के तारों से उस पर चित्रकारी की हुई थी। पीला, लाल, श्वेत और काला इन चार रंगों से रंगे हुए कपड़े द्वारा वह ढका गया था।"[४]

नगर के कोटों पर शस्त्र— प्रत्येक नगर की रक्षा के लिए उस के चारों ओर एक सुदृढ़ कोट बनाया जाता था। इन कोटों पर यथेष्ट परिमाण में बड़ी बड़ी मशीनें और तोपें रक्खी जाती थीं। शान्ति पर्व में भीष्म कहते

---

१. समुच्छ्रितं दन्तशलाकमस्य सुपाण्डुरं छत्रमतीव भाति ॥ ६ ॥ (भीष्म० अ० २२)

२. उष्णीषैश्च तथा चित्रैः ॥ ७३ ॥
छत्रैस्तथापविद्धैश्च ॥ ७५ ॥

पद्मेन्दुद्युतिभिश्चैव वदनैश्चारु कुण्डलैः ।
क्लृप्तश्मश्रुभिरत्यर्थं वीराणां समलंकृतैः ॥ ७६ ॥ (भीष्म० अ० ७)

३. प्रदीपैः काञ्चनैस्तत्र गन्धतैलाव सेचितैः ।
परिवव्रुर्महात्मानः प्रज्वलद्भिः समन्ततः ॥ ३१ ॥
काञ्चनोष्णीषिणस्तत्र वेत्रझर्झर पाणयः ।
प्रोत्सारयन्तः शनकैस्तं जनं सर्वतोदिशम् ॥ ३३ ॥ (भीष्म० अ० ९८)

४. तस्य कार्ष्णायसं वर्म हेम चित्रं महर्द्धिमत् ।
पीतरक्तासित सितै वर्मवासोभिश्च सुवेष्टितः ॥ १२ ॥ (द्रोण० अ० १२७)

हैं—"नगर के फाटकों पर बड़ी बड़ी मशीनें रखनी चाहियें। कोट पर जगह जगह शतघ्नियें (तोपें) पड़ी रहनी चाहियें।"[1]

मार्ग दीप— मार्गों पर और सुन्दर भवनों के आंगन में प्रकाश करने के लिये आज कल की तरह थम्बे लगा कर उन पर लैम्प भी जलाये जाते थे। अश्वमेध पर्व में बलराम द्वारा बसाये गये रैवतक पर्वत का वर्णन आता है। इस के घर और बाग बहुत सुन्दर थे। मार्गों पर बहुत ही मनोहारी स्तम्भ दीपों द्वारा प्रकाश किया जाता था। इन लैम्पों की बदौलत यहां २४ घण्टे दिन ही बना रहता था।[2]

विदेशों से पशु— युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में बहुत से विदेशी राजा लोग अपने साथ अच्छे अच्छे पशु भी उपहार में देने के लिये लाये थे। कम्भोज का राजा दो बहुत ही दुर्लभ जातियों के ३०० घोड़े तथा ३०० ऊंट अपने साथ लाया था। मरुकच्छ से १० हज़ार दासियां भेंट में मिलीं। आभीर देश वाले गाय, बकरी, भेड़, ऊंट और गधे अपने साथ लाये। चीन का राजा वायुवेग से दौड़ने वाले घोड़े अपने साथ लाया। इसी प्रकार इन उपयोगी पालतू पशुओं के अतिरिक्त बहुत से राजा लोग उपहार में देने के लिये नाना प्रकार के मृग और पक्षी भी लाये थे। इन भेटों से ही महाराज युधिष्ठिर को हज़ारों बहुत ही बढ़िया हाथी और घोड़े प्राप्त हो गये।[3]

इन सब निदर्शनों द्वारा महाभारत के समय भौतिक वैभव तथा व्यापार व्यवसाय आदि बहुत उन्नत अवस्था में प्रतीत होते हैं।

---

१. द्वारेषु च गुरूण्येव यन्त्राणि स्थापयेत्सदा।
आरोपयेच्छतघ्नीश्च स्वाधीनानि च कारयेत् ॥ ४५ ॥
(शान्ति० ६१)

२. दीपवृक्षैश्च सौवर्णै रभीक्ष्णमुपशोभितः।
गुहानिर्झर देशेषु दिवाभूतो बभूवहै ॥ ७ ॥ अश्वमेध०, ५८)

३. सभापर्व अ० ५१, ५२, ५३।

द्वितीय भाग

राजनीतिक इतिहास

[महाभारतकाल से प्राग्बौद्धकाल तक]

※ प्रथम अध्याय ※

महाभारत काल के विविध राज्य.

पूर्व वचन— प्राग्बौद्ध काल का राजनीतिक इतिहास लिख सकना सरल कार्य नहीं है। महाभारत काल के बाद भारत में कौन सी राजनीतिक घटनायें हुईं; इस का वृत्तान्त प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं होता। पुराणों में केवल राजवंशों की वंशावलियाँ मात्र ही दी गई हैं। ये भी अपर्याप्त और अपूर्ण हैं। विविध पुराणों की वंशावलियाँ परस्पर विरुद्ध हैं, उन में कई स्थानों पर गहरे मत-भेद हैं। काव्य, नाटक आदि साहित्यिक ग्रंथ भी इस काल के सम्बन्ध में हमारी कोई सहायता नहीं करते। इस काल के ग्रीक व चीनी विदेशी यात्रियों के कोई वृत्तान्त उपलब्ध नहीं होते। पुरातत्त्व विभाग की शोध ने भी इस काल पर कोई प्रकाश नहीं डाला है। इस काल के कोई शिलालेख, ताम्रपत्र, सिक्के आदि अभी तक प्राप्त नहीं हुवे हैं। इस अवस्था में इस अन्धकारमय काल का राजनीतिक इतिहास लिखना असम्भव प्राय ही है। विदेशों व भारतीय ऐतिहासिकों ने इस काल के सम्बन्ध में अभी तक कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया है। श्रीयुत पार्जीटर ने यद्यपि प्राग्–महाभारत काल पर अपनी प्रसिद्ध पुस्तक (Ancient Histroical Tradition) में पर्याप्त प्रकाश डाला है, पर महाभारत काल के बाद के विषय में उन्होंने विविध वंशावलियों को संगृहीत मात्र करना ही पर्याप्त समझा है। मिश्रबन्धुओंने महाभारत से पहले इतिहास को पर्याप्त सफलता के साथ क्रमबद्ध किया है, पर बाद के हजारों वर्षों को वे भी बिना कुछ लिखे छोड़ गये हैं। श्रीयुत राय चौधरी ने इस काल पर कुछ प्रयत्न अवश्य किया है, पर उन्होंने अपनी पुस्तक Political History of Anceint India में इस काल के लिये वैदिक और ब्राह्मण साहित्य को अपनी अन्वेषणा का आधार माना है। हम अपनी पुस्तक के पहले खण्ड में इस साहित्य की प्राचीनता को अच्छी प्रकार सिद्ध कर चुके हैं, अतः महाभारत के बाद के काल के लिये इसका प्रयोग किसी अवस्था में नहीं किया जा सकता। श्रीयुत दलाल ने प्राचीन राजनीतिक इतिहास को लिखने के लिये बहुत उत्तम प्रयत्न किया है। पर इस काल के सम्बन्ध में वे आधे दर्जन से

अधिक पृष्ठ न लिख सके। इस से स्पष्ट है कि इस काल का राजनीतिक इतिहास सर्वथा अन्धकारमय है। फिर भी प्राचीन साहित्य का अनुशीलन करने पर इस काल के राजनीतिक इतिहास के सम्बन्ध में जो थोड़ी बहुत बातें ज्ञात हो सकी हैं, उन्हें क्रमिक रूप से लिखने का हम यथाशक्ति प्रयत्न करेंगे। यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि यह वृत्तान्त अपूर्ण तथा अपर्याप्त होगा। हम बिखरी हुई कुछ राजनीतिक घटनाओं को संगृहीत मात्र कर सकेंगे, इस से अधिक कर सकना वर्तमान समय में सम्भव नहीं प्रतीत होता।

महाभारत काल के विविध राज्य.

महाभारत युद्ध के समय सम्पूर्ण भारतवर्ष एक राज्य के आधीन था। उस समय यह देश अनेक छोटे बड़े राज्यों में विभक्त था। महाभारतयुद्ध में पाण्डवों और कौरवों का पक्ष लेकर जो विविध राजा सम्मिलित हुवे थे, उन से इन राज्यों का अच्छी तरह अनुशीलन किया जा सकता है। महाभारत युद्ध में पाण्डवों का पक्ष लेकर निम्नलिखित राज्य सम्मिलित हुवे थे—

(१) मध्यदेश से—

१. पाञ्चाल— इस देश का का राजा द्रुपद था। यह पाँडवों का श्वसुर था। पाञ्चालराज द्रुपद अपने देश के विविध सरदारों, उपराजाओं तथा अपने १० लड़कों सहित पाँडवों की सहायता के लिये आया था। पाञ्चाल सेना का सेनापति धृष्टद्युम्न था। पाँडवों की सम्पूर्ण सेना का मुख्य सेनापति धृष्टद्युम्न ही था। पाञ्चाल सेना में उत्तरीय प्रदेशों में रहने वाली कुछ राक्षस जातियाँ भी शामिल थीं।

२. मत्स्य— इस देश का राजा विराट् था। विराट् की लड़की उत्तरा का अर्जुन के लड़के अभिमन्यु के साथ विवाह हुवा था। पहले गौवों के लिये हुवे युद्ध में पाँडव लोग मत्स्य-राज की सहायता भी कर चुके थे। मत्स्य-राज अपनी सेना में अरावली पर्वतमाला में निवास करने वाली कुछ स्वतन्त्र जातियाँ भी लाया था।

३. चेदी— इस का राजा धृष्टकेतु था।
४. कारूष
५. दशार्ण
६. काशी— इस का राजा अभिभू था।
७. पूर्वीय कौशल

८. पश्चिमीय मगध— इसका राजा सहदेव था। जरासन्ध की मृत्यु के बाद मगध का राज्य अनेक भागों में विभक्त हो गया था। पश्चिमीय मगध पर सहदेव का राज्य था। वह अपनी सेना में विन्ध्याचल पर्वतों में निवास करने वाली कुछ जंगली जातियाँ भी लाया था।

(२) पश्चिम से—

पाँडवों की सहायता के लिये पश्चिमीय भारत से यादव लोग कृष्ण के नेतृत्व में सम्मिलित हुवे थे। यादव लोग गुजरात तथा उसके पूर्ववर्त्ती प्रदेश में रहते थे। इन के साथ ही भोज, अन्धक, वृष्णि, सात्वत, माधव, दशार्ह, आहुक, कुकुर आदि अनेक जातियाँ भी विद्यमान थीं। इन में प्रजातन्त्रराज्य स्थापित था। सारी जाति अपना शासन स्वयं करती थीं। ऐसे राज्य को 'गण-राज्य' कहते थे। महाभारत युद्ध प्रारम्भ होने पर ये गण राज्य एक नीति का निर्धारण न कर सके। कृष्ण की सहानुभूति पाँडवों के साथ थी। इसी तरह से अन्य भी अनेक प्रमुख पुरुष पाँडवों का पक्ष लेना चाहते थे। पर इन गण-राज्यों ने कौरवों का पक्ष लेना निश्चित किया। ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारत युद्ध के प्रश्न पर ये गण-राज्य विभक्त होगये थे। कृष्ण ने, जो कि यादवों का नेता था, पाँडवों का पक्ष लिया था, यद्यपि यादवों की सेना कौरवों के साथ थी। इसी तरह सात्वतों का मुखिया 'युयुधान' सात्यकि एक अक्षौहिणी सेना लेकर पाँडवों को सहायता के लिये आया था।

(३) उत्तर-पश्चिम से—

१. पांच कैकय राजकुमार उत्तर पश्चिम से पाण्डवों की सहायता के लिये आये थे। वैसे केकयों ने कौरवों का साथ दिया था, परन्तु राजघरानों के आन्तरिक झगड़ों के कारण पांच राजकुमार पाण्डवों के पक्ष में सम्मिलित हुवे थे।

२. अभिसार—इस देश का राजा चित्रसेन था।

(४) दक्षिण से—

१. पाण्ड्य देश— यहां का राजा 'सारङ्गध्वज' था। यह द्रविड देश से भी बहुत सी सेनायें लाया था।

२. चोल

३. केरल
४. काञ्ची

महाभारत युद्ध में कौरवों का पक्ष लेकर सम्मिलित होने वाले राज्यों के नाम निम्नलिखित हैं—

(१) पूर्व से—

१. पूर्वीय मगध
२. विदेह
३. प्राग्ज्योतिष या आसाम—यहां का राजा भगदत्त था। इसकी सेना में चीनी लोग भी शामिल थे।
४. अङ्ग—इस का राजा कर्ण था।
५. वङ्ग—सम्भवतः यह देश अङ्ग राज कर्ण के आधीन था।
६. कलिंग—इस का राजा श्रुतायुध था।
७. पुण्ड्र
८. उत्कल
९. मेकल
१०. आन्ध्र

(२) मध्यदेश से—

१. शूरसेन—प्राचीन काल में मथुरा के समीप यह शक्तिशाली राज्य था।
२. वत्स
३. कोशल—इस देश के राजा का नाम बृहद्बल था।

(३) उत्तर-पश्चिम से—

१. सिन्धु और सौवीर—इन का राजा जयद्रथ था। यह बड़ा शक्तिशाली राजा था।
२. पञ्चनद
३. गान्धार—इस देश का राजा शकुनि था।
४. त्रिगर्त्त—यहां का राजा सुशर्मा था।
५. मद्र—यहां का राजा शल्य था।
६. काम्बोज—यहां का राजा सुदक्षिण था।
७. कैकय देश
८. वाह्लीक

९. अम्बष्ठ—यहां का राजा श्रुतायुप था।

१०. शिवि

(४) उत्तर से—

कौरवों की सहायता करने के लिए उत्तर से बहुत सी पार्वत्य जातियां आई थीं। ये हिमालय की पर्वत मालाओं में निवास करती थीं। खश, किरात, पुलिन्द, हंसपाद आदि इन में मुख्य हैं।

(५) मध्यभारत से—

१. यादव— इन का नेता कृतवर्मा था। ये वर्तमान बड़ौदा के दक्षिण और दक्षिण पूर्व में निवास करते थे।

२. अवन्ति-इस प्रदेश के विन्द और अनुविन्द नाम के दो राजा थे। यह राज्य बहुत शक्ति शाली था। इस की दो अक्षोक्षिणी सेना कौरवों की सहायता के लिये आई थीं।

३. माहिष्मती या माहिष्मक-इस का राजा यल था।

४. विदर्भ

५. निषध

६. कुन्तल

(६) पश्चिम से—

१. शाल्व- इस का राजा उग्रकर्मा था।

२. मालव- यह एक गण राज्य था। यह प्रदेश पञ्जाब में था, वर्तमान मालवा में नहीं।

३. क्षुद्रक

(७) दक्षिण से—

१. आन्ध्र या आन्ध्रक

२. कुकुर

३. अन्धक

इनके सिवाय कौरवों का पक्ष लेकर अश्वातक, चिच्छिल, चूलिक, रेचक, बिकुञ आदि अन्य भी बहुत सी जातियां व छोटे छोटे राज्य सम्मिलित हुवे थे।

ऊपर दी गई सूची से यह सरलता के साथ जाना जा सकता है, कि महाभारत काल में भारत वर्ष किन विविध राज्यों में विभक्त था। निःसन्देह इन में से कई राज्य आकार तथा महत्ता की दृष्टि से बहुत छोटे थे, पर उनकी पृथक् सत्ता में कोई सन्देह नहीं है। इन विविध राज्यों में शासन पद्धति भी भिन्न थी। कुछ राज्य राजतन्त्र थे, तो कइयों में प्रजातन्त्र राज्य स्थापित हुवा हुवा था।

अन्धक-वृष्णि संघ—महाभारत काल के विविध राज्यों में अनेक विध शासन पद्धतियाँ प्रचलित थी। इन में अन्धक वृष्णियों के राज्य (संघराज्य) में प्रजातन्त्र शासन विद्यमान था। महाभारत का निम्नलिखित संदर्भ अन्धक वृष्णि संघ पर विशेष रूप से प्रकाश डालता है—

"भीष्म ने कहा-इस सम्बन्ध में यह प्राचीन इतिहास उद्धृत करने योग्य है। इस में वासुदेव और महर्षि नारद के परस्पर संवाद को उल्लिखित किया गया है। वासुदेव ने कहा—राज्य के साथ सम्बन्ध रखने वाले महत्व पूर्ण विषयों को ऐसे आदमी से नहीं कहा जा सकता, जो मित्र न हो। ऐसे मित्र से भी नहीं कहा जा सकता, जो पण्डित न हो और। ऐसे पण्डित मित्र से भी नहीं कहा जा सकता, जिसका अपने ऊपर पूरा अधिकार न हो। तुम मेरे मित्र हो और तुम में शेष गुण भी विद्यमान हैं, अतः मैं तुम से कुछ बातें कहना चाहता हूं। तुम्हारी सर्वतोमुखी बुद्धि को देख कर मैं तुम्हारे सम्मुख एक प्रश्न उपस्थित करना चाहता हूँ।

मैं जो कुछ कर रहा हूं, कहने को तो वह ऐश्वर्य है। पर वस्तुतः वह दासता के सिवाय कुछ नहीं है। यद्यपि आधी शासन-शक्ति मेरे हाथों में है, पर मुझे निरन्तर दूसरों के कटु वचन सुनने पड़ते हैं।

हे देवर्षे! जिस तरह अग्नि की इच्छा करने वाला निरन्तर अरणि को रगड़ता है, इसी तरह वाणी से कहे हुवे दुर्वचन निरन्तर मेरे हृदय को जलाते रहते हैं।

यद्यपि सङ्कर्षण में बल की प्रचुरता है, गद में सुकुमारता है, प्रद्युम्न में रूप की प्रधानता है, तथापि हे नारद! मैं सर्वथा निःसहाय हूं, मेरा अनुयायी कोई नहीं है।

हे नारद! अन्य अन्धक और वृष्णि लोग पूरे बलवान और सुमहाभाग हैं। वे पराजित नहीं किये जा सकते। उन में राजनीतिक शक्ति पूर्ण रूप से विद्यमान है। ये अन्धकवृष्णि जिसके पक्ष में हो जावें, उसके पास सब कुछ है।

थे जिसके विरुद्ध हो जावें, उसके पास कुछ नहीं है, वह जरा देर भी विद्यमान नहीं रह सकता।[1]

आहुक और अक्रूर के संबन्ध में यह बात है, कि वे जिसके पक्ष में हों, उस के लिये इस से अधिक आपत्ति की और कोई बात नहीं हो सकती। वे जिसके विरुद्ध हों; उसके लिये उस से अधिक आपत्ति की और कोई बात नहीं हो सकती। मेरे लिये कठिन है कि मैं किसके साथ रहूँ?

मेरी अवस्था जुआरियों की उस माता की तरह है, जो न एक की विजय चाहती है और न दूसरे की पराजय।

हे महामुनि नारद! मेरी तथा मेरे ज्ञातियों की स्थिति को ध्यान में रख कर कृपया मुझे यह बतलाओ कि दोनों के लिये कौन सी बात हितकर हो सकती है। मैं इस समय बहुत क्लेश में हूं।

नारद ने उत्तर दिया—

हे कृष्ण! गण राज्य (प्रजातन्त्र) में दो प्रकार की आपत्तियां होती हैं, एक बाह्य और दूसरी आभ्यन्तर। पहली वे जो दूसरों द्वारा उत्पन्न की जाती

भीष्म उवाच

१. अत्राप्युदाहरन्तीमितिहासं पुरातनम्
संवादं वासुदेवस्य महर्षेनारदस्य च ॥ १ ॥

वासुदेव उवाच

नासुहृत्परमं मन्त्रं नारदार्हति वेदितुम्
अपण्डितो वापि सुहृत्पण्डितो वाप्यनात्मवान् ॥ ३ ॥
स ते सौहृदमास्थाय किञ्चिद्वक्ष्यामि नारद
कृत्स्नां बुद्धिं च ते प्रेक्ष्य संपृच्छे त्रिदिवङ्गम ॥ ४ ॥
दास्यमैश्वर्यवादेन ज्ञातीनां वै करोम्यहम्
अर्धभोक्ताऽस्मि भोगानां वाग्दुरुक्तानि च क्षमे ॥ ५ ॥
अरणीमग्निकामो वा मथ्नाति हृदयं मम
वाचा दुरुक्तं देवर्षे तन्मां दहति नित्यदा ॥ ६ ॥
बलं सङ्कर्षणे नित्यं सौकोमार्यं पुनर्गदे
रूपेण मत्तः प्रद्युम्नः सोऽसहायोऽस्मि नारद ॥ ७ ॥
अन्ये हि सुमहाभागाः बलवन्तो दुरासदः
नित्योत्थानेन संपन्नाः नारदान्धकवृष्णयः ॥ ८ ॥
यस्य न स्युर्नवै स स्याद्यस्य स्युः कृत्स्नमेव तत्
द्वयोरेनं प्रचरतोर्वृणोम्येकतरं न च ॥ ९ ॥

हैं और दूसरी वे जो स्वयं उत्पन्न की जाती हैं। तुम्हारी वर्तमान अवस्था में यह आभ्यन्तर आपत्ति है; जो तुम्हें कष्ट पहुंचा रही है। इसे अपने ही लोगों ने उत्पन्न किया हैं। अक्रूर और भोज के अनुयायियों ने, उन सब परिवारों के साथ, जो कि आर्थिक प्राप्ति की आशा से वा काम तथा वीरता की स्पर्धा से उन के साथ हो गये हैं, स्वयं प्राप्त राजनीतिक शक्ति (ऐश्वर्य) को अन्य स्थान पर निहित कर दिया है। जिस प्रकार से कि उलटी किये हुवे भोजन को फिर नहीं खाया जा सकता, इसी तरह उस राज्य शक्ति को, जो कि अब अच्छी तरह जड़ जमा चुकी है और 'ज्ञाति' का शब्द जिसका मुख्यतया सहायक बना हुवा है, अब वापिस नहीं लिया जा सकता। अब बभ्रु उग्रसेन से राज्य किसी भी तरह लौटाया नहीं जा सकता, क्योंकि इस से ज्ञातियों में फूट पड़ जाने का भय है। हे कृष्ण! विशेषतया तुम अब उनकी कोई सहायता नहीं कर सकते।

और यदि अब यह मुश्किल कार्य किसी तरह सिद्ध भी हो जाय (अर्थात् बभ्रु उग्रसेन से प्रधान पद छीन कर उसे राज्य शक्ति से विरहित कर दिया जाय) तब भी हानि, महान् व्यय आदि के खतरे हैं, और हो सकता है कि इस से सब का विनाश ही हो जाय।[२]

---

२. स्यातां यस्याहुकाक्रूरौ किंतु दुःखतरं ततः
यस्य चापि न तौ स्यातां किं नु दुःखतरं ततः ॥ १० ॥
सोऽहं कितवमातेव द्वयोरेवमहामुने
नैकस्य जयमाशंसे द्वितीयस्य पराजयम् ॥ ११ ॥
ममैवं क्लिश्यमानस्य नारदोभयदर्शनात
वक्तुमर्हसि यच्छ्रेयो ज्ञातीनामात्मनस्तथा ॥ १२ ॥

नारद उवाच।

आपदो द्विविधाः कृष्ण बाह्याश्चाभ्यन्तराश्चह
प्रादुर्भवन्ति वार्ष्णेय स्वकृता यदि वान्यतः ॥ १३ ॥
सेयमाभ्यन्तरा तुभ्यमापत् कृच्छ्रा स्वकर्मजा
अक्रूरभोजप्रभवा सर्वे ह्येते तदन्वयाः ॥ १४ ॥
अर्थहेतोर्हिकामाद्वा वीरबीभत्सयापि वा
आत्मना प्राप्तमैश्वर्यमन्यत्र प्रतिपादितम् ॥ १५ ॥
कृतमूलमिदानीं तत् ज्ञातिशब्दं सहायवत्
न शक्यं पुनरादातुं वान्तमन्नमिव स्वयम् ॥ १६ ॥
बभ्रूग्रसेनतो राज्यं नाप्तुं शक्यं कथंचन
ज्ञातिभेद भयात्कृष्ण त्वया चापि विशेषतः ॥ १७ ॥
तच्च सिद्ध्येत् प्रयत्नेन कृत्वा कर्म सुदुष्करम्
महाक्षयं व्ययो वा स्याद्विनाशो वा पुनर्भवेत् ॥ १८ ॥

इस लिये हे कृष्ण ! एक ऐसे शस्त्र का प्रयोग करो, जो लोहे का बना हुआ नहीं है। जो बहुत ही नरम व मृदु है; फिर भी जो हृदय को छेदने में समर्थ है। उस शस्त्र का बार-बार परिशोधन करके अपने ज्ञातियों की जिह्वाओं को ठीक करो।

वासुदेव ने कहा—हे मुने ! वह शस्त्र कौन सा है, जो लोहे का बना हुवा नहीं है। जो बहुत ही नरम व मृदु है, फिर भी जो हृदय को छेदने में समर्थ है और जिसका बार-बार परिशोधन करके मैंने अपने ज्ञातियों की जिह्वाओं को ठीक करना है ?

नारद ने उत्तर दिया—

जो शस्त्र लोहे से बना हुआ नहीं है, वह यह है— दूसरों के गुणों को स्वीकृत कर उनका यथायोग्य सत्कार करना, सहनशक्ति, क्षमा, मार्दव और अपनी शक्ति के अनुसार निरंतर दान करते रहना। जो ज्ञाति लोग बोलने की इच्छा रखते हैं, उन के कड़वे तथा भावशून्य वाक्यों का तुम ख्याल न करो। उनका उत्तर देते हुवे तुम उनके हृदय, वाणी और मन को शान्त करने का प्रयत्न करो।

जो महापुरुष नहीं हैं, जिनका अपने ऊपर संयम नहीं है, जिसके बहुत से सहायक व अनुयायी नहीं हैं— ऐसा आदमी राज्य के महान् राजनीतिक भार का सफलता पूर्वक वहन नहीं कर सकता है। साफ और समतल रास्ते पर तो हर एक ही बैल भार को उठा ले जा सकता है, पर विकट मार्ग पर केवल अनुभवी उत्तम बैल ही भार को ले जा सकता है।

प्रजातन्त्र (सङ्घ) राज्यों का विनाश पारस्परिक फूट व भेद से होता है। हे केशव ! तुम सङ्घ के 'मुख्य' हो। यह सङ्घ तुम्हारी प्रधानता में नष्ट न हो जावे। ऐसा प्रयत्न करो कि यह सङ्घ नष्ट न हो।

बुद्धिकुशलता, सहिष्णुता, इन्द्रियनिग्रह और धनसंत्याग—ये गुण हैं, जो कि उस प्राज्ञ 'मुख्य' में होने चाहिये, जो सफलता से सङ्घ का सञ्चालन करना चाहता हो। हे कृष्ण ! अपने पक्ष की उन्नति करना, अपने दल का उद्भावन करना हमेशा धन, यश और आयु का लाने वाला होता है। इस प्रकार से कार्य करो; जिससे कि ज्ञातियों का विनाश न हो।

---

१. अनायसेन शस्त्रेण मृदुना हृदयच्छिदा।
जिह्वामुद्धर सर्वेषां परिमृज्यानुमृज्य च ॥ १९ ॥

हे प्रभो ! तुम भविष्य नीति, वर्त्तमान नीति, शुद्ध नीति तथा षाड्गुण्य के प्रयोग में पूरी तरह निपुण हो। राजनीति की ऐसी कोई बात नहीं है, जो तुम्हें ज्ञात न हो। अन्धक, वृष्णि, यादव, कुकुर और भोज, इन के लोग तथा शासक सब तुम्हारे ऊपर आश्रित हैं।

महाभारत का यह संदर्भ अन्धक वृष्णि संघ के शासन प्रकार पर बहुत अच्छी तरह प्रकाश डालता है। इससे स्पष्ट मालूम पड़ता है कि अन्धक, वृष्णि, यादव, कुकुर और भोज गण-राज्य थे। इनका परस्पर मिल कर एक सङ्घ राज्य (Federation) बना हुआ था, जिस में कि मुख्यतया दो दल थे। दोनों दलों में महा मतभेद था और ये एक दूसरे को पराजित करने के लिये निरंतर संघर्ष करते रहते थे। संघराज्य की सभा में बहुत गरम बहस हुवा करती थी। इस में शासकों पर कटु आक्षेप किये जाते थे। उनका उत्तर भी दिया जाता था। सम्पूर्ण संघ के दो 'मुख्य' या प्रधान होते थे। महाभारतकाल में इन पदों पर बभ्रु उग्रसेन और कृष्ण निर्वाचित थे। सङ्घ की सभा में आहुक और अक्रूर दो मुख्य नेता थे, जिनके कि सब लोग अनुयायी थे।

वासुदेव उवाच ।

अनायसं मुने शस्त्रं मृदु विद्यामहं कथम् ।
येनैषामुद्धरे जिह्वां परिमृज्यानुमृज्य च ॥ २० ॥

नारद उवाच ।

शक्त्यान्नदानं सततं तितिक्षाऽऽर्जवमार्दवम् ।
यथार्हप्रतिपूजा च शस्त्रमेतदनायसम् ॥ २१ ॥
ज्ञातीनां वक्तुकामानां कटुकानि लघूनि च ।
गिरा त्वं हृदयं वाचं शमयस्व मनांसि च ॥ २२ ॥
नामहापुरुषः कश्चिन्नानात्मा नासहायवान् ।
महतीं धुरमादाय समुद्यम्योरसा वहेत् ॥ २३ ॥
सर्व एव गुरुं भारमनड्वान्वहते समे ।
दुर्गे प्रतीतः सुगवो भारं वहति दुर्वहम् ॥ २४ ॥
भेदाद्विनाशः सङ्घानां सङ्घमुख्योऽसि केशव ।
यथा त्वां प्राप्य नोत्सीदेदयं सङ्घस्तथा कुरु ॥ २५ ॥
नान्यत्र बुद्धिक्षान्तिभ्यां नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात् ।
नान्यत्र धनसन्त्यागात् गुणः प्राज्ञेऽवतिष्ठते ॥ २६ ॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वपक्षोद्भावनं सदा ।
ज्ञातीनामविनाशः स्याद्यथा कृष्ण तथा कुरु ॥ २७ ॥

(महाभारत शान्तिपर्व अ० ८१.)

महाभारत का यह वर्णन बिलकुल स्पष्ट और विशद है। इस पर किसी भी तरह की टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है।

अन्य गण-राज्य— अन्धक वृष्णि सङ्घ के सिवाय महाभारतकाल में अन्य भी अनेक गण-राज्य विद्यमान थे। महाभारत युद्ध में सम्मिलित हुवे २ राज्यों में 'मालव' 'क्षुद्रक' 'आन्ध्रक' आदि का भी उल्लेख है।। हमें अन्य ऐतिहासिक साधनों द्वारा ज्ञात है कि ये राज्य प्रजा तन्त्र थे। कौटिलीय अर्थशास्त्र, मैगस्थनीज के यात्रा विवरण आदि में इन्हें गण-राज्य ही लिखा गया है। वहुत संभव है, कि महाभारत काल में भी इनमें प्रजातन्त्र राज्य ही स्थापित हो। महाभारत में कई स्थानों पर 'क्षुद्रक-मालव' इस तरह का इकट्ठा प्रयोग हुवा है। इससे सूचित होता है, कि इन का परस्पर मिलकर 'सङ्घ-राज्य (Federation) बना हुआ था।

इन के सिवाय महाभारत काल में किरात, दरद, औदुम्बर, पारक, वाह्लीक, शिवि, त्रिगर्त, यौधेय, अम्बष्ठ, पौण्ड्र, वङ्ग आदि भी विविध राज्य प्रजातन्त्र थे।[२] इन पर राजा का शासन नहीं था। अपितु श्रेणि का शासन था। इसी लिये महाभारत में इन्हें 'श्रेणिमन्तः' कहा गया है। इनकी विविध शासन पद्धतियों पर महाभारत से विशेष प्रकाश नहीं पड़ता।

अवन्ती का द्वैराज्य— गण-राज्य पद्धति के सिवाय महाभारत काल में अन्य भी अनेक शासन पद्धतियाँ प्रचलित थीं; इन में अवन्ती देश का राज्य विशेषतः उल्लेखनीय है। अवन्ती के हमेशा दो राजा होते थे। महाभारत युद्ध के समय इन दो राजाओं के नाम 'विन्द' और अनुविन्द' थे।

इस तरह महाभारत कालीन भारतवर्ष अनेक विध शासनपद्धतियों वाले अनेक राज्यों में विभक्त था। मुख्यतया वहुत से देशों में इस काल में राजा लोग शासन कर रहे थे।

---

२. कैराता दरदा दर्वाः शूरा वैयामकास्तथा।
औदुम्बरा दुर्विभागाः पारदा वाह्लिकैः सह ॥ १३ ॥
कश्मीराश्च कुमाराश्च घोरका हंसकायनाः।
शिवित्रिगर्तयौधेया राजन्या मद्रकैकयाः ॥ १४ ॥
अम्बष्ठाः कौकुरास्तार्क्ष्या वस्त्रपाः पह्लवैः।
वशातयश्च मौलेयाः सह क्षुद्रकमालवैः ॥ १५ ॥
पौण्ड्रिकाः कुक्कुराश्चैव शकाश्चैव विशाम्पते।
अङ्गा वङ्गाश्च पुण्ड्राश्च शाठावत्या गयास्तथा ॥ १६ ॥
सुजातयः श्रेणिमन्तः श्रेयांसः शस्त्रधारिणः ॥ १७ ॥
(महाभारत सभापर्व अ० ५२)

* द्वितीय अध्याय *

साम्राज्यवाद की प्रवृत्ति

प्राचीन भारतीय इतिहास में साम्राज्यवाद की प्रवृत्ति स्पष्टरूप से दिखाई देती है। यद्यपि भारतवर्ष अनेक राज्यों में विभक्त था, पर यह प्रवृत्ति थी कि सम्पूर्ण भारत पर एक छत्र शासन स्थापित किया जावे। इस के लिये अनेक शक्ति-शाली राजवंश विशेष रूप से प्रयत्न-शील थे। पहले पहल सूर्यवंशी राजाओं ने इस दिशा में कोशिश की। महाभारत काल में मगध के राजवंश ने साम्राज्य निर्माण के लिये विशेष रूप से प्रयत्न किया था। उस समय मगध का राजा जरासन्ध था। महाभारत में इसे सम्राट् लिखा है। सम्राट् जरासन्ध ने बहुत से राजाओं को पराजित कर अपने आधीन किया हुवा था। जरासन्ध की राजधानी गिरिव्रज थी। प्राच्यदेश, मध्यभारत और मध्य-देश के बहुत से राज्य गिरिव्रज की अधीनता स्वीकृत करते थे।

चेदी का राजा शिशुपाल जरासन्ध का मुख्य सहायक था।[1] उसी तरह करूष का राजा वक्र,[2] अङ्ग का राजा कर्ण तथा वङ्ग और पौण्ड्र राज्य जरासन्ध के मुख्य सहायकों में थे।[3] प्राग्ज्योतिष (आसाम) के राजा भगदत्त[4] तथा दक्षिणात्य के राजा भीष्मक को जरासन्ध ने अपने अधीन

---

१. तं स राजा जरासन्धं संश्रित्य किल सर्वशः।
राजन् सेनापतिर्जातः शिशुपालः प्रतापवान् ॥ १० ॥

२. तमेव च महाराज शिष्यवत् समुपस्थितः।
वक्रः करूषाधिपतिर्मायायोधी महाबलः ॥ १९ ॥

३. वङ्गपुण्ड्रकिरातेषु राजा बलसमन्वितः।
पौण्ड्रको वसुदेवेति योऽसौ लोकेऽभिविश्रुतः ॥ २० ॥

४. भगदत्तो महाराज वृद्धस्तव पितुः सखा।
स वाचा प्रणतस्तस्य कर्मणा च विशेषतः ॥ १५ ॥

(महाभारत सभापर्व अ० १४.)

किया हुआ था।[1] भीष्म के नेतृत्व में कुरु लोग भी जरासन्ध के साथी थे। मगध के इस प्रतापशाली सम्राट् ने अपने कोप को विशेषतया प्रजातन्त्रराज्यों पर प्रकट किया था। यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि साम्राज्य विस्तार के इच्छुक सम्राटों के मार्ग में सब से बड़ी बाधा प्रजातन्त्रराज्य (गण व सङ्घ राज्य) उपस्थित करते हैं। उनमें स्वतन्त्रता और समानता का भाव उन्हें बहुत ही विकट संघर्ष के लिये तैयार कर देता है। और वे पराधीन जीवन के स्थान पर मृत्यु को अधिक पसन्द करते हैं। पहले अन्धकवृष्णियों का प्रसिद्ध सङ्घ-राज्य मथुरा के समीप था। साम्राज्यवादी जरासन्ध ने इस प्रतापशाली सङ्घ को नष्ट करने का प्रयत्न किया। अठारह बार मगध की सेनाओं ने इस पर आक्रमण किये।[2] परन्तु यह नष्ट नहीं किया जा सका। पर अन्त में प्राच्यदेशों के साम्राज्यवादी राष्ट्रों की सम्मिलित सेना ने अन्धकवृष्णियों को पराजित कर दिया और वे अपना पुराना स्थान छोड़ कर सुदूर पश्चिम में द्वारिका के समीप जा बसे। जरासन्ध के आक्रमण यहाँ पर भी हुवे, पर द्वारिका में अन्धकवृष्णि सङ्घ अपनी स्वतन्त्रता कायम रखने में सफल हुआ।

अन्धकवृष्णि सङ्घ के सिवाय जरासन्ध ने अन्य भी अनेक प्रजातन्त्र राज्यों पर आक्रमण किया था। इन में से कुछ का निर्देश करना पर्याप्त होगा। उस समय उत्तर दिशा में १८ गण या कुल राज्य थे। महाभारत में इन के नाम इस प्रकार दिये हैं— शूरसेन, भद्रकार, बोध, शाल्व पटच्चर, सुस्थल, मुकुन्द, कुलिन्द, कुन्ति, शाल्वायन, आदि। इन पर आक्रमण कर जरासन्ध ने इन्हें पराजित कर दिया था और ये अपने पुराने स्थान छोड़कर पश्चिम दिशा में चले जाने को बाधित हुवे थे।[3]

---

१. भ्राता यस्याकृतिः शूरो जमदग्न्यसमोभवत्।
स भक्तो मागधं राजा भीष्मकः परवीरहा॥ २२॥

(महाभारत सभापर्व अ० १४.)

२. इनका विवरण महाभारत में उपलब्ध नहीं होता, क्योंकि मुख्यतः उसका वर्णनीय विषय कुरु राज्य है। यह विवरण हरिवंश पुराण तथा विष्णु पुराण में विस्तृतरूप से पाया जाता है।

३. उदीच्याश्च तथा भोजाः कुलान्यष्टादश प्रभो।
जरासन्धभयादेव प्रतीचीं दिशमास्थिताः॥ २५॥
शूरसेना भद्रकारा बोधाः शाल्वाः पटच्चराः।
सुस्थलाश्च मुकुट्टाश्च कुलिन्दाः कुन्तिभिः सह॥ २६॥

इसी प्रकार उत्तर का कोशल-राज्य जरासन्ध की महत्वाकाँक्षाओं का विशेषतया निशाना बना था। यह राज्य भी जरासन्ध से ही घबराकर दक्षिण में चला गया था। और इस तरह दक्षिण कोशल की स्थापना हुई थी।[1] जरासन्ध ने पाञ्चाल-राज्य का भी विनाश किया था।[2] अन्य भी बहुत से राज्यों को मगध सम्राट् ने अपने आधीन किया था। उन सब का यहाँ उल्लेख करने की कोई आवश्यकता नहीं है। जरासन्ध ने कितने राजाओं को अपने आधीन किया था, इस बात की कल्पना इस से हो सकती है कि महाभारत में लिखा है कि जरासन्ध शङ्कर को सन्तुष्ट करने के लिये यज्ञ में राजाओं की बलि देता था और इस निमित्त से उसने बहुत से राजाओं को कैद किया हुआ था।[3]

इस तरह साम्राज्य के प्रयत्न में महाभारत काल में मगध के सम्राटों को सफलता हुई थी, परन्तु मगध के सिवाय अन्य राज्य भी इस के लिये प्रयत्न कर रहे थे। महाभारत काल में इन्द्रप्रस्थ के राजा युधिष्ठिर ने अपने भाइयों की सहायता से साम्राज्य विस्तार की इच्छा की। प्राचीन समय में राजसूय यज्ञ करना प्रत्येक राजा अपना उच्चतम धर्म समझता था। राजसूय करके सम्राट् पद प्राप्त करने की महत्वाकाँक्षा शक्ति शाली राजाओं में सदा विद्यमान रहती थी। राजा युधिष्ठिर में भी यह आकाँक्षा प्रादुर्भूत हुई। पर मगध सम्राट् जरासन्ध के होते हुवे इस में सफलता होनी कठिन थी। अतः कृष्ण की सम्मति से पाण्डवों ने पहले जरासन्ध का विनाश करना ही आवश्यक

---

१. शाल्वायनाश्च राजानः सोदर्यानुचरैः सह।
दक्षिणा ये च पाञ्चालाः पूर्वाः कुन्तिषु कोशलम् ॥ २७ ॥
तथोत्तरां दिशं चापि परित्यज्य भयार्दिताः।
मत्स्याः सन्यस्तपादाश्च दक्षिणां दिशमाश्रिताः ॥ २८ ॥

२. तथैव सर्वपाञ्चालाः जरासन्धभयार्दिताः।
स्वराज्यं सम्परित्यज्य विद्रुताः सर्वतो दिशम् ॥ २९ ॥
(महाभारत सभापर्व अ० १४.)

३. त्वया चोपहृता राजन् क्षत्रिया लोकवासिनः।
तदागः क्रूरमुत्पाद्य मन्यसे किमनागसम् ॥ ८ ॥
राजा राज्ञः कथं साधून् हिंस्यान्नृपति सत्तम।
तद्राज्ञः सन्निगृह्य त्वं रुद्रायोपजिहीर्षसि ॥ ९ ॥
(महाभारत सभापर्व अ० २२.)

समझा। यह समझाने की आवश्यकता नहीं है कि कृष्ण को जरासन्ध का विनाश करने की क्यों इच्छा थी। कृष्ण अन्धकवृष्णि सङ्घ का 'मुख्य' या प्रधान था। जरासन्ध ने स्वयं इस सङ्घ पर कई बार आक्रमण किये थे। एक बार कालयवन नाम के अन्य शक्तिशाली राजा को भी अन्धकवृष्णि सङ्घ पर आक्रमण करने के लिये प्रेरित किया था। जरासंध के साम्राज्यवाद के ही कारण अन्धकवृष्णि संघ मथुरा छोड़ कर द्वारिका में बस जाने के लिये बाधित हुआ था। फिर, जरासंध अधार्मिक राजा था। सम्राज्यवाद के प्राचीन भारतीय आदर्श का परित्याग कर राजाओं के विनाश के लिये प्रवृत्त हुवा था। भारत के प्राचीन साम्राज्यवादी सम्राट् राजाओं का विनाश नहीं करते थे। वे केवल उन से आधीनता मात्र स्वीकृत करा लेते थे। पर जरासन्ध राजाओं और राज्यों का मूल से उन्मूलन करता था। इस अवस्था में कृष्ण जैसे व्यक्ति के लिये यह आवश्यक था कि वह मगध के साम्राज्यवाद को नष्ट कर प्राचीन आदर्शानुसार इन्द्रप्रस्थ के साम्राज्यवाद को सहायता दे।

राजा युधिष्ठिर मगध के साम्राज्यवाद को नष्ट करने में सफल हुवा। जरासन्ध मारा गया और उसके कैदखाने से बहुत से राजा मुक्त कर दिये गये। मगध के राजसिंहासन पर जरासन्ध के लड़के सहदेव को बिठाया गया, जिसने कि पाँडव राजा को अपना स्वामी मानना स्वीकृत कर लिया।[1] जरासन्ध की मृत्यु के बाद मगध साम्राज्य टुकड़े-टुकड़े होगया। प्राग्ज्योतिष में भगदत्त स्वतन्त्र होगया। अङ्ग, वङ्ग, पुण्ड्र तथा पूर्वीय भारत के अन्य राज्य मगध के प्रभाव से मुक्त हो गये। इन पर अङ्गराज कर्ण ने एक नवीन प्रभुत्व की स्थापना की। दाक्षिणात्य देश का राजा भीष्मक स्वतन्त्र हो गया और उसने पाँडवों से मित्रता करली। चेदी तथा कारूप का नवीन संघ बना, जिसका राजा शिशुपाल को स्वीकृत किया गया। ये राज्य पाँडवों के साम्राज्यवाद में बाधा डालने वाले थे। राजा शिशुपाल युधिष्ठिर की उन्नति नहीं सह सकता था। वह जरासन्ध का सेनापति था और अब पाँडवों की उन्नति में हर प्रकार से विघ्न डालने का यत्न करता था। परिणाम यह हुवा

---

१. अभ्यषिञ्चत तत्रैव जरासन्धात्मजं मुदा।

गत्वैकत्वं च कृष्णेन पार्थाभ्यां चैव सत्कृतः ॥ ४२ ॥

(महाभारत सभापर्व अ० २४.)

कि कृष्ण ने शिशुपाल का वध करने का निश्चय किया।[1] चेदिराज शिशुपाल को मार कर उसके पुत्र धृष्टकेतु को राजगद्दी पर बिठाया गया। यह धृष्टकेतु पाण्डवों और कृष्ण का मित्र था, तथा महाभारतयुद्ध में पाँडवों का पक्ष लेकर सम्मिलित हुवा था।

इस तरह साम्राज्यवाद का मार्ग पाँडवों के लिये निष्कण्टक हो गया वे सरलता के साथ दिग्विजय कर सके। पश्चिम, दक्षिण, पूर्व और उत्तर —चारों दिशाओं में पाँडवों ने आक्रमण किये और राजाओं से आधीनता स्वीकृत कराई। इस दिग्विजय का वृत्तान्त लिखने की आवश्यकता नहीं है।[2] इतना लिख देना पर्याप्त होगा कि यह साम्राज्य प्राचीन भारतीय आदर्श के अनुकूल था। तथा उस समय का सब से बड़ा महापुरुष कृष्ण इस में सहायक था। मगध के नाशकारी साम्राज्यवाद का नाश कर पाँडव लोग अपना साम्राज्य बना सके और युधिष्ठिर को भारत का सम्राट् बनाया गया।

हस्तिनापुर के कौरव लोग पाण्डवों के इस साम्राज्यवाद को स्पर्धा की दृष्टि से देखते थे। वे इस नवीन साम्राज्य को सहन न कर सके। उन्होंने नीति द्वारा पाण्डवों को राज्यच्युत कर स्वयं इन्द्रप्रस्थ पर अधिकार प्राप्त कर लिया। पाण्डवों और कौरवों के बीच आगे जाकर जो भयानक संग्राम हुवा—उसी को महाभारत युद्ध कहा जाता है। इस युद्ध में नाम को तो कौरव और पाण्डव लड़ रहे थे, पर वस्तुतः भारतीय साम्राज्यवाद की परस्पर विरुद्ध विविध शक्तियाँ आपस में युद्ध कर रही थीं। इस युद्ध के अनेक महत्त्वपूर्ण परिणाम हुवे, जिन में सब से अधिक महत्त्व की बात यह है कि अनेक प्राचीन राज्य नष्ट हो गये और राज्यों का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया। महाभारत कालीन अनेक राज्य पिछले काल में हमें दृष्टिगोचर नहीं होते। ये प्रायः सभी इस युद्ध में नष्ट हो गए। केवल शक्ति शाली राज्य महाभारत के बाद कायम रह सके। अपनी यह स्थापना को स्पष्ट करने के लिए एक उदाहरण पर्याप्त होगा। महाभारत काल में पञ्जाब में अनेक राज्य थे। प्रायः ये सभी राज्य कौरवों के पक्ष में सम्मिलित हुवे थे। महाभारत युद्ध में इन के राजा तथा इनकी सेनायें मार दी गईं। इस का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि ये राज्य बहुत निर्बल हो गये। पञ्जाब के किसी

---

१. महाभारत सभापर्व अध्याय ४५.

२. इस दिग्विजय का वर्णन महाभारत के सभापर्व में २५ वें अध्याय से लेकर ३२ वें अध्याय तक किया गया है।

भी अवशिष्ट शक्तिशाली राजा के लिए यह बहुत सरल होगया कि वह सुगमता से इन्हें नष्ट करके अपने राज्य को फैला सके। पञ्जाब में यही हुवा। तक्षशिला के राजा नाता तक्षक ने पञ्जाब के प्रायः सभी राज्यों को जीत लिया और अपने शक्तिशाली राज्य की स्थापना की, जिसने कि कुरुदेश तक पर आक्रमण किये। यही प्रक्रिया हमें अन्य स्थानों पर भी दिखाई देती है।

महाभारत युद्ध के बाद मध्यदेश में ३ मुख्य राज्य रह गये थे। हस्तिनापुर में चन्द्रवंश का राज्य, मगध का राज्य तथा कोशल में सूर्यवंश का राज्य। इन के सिवाय अन्य भी अनेक राज्य मध्यदेश में अवशिष्ट रहे थे, पर प्रायः वे इन्हीं राज्यों के अधीन थे। इन तीनों राजवंशों के सम्बन्ध में हमें थोड़ी बहुत बातें मालूम हैं। पुराणों में इन की वंशावलियां उपलब्ध होती हैं, जो कि अनुशीलन योग्य हैं।

साथ ही पाञ्चाल, काशी, हैहय आदि के राजवंशों के सम्बन्ध में भी पुराणों द्वारा कुछ प्रकाश पड़ता है। राजतरङ्गिणी काश्मीर के राजवंश के सम्बन्ध में कुछ उल्लेख योग्य बातें बतलाती है। हम इनका यथा स्थान वर्णन करने का प्रयत्न करेंगे।

बौद्धकालीन भारत में राज्यों का विभाग किस प्रकार था, इस सम्बन्ध में बौद्ध ग्रंथों से बहुत सी बातें ज्ञात होती हैं। उस समय के राज्यों तथा राजाओं के विषय में हमें बहुत कुछ मालूम है। इधर महाभारतकाल के सम्बन्ध में भी महाभारत से बहुत कुछ ज्ञान हो जाता है। कठिनता बीच के समय की है। यह काल बिलकुल अन्धकार में है। फिर भी प्राचीन साहित्य के अनुशीलन से जो कुछ ज्ञात किया जासकता है, उसे हम क्रमिक रूप से उद्धृत करने का प्रयत्न करेंगे।

* तीसरा अध्याय *

मगध के राजवंश

बार्हद्रथवंश

[३१३६ ई० पू० से २१३२ ई० पू० तक]

(१) सहदेव— महाभारत युद्ध से कम से कम १४ वर्ष पूर्व सम्राट् जरासन्ध की हत्या की गई थी। जरासन्ध को मार कर कृष्ण तथा पाण्डवों ने सहदेव को मगध के सिंहासन पर आरूढ़ किया था। परन्तु सहदेव का सम्पूर्ण मगध राज्य पर अधिकार नहीं था। जरासन्ध के पतन के बाद न केवल मगध का साम्राज्य टुकड़े टुकड़े हो गया था, अपितु मगधराज्य में भी ३ भाग हो गए थे। महाभारत काल में सहदेव के सिवाय दण्ड और दण्डधर नाम के दो अन्य राजा पूर्वीय मगध में शासन कर रहे थे। इन का राज्य मगध की प्राचीन राजधानी गिरिव्रज में था। इनके सिवाय सहदेव का एक और भाई था, जिसका नाम जयसेन या जयत्सेन था। सम्भवतः वह भी मगध के किसी भाग का स्वामी था। महाभारत युद्ध में सहदेव ने पाण्डवों का पक्ष लिया था, अन्य तीन राजा कौरवों के पक्ष में लड़े थे।

महाभारत युद्ध में सहदेव मारा गया था। जरासन्ध व सहदेव के वंश को बार्हद्रथ वंश कहा जाता है। सहदेव की मृत्यु का समय ३१३६ ई० पू० (महाभारत युद्ध कलि युग के प्रारम्भ से ३७ वर्ष पहले हुवा था) है।

(२) मार्जारि— यह सहदेव का लड़का था। ३१३६ ई० पू० में अपने पिता की मृत्यु होने पर मार्जारि राजगद्दी पर बैठा। भिन्न भिन्न पुराणों में इस के विविध नाम पाये जाते हैं। इसे भागवत पुराण में मार्जालीय, विष्णु-पुराण में सोमाधि, ब्रह्माण्ड पुराण में सोमापि, और मत्स्य पुराण में सोमवित् लिखा जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारत युद्ध के बाद मगध का राज्य फिर से एक हो गया था। अन्य तीनों राजा कौरवों के पक्ष में लड़े थे, अपनी सेनाओं सहित वे कुरुक्षेत्र के मैदान में मारे गये थे। सम्भवतः, उन के साथ ही उन के राज्य समाप्त हो गये और विजयी पाण्डवों के पक्षपाती मार्जारि ने सम्पूर्ण मगध पर अपना अधिकार जमा

लिया। मार्जारि की राजधानी गिरिव्रज थी। यह नगरी महाभारत काल में दण्डधर के आधीन थी। पर महाभारत युद्ध के बाद मार्जारि ने इसे हस्तगत कर के अपनी राजधानी बना लिया था। मार्जारि ने कुल ५८ वर्ष तक राज्य किया।

(३) **श्रुतश्रवा**— कहीं कहीं इसे श्रुतवान् भी लिखा गया है। इस ने ५८ वर्ष तक राज्य किया। इस का शासन काल ३०८१ ई० पू० से ३०१७ ई० पू० तक है। वायु और ब्रह्माण्ड पुराणों के अनुसार इस का शासन काल ६७ वर्ष है।

(४) **अयुतायु**— यह श्रुतश्रवा का लड़का था। कहीं कहीं इस का नाम अप्रतीपि, अप्रतापी, अयुतायुः, अयुधायु, अमुधून आदि भी लिखा गया है। इस ने ३०१७ ई० पू० से २९८१ ई० पू० तक कुल ३६ साल राज्य किया। कहीं कहीं इस का शासन काल २६ वर्ष भी लिखा है।

(५) **निरामित्र**— यह अयुतायु का पुत्र था। इस ने २९८१ ई० पू० से २९४१ ई० पू० तक ४० वर्ष राज्य किया। वायु पुराण में इस का शासन काल १०० वर्ष लिखा है।

(६) **सुक्षत्र**— इस ने २९४१ ई० पू० से २८८३ ई० पू० तक ५८ वर्ष राज्य किया। इसके सुकृत्त, सुरक्ष, सुक्षत्ता, सुक्षत आदि अनेक नाम पाये जाते हैं।

(७) **बृहत्कर्मा**—इसने २८८३ ई० पू० से २८६० ई० पू० तक २३ वर्ष राज्य किया।

(८) **सेनाजित्**—इसका शासनकाल ५० वर्ष (२८६० ई० पू० से २८१० ई० पू०) है।

(९) **श्रुतञ्जय**—इस ने २८१० ई० पू० से २७७० ई० पू० तक ४० वर्ष राज्य किया।

(१०) **महाबल**—(२७७० ई० पू० से २७३५ ई० पू० तक) यह श्रुतञ्जय का लड़का था। इसने ३५ वर्ष राज्य किया। इसके विभु, विप्र, रिपुञ्जय आदि भी नाम हैं। प्रतीत होता है कि यह राजा बड़ा पराक्रमी, बुद्धिमान् तथा यशस्वी था। पुराणों ने इसे 'महाबलो महाबाहुः महाबुद्धि-पराक्रमः' इन विशेषणों से सुशोभित किया है।

(११) शुचि— (२७३५ ई० पू० से २६७७ ई० पू० तक) इस ने ५८ वर्ष राज्य किया। कहीं कहीं इसका शासनकाल ६४४७ वर्ष भी लिखा है।

(१२) क्षेम — (२६७७ ई० पू० से २६४६ ई० पू० तक) इसने २८ वर्ष राज्य किया, क्षम, क्षेम्य, क्षैम्य आदि भी इसके नाम पुराणों में उल्लिखित हैं।

(१३) सुव्रत— (२६४६ ई० पू० से २५८५ ई० पू० तक) इसने ६४ साल राज्य किया। वायु पुराण ने इसका शासन काल ६० वर्ष लिखा है।

(१४) सुनेत्र— (२५८५ ई० पू० २५५० ई० पू० तक) इसने ३५ साल राज्य किया।

(१५) निर्वृति— (२५५० ई० पू० से २४९२ ई० पू० तक) इस ने ५८ साल राज्य किया।

(१६) त्रिनेत्र — (२४९२ ई० पू० से २४५४ ई० पू० तक) इसने ३८ साल राज्य किया। पुराणों में इस के सुव्रत, सुश्रम, सुश्रुम, शुशुम, श्रम, शम, सम, सुसव, सुभ्रम, आदि भी नाम प्राप्त होते हैं।

(१७) द्रढसेन— (२४४४ ई० पू० से २३९६ ई० पू० तक) इसने ५८ साल राज्य किया।

(१८) सुचल—(२३९६ ई० पूर्व से २३६३ ई० पू० तक) इसने ३३ वर्ष शासन किया।

(१९) सुमति— (२३६३ ई० पू० से २३४१ ई० पू० तक) इसने २२ राज्य किया।

ब्रह्माण्ड पुराण में सुचल तथा विष्णु पुराण में सुमति को छोड़ दिया वर्ष गया है।

(२०) सुनेत्र— (२३४१ ई० पू० से २३०१ ई० पू० तक) इसने ४० वर्ष राज्य किया।

(२१) सत्याजित्—(२३०१ ई० पू० से २२१८ ई० पू० तक) इसने ८३ वर्ष राज्यकिया।

(२२) वीरजित्—(२२१८ ई० पू० से २१८३ ई० पू०तक)वहुत सी पुराणों में इसे विश्वजित् लिखा गया है।

(२३) रिपुञ्जय— (२१८३ ई० पू० से २१३३ ई० पू० तक) इस का शासन काल ५० वर्ष हैं। रिपुञ्जय बार्हद्रथ वंश का अन्तिम राजा है। बार्हद्रथ

वंश में सहदेव से लेकर कुल २३ और मार्जारि से लेकर कुल २२ राजा हुए। इस वंश का शासन काल १००६ वर्ष (३१३९ से ई० पू० २१३३ ई० पू०) तक है। पुराणों में मोटे तौर पर इसका शासन काल १००० वर्ष लिख दिया गया है।

प्रद्योत वंश

[२१३३ ई. पू. से १९९५ ई. पू. तक]

मगध का राजा रिपुञ्जय पुत्र विहीन था। उसके केवल एक पुत्री थी। रिपुञ्जय के प्रधानामात्य वा सेनापति का नाम 'पुलक' था। पुलक ने रिपुञ्जय का घात कर दिया और अपने लड़के प्रद्योत वा बालक को राजगद्दी पर बिठाया।[1] पुलक स्वयं राजसिंहासन पर नहीं बैठ सकता था, क्योंकि उसको कोई अधिकार न था। अतः उसने अपने लड़के प्रद्योत के लिये अधिकार उत्पन्न कर दिया। रिपुञ्जय की लड़की का विवाह प्रद्योत के साथ कर दिया गया और प्रद्योत नियमानुसार रिपुञ्जय का उत्तराधिकारी बन गया। किस षड्यन्त्र से वा किस भाँति रिपुञ्जय का घात किया गया था, इस का कोई वृत्तान्त उपलब्ध नहीं है। प्रद्योत से एक नवीन वंश प्रारम्भ होता है, जिसे कि उसके नाम से प्रद्योतवंश कहा जाता है।[2]

पुराणों के अनुसार प्रतीत होता है कि राजा रिपुञ्जय का शासन काल बहुत घटनामय था। इस काल की सब से मुख्य घटना यह है कि अवन्ती के प्राचीन राजवंश का अन्त कर दिया गया था। महाभारतकाल में अवन्ती बड़ा शक्तिशाली राज्य था। वहाँ द्वैराज्य शासनपद्धति प्रचलित थी; और वहाँ के राजा दो अक्षौहिणी सेना लेकर महाभारत युद्ध में सम्मिलित हुवे थे। इस शक्तिशाली राज्य का पिछले समय का इतिहास पूरी तरह अन्धकारमय है। ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारत युद्ध के बाद अवन्तिदेश बहुत निर्बल हो गया था। पुराणों में इसके राजवंश का उल्लेख नहीं किया गया है। अवन्तिराज्य के निर्बल राजाओं को रिपुञ्जय के शासन काल में जीत लिया गया था। और

---

१. विष्णु पुराण में—

'योऽयं रिपुञ्जयो नाम वार्हद्रथोऽन्त्यस्तस्य सुनिको नामामात्यो भविष्यति।
स चैनं स्वामिनं हत्वा स्वपुत्रं प्रद्योत-नामानमभिषेक्ष्यति।'

२. देखो— Narayan Shastri—The Age of Shankara Appendix I. P. 16.

यह राज्य मगध के साम्राज्यवाद का ग्रास बन गया था । इसी तरह वीतहोत्र वंश का भी रिपुञ्जय के समय अन्त किया गया । पुराणों के अनुसार कलियुग के प्रारम्भ से लेकर वीतहोत्र वंश के २० राजाओं ने राज्य किया । रिपुञ्जय कलियुग के प्रारम्भ से लगा कर २२ वाँ राजा था । अतः ये दोनों समकालीन ही थे । वीतहोत्रों का राज्य भी मगध के साम्राज्यवादी सम्राटों ने अपने आधीन कर लिया ।

क्या आश्चर्य है कि इन विजयों का करने वाला सेनापति पुलक ही हो । मौर्य सम्राट बृहद्रथ के समय सेनानी पुष्यमित्र ने जो कुछ किया था, सम्भवतः वही रिपुञ्जय के समय पुलक ने भी किया और पुष्यमित्र की ही तरह अपने स्वामी को मार कर राज्य पर अधिकार प्राप्त कर लिया ।

(१) प्रद्योत—(२१३३ ई० पू० से २११० ई. पू. तक) इसने २३ वर्ष राज्य किया। प्रतीत होता है कि प्रद्योत ने अपने पिता की विजयनीति को जारी रक्खा । पुराणों में लिखा है कि यह सर्वथा नीति रहित था। राजनीति, धर्मनीति, आदि के किसी सिद्धान्त का अनुसरण नहीं करता था। इसने बहुत से क्षत्रियों का संहार कर उनके राज्यों को आधीन किया था। अनेक पड़ौसी राजा इसके आधीन थे।[१] अन्य दोष भी इसमें कम न थे एक पुराण में इसे 'मन्मथातुर' लिखा है।

[२] पालक— (२११० ई० पू० से २०८६ ई. पू. तक) यह प्रद्योत का लड़का था और इसने २४ वर्ष राज्य किया।

(३) विशाखयूप— (२०८६ ई० पू० से २०३६ ई. पू. तक) यह ५० वर्ष तक मगध के राजसिंहासन पर आरूढ़ रहा ।

(४) सूर्यक— (२०३६ ई०पू० से २०१५ ई. पू. तक) इसने २१ वर्ष राज्य किया । इस के जनक, सृजुक, सूर्जक आदि अनेक नाम उल्लिखित हैं ।

(५) नन्दिवर्धन—(२०१५ ई० पू० से १९९५ ई. पू. तक) इसने २० वर्ष राज्य किया । इसके भी वर्त्तिवर्धन, कीर्त्तिवर्धन, वर्धिवर्धन आदि अनेक नाम पुराणों में लिखे मिलते हैं ।

---

१. नियन्ता क्षत्रियाणां च बालकः पुलकोद्भवः ।
स वै प्रणतसामन्तो भविष्यो नयवर्जितः ॥
भवो विंशत् समा राजा भविता मन्मथातुरः ।

नन्दिवर्धन के साथ प्रद्योतवंश के इन पाँच राजाओं ने १३८ वर्ष तक राज्य किया।

शिशुनागवंश

[१६६५ ई० पू० से १६३५ ई० पू० तक]

१. **शिशुनाग**— प्रद्योतवंश के अन्तिमराजा नन्दिवर्धन को मार कर शिशुनाग राजगद्दी पर बैठा। शिशुनाग पहले काशी में रहता था, सम्भवतः यह वहां का शासक था। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रद्योतवंश के अन्तिम राजा के समय इसने अपनी शक्ति को बहुत बढ़ा लिया और उस का घात कर स्वयं मगध के राजसिंहासन पर आरूढ़ हो गया। अपने पुत्र को इस ने काशी में शासन करने के लिये नियत किया। शिशुनाग का शासन काल ४० साल (१६६५ ई० पू० से १६५५ ई० पू० तक) है।

२. **काकवर्णा**— (१६५५ ई० पू० से १६१६ ई० पू० तक) इस ने कुल ३६ वर्ष तक राज्य किया। इस को अनेक स्थानों पर शकवर्ण भी लिखा गया है।

३. **क्षेमधर्म**— (१६१६ ई० पू० १८६३ ई० पू० तक) इस ने २६ वर्ष राज्य किया।

४. **क्षेत्रज्ञ**— (१८६३ ई०पू० से १८५३ ई० पू० तक) इस का शासन काल ४० वर्ष है।

५. **बिम्बिसार**— (१८५३ ई० पू०से १८१५ ई० पू० तक) इस ने ३८ वर्ष राज्य किया। राजा बिम्बिसार भगवान बुद्ध का समकालीन था। इस के सम्बन्ध में बौद्ध तथा जैन साहित्य से बहुत सी बातें ज्ञात होती हैं। बिम्बिसार ने मगध की राजधानी राजगृह का निर्माण किया तथा अङ्ग देश को अपने आधीन किया। बिम्बिसार के साथ हम मगध के राजनीतिक इतिहास को समाप्त करते हैं। आगे बौद्धकाल का इतिहास प्रारम्भ होता है, जिस पर कि यहां हमने विचार नहीं करना है।

* चौथा अध्याय *

—※—
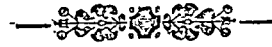
हस्तिनापुर का चन्द्रवंश

महाभारत युद्धके बाद हस्तिनापुर का चन्द्रवंश सब से अधिक शक्तिशाली था। पाण्डव इस भयङ्कर युद्ध से पहले भी साम्राज्य स्थापित करने में सफल मनोरथ हुवे थे। उनके विरोधी तत्त्वों के संघर्ष करने पर भी अन्त में वे ही सफल हुवे। महाभारत युद्ध के बाद राजा युधिष्ठिर हस्तिनापुर के राज सिंहासन पर आरूढ़ हुवे। प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार युधिष्ठिर ने कृष्ण के आदेश से अश्वमेध यज्ञ करने का निश्चय किया। महाभारत में इस यज्ञ का वृत्तान्त बड़े विस्तार के साथ लिखा है। प्राचीन समय में अश्वमेध यज्ञ कर के राजा लोग चक्रवर्ती सम्राट् के पद को प्राप्त किया करते थे। महाभारत युद्ध के बाद राजा युधिष्ठिर के लिये यह पद प्राप्त करना कठिन नहीं था। फिर भी उसे अनेक युद्ध करने पड़े। अश्वमेध यज्ञ की रीति के अनुसार जो घोड़ा छोड़ा गया था, उसे अनेक स्थानों पर रोका गया और अर्जुन ने घोड़े की स्वच्छन्द गति रखने के लिये बहुत से युद्ध किये। अन्त में पाण्डवों को सफलता हुई और उन्हों ने बड़ी धूम धाम के साथ अश्वमेध यज्ञ किया।

महाभारत युद्ध में पाण्डवों के बहुत से निकट सम्बन्धी तथा प्रिय मित्रों का संहार हुवा था। उन के शोक से तप्त हो कर तथा प्राचीन परिपाटी के अनुसार पाण्डवों ने बनवास करना स्वीकृत किया। वे अर्जुन के पौत्र परीक्षित को अपना विशाल साम्राज्य देकर स्वयं त्रिविष्टप (तिब्बत) की तरफ आश्रम बना कर रहने के लिये चले गये।

राजा परीक्षित अर्जुन के लड़के अभिमन्यु का पुत्र था। अभिमन्यु महाभारत युद्ध में मारा गया था, अतः परीक्षित ही युधिष्ठिर के बाद राजा बना। पुराणों में परीक्षित के सम्बन्ध में बहुत सी कथायें लिखी हुई हैं। इन में से उस के तक्षक सर्प द्वारा डसे जाने की कथा बहुत प्रसिद्ध है। एक बार राजा परीक्षित शिकार खेलने के लिये जंगल में गया। वह रास्ता भूल गया और हिरण का पीछा करते करते एक ऋषि की कुटी में जा पहुँचा। इस ऋषि का नाम शमीक था। शमीक समाधिस्थ थे, पर परीक्षित ने इसका कोई खयाल नहीं किया।

वह उनसे हिरण किधर भागा है, यह पूछने लगा। पर समाधिस्थ होनेके कारण ऋषि ने कोई उत्तर न दिया। इस पर राजा को क्रोध आ गया और उसने एक मरे हुवे सांप को ऋषि के गले में डाल दिया। ऋषि समाधिस्थ थे, उन्हों ने इस पर कुछ भी ध्यान न दिया, पर इसी बीच में ऋषि का लड़का वहां पर आ पहुंचा और उस ने अपने पिता का अपमान देख कर राजा को शाप दिया कि तुम्हारी मृत्यु सांप के काटने से होगी। इसी के अनुसार तक्षक सर्प के काटने से परीक्षित की मृत्यु हुई, यद्यपि राजा ने उस से बचने के लिये नानाविध उपायों का आश्रय लिया था। महाभारत तथा पुराणों में इन उपायों का बड़े मनोरञ्जक तरीके से वर्णन किया गया है।

पुराणों में तक्षक सर्प द्वारा परीक्षित के डसे जाने को कहानी की तरह लिखा है, पर वस्तुतः यह एक महान् तथ्य को प्रगट करता है। इस तथ्य को पहले पहल श्रीयुत पार्जीटर ने प्रगट किया था। बात असल में यह है कि पुराणों ने एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक घटना को आलंकारिक रूप में वर्णित किया है। हम जानते हैं कि उत्तर पश्चिम भारत की राजधानी प्राचीन समय में तक्षशिला नगरी थी। यहाँ पर नाग वंश के राजा राज्य करते थे। महाभारत युद्ध के बाद ये राजा बहुत प्रबल हो गये थे और इन्होंने सम्पूर्ण पश्चिमोत्तर भारत पर अपना राज्य स्थापित कर लिया था। राजा परीक्षित के समय में नाग राजा का नाम तक्षक था। अपने राज्य को बढ़ाने की इच्छा से इसने हस्तिनापुर पर आक्रमण किया और परीक्षित का घात कर दिया। पिछले वर्णन को दृष्टि में रखने से पुराणों की इस कथा की यह व्याख्या अच्छी तरह समझ में आजाती है। परीक्षित के बाद राजा जनमेजय हस्तिनापुर की गद्दी पर बैठा। जन्मेजय ने अपने पिता की हत्या का बदला लेने का निश्चय किया। उसे यह भी फिक्र थी कि हस्तिनापुर के साम्राज्य को फिर से स्थापित किया जाय। अतः उसने अश्वमेध यज्ञ करने का निश्चय किया। पुराणों में लिखा है कि इस यज्ञ के प्रभाव से सर्प या नाग लगातार अग्नि में गिर गिर कर ध्वसं होने लगे। नागराज ने तक्षक वंश के प्रभाव से बचने के लिये बहुत प्रयत्न किया। पर अन्त में वह भी अग्नि में ध्वसं हो गया। इस कथा का अभिप्राय केवल यही है कि जनमेजय के प्रयत्नों से नाग सेनाओं तथा तक्षक का विनाश हुआ। महाभारत के अनुसार जन्मेजय ने तक्षशिला पर आक्रमण किया और इसको जीत कर अपने आधीन कर लिया। इस तरह नागराज तक्षक का पराभव कर जनमेजय ने अपने साम्राज्य तथा सम्राट पद की रक्षा की।

जनमेजय ही के दरबार में वैशम्पायन ने व्यास द्वारा बनाए हुए महाभारत का पाठ किया था। इस दृष्टि से राजा जनमेजय का शासनकाल बहुत महत्त्वपूर्ण है। पुराणों में जनमेजय को 'परपुरञ्जय' विशेषण दिया गया है। इससे प्रतीत होता है कि वह एक प्रसिद्ध विजेता था।

राजा जनमेजय के बाद शतानीक हस्तिनापुर की राजगद्दी पर बैठा। इस के शासन की कोई घटना ज्ञात नहीं है।

शतानीक के बाद उसका लड़का 'अश्वमेधदत्त' राजा बना। यदि इस नाम से कुछ अनुमान कर सकना सम्भव हो, तो यह सरलता से कल्पना की जा सकती है कि इस के पिता ने भी अश्वमेध यज्ञ किया था। पुराणों में शतानीक को 'बलवान्' और 'सत्यविक्रमः' विशेषण दिये गये हैं।

अश्वमेधदत्त के बाद उसका लड़का अधिसीमकृष्ण राजा बना। पुराणों की रचना पहले पहल इसी के शासनकाल में हुई थी। पुराणों में लिखा है कि 'अधिसीमकृष्ण वर्तमान समय में राज्य कर रहा है।'

अधिसीमकृष्ण के बाद उसका लड़का निचक्षु राजसिंहासन पर आरूढ़ हुवा। इस के समय में गङ्गा में बड़ी बाढ़ आई, जिसमें हस्तिनापुर नगर बह गया। निचक्षु ने हस्तिनापुर को छोड़कर कौशाम्बी नगरी को अपनी राजधानी बनाया। यह घटना बहुत महत्त्व की है। अब से चन्द्रवंश के विशाल राज्य की राजधानी हस्तिनापुर के स्थान पर कौशाम्बी बन जाती है।

निचक्षु के उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध में पुराणों से कुछ ज्ञात नहीं होता केवल उन के नाम ही पौराणिक वंशावलियों में दिये गये हैं। हम भी प्रारम्भ से वंशावलि देना ही पर्याप्त समझते हैं—

१. अर्जुन
२. अभिमन्यु
३. परीक्षित
४. जनमेजय
५. शतानीक (प्रथम)
६. अश्वमेधदत्त
७. अधिसीमकृष्ण
८. निचक्ष
९. उष्ण
१०. चित्ररथ
११. शुचिद्रथ
१२. वृष्टिमत्
१३. सुषेण
१४. सुनीथ
१५. रुच
१६. नृचक्षु

१७. सुखीवल	२४. बृहद्रथ
१८. परिप्लुव	२५. वसुदान
१९. सुनय	२६. शतानीक (द्वितीय)
२०. मेधावी	२७. उदयन
२१. नृपञ्जय	२८. वहीनर
२२. मृदु	२९. दण्डपाणि
२३. तिग्म	३०. निरामित्र

३१. क्षेमक

क्षेमक के साथ चन्द्रवंश या पौरववंश की वंशावलि समाप्त होती है। सम्भवतः, निचक्षु के पीछे पौरववंश की शक्ति निरन्तर कम होती गई। मगध का साम्राज्यवाद धीरे धीरे ज़ोर पकड़ने लगा। जो स्थान महाभारतकाल में हस्तिनापुर को प्राप्त हुवा था, वह उस के गङ्गा की बाढ़ में बहने के साथ ही समाप्त हो गया। इस समय में मध्यप्रदेश में कोशल राजा अपनी शक्ति बढ़ा रहे थे, उन्होंने भी पौरववंश के ह्रास में सहायता की।

महात्मा बुद्ध के समय में कौशाम्बी के राजसिंहासन पर राजा उदयन राज्य कर रहा था। बौद्ध साहित्य से हमें मालूम होता है, कि बुद्ध के समय कौशाम्बी के राजा उदयन तथा अवन्ती के राजा प्रद्योत में परस्पर संघर्ष चल रहा था। उदयन के समय पर बौद्ध तथा ब्राह्मण साहित्य बहुत प्रकाश डालते हैं, पर उससे पहले राजाओं का इतिहास सर्वथा अन्धकारमय है।

* पांचवाँ अध्याय *
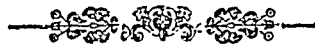
कोशल का सूर्यवंश.

महाभारतकाल में कोशल का राजा बृहद्बल था। यह कौरवों का पक्ष लेकर महाभारत युद्ध में सम्मिलित हुवा था। इसके उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध में नामों के सिवाय कुछ भी हमें ज्ञात नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारत युद्ध के बाद कोशलदेश बहुत कमजोर होगया था। समीप ही हस्तिनापुर के शक्तिशाली सम्राट् विद्यमान थे, अतः यह शक्ति न पकड़ सका। पर धीरे धीरे यहाँ के राजा शक्तिशाली होते गये और हम देखते हैं कि बौद्ध काल में कोशल का राजा प्रसेनजित् एक शक्तिशाली राजा था, जो कि साम्राज्य निर्माण के लिये निरन्तर प्रयत्न कर रहा था। एक तरफ वह मगध के महत्वाकांक्षी सम्राट् अजातशत्रु से लड़ रहा था, तो दूसरी तरफ समीपस्थ छोटे राज्यों— शाक्य प्रजातन्त्र तथा काशी राज्य– को निगलने का प्रयत्न कर रहा था। बृहद्बल और प्रसेनजित् के बीच के राजाओं के सम्बन्ध में हमें कुछ भी ज्ञात नहीं है। इन राजाओं की वंशावलि उद्धृत करना ही पर्याप्त है—

१. बृहद्बल	१२. सुप्रतीक	२३. रणञ्जय
२. बृहन्क्षण	१३. सुप्रतीय	२४. सञ्जय
३. उरुक्षेप	१४. मरुदेव	२५. शुद्धोधन
४. वत्स	१५. सुनक्षत्र	२६. शाक्य
५. वत्सव्यूह	१६. किन्नर	२७. राहुल
६. प्रतिव्योम	१७. अन्तरिक्ष	२८. प्रसेनजित्
७. भानु	१८. सुवर्ण	२९. क्षुद्रक
८. दिवाकार	१९. अमित्रजित्	३०. कुण्डक
९. सहदेव	२०. बृहद्राज	३१. सुरथ
१०. बृहदश्व	२१. धर्मिन्	३२. सुमित्र
११. भानुरथ	२२. कृतञ्जय	

सुमित्र के साथ कोशल का प्राचीन सूर्यवंश–जिसमें महाराजा रामचन्द्र उत्पन्न हुवे थे, समाप्त होगया।

* छठा अध्याय *
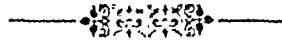
काश्मीर का राजवंश तथा अन्य राज्य.

प्रसिद्ध भारतीय ऐतिहासिक कल्हण द्वारा विरचित राजतरङ्गिणी से काश्मीर के प्राचीन इतिहास का बहुत कुछ ज्ञान होता है। इस ग्रंथरत्न से प्राग्बौद्धकाल सम्बन्धी काश्मीर के इतिहास पर भी कुछ प्रकाश पड़ता है। हम इसका संक्षिप्त रूप से यहाँ उल्लेख करेंगे।

महाभारत काल में काश्मीर पर गोनन्द प्रथम राज्य कर रहा था। यह राजा मगध सम्राट् जरासन्ध का मित्र था और इसने अन्धकवृष्णि सङ्घ पर किये गये आक्रमणों में जरासन्ध की सहायता की थी। काश्मीर की सेनाओं ने यमुना के तट पर अपने कैम्प गाड़े थे। परन्तु इस युद्ध में गोनन्द प्रथम कृष्ण के भाई बलभद्र द्वारा मार दिया गया और काश्मीर की सेना अपने मनोरथ में सफल न हुई। अन्धकवृष्णि सङ्घ विनष्ट नहीं हुआ।

गोनन्द प्रथम की मृत्यु के बाद उसका लड़का दामोदर प्रथम राजा बना। अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिये इसने भी अन्धकवृष्णि सङ्घ पर आक्रमण किया। पर इस बार फिर काश्मीर की सेनायें पराजित हुईं और दामोदर प्रथम युद्ध में मारा गया।

मृत्यु के समय दामोदर नवयुवक ही था। उसके अभी कोई सन्तान न थी। अतः अन्धकवृष्णि सङ्घ के 'मुख्य' वा प्रधान कृष्ण की सम्मति से दामोदर की विधवा स्त्री यशोवती को राजगद्दी पर बिठाया गया। यशोवती गर्भवती थी, अतः ठीक समय पर उसके पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम गोनन्द रखा गया। इतिहास में इसे गोनन्द द्वितीय कहा जाता है।

गोनन्द द्वितीय के ३५ उत्तराधिकारियों के नाम नष्ट हो चुके हैं। कल्हण स्वयं लिखता है कि गोनन्द के ३५ उत्तराधिकारियों के नाम विस्मृति के सागर में डूब गये हैं और उनके नाम तथा कृत्य के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है।[1]

---

१. आम्नायभङ्गान्निर्नष्टनामकृत्यास्ततः परम्।
पञ्चत्रिंशन्महीपाला मग्ना विस्मृतिसागरे ॥ ८३ ॥
(राजतरङ्गिणी प्रथमस्तरङ्गः)

३५ विस्मृत राजाओं के बाद राजतरङ्गिणी फिर हमारी सहायता करती है। हम काश्मीर के राजसिंहासन पर लव नाम के राजा को राज्य करता पाते हैं। इसने 'लोलोर' नामी नगर बनवाया, जिसमें कि पत्थर की ८० लाख इमारतें थीं, लव की मृत्यु के बाद 'कुश' राजगद्दी पर बैठा। कल्हण ने कुश द्वारा दिये गये दान का उल्लेख किया है।

कुश के बाद खगेन्द्र राजा बना। यह बहुत शक्तिशाली राजा था। इस ने तक्षशिला के नाग कुल का अन्त किया था। हम पहले दिखला चुके हैं कि महाभारतयुद्ध के बाद तक्षशिला में नाग वंश बहुत शक्तिशाली हो गया था। इस का विनाश काश्मीर के राजा खगेन्द्र ने किया।

खगेन्द्र की मृत्यु पर सुरेन्द्र काश्मीर का राजा बना। यह बहुत धर्मात्मा राजा हुवा है। सुरेन्द्र पुत्र हीन था अतः उस के साथ गोनन्द का राजवंश समाप्त हो गया और गोधर काश्मीर के राजसिंहासन पर आरूढ़ हुवा। गोधर का लड़का सुवर्ण महात्मा बुद्ध का समकालीन था। स्वतन्त्र राज्य के रूप में काश्मीर की स्थिति बहुत काल तक विद्यमान रही। अन्त में मौर्य सम्राट् अशोक ने इसे अपने विशाल साम्राज्य में मिला लिया।

अन्य राज्य

मगध, पौरव, कोशल और काश्मीर के सिवाय अन्य राज्यों के सम्बन्ध में पुराणों से कुछ प्रकाश नहीं पड़ता। अन्य राजवंशों की वंशावलियां तक नहीं मिलती। पुराणों से केवल इतना पता लगता है कि ऊपर वर्णित राजवंशों के सिवाय पञ्चाल में २७, काशी में २४, हैहय देश में २८, कलिङ्ग में ३२, अश्मक देश में २५, मिथिला में २८, शूरसेन में २३ और वीत होत्र में २० राजाओं ने राज्य किया। साथ ही पुराणों में यह भी लिखा है कि यह सब राजा समकालीन थे। साम्राज्यवादी शक्तिशाली राजाओं के प्रयत्नों से धीरे २ ये राज्य नष्ट हो गये। अवन्ति और वीत होत्र के राजाओं का मगधसम्राट् रिपुञ्जय के महामन्त्री और प्रद्योतवंश के संस्थापक पुलिक ने अन्त किया। इसी तरह काशी का अन्त करने के लिये कोशल तथा मगध के राजा निरन्तर प्रयत्न करते रहे। कलिङ्ग बहुत समय तक अपनी स्वतन्त्रता कायम रख सका। पर मगध राज महापद्मनन्द ने उस पर आक्रमण कर उसे भी अपने आधीन कर लिया। इसी तरह से अन्य राज्य भी साम्राज्यवादी राजाओं द्वारा धीरे धीरे नष्ट कर दिये गये।

---

* सातवाँ अध्याय *

सैमीरेमिस का आक्रमण.

[१६६४ ई० पू० के लगभग]

प्राचीन पाश्चात्य-साहित्य में बहुत सी ऐसी कथायें संगृहीत हैं, जिनका भारतवर्ष के साथ सम्बन्ध है। इनसे भारतीय इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। ऐतिहासिक लोग भारत और विदेशों के राजनीतिक सम्बन्ध का प्रारम्भ प्रायः सिकन्दर के भारतीय आक्रमण से करते हैं। परन्तु बात यह नहीं है। सिकन्दर से पूर्व भी भारत का विदेशों के साथ राजनीतिक सम्बन्ध था और अनेक विदेशी आक्रान्ताओं ने भारत पर आक्रमण किये थे।

प्राचीन पाश्चात्य-साहित्य के अनुसार सब से पहला विदेशी आक्रान्ता ओसिरिस है। यह २२२० ई० पू० के लगभग मिश्र में राज्य कर रहा था। इसने बहुत से प्रदेशों को जीत कर अपने आधीन किया और भारत पर भी आक्रमण किये। भारतीय सेनायें ओसिरिस के शक्तिशाली तथा मायावी सैनिकों के सम्मुख न ठहर सकीं और भारत मिश्र-सम्राट् के आधीन हो गया। ओसिरिस तीन वर्ष तक भारत में रहा और अपरिमित तथा अबाध रूप से राज्य करता रहा। विजित प्रदेशों में अपनी विजय को अनन्त काल तक स्मरण रखने के लिये उस ने बहुत से स्तम्भ लगवाये थे, जिन पर कि अपनी विजयों का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। ऐसे विजय-स्तम्भ भारत में गङ्गानदी के तट पर भी स्थापित कराये गये थे। ओसिरिस ने भारत में अनेक नवीन बातों का भी प्रचार किया था।

ओसिरिस के बाद दूसरा विदेशी आक्रान्ता हरक्युलीज़ है। पाश्चात्य कथाओं में यह सब से अधिक बलवान और साहसी व्यक्ति है। अपने समय में कोई भी व्यक्ति इसे पराभूत न कर सकता था। हरक्युलीज़ ने भारत पर भी आक्रमण किया और इस देश को अपने आधीन कर लिया। यहाँ उस ने अनेक नगर बसाये और भारत के सब से प्रसिद्ध नगर पाटलीपुत्र में भी अपने महलों का निर्माण कराया।

इन दोनों आक्रान्ताओं का वर्णन केवल पाश्चात्य कथाओं में पाया जाता है। निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि वे वस्तुतः इतिहास-सिद्ध व्यक्ति हैं। बहुत से पाश्चात्य लेखकों ने भी इन प्राचीन कथाओं की सत्यता में सन्देह प्रगट किया है।

ऐतिहासिक दृष्टि से भारत पर पहले पहल सैमिरेमिस ने आक्रमण किया। यह असीरिया की रानी थी। सैमीरेमिस के पति का नाम 'नीनस' था। प्रसिद्ध प्राचीन नगर 'निनेवा' की स्थापना इसी ने की थी। यह असीरिया और वैबिलोनिया के संयुक्त विशाल साम्राज्य का स्वामी था। नीनस का विशाल साम्राज्य सिन्धनदी से नाइल नदी तक और एशिया की खाड़ी से टैनैस के तट तक फैला हुआ था। पति की मृत्यु पर सैमीरेमिस इस विस्तृत साम्राज्य की शासिका बनी। साम्राज्य विस्तार की इच्छा से सैमीरेमिस ने भारतवर्ष पर आक्रमण करने की तैयारियां प्रारम्भ कीं। इस देश की अतुल सम्पत्ति, हरे भरे मैदान, वैभव आदि की कथायें सम्पूर्ण पाश्चात्य जगत में विख्यात थीं। सैमीरेमिस ने ऐसे समृद्ध देश को जीतने का पूरा निश्चय कर लिया। सारे साम्राज्य से सेनायें एकत्रित की जाने लगीं। असीरिया के आधीन सब देशों के सब उत्तम सैनिकों को वैक्ट्रिया की सीमा पर इकट्ठा होने की आज्ञा दी गई। १९६४ ई० पू० के लगभग भारत पर आक्रमण प्रारम्भ किया गया।

सैमीरेमिस ने सुना हुवा था कि भारतीय सेनायें हाथियों को महत्व देती हैं। स्थलयुद्ध में हाथियों के ऊपर ही विजय आश्रित होती है। जिस के पास हाथी अधिक होते हैं, वही विजयी होता है। हाथी भारतवर्ष में ही पाये जाते हैं। असीरिया की सेना में हाथियों का सर्वथा अभाव था। अतः इस कमी को पूरा करने के लिये सैमीरेमिल ने निश्चय किया कि कृत्रिम हाथी बनवाये जावें। ऊँटों के ऊपर भैंसों की खालों को इस तरह मढ़ा गया कि वे हाथी प्रतीत होने लगें। बहुत सी खालों को जोड़ कर इस तरह सीया गया कि हाथी की शकल बन जाय। इन्हें ऊँटों पर मढ़ दिया गया और इस तरह सैमीरेमिस की हस्ति-सेना तैय्यार हो गई। उस का विचार था कि अनन्त हाथियों की सेना देख कर भारतीय लोग डर जावेंगे और सरलता से भारत को अपने आधीन किया जासकेगा।

भारत पर आक्रमण करने के लिये सिन्ध नदी को पार करना आवश्यक था। इसके लिये जहाज तथा नौकाओं की आवश्यकता थी। सम्पूर्ण साम्राज्य के जलयानों को एकत्रित होने का हुक्म दिया गया और फिज़िसिया, साइप्रस आदि के प्रवीण मल्लाह अपने अपने जहाजों के साथ सैमीरेमिस की सहायता के लिये सिन्ध के समीप इकट्ठे होगये। साथ ही नवीन जहाजों के निर्माण के लिये सारे जङ्गलों को काट दिया गया और असीरियन साम्राज्य के कुशल कारीगर जहाज बनाने के कार्य में लग गये।

सैमीरेमिस की सेना में ४० लाख पदाति और अश्वारोही थे, १ लाख रथ, २ लाख ऊँट तथा ३ हज़ार जहाज़ थे। इसके सिवाय ४ हजार नौकायें

भी उसकी जलसेना में शामिल थीं। इस विशाल सेना को लेकर सैमिरेमिस ने बैक्ट्रिया से प्रस्थान किया। जब वह सिन्ध नदी के समीप पहुंची, तो उसने देखा कि सम्मुख शत्रु की जलसेना युद्ध के लिये तैयार है। प्राचीन पाश्चात्य लेखकों के अनुसार उस समय भारत के राजा का नाम स्टॉरोबेट्स (Staurobates) था। सम्भवतः यह पश्चिमोत्तर भारत का शासक था, इसके वंश आदि के सम्बन्ध में प्राचीन लेखक कोई परिचय नहीं देते। स्टॉरोबेट्स ने सैमिरेमिस का मुकाबला करने के लिये पूरी तरह से तैयारी की थी। वह भारत की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये सब तरह से उद्यत था।

सामने शत्रु की सेना को देखकर सैमिरेमिस ने एक दम हमला करने की आज्ञा दी। यद्यपि असीरियन सेनाओं का सेनापति डेरेक्रियन था, पर भारतीय आक्रमण में सैमिरेमिस स्वयं सेनाओं का सञ्चालन कर रही थी। सैमिरेमिस की जलसेना ने बड़े वेग भारतीय जहाजों पर आक्रमण किया। बहुत देर तक घोर युद्ध होता रहा। दोनों ओर से अद्भुत वीरता प्रदर्शित की गई। परन्तु अन्त में सैमिरेमिस की विजय हुई। उसकी सेना में फिज़ीसिया तथा अन्य जलशक्ति प्रधान देशों के बहुत से जहाज़ तथा सैनिक थे। जलयुद्ध में उनका अनुभव अद्वितीय था। एक हजार से अधिक भारतीय जहाज डुबा दिये गये और बहुत से कैद कर लिये गये। विजय के मद से मत्त होकर सैमिरेमिस ने सिन्ध के समीपवर्ती सीमा प्रदेश को लूटने का हुक्म दिया। असीरिया की सेनाओं ने स्वच्छन्दरूप से लूटमार की। दूर दूर तक के ग्रामों तथा नगरों को ध्वंस कर दिया गया। बहुतसी लूट असीरियन विजेताओं के हाथ आई।

यद्यपि सिन्ध नदी के युद्ध में भारतीयों की पराजय हुई थी, पर स्टॉरोबेट्स ने हिम्मत न छोड़ी। उसने फ़िर अपनी सेना को एकत्रित किया और सिन्धु नदी से कुछ दूरी पर सैमीरेमिस का मुकाबला करने के लिये तैयार हो गया। सैमिरेमिस ने जहाजों और नौकाओं के द्वारा सिंध नदी पर पुल बना कर अपनी विशाल सेना को पार उतार दिया और स्टॉरोबेट्स पर आक्रमण किया। पुल की रक्षा के लिये ६० हजार आदमी वहीं छोड़ दिये गये।

सैमीरेमिस ने अपने कृत्रिम हाथियों को—जिनकी संख्या ५० हजार से कम न थी—सब से आगे रखा। इतने हाथियों को देखकर पहले भारतीय सेना घबरा गई। परन्तु पीछे से उन्हें मालूम पड़ गया कि ये हाथी असली न होकर कृत्रिम हैं। सब जगह इस समाचार को फैला दिया गया और सम्पूर्ण भारतीय सेना का सारा आतङ्क इस समाचार से दूर होगया।

युद्ध प्रारम्भ हुआ। भारतीय घुड़ सवारों और रथारोहियों ने सैमीरेमिस के कृत्रिम हाथियों पर हमला किया। परन्तु समीप जाकर ऊंटों पर मढ़ी हुई कच्ची खालों से उन्हें इतनी दुर्गन्ध आई कि वे घबरा गये। बहुत से घोड़े वापिस भाग खड़े हुवे। अनेक सवार नीचे गिर पड़े और भारतीय सेना में खलबली मच गई। अवसर देखकर सैमीरेमिस ने अपने वीर योद्धाओं को आक्रमण करने की आज्ञा दी। भारतीय सेना के पैर उखड़ गये। पर ऐसे समय में स्टॉरोवेटस ने अपूर्व रणकुशलता प्रदर्शित की। उसने अपनी सेना को सम्भालने का पूरा प्रयत्न किया। उसे सफलता हुई और अपनी पदाति सेना को लेकर उसने फिर हमल किया। पीछे से हस्ति-सेना ने भी विदेशियों पर चढ़ाई करदी। घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया। बहुत देर तक लड़ाई होती रही पर अन्त में असीरियल सेना घबरा गई। भारत के हाथी संग्राम क्षेत्र में बड़े आवेश के साथ विदेशी सेना को पद दलित कर रहे थे। दूसरी तरफ सैमीरेमिस के नकली हाथी असली हाथियों का काम न कर सके, वे भार स्वरूप हो गये और उन्होंने असीरियन सेना के सञ्चालन में अनेक बाधायें उपस्थित करनी शुरु कर दीं। परिणाम यह हुवा कि असीरियन आक्रान्ताओं का धैर्य छूट गया। वे भागने लग गये। भारतीयों ने सिन्ध नदी तक उनका पीछा किया और विदेशी सेना बुरी तरह कतल की गई।

इस सारे समय में स्टॉरोबेटस एक हाथी पर बैठा हुआ सेना का सञ्चालन कर रहा था। अन्त में उसका सैमिरेमिस के साथ साक्षात्कार हुवा। दोनों में संग्राम छिड़ गया। सैमिरेमिस ने चाहा कि स्टॉरोबेटस को मार कर अपने पराजित होते हुवे पक्ष को सम्भाल ले। पर उस का मनोरथ सफल न हुवा। स्टॉरोबेटस बड़ा वीर पुरुष था। सम्मुख युद्ध में उसने सैमीरेमिस को पराजित कर दिया। वह बुरी तरह घायल हुई और अपनी सेना के साथ स्वयं भी भाग खड़ी हुई। सिन्ध नदी को पार करने में भी असीरियन सेना का संहार हुआ। भारतीय सेना उनका पीछा कर रही थी और उनके पास सिन्ध के तंग पुल पर से गुज़रने के सिवाय अन्य कोई रास्ता न था। परिणाम यह हुवा कि बहुत से विदेशी सिन्ध में डूब कर मर गये। बहुत थोड़े असीरियन सैनिक सकुशल सिन्ध नदी को पार कर सके।

अनेक लेखकों ने लिखा है कि सैमिरेमिस भी इस युद्ध में मारी गई। कुछ लेखकों के अनुसार वह केवल २० सैनिकों के साथ अपने देश को वापिस लौटी। इस तरह, भारतवर्ष पर विदेशियों का यह पहला ऐतिहासिक आक्रमण समाप्त हुवा। इस में भारत को बड़ी भारी विजय हुई।

* आठवाँ अध्याय *

प्राग्बौद्ध काल के १६ राज्य.

बौद्ध साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि महात्मा बुद्ध के समय से कुछ पहले भारत में १६ राज्य (षोडष महाजनपद) विद्यमान थे। इन राज्यों का संक्षिप्तरूप से इस प्रकार उल्लेख किया जा सकता है—

१. मगध का राज्य— इसकी राजधानी राजगृह थी। यहाँ शैशुनागवंश के राजा राज्य कर रहे थे। महात्मा बुद्ध के समय में बिम्बिसार और फिर अजातशत्रु मगध के राजसिंहासन पर आरूढ़ हुवे। इस समय में मगध के राजा बहुत शक्तिशाली थे। वे साम्राज्य फैलाने का बड़ी तेज़ी के साथ प्रयत्न कर रहे थे।

२. कोशल का राज्य— इसकी राजधानी श्रावस्ती थी। बुद्ध के समय में यहाँ राजा प्रसेनजित् और फिर राजा विडूडभ (पुराणों के अनुसार क्षुद्रक) ने शासन किया। कोशल के राजा भी बहुत प्रतापशाली थे। वे भी अपने साम्राज्य को बढ़ाने में प्रयत्न शील थे।

३. वत्स या वंश का राज्य—इस की राजधानी कौशाम्बि थी। पाण्डवों के वंशज इसी स्थान पर राज्य करते थे। बुद्ध के समय में यहां परन्तप और फिर उदयन ने राज्य किया।

४. अवन्ति का राज्य— इस की राजधानी उज्जैन थी। यहां पर बुद्ध के समय में राजा प्रद्योत राज्य कर रहा था।

प्राग्बौद्धकाल में ये चार राज्य सब से अधिक शक्तिशाली थे। इन में परस्पर साम्राज्य के लिये संघर्षण चल रहा था। मगध और कोशल तथा अवन्ती और वत्स विशेष रूप से एक दूसरे का विनाश करने के लिये प्रयत्न कर रहे थे।

५. काशी— प्राचीन समय में काशी का राज्य बहुत प्रबल था। परन्तु पीछे से समीप वर्ती मगध और कोशल के साम्राज्यवाद में पिस कर यह विनष्ट हो गया। बौद्ध काल से पहले इस की पृथक् सत्ता विद्यमान थी। परन्तु मगध और कोशल दोनों इस को निगल जाने के लिये यत्न कर रहे थे। अन्त में यह राज्य मगध साम्राज्य में लीन हो गया।

६. **अंग**— यह राज्य मगध के पूर्व में था और इस की राजधानी चम्पा थी। किसी समय में यह राज्य भी बहुत शक्तिशाली था। कुछ समय के लिये मगध भी इस के आधीन हो गया था और राजगृह को अंग राज्य के अन्तर्गत समझा जाता था। अंग का राजा ब्रह्मदत्त वत्सराज की सहायता से मगध को पराजित करने में समर्थ हुवा था। परन्तु शक्ति के संघर्ष में, अन्त में मगध कीही विजय हुई और मगध के राजा बिम्बिसार ने अंग को जीत कर अपने साम्राज्य में मिला लिया।

७. **चेदि**— यह राज्य यमुना के समीप था। जिस प्रदेश को वर्तमान समय में बुन्देलखण्ड कहा जाता है, वह तथा उसके समीपवर्त्ती देश को ही प्राचीन समय में चेदि राज्य कहते थे। इस की राजधानी शुक्तिमती नगरी थी।

८. **कुरु**— इस की राजधानी इन्द्रप्रस्थ थी। यहां पर भी युधिष्ठिर के वंशज राज्य करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि पिछले समय में हस्तिनापुर का राज्य दो भागों में विभक्त हो गया था। मुख्य राजवंश पहले हस्तिनापुर और पीछे कौशाम्बी में राज्य करता रहा और इन्द्रप्रस्थ में एक नवीन राज्य की स्थापना हुई। सम्भवतः, यह राज्य आगे चल कर एक गणराज्य वा प्रजातन्त्र-राज्य के रूप में परिणत होता है।

९. **पाञ्चाल**— प्राचीन समय में पाञ्चाल का प्रदेश दो भागों में विभक्त था। उत्तर पाञ्चाल की राजधानी अहिच्छत्र और दक्षिण पाञ्चाल की राजधानी काम्पिल्य थी। इन में उत्तरीय पाञ्चाल का राज्य अधिक शक्तिशाली न था। उस को जीत लेने के लिये कुरु तथा दक्षिण पाञ्चाल में संघर्ष चल रहा था। अहिच्छत्र का राज्य कभी कुरु राज्य के आधीन होता था, तो कभी दक्षिण पाञ्चाल के। पाञ्चाल राज्य का इतिहास सर्वथा अन्धकार मय है। ऐसा प्रतीत होता है कि पीछे से यहां पर भी गणराज्य स्थापित हो गया था।

१०. **मत्स्य**— इसकी राजधानी विराट् नगर या वैराट थी। यह नगर वर्त्तमान जयपुर राज्य में है। यह राज्य बहुत शक्तिशाली न था। पड़ौस के साम्राज्यवादी राज्य इसे जीतने के लिये निरन्तर प्रयत्न कर रहे थे। पहले यह चेदि राज के आधीन हुवा और फिर मगध ने सदा के लिये इसे अपने साम्राज्य में मिला लिया। कुरु और पाञ्चाल की तरह पीछे से इस में गण-राज्य स्थापित होगया था।

११. **शूरसेन**— इस राज की राजधानी मथुरा थी। यहाँ यदु या यादव वंश राज करता था। बुद्ध के समय में शूरसेन राज पर 'अवन्तिपुत्त' नामी राजा का अधिकार था।

१२. अस्सक या अश्मक का राज्य— इसकी राजधानी 'पोटलि' नगरी थी। इसे आधीन करने के लिये भी समीपवर्त्ती राज्य प्रयत्न कर रहे थे। एक समय में यह काशी के भी आधीन रह चुका था। परन्तु बुद्ध के समय में इसकी स्वतन्त्र सत्ता थी।

१३. गान्धार— इसकी राजधानी तक्षशिला थी। पश्चिमोत्तर भारत का बहुत सा प्रदेश गान्धारराज्य के अन्तर्गत था। महात्मा बुद्ध के समय में गान्धारराज्य पर राजा पुक्कुसाति राज्य कर रहा था। पुक्कुसाति ने मगधराज बिम्बिसार के पास एक दूतमण्डल भेजा था।

१४. काम्बोज— इसकी राजधानी द्वारक थी। पिछले समय में यहाँ भी गण राज्य की स्थापना होगई थी। काम्बोज के इतिहास के सम्बन्ध में कोई उल्लेख योग्य बात ज्ञात नहीं होसकी है।

१५. वैज्जेन राज्य संघ— प्राग्बौद्ध काल में वैज्जेन राज्य संघ की बहुत महत्ता थी। इसमें आठ गण राज्य सम्मिलित थे। इन आठ संघात्मक राज्यों (अष्टकुल) में विदेह और लिच्छवी राज्य सब से अधिक महत्त्वपूर्ण थे। इनके सिवाय ज्ञात्रिक और वज्जी राज्य भी अच्छे शक्तिशाली थे। विदेह की राजधानी मिथिला थी। इसी तरह लिच्छवी राज्य की राजधानी वैशाली थी। ज्ञात्रिक राज्य का मुख्य नगर कुण्डग्राम था। जैनधर्म का प्रवर्त्तक आचार्य्य महावीर यहीं उत्पन्न हुवा था।

वैज्जेन के सङ्घ-राज्य को नष्ट करने के लिये मगध के साम्राज्यवादी राजाओं ने बहुत प्रयत्न किये। पर वैज्जेन की शक्ति कम न थी। यह सङ्घ-राज्य बड़े धैर्य के साथ साम्राज्यवाद का मुकाबला करता रहा। अन्त में अजातशत्रु ने अपने प्रधानमन्त्री वस्सकार की कूटनीति से इस सङ्घराज्य का विनाश किया।

१६. मल्ल— यह राज्य वैज्जेन राज्य-सङ्घ के उत्तर में था। इस में गण-तन्त्र राज्य विद्यमान था।

इन सोलह राज्यों के सिवाय निम्नलिखित गण-राज्य भी प्राग्बौद्ध काल में विद्यमान थे—

१. सुंसुमार पर्वत के भग्ग
२. अल्लकप्प के बुली

३. केसपुत्त के कालाम

४. रामगाम के कोळिय

५. पिप्पलिवन के मोरिय

६. कपिलवस्तु के शाक्य

महात्मा बुद्ध का जन्म कपिलवस्तु में ही हुआ था। बौद्ध साहित्य के आधार पर प्राग्बौद्ध काल के विविध राज्यों की जो सूची दी गई है, वह पूर्ण नहीं है। परन्तु उससे उस समय के भारत के राजनीतिक विभागों पर बहुत अच्छा प्रकाश पड़ता है।

महाभारत काल के विविधराज्य किस प्रकार प्राग्बौद्ध काल के इन राज्यों में परिणत हो गये, इसका कोई वृत्तान्त हमें ज्ञात नहीं है। परन्तु इस समय के इतिहास में एक प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। बहुत से राज्य- जहाँ पर कि पहले राजा लोगों का शासन था— इस काल में गण-राज्य बन गये। किन परिस्थियों ने इन्हें इस रूप में परिवर्तित होने के लिये बाधित किया था, इसका ठीक तरह समझना अभी सम्भव नहीं है।

तृतीय भाग

शुक्रनीतिसार कालीन भारत

प्रथम अध्याय
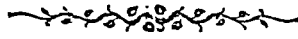
शुक्र नीति सार

पूर्ववचन— महाभारत के आधार पर हम तत्कालीन सभ्यता तथा सामाजिक दशा पर अपने इतिहास के इस खण्ड के प्रथम भाग में पर्याप्त प्रकाश डाल चुके हैं। इस भाग में महाभारत से लेकर महात्मा बुद्ध के जन्म से पूर्व तक के भारतीय सभ्यता के इतिहास पर कुछ प्रकाश डाला जायगा।

प्रायः सभी पाश्चात्य ऐतिहासिक इस समय का इतिहास लिखते हुए सूत्र ग्रन्थों तथा ब्राह्मण ग्रन्थों का आश्रय लिया करते हैं। परन्तु हम ऐतिहासिक तथा शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा अपने इतिहास के प्रथम खण्ड में इस बात को भली प्रकार सिद्ध कर चुके हैं कि सूत्र ग्रन्थों तथा ब्राह्मण ग्रन्थों का निर्माण काल महाभारत से बहुत पूर्व है, इस अवस्था में महाभारत के बाद का इतिहास लिखते हुए हम इन ग्रन्थों का आश्रय नहीं ले सकते।

दुर्भाग्य से भारतवर्ष के इतिहास का यह काल नितान्त अन्धकार पूर्ण है। कतिपय पौराणिक गाथाओं को छोड़ कर प्राचीन संस्कृत साहित्य के किसी भी ग्रन्थ द्वारा इस काल के राजनीतिक इतिहास के सम्बन्ध में कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। इसी कारण द्वितीय भाग में इस काल के राजनीतिक इतिहास का अनुशीलन करते हुए हमने केवल पुराण ग्रन्थों को ही आधार माना है। परन्तु इस काल की सभ्यता का इतिहास लिखते हुए हमें एक और ग्रन्थ से बहुत प्रामाणिक और अमूल्य सहायता मिल सकती है। यह ग्रन्थरत्न आचार्य शुक्र के अनुयायियों द्वारा संग्रहीत और प्रणीत "शुक्र नीति सार" है। हमारी स्थापना है कि इस ग्रन्थ का निर्माण काल महाभारत के बाद से लेकर महात्मा बुद्ध के जन्म से पूर्व तक के बीच में ही किसी समय है। अतः प्रथम अध्याय में शुक्रनीति सार के काल निर्णय के सम्बन्ध में कुछ लिख कर इस ग्रन्थ के आधार पर ही तत्कालीन सभ्यता तथा सामाजिक और राजनीतिक दशा पर प्रकाश डालेंगे।

शुक्र नीति सार— यद्यपि आचार्य शुक्र महाभारत काल से भी बहुत पुराने हैं तथापि यह शुक्रनीति सार नाम का दण्डनीति तथा राजधर्म का प्रतिपादक ग्रन्थ महाभारत के बाद ही इस रूप में लाया गया है । यह शुक्राचार्य द्वारा प्रणीत शुक्रनीति नहीं है, उस के आधार पर लिखा हुआ सार-ग्रन्थ है, यह इस के नाम से ही प्रतीत होता है । शुक्र द्वारा प्रणीत सम्पूर्ण शुक्रनीति आज उपलब्ध ही नहीं होती ।

आचार्य शुक्र कौन हैं ?— शुक्राचार्य, यादव वंश के प्रारम्भ के समय के हैं । वह दैत्य गुरु, मघाभव, सौदासर्चि, कविपुत्र, काव्य, भृगुपुत्र, उशनाः आदि बहुत से नामों से प्रसिद्ध हैं ।[1] देवों से युद्ध छिड़ने पर दैत्यों ने उन्हें अपना प्रधानामात्य और पुरोहित चुना था । दैत्यों के राजा का नाम वृषपर्वा था, शुक्र उसी के प्रधानामात्य थे । इसी समय की कच, देवयानी, ययाति और शर्मिष्ठा आदि की कथाएं भी प्रसिद्ध हैं । शुक्र का एक और परिचय भी प्राप्त होता है,—मनुष्य समाज का सब से पहला राजा वेन का पुत्र पृथु हुवा है, शुक्राचार्य इस के प्रधानामात्य थे । दूसरी ओर उन्हीं दिनों देवताओं के गुरु और प्रधानामात्य बृहस्पति थे । ये दोनों आचार्य अपने समय के सर्वोत्तम वक्ता और नीतिशास्त्रों के सर्वश्रेष्ठ प्रामाणिक व्यक्ति थे । दोनों एक दूसरे से खूब प्रतिस्पर्धा करते थे । पीछे से आने वाले दण्डनीति शास्त्र के सभी विद्वानों ने इन दोनों आचार्यों का नाम नाम बड़ी श्रद्धा से लिया है ।

पञ्चतन्त्र में प्राचीन गुरुओं को प्रणाम करते हुए सब से पूर्व मनु, उस के बाद बृहस्पति और शुक्र, फिर पराशर और व्यास का नाम लिया गया है ।[2] कौटल्य अर्थशास्त्र में भी जगह जगह "इत्यौशनसः" लिख कर आचार्य शुक्र के सम्प्रदाय की प्रामाणिकता स्वीकार की गई है ।

काल निर्णय— प्राचीन संस्कृतसाहित्य में औशनस दण्डनीति बहुत उत्कृष्ट और प्रामाणिक मानी गई है परन्तु वर्त्तमान समय में शुक्रनीति-सार नाम से उपलब्ध होने वाले ग्रन्थ का काल निर्णय करना बहुत कठिन

---

१. शुक्रो मघाभवः काव्यः उशना भार्गवः कविः ।
सौदासार्चिः दैत्य गुरुः धिष्ण्यः··············· ॥
(अनेकार्थ रत्नमाला अ० २ । ३३ । ३४)

२. मनवे वाचस्पतये शुक्राय पराशराय ससुताय ।
चाणक्याय च विदुषे नमोस्तु नय शास्त्रकर्तृभ्यः ॥
(पञ्चतन्त्र कथामुख)

है। इस समय शुक्रनीति सार के भिन्न २ संस्करणों में जो थोड़ा बहुत भेद पाया जाता है उस को देख कर उसे शुक्र द्वारा निर्मित ग्रन्थ मानना कठिन हो जाता है। यह माना जा सकता है कि सम्भवतः आचार्य शुक्र के विस्तृत ग्रन्थ को इस नाम से सार रूप में संक्षिप्त कर दिया गया हो।

महाभारत शान्ति पर्व में सम्पूर्ण दण्डनीतियों का उद्भव इस प्रकार माना गया है—

"दैत्यों से पराजित होकर सब देवता मिल कर ब्रह्मा के पास गए, और उनको अपना कष्ट सुनाया। इस पर देवताओं को आश्वासन देकर उन्हें निपुण बनाने के लिए स्वयं ब्रह्मा ने धर्म, अर्थ और काम का प्रतिपादक एक शास्त्र सुनाया। अन्त में ब्रह्मा ने कहा कि सब लोकों के उपकार के लिये और त्रिवर्गों में धर्म, अर्थ और काम की स्थापना के लिये मैंने तुम्हें यह शास्त्र सुनाया है। यह दण्ड के सहित संसार की रक्षा में समर्थ हो कर निग्रह (दण्ड) और अनुग्रह (कृपा) करता हुवा संसार में व्याप्त रहेगा। यह शास्त्र नियम बनाने और दण्ड विधान का निर्देश करता है इस लिये इसे दण्डनीति शास्त्र कहा जायगा। यह षाड्गुण्य रूप (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधी भाव) से महात्मा लोगों में भी रहेगा; इस में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों का वर्णन किया गया है। इसी नीति को सब से पूर्व शंकर ने ग्रहण किया। शंकर के बहुरूप, विशालाक्ष, शिव, स्थाणु, उमापति आदि नाम प्रसिद्ध हुए।

इस के बाद शिव ने देखा कि यह ग्रन्थ तो इतना बड़ा है कि इसे पढ़ते २ मनुष्य की सम्पूर्ण आयु ही व्यतीत हो जायगी, इस लिये संक्षेप कर के उसने १ लाख की जगह १० हजार अध्याय कर दिये। इस संक्षेप को विशालाक्षकृत दण्डनीति शास्त्र समझना चाहिये। इन्द्र ने इस को और अधिक संक्षिप्त करके ५ हजार अध्यायों का कर दिया। इस सार का नाम बाहुदण्डक (या बाहु दन्तक) दण्ड नीति शास्त्र प्रसिद्ध हुवा। इस के बाद बृहस्पति ने बार्हस्पत्य दण्डनीति शास्त्र नाम से इसे और अधिक संक्षिप्त कर के ३ हज़ार अध्यायों का कर दिया। अन्त में आचार्य शुक्र ने इसी दण्ड-नीति को और अधिक संक्षिप्त करके १ हज़ार अध्यायों का कर दिया। इस प्रकार यह शुक्रनीति दण्ड शास्त्र संक्षिप्त हो कर इस रूप में पहुंचा है।"[1]

---

१. तानुवाच सुरान् सर्वान् स्वयंभूर्भगवाँस्ततः।
श्रेयोऽहं चिन्तयिष्यामि येतु वोभीः सुरर्षभाः ॥ २८ ॥
ततोऽध्याय शतं चक्रे सहस्राणां स्वबुद्धिजम् ।

इस प्राचीन प्रवाद के आधार पर हम कह सकते हैं कि यह केवल ५ अध्यायों वाला शुक्रनीति सार उस १ सहस्र अध्यायों वाली शुक्रनीति का अत्यन्त संक्षिप्त सार मात्र है। यह सार महाभारत के बाद ही बनाया गया। महाशय गुस्ताव औपर्ट पी. एच, डी. ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन भारत के शस्त्र, सैन्यसंगठन और राज नीतिक सिद्धान्त' (Weapons, Army Organisation and Political Maxims in Ancient India) में लिखा है—

"शुक्र नीति के दूसरे श्लोक में ही लिखा है कि ब्रह्मा का नीतिशास्त्र सौ, सौ श्लोकों वाले एक लाख अध्यायों का था।[1] जिस प्रकार मानव धर्म-शास्त्र भी अब उतना बड़ा उपलब्ध नहीं होता जितना कि वह प्राचीन काल

यत्र धर्मस्तथैवार्थः कामश्चैवाभि वर्णितः ॥ ७७ ॥
एतत्कृत्वा शुभंशास्त्रं ततः स भगवान् प्रभुः ।
देवानुवाच संहृष्टः सर्वान् शुक्र पुरोगमान् ॥ ७८ ॥
उपकाराय लोकस्य त्रिवर्गस्थापनाय च ।
नवनीतं सरस्वत्या बुद्धिरेषा प्रभाषिता ॥ ७९ ॥
दण्डेन सहिता ह्येषा लोक रक्षण कारिका ।
निग्रहानुग्रहरता लोकाननुचरिष्यति ॥ ८० ॥
दण्डेन नीयते चेदं दण्डं नयति वा पुनः ।
दण्डनीतिरिति ख्याता त्रींल्लोकानतिवर्तते ॥ ८१ ॥
षाड्गुण्यरसारैषा स्थास्यत्यग्रे महात्मसु ।
धर्मार्थ काम मोक्षाश्च सकलाह्यत्रशब्दिताः ॥ ८२ ॥
ततस्तां भगवान्नीतिं पूर्वं जग्राह शंकरः ।
बहुरूपो विशालाक्षः शिवः स्थाणुरुमापतिः ॥ ८३ ॥
प्रजानामायुषो ह्रासं विज्ञाय भगवान् शिवः ।
सञ्चिक्षेप ततः शास्त्रं महार्थं ब्रह्मणाकृतम् ॥ ८९ ॥
वैशालाक्षमिति प्रोक्तः तदिन्द्रः प्रत्यपद्यत ।
दशाध्याय सहस्राणि सुब्रह्मण्यो महातपाः ९० ॥
भगवानपि तत् शास्त्रं देवात्प्राप्य महेश्वरात् ।
प्रजानां हितमन्विच्छन् संचिक्षेप पुरन्दरः ॥ ९१ ॥
सहस्रैः पञ्चभिस्तापि यदुक्तं बाहुदन्तकम् ।
अध्यायानां सहस्रैस्तु त्रिभिरेव बृहस्पतिः ।
संचिक्षेपेश्वरो बुद्ध्या बार्हस्पत्यं यदुच्यते ॥ ९२ ॥
अध्यायानां सहस्रेण काव्य संक्षेपमब्रवीत् ।
तच्छास्त्रममितप्रज्ञो योगाचार्यो महायशाः ॥ ९३ ॥
एवं लोकानुरोधेन शास्त्रमेतन् महर्षिभिः ।
संक्षिप्तमायुर्विज्ञाय मर्त्यानां ह्रासमेव च ॥ ९४ ॥ (महाभारत शान्ति० अ० ५८)

१. शतश्लोक श्लोकमितं नीतिसारमथोक्तवान् ॥ २ ॥ (शुक्र० अ० १)

में था, उसी प्रकार महाभारत के लेखानुसार शुक्रनीति भी आज प्राचीन विस्तृत रूप में प्राप्त नहीं होती। शुक्रनीतिसार के चतुर्थ अध्याय में लिखा है कि इस में कुल मिला कर २२०० श्लोक हैं।[1] यद्यपि प्राचीन लिखित पुस्तकों की पद्य संख्याओं में कुछ कुछ भेद है तथापि एक शुक्रनीतिसार ऐसा भी उपलब्ध होता है जिस में ठीक २२०० श्लोक ही हैं। परन्तु अन्य हस्तलिखित पुस्तकें इस में सन्देह डाल देती हैं।[2]

शान्ति पर्व, राजधर्म प्रकरण के ५८ वें अध्याय में शुक्र को शास्त्रकार माना गया है।[3] इसी प्रकार कामन्दकीयादि में भी उसे शास्त्रकार स्वीकार किया गया है। महाभारत में भी इस के उदाहरण मिलते हैं। इसी आधार कुछ लोगों का कहना है कि यह ग्रन्थ महाभारत से पूर्व बना। परन्तु इस के विरुद्ध भी युक्तियां प्राप्त होती हैं।

महाभारत, कामन्दक, हरिवंश, पञ्चतन्त्रादि में वास्तविक शुक्रनीति के उदाहरण भी पाये जाते हैं उन में से कुछ यहां दिये जाते हैं—

"न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्तेऽपि न विश्वसेत्" इत्यादि नीतिवाक्य शुक्रनीति, कामन्दक, हरिवंश और पञ्चतन्त्र में समान रूप से पाये जाते हैं, कुछ पद्यों में थोड़ा बहुत पाठ भेद अवश्य है।

पञ्चतन्त्र में "नाग्नि शेषं शत्रु शेषम्" पद्यों को शुक्र के नाम से उद्धृत किया गया है, यह पद्य शुक्रनीति में भी उपलब्ध होता है।

कामन्दक नीतिशास्त्र तथा कौटिल्य अर्थशास्त्र में उशना के नाम पर २० अमात्य रखने का उद्धरण दिया है। यह भी शुक्रनीति में प्राप्त होता है।

इस प्रकार इन ग्रन्थों में शुक्रनीति के अन्य भी बहुत से उदारण मिलते हैं अतः हम कह सकते हैं कि शुक्रनीति का प्रादुर्भाव इस सब ग्रन्थों से पूर्व हो चुका था। परन्तु पाठभेद अवश्य प्राप्त होते हैं इस का कारण यही प्रतीत होता है कि उन दिनों स्मृतिग्रन्थों के शब्दानुक्रम को इतनी मुख्यता दी नहीं जाती थी जितनी कि स्मृतिसिद्धान्तों को। इसी से किसी स्मृतिकार

---

१. मन्वाद्यैरादृतोयोर्थः तदर्थो भार्गवेण वै।
द्वाविंशति शतं श्लोका नीतिसारे प्रकीर्तिताः ॥ २४६ ॥
(शुक्र० अ० ४)

२. वर्तमान शुक्र नीति के कलकत्ता में जीवानन्द के प्रबन्ध से छपे संस्करण में २५६५ पद्य हैं।

३. वैशालाक्षश्च भगवान् काव्यश्चैव महातपा
सहस्राक्षो महेन्द्रश्च तथा प्राचेतसो मनुः ॥ २ ॥
(महा० शान्ति० अ० ५८)

के ; सिद्धान्त को अपने शब्दों में ही व्यक्त कर के नवीन स्मृतिकार सन्तुष्ट हो जाते थे।

अब प्रश्न यह है कि शुक्रनीति इस प्रकार संक्षिप्त कब हुई। हमारी सम्मति में इस का एक मात्र यहीं उत्तर है कि वर्त्तमान शुक्रनीतिसार शुक्र का बनाया हुवा ही नहीं है, प्रत्युत महाभारत काल के बाद किसी अन्य ने आचार्य शुक्र के सिद्धान्तों को लेकर इस ग्रन्थ की रचना की है। इस का सब से प्रबल प्रमाण यही है कि इस सार में कृष्ण और सुभद्रा तथा दुर्योधन और जन्मेजय के दृष्टान्त दिए गए हैं।[1] इस से हम इस का काल कामन्दक, कौटिल्य आदि नीतिग्रन्थों की रचना से पूर्व, अर्थात् बौद्ध काल से पूर्व, निर्धारित कर सकते हैं।

महाभारत राज धर्मानुशासन में उशना की निम्नलिखित उक्ति का उल्लेख किया गया है—

"धर्म की अपेक्षा करके राजा अपने धर्मानुसार शस्त्र उठा कर घात करने के लिये आते हुए वेदान्त पारंगत ब्राह्मण को भी दण्ड दे। जो नष्ट होते हुए धर्म की रक्षा करता है, वही धर्म को पहिचानता है; इस से राजा कभी अधर्म न करे क्योंकि मन्यु पर मन्यु विजय पाता है।"[2]

शुक्रनीति में यही बात इस प्रकार कही है—"शस्त्र उठा कर आते हुए आततायी ब्राह्मण (भ्रूण) को भी मार कर मनुष्य भ्रूणहा नहीं होता अपितु यदि वह उसे न मारे तभी भ्रूणहा होता है।"[3]

---

१. रामकृष्णेन्द्रादि देवैः कूटमेवादृतं पुरा।
कूटेन निहतो बालिर्यवनो नामुचिस्तथा ॥ ३६० ॥
न कूटनीतिरभवच्छ्री कृष्ण सदृशो नृप।
अर्जुनं प्रापितास्वस्य सुभद्रा भगिनी छलात् ॥ ५४ ॥
(शुक्र० अ० ५)
दण्डको नृपतिः कामात् क्रोधाच्च जनमेजयः ॥ १४४ ॥
नष्टा दुर्योधनाद्यास्तु नृपाः शूरबलाधिकाः ॥ ११ ॥

२. उद्यम्य शस्त्र मायान्तमपि वेद पारगम्।
निगृह्णीयात् स्वधर्मेण धर्मापेक्षी नराधिपः ॥ २९ ॥
विनश्यमाणं धर्मं हि यो न रक्षेत स्वधर्मवित्।
न तेन धर्म हासस्यात् मन्युस्तंमन्यु मृच्छति ॥ ३० ॥
(महा० शान्ति० अ० ३०)

३. उद्यम्य शस्त्रमायान्तं भ्रूणमप्याततायिनम्।
निहत्य भ्रूणहानस्यात् अहत्वा भ्रूणहाभवेत् ॥ ३३६ ॥
(शुक्र० अ० ४)

शुक्रनीति में ब्राह्मण के लिये 'भ्रूण' शब्द आया है; इसी के स्थान पर इस की व्याख्या करके महाभारत में 'वेदान्त पार ब्राह्मण' शब्द रक्खा गया है। यह महाभारत में शुक्र से ही उद्धृत किया प्रतीत होता है।

शान्तिपर्व के ५७ वें अध्याय में उशना की एक और उक्ति का उल्लेख है—"भूमि शत्रु से युद्ध न करने वाले राजा तथा ब्राह्मण को और भिक्षा न देने वाले व्यक्ति को उसी प्रकार ग्रस लेती है जिस प्रकार कि सांप बिल में रहने वाले जीवों को निगल जाता है।"[१]

शुक्रनीति में यही श्लोक इस से कुछ भिन्न रूप से पाया जाता है।[२]

इन सब प्रमाणों से यही सिद्ध होता है कि शुक्रनीति सार का निर्माण काल महाभारत के पश्चात् और बौद्ध काल से पूर्व है।

---

१. द्वाविमौ ग्रसते भूमिः सर्पोबिलशयानिव ।
राजानञ्चाविरोद्धारं ब्राह्मणञ्चा प्रवासिनम् ॥ ३ ॥
(महा० शान्ति० अ० ५७)

२. राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणञ्चापि प्रवासिनम् ।
भूमिरेतौ निर्गलति सर्पोबिलशयानिव ॥ ३३ ॥
(शुक्र० अ० ४ vii)
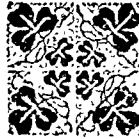
द्वितीय अध्याय
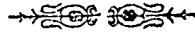
भौगोलिक अवस्था

शुक्रनीति कोई काव्य, इतिहास, पुराण या अलंकार ग्रन्थ नहीं । उस के द्वारा किसी वंश का चरित्र, किसी जाति का इतिहास, मनोरञ्जक ऐतिहासिक गाथाएं अथवा अत्युक्ति पूर्ण मानव चरित्रों का वर्णन नहीं जाना जा सकता । वह शुद्ध रूप से एक नीति शास्त्र है जिस में दण्ड-नीति तथा राज धर्म के सम्बन्ध में आदर्श विचार प्रगट किए गए हैं । इस नीति शास्त्र में उदाहरणों के रूप में जो कुछ कहा गया है उस में ज़रा भी अत्युक्ति नहीं है । यह ग्रन्थ पद्यों में इस लिये है कि उस समय पद्यरूप में ही ग्रन्थ लिखने की प्रथा थी । शुक्रनीति में भूगर्भ विद्या, खनिज विद्या, भूगोल और भौतिक विज्ञान आदि विषयों के वर्णन के लिये बहुत कम स्थान है, तथापि उस में उदाहरण के रूप से जहां कहीं किसी देश व जाति की प्रथाओं और व्यवहारों का निर्देश किया है, उस के आधार पर तत्कालीन भौगोलिक स्थिति और जातियों के सम्बन्ध में यत्किञ्चित् ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है ।

दिग्विभाग— शुक्रनीति में राजधानी का स्थान चुनते हुए दिशाओं की ओर विशेष ध्यान देने के लिये कहा गया है । राज महल के भवनों का क्रम दिशाओं के अनुसार ही होना चाहिये । पूर्व की ओर राजा के वस्त्रों की धुलाई और सफ़ाई के लिये मकान होने चाहिये, उत्तर की ओर राजा का अद्भुतालय हो, इत्यादि । इस दिग्ज्ञान के आधार पर ही तत्कालीन वास्तुविद्या (भवन निर्माण विद्या) आश्रित थी ।[1]

प्रान्त विभाग—दिशाओं के आधार पर ही भारत उस समय पांच भागों में विभक्त था— पूर्व देश, दक्षिण देश, पश्चिम देश, उत्तर देश और मध्य देश । शुक्रनीति में इन सब विभागों की भिन्न २ प्रथाओं का वर्णन कई स्थानों पर आता है ।

"पश्चिमोत्तर देश के निवासी वेद से भिन्न किसी और ग्रन्थ को प्रामाणिक मानते हैं ।"[2]

---

१. शुक्र ० अ० १।२१४ श्लोक से राजधानी निर्माण प्रकरण ।

२. ससंकर चतुर्वर्णा एकत्रैकत्र यावनाः ।
वेदभिन्न प्रमाणास्ते प्रत्यगुत्तर वासिनः ॥ ३५ ॥
(शुक्र अ० ४. ५)

"दक्षिण देश के ब्राह्मण अपनी ममेरी बहिन से विवाह कर लेना बुरा नहीं समझते। मध्यदेश के शिल्पी और बढ़ई गौ का मांस भी खाते हैं।"[1]

"उत्तर देश में स्त्रियें भी शराब पीती हैं। रजस्वला होने पर भी उन्हें छूया जा सकता है।"[2]

इन उपर्युक्त प्रथाओं के आधार पर हम इन विभागों की स्थिति बहुत सुगमता से जान सकते हैं। आज तक भी महाराष्ट्र और मद्रास में ब्राह्मणों में मामे की कन्या से विवाह करना बुरा नहीं समझा जाता। इस लिये आज कल का दक्षिणी भारत ही शुक्र का दक्षिण देश है। सुप्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यूनसांग ने भी भारत के पांच विभागों का वर्णन किया है। सम्भवतः ये पांचों विभाग भी वही शुक्र के पांच देश ही हैं। यह मान कर वर्तमान पञ्जाब और अफगानिस्तान उस समय का उत्तर देश, आसाम बंगाल पूर्व देश, सिन्ध गुजरात पश्चिम देश, महाराष्ट्र और मद्रास दक्षिण देश और युक्त प्रान्त मध्यदेश समझना चाहिये।

छोटे प्रान्त—चीनी यात्रियों के कथनानुसार तथा अन्य प्रमाणों के आधार पर सिद्ध होता है कि आचार्य शुक्र पूर्व देश-विहार में उत्पन्न हुए थे। परन्तु उनके विचार तथा उन का व्यक्तित्व केवल अपने प्रान्त तक ही सीमित नहीं था। उन्होंने अपने विचार सम्पूर्ण भारत की प्रथाओं तथा अवस्थाओं को दृष्टि में रख कर विकसित किये हैं। उन्हों ने राज्य के लेखकों की योग्यता के सम्बन्ध में लिखते हुए कहा है कि वे सब प्रान्तों तथा उन की भाषाओं का भली भांति ज्ञान रखते हों।[3] इसी प्रकार प्रचलित तुलाओं के सम्बन्ध में कहा गया है कि प्रत्येक प्रान्त के बाट भिन्न २ हैं।"[4] विदेश यात्रा तथा प्रवास के सम्बन्ध में भी कई बातें शुक्रनीति में कही गई हैं।

लंका— शुक्रनीति में लंका द्वीप का भी वर्णन है-"लंका के निवासी

---

१. उद्वह्यते दाक्षिणात्यैर्मातुलस्य सुता द्विजैः।
मध्यदेशे कर्मकाराः शिल्पिनश्च गवाशिनः ॥ ४९ ॥
(शुक्र० अ० ४ ५.)

२. मत्स्यादाश्च नराः सर्वे व्यभिचार रताः स्त्रियः।
उत्तरे मद्यपा नार्य्यः स्पृश्या नृणां रजस्वलाः ॥ ५० ॥ (शुक्र० अ० ४. ४.)

३- गणना कुशलो यस्तु देशभाषा प्रभेदवित् ।
असन्दिग्धमगूढार्थं विलिखेत् स च लेखकः ॥ १७ ॥ (शुक्र० अ० २).

४. ततश्चाष्टाढ़कः प्रोक्तो ह्यर्मणस्ते तु विंशतिः।
खारिका स्याद्विशते तद्देशे प्रमाणकम् ॥ ३८६ ॥
(शुक्र० अ० २ ii.)

नक़ली मोती बनाने में बहुत बहुत निपुण हैं, इस लिये मोती खरीदते हुए उन की पहिचान भली प्रकार कर लेनी चाहिये ।"[1]

गण्डक— "गण्डक देश के निकट हीरे और मोती बहुत अच्छे निकलते हैं ।"[2] यह प्रान्त सम्भवतः गण्डक नदी के तट पर स्थित महात्मा बुद्ध का निर्वाण स्थान कुशी नगर का प्रान्त है ।

खशः— "खश प्रान्त के वासी अपने भाई की मृत्यु हो जाने पर उस की स्त्री से स्वयं विवह कर लेते हैं । उन में यह प्राचीन प्रथा है इस लिये इस बात को पाप नहीं समझा जाता ।"[3]

राजतरङ्गिणी के अनुसार खश जाति के लोग काश्मीर के दक्षिण पश्चिम भाग में बसे हुए थे ।

पर्वत— शुक्रनीति में हाथी की उपमा पर्वत आदि से कई स्थानों पर दी है । पर्वतों की उपयोगिता शुक्र ने इन साहित्यिक उपमाओं के लिये ही सीमित नहीं रक्खी है अपितु इन की प्राकृतिक स्थिति का लाभ उठाने के लिये शुक्र ने लिखा है कि राजधानी पर्वतों से बहुत दूर नहीं बनानी चाहिये ।[4] "अगर राजधानी के निकट ही कोई पहाड़ी न हो तो उस के चारों ओर मज़बूत दीवार बनानी चाहिये ।"[5]

इसी प्रकार राष्ट्र की रक्षा के लिये गिरि दुर्ग बनाने का भी विधान है । ये दुर्ग बहुत ऊंचाई पर होते हुए भी ऐसे स्थान पर होने चाहिये जहां पानी प्रभूत मात्रा में प्राप्त हो सके । ये गिरि दुर्ग रक्षा के लिये सर्वोत्तम

---

१. तदेव हि भवेत् वेध्यमवेध्यानीतराणि च ।
कुर्वन्ति कृत्रिमं तद्वत् सिंहलद्वीप वासिनः ।। ।। ६२ ।।
(शुक्र० अ० ४)

२. रत्नजे गण्डकोद्भूते मान दोषो न सर्वथा ।
पाषाण धातु जायांतु मान दोषान् विचिन्तयेत् ।। १५३ ।।
(शुक्र० अ० ४ iv)

३. खश जाता प्रगृह्यन्ति भ्रातृभार्यामभतृकाम् ।
अनेन कर्मणा नैते प्रायश्चितदमार्हणाः ।। ५१ ।।
(शुक्र० अ० ४ v)

४. आसिन्धु नौगमाकूले नातिदूर महीधरे ।
सुरम्य सम भूदेशे राजधानीं प्रकल्पयेत् ।। २१४ ।।
(शुक्र० अ० १)

५. स्वहीन प्रतिप्राकारो ह्यसमीप महीधरः ।
परिखा च ततः कार्या खातात् द्विगुण विस्तरः ।

होते हैं। दुर्गों में केवल खाई से घिरे हुवे दुर्ग सब से निकृष्ट दर्जे के और यह गिरि दुर्ग सर्वोत्तम होते हैं।"[1]

नदियां— नदियों के सम्बन्ध में आचार्य शुक्र ने बहुत सी शिक्षाएं दी हैं-"मनुष्य तैर कर नदी को पार न करे अपितु नौका द्वारा ही उसे पार करे।"[2] नदियों पर पुल बनाने चाहिये जिस से दोनों और की सड़कों का परस्पर सम्बन्ध हो सके।"[3]

नदियों का वास्तविक उपयोग उन के द्वारा कृषि की सिंचाई करना ही बताया गया है "भूमि की सिंचाई कूप, तालाब और नदी इन तीनों में से किस से होती है यह ध्यान में रख कर ही राजा उन पर कर नियुक्त करे।"[4]

"कृषि सब से उत्तम कार्य है। और कृषि की माता नदियां हैं।"[5]

इन उदाहरणों से प्रतीत होता है कि उस समय नदियों द्वारा यथेष्ट लाभ उठाया जाता था।

समुद्र— शुक्र द्वारा वर्णित भारत की सीमा आसमुद्र विस्तृत है अतः शुक्र को समुद्रों के सम्बन्ध में भी पर्याप्त ज्ञान था। शुक्र नीति में ज्वार-भाटे की ओर भी संकेत है-

"वे राजा जो देश को सम्पन्न बनाते हैं, लोगों को इस प्रकार प्रिय होते हैं जिस प्रकार कि चांद समुद्र को प्रिय प्रतीत होता है।"[6] इसी

---

१. जल दुर्गं स्मृतं तज्ज्ञैरासमन्तान्महाजलम् ।
सुवारि पृष्ठोच्च घरं विविक्ते गिरि दुर्गमम् ॥ ४ ॥
परिखादैरिणं श्रेष्ठं पारिघं तु ततो वनम् ।
ततो धन्वं जलं तस्माद्गिरिदुर्गं ततः स्मृतम् ॥ ६ ॥
(शुक्र० अ० ४ iv)

२. नदीं तरेन्न बाहुभ्यां·········॥ २५ ॥ (शुक्र० अ० ३)

३. नदीनां सेतवः कार्या विविधा सुमनोहराः ।
नौकादि जल यानानि शरणानि नदीषु च ॥ ६१ ॥
(शुक्र० अ० ४)

४. तड़ाग वापिका कूप मातृकाद्द्वेव मातृकात् ।
देशान्नदीमातृकात् तु राज्ञानुक्रमतः सदा ॥ ११५ ॥
(शुक्र० अ० ४)

५. कृषिस्तु चोत्तमा वृत्तिर्या सारिन्मातृका मता ॥ २७४ ॥ (शुक्र० अ० ३)

६. राजास्य जगतो हेतुर्वृद्धयै वृद्धाभिसम्मतः ।
नयनानन्द जनकः शशाङ्क इव तोयधेः ॥ ६४ ॥
(शुक्र० अ० १)

तरह उपमा के रूप में सामुद्रिक जहाजों का भी जिकर है।[१]

इतना ही नहीं उस समय समुद्र पार के देशों को विजय करने की कल्पना भी थी। शुक्रनीति के प्रथम अध्याय में माण्डलिक आदि शासकों की परिभाषा सब समुद्रों तथा सातों महाद्वीपों का अधिपति की है।

नक्षत्र— नक्षत्र दो प्रकार के हैं, स्थिर और गति शील।[२] इनका ज्ञान ज्योतिष विद्या से ही सकता है। गरमी सरदी आदि ऋतु भेद तथा काल की रचना ग्रह और नक्षत्रों की गति से ही होती है।[३] नक्षत्र और ग्रहों की गति तथा उदय अस्तादि का काल घड़ी और पल गिन कर जिस विद्या से जाना जाता है वह ज्योतिष विद्या है।[४]

---

१. यदि न स्यान्नरपतिः सम्यङ् नेता ततः प्रजाः ।
प्रकर्णधारा जलधौ विप्लवेतेह नौरिव ॥ ६५ ॥
(शुक्र० अ० १)

२. जंगम स्थावराणाञ्च हीशः स्वतपसा भवेत् ।
(शुक्र १ । ५३)

३. वृष्टि शीतोष्ण नक्षत्र गतिरूप स्वभावतः ।
इष्टानिष्टाधिक न्यूनाचारैः कालस्तु भिद्यते ॥ २१ ॥
(शुक्र ० अ० १)

४. नक्षत्र ग्रह गमनैः कालो येन विधीयते ।
संहिताभिश्च होराभिः गणितैर्ज्योतिषं हि तत् ॥ ४५ ॥
(शुभ० अ० ४)

तृतीय अध्याय
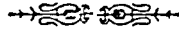
शासन व्यवस्था (क)
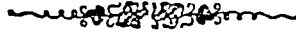
राजा और शासन प्रबन्ध

शुक्रनीति एक नीति ग्रन्थ है जिस में कि आचार्य शुक्र के राजनीतिक और समाज सम्बन्धी सिद्धान्तों तथा आदर्शों का वर्णन है। इस के द्वारा हम तत्कालीन राजाओं का इतिहास नहीं जान सकते; तथापि इस से इतना अवश्य ज्ञात हो सकता है कि उस समय समाज में राजा की स्थिति क्या थी, शासन प्रबन्ध किस प्रकार का था, कौनसी शासन व्यवस्था आदर्श समझी जाती थी। शुक्रनीति को पढ़ने से प्रतीत होता है कि तत्कालीन राज्य व्यवस्था पर्याप्त उन्नत थी, प्रजा का शासन में पर्याप्त हाथ था। उस समय एक प्रकार से भारत में 'मुकुट-धारी प्रजातन्त्र शासन' (Crowned Republic) थी।

राजा की स्थिति— आचार्य शुक्र के अनुसार राजा के पद पर विद्यमान व्यक्ति की व्यक्ति रूप से कुछ भी विशेषता नहीं है। राजा सार्वजनिक हित का उत्तरदायी प्रतिनिधि होता है इस कारण इस महान पद के प्रति आचार्य शुक्र ने विशेष सम्मान और विनय के भाव प्रगट किये हैं। परन्तु यह राजा सदैव प्रजा का आज्ञाकारी सेवक ही होना चाहिये—

"ईश्वर ने राजा को प्रजा के नौकर रूप से पैदा किया है। इस सेवा के बदले प्रजा राजा को वेतन रूप में अपनी आय का कुछ भाग (कर) देती है अतः राजा को सदैव प्रजा का पालन ही करना चाहिये।" [१]

व्यक्ति रूप से राजा की कुछ भी महत्ता नहीं है। इस बात का निदर्शन आचार्य शुक्रने बहुत कठोर शब्दों में किया है, उन्हों ने व्यक्ति रूप से राजा की उपमा कुत्ते तक से दे डाली है।

"अगर एक कुत्ते को सजा कर बढ़िया रथ पर बैठा दिया जाय तो

---

१. स्वभाग भृत्या दास्यत्वे प्रजानाञ्च नृपः कृतः।
ब्रह्मणा स्वामिरूपस्तु पालनार्थं हि सर्वदा॥ १८८॥
(शुक्र० अ० १)

क्या यह राजा के समान शानदार प्रतीत नहीं होता ? इसी से तो कर्तव्य पालन न करने वाले राजा की उपमा कवि लोग कुत्ते से ही देते हैं।[1]

राजा की यह स्थिति मान कर आचार्य शुक्र उसे सदैव प्रजा की सम्मति का सन्मान करने तथा उस पर चलने का निर्देश करते हैं— "राजा अपने उस कार्यकर्त्ता को पदच्युत कर दे जिस के विरुद्ध १०० नागरिक नालिश करते हों।"[2]

"राजा को सदैव अपने मन्त्रियों, राज सभा के सदस्यों तथा सहकारियों की सलाह लेकर ही राज्य कार्य करना चाहिये, स्वयं अपनी सम्मति के अनुसार कोई कार्य नहीं करना चाहिये। जो राजा केवल अपनी इच्छा के अनुसार ही राज्य का कार्य करता है, उस से प्रजा असन्तुष्ट हो जाती है और सदैव उसे राज्यच्युत होने का भय बना रहता है।"[3]

इस प्रकार आचार्य शुक्र के अनुसार राजा एक प्रकार से केवल मात्र अपनी प्रजा का आज्ञा पालक भृत्य ही है। शुक्रनीति के प्रारम्भ में ही राजा में ईश्वर तथा देवताओं का अंश स्वीकार किया गया है। परन्तु यह दैवीय महत्ता राजा व्यक्ति की नहीं है उस के महान कार्य तथा उच्च पद की है।

आदर्श राजा— आचार्य शुक्र के अनुसार राजा की स्थिति शासन विभाग के प्रधान (Executive head) की है अतः उस की इस महान उत्तरदायिता को दृष्टि में रख कर आचार्य शुक्र ने उस के सदाचारी होने पर बहुत बल दिया है। राजा को सदैव सावधान हो कर इन्द्रिय दमन द्वारा रहना चाहिये। उसे कभी अपनी इच्छाओं का दास नहीं बनना चाहिये। जो व्यक्ति अपने मन का ही दमन नहीं कर सकता वह सागर

---

१. राजयानारूढितः किं राजा श्वान समोऽपि च।
शुना समो न किं राजा कविभिर्भाव्यते स्म सा ॥ ३७१ ॥
(शुक्र० अ० १)

२. प्रजा शतेन संद्विष्टं संत्यजेदधिकारिणम्।
अमात्यमपि संवीक्ष्य सकृदन्याय गामिनम् ॥ ३७६ ॥
(शुक्र० अध्याय १)

३. सभ्याधिकारि प्रकृति सभासत्सुमते स्थितः।
सर्वदास्यान्नृपः प्राज्ञः स्वमते न कदाचन ॥ ३ ॥
प्रभुः स्वातन्त्र्यमापन्नो ह्यनर्थायैव कल्पते।
भिन्न राष्ट्रो भवेत् सद्योभिन्न प्रकृतिरेव च ॥ ४ ॥
(शुक्र० अ० २)

पर्यन्त विस्तृत भूमि का शासन किस प्रकार करेगा।"[1]

राजा को अगर किसी इन्द्रिय का भी कोई व्यसन लग जाय तो उसे सदैव मृत्यु का भय बना रहता है अतः उसे निर्व्यसनी होना चाहिये।[2]

इसी प्रसङ्ग में आचार्य-शुक्रने इन्द्र, दण्डक, नहुष, रावण आदि बहुत से राजाओं के उदाहरण दिये हैं। ये राजा व्यसनी थे और इसी कारण इन का नाश हो गया।[3]

इस प्रकार पूर्ण सदाचार तथा ब्रह्मचर्य पूर्वक रहते हुए राजा को प्रजा का पालन करना चाहिये। प्रजा को सुखी तथा राष्ट्र को समृद्ध करना ही राजा का एक मात्र कर्तव्य है।

जो राजा स्वयं अपने दुर्गुण नहीं जानता वह स्वयं अपना नाश ही कर रहा होता है। अतः राजा को सदैव गुप्तचरों द्वारा यह मालूम करने का यत्न करना चाहिये कि प्रजा उसकी समालोचना किस प्रकार करती है। जब कभी प्रजा राजा से ज़रा भी असन्तुष्ट हो, उसे अपने गुप्तचरों द्वारा प्रजा के अपने प्रति असन्तोष के कारण को जान लेना चाहिये। यही नहीं, राजा के अपने कर्मचारी तथा अमात्य उस की किस प्रकार की आलोचना करते हैं, कौन उसे कितना चाहता है यह सब राजा को गुप्तचरों द्वारा जानना चाहिये। परन्तु अपनी

---

१. विषयामिष लोभेन मनः प्रेरयतीन्द्रियम्।
तन्निरुन्ध्यात् प्रयत्नेन जिते तस्मिन् जितेन्द्रियः॥ ९९॥
एकस्यैवं हि योऽशक्तो मनसः सन्निवर्हणे।
महीं सागरपर्यन्तां स कथं ह्यवजेष्यति॥ १००॥
(शुक्र० अ० १)

२. एकैकशो विनिघ्नन्ति विषया विष संन्निभाः।
किं पुनः पञ्च मिलिताः न कथं नाशयन्ति हि॥ १०८॥
नट गायक गणिका मल्लषण्ढाल्प जातिषु।
योऽतिसक्तो नृपो निन्द्यः सहि शत्रुमुखे स्थितः॥ १२८॥
बुद्धिमन्तं सदाद्वेष्टि मोदते वञ्चकैः सह।
स्वदुर्गुणं नैव वेत्ति स्वात्म नाशाय सनृपः॥ १२९॥
(शुक्र० अ० १)

३. धर्म पुत्र नलाद्यास्तुः सुद्यूतेन विनाशिताः।
सकापट्यं धनायालं द्यूतं भवति तद्विदाम्॥ ११०॥
व्यायच्छन्त बहवः स्त्रीषु नाशं गता अमी।
इन्द्र दण्डक नहुष रावणाद्याः सदा ह्यतः॥ ११४॥
(शुक्र० अ० १)

निन्दा सुन कर राजा को लोगों पर नाराज़ नहीं होना चाहिये-अपने दोष हटाने का प्रयत्न करना चाहिये। अपनी प्रशंसा सुन कर उसे खुश नहीं होना चाहिये॥ इस प्रसङ्ग में शुक्र ने राम का सीता को निर्वासित करने का दृष्टान्त भी दिया है।[1]

इस प्रकार आदर्श राजा का कर्तव्य है कि वह व्यवस्था पूर्वक अपने को ईश्वर तथा दैवीय शक्तियों का प्रतिनिधि समझ कर दण्डनीति के आधार पर शासन करे।

युवराज की शिक्षा और स्थिति—राष्ट्र में युवराज की विशेष स्थिति और महत्ता है। वह भावी में राष्ट्र का शासक बनेगा, इस लिये राजा को अपने जीवन काल में ही उसे राज्य के बहुत ही महत्त्व पूर्ण कामों में लगाना चाहिये जिस से कि वह भावी के लिये पूरी तरह तैयार हो सके। अपने जीवन में ही राजा को अपने सुयोग्य ज्येष्ठ पुत्र को युवराज नियुक्त कर देना चाहिये। अपने पुत्र के अभाव में भाई के योग्य पुत्र को, उसके अभाव में किसी अन्य योग्य लड़के को गोद लेकर उसे युवराज बना देना चाहिये।[2]

बचपन से ही राजा को अपने पुत्रों के निरीक्षण तथा सुशिक्षा का पूर्ण प्रबन्ध करना चाहिये। अन्यथा राजकुमार ही किसी से बहकाये जाकर राज्य के लोभ में अपने पिता का घात कर सकते हैं। मनुष्य में महत्वाकांक्षा स्वाभाविक है, इस के वशीभूत होकर पुत्र पिता की भी हत्या कर बैठते हैं, भाई की

---

१. नृपो यदा तदा लोकः क्षुभ्यते भिद्यते यतः।
गूढ़ाचारैः श्रावयित्वा स्ववृत्तं दूषयन्ति के ॥ १३१॥
भूषयन्ति च कैर्भावैरमात्याद्याश्च तद्विदः।
मयि कीदृक् च सम्प्रीतिः केषामप्रीतिरेव वा ॥१३८॥
सुकीर्त्यै संत्यजेन्नित्यं नावमन्येत वै प्रजाः।
लोको निन्दति राजंस्त्वां चारैः संश्रावितो यदि॥ १३४॥
कोपं करोति दौरात्म्यादात्म दुर्गुण लोपकः।
सीता साध्व्यपि रामेण त्यक्ता लोकापवादतः॥ १३५॥ (शुक्र० अ० १)

२. कल्पयेद् युवराजार्थं औरसं धर्मपत्निजम्॥ १४॥
स्वकनिष्ठं पितृव्यं वानुजं वाग्रजसम्भवम्।
पुत्रं पुत्रीकृतं दत्तं यौवराज्येऽभिषेच्ययेत्॥ १५॥
क्रमादभावे दौहित्रं स्वप्रियं वा नियोजयेत्॥ १६॥
(शुक्र० अ० २)

तो गिनती ही क्या है।[1]

इस लिये राजपुत्रों को सुयोग्य और सदाचारी अध्यापकों की अध्यक्षता में एकान्त में रखना चाहिये।

गुप्तचरों द्वारा उनका वृत्तान्त जानते रहना चाहिये। राजपुत्रों को भूल कर भी विलासी नहीं बनाना चाहिये। उन्हें तपस्या पूर्वक वीर और सुशिक्षित बनाने का यत्न करना चाहिये।[2]

राजतन्त्र—शासन में राजकुमारों की संरक्षा तथा सुशिक्षा का प्रश्न एक बहुत ही महत्त्व पूर्ण प्रश्न है। संसार के सब देशों की राजसत्ता में ऐसे बीसियों उदाहरण उपलब्ध होते हैं जिन में कि राजपुत्रों ने ही राज्य के लोभ से अपने पिता या बड़े भाई का खून करने के लिए यत्न किया है। इस लिये आचार्य शुक्र ने भी इस समस्या पर विशेष बल दिया है—"राजकुमार अगर बिगड़ भी जावे तो उसे निर्वासित नहीं करना चाहिये, क्योंकि वह इस प्रकार शत्रु राष्ट्रों से सहायता लेकर राज्य पर आक्रमण करने का यत्न करता है।"[3]

इस प्रकार पुत्र के पूर्ण शिक्षित हो जाने पर विधि पूर्वक राजा को उसका 'युवराज्याभिषेक' करना चाहिये। शुक्र ने कहा है कि—"युवराज और मन्त्रि-

---

१. स्वधर्म निरतान् शूरान् भक्तान् नीतिमतः सदा।
संरक्षयेद्राजपुत्रान् बालानपि सुयत्नतः॥ १७॥

लोलुप्यमानास्तेऽर्थेषु हन्युरेनमरक्षिताः।
रक्ष्यमाणा यदि छिद्रं कथञ्चित् प्राप्नुवन्ति ते॥ १८॥

पितरञ्चापि निघ्नन्ति भ्रातरं त्वितरं नु किम्।
मूर्खो बालोऽपीच्छतिस्म स्वाम्यं किं न पुनर्युवा?॥ २०॥
(शुक्र० अ० २)

२. स्वात्यन्त सन्निकर्षेण राजपुत्रांस्तु रक्षयेत्।
सद् भृत्यैश्चापि तद् स्वान्तं छलैर्ज्ञात्वा सदा स्वयम्॥ २१॥

शौर्य युद्धरतान् सर्वकला विद्या विदोऽञ्जसः।
सुविनीतान् प्रकुर्वीत ह्यमात्याद्यै नृपः सुतान्॥ २३॥
(शुक्र० अ० २)

३. राजपुत्रः सुदुर्वृत्तः परित्यागं हि नार्हति।
क्लिश्यमानः स पितरं परानाश्रित्य हन्ति हि॥ २६॥
(शुक्र० अ० २)

मण्डल यही दोनों राजा की दांई और बांई भुजाएं हैं । "[१]

युवराज को सदैव यह समझ कर कि मैं राज्यकार्य सीख रहा हूँ, पिता की प्रत्येक आज्ञा का पालन करना चाहिये; प्रजा की वास्तविक स्थिति और आवश्यकताओं को समझने का यत्न करना चाहिये। युवराज को सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि राजा तथा प्रजा दोनों के अनुकूल आचरण करने में ही उस का हित है ।[२]

मन्त्रिमण्डल— हम पहले ही कह चुके हैं कि आचार्य शुक्र के अनुसार राजा की स्थिति केवल मात्र शासनविभाग के अध्यक्ष मात्र की है। राष्ट्र का नियामक-विभाग (Legislation) उस के हाथ में नहीं हैं । उसे मन्त्रि-मण्डल तथा राज सभा की सम्मति से ही सब नियम बनाने चाहिये । इतना ही नहीं अपितु शासन-विभाग में भी उसे बहुत सा कार्य मन्त्रियों की सहायता से ही करना चाहिये। शुक्रनीति के दूसरे अध्याय के प्रारम्भ में ही कहा है—"जो बिल्कुल छोटे २ कार्य हैं वे भी एक अकेले आदमी से होने कठिन हैं, फिर शासन का महान कार्य एक ही व्यक्ति किस प्रकार कर सकता है; इस लिये राजा को अपने सभी कार्य नीति-शास्त्र में कुशल और अनुभवी मन्त्री-मण्डल की सहायता से ही करने चाहिये।"[३]

परन्तु इन मन्त्रियों की नियुक्ति किस आधार पर तथा कितने समय के लिये होती थी, इनके कर्तव्य क्या थे, ये सब बातें शुक्र नीति में विस्तार के साथ नहीं पाई जातीं।

---

१. युवराजोऽमात्यगणौ भुजावेतौ महीभुजः ।
तावेव नयने कर्णौ दक्षसव्यौ क्रमात् स्मृतौ ॥ १२ ॥
(शुक्र० अ० २)

२. पितुराज्ञोल्लङ्घनेन प्राप्यापि पदमुत्तमम् ।
तस्माद् भ्रष्टा भवन्तीह दासवद्राज पुत्रकाः ॥ ४१ ॥
तत्कर्म नियतं कुर्याद् येन तुष्टो भवेत् पिता।
तन्न कुर्यात् येन पिता मनागपि विषीदति ॥ ४३ ॥
विद्यया कर्मणा शीलैः प्रजाः संरञ्जयन् सदा।
त्यागी च सत्यसम्पन्नः सर्वान् कुर्यात् वशे स्वके ॥ ४९ ॥
(शुक्र० अ० २)

३. यद्यप्यल्पतरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम् ।
पुरुषेणासहायेन किमुराज्यं महोदयम् ॥ १ ॥
सर्वविद्यासु कुशलो नृपो ह्यपि सुमन्त्रवित् ।
मन्त्रिभिस्तु विनामन्त्रं नैकार्थं चिन्तयेत् क्वचित् ॥ २ ॥
(शुक्र० अ० २)

मन्त्रिपरिषद् की रचना—महामति कौटिल्य ने मन्त्रि परिषद् की रचना में आचार्य शुक्र को उद्धृत करते हुए लिखा है कि इन के सिद्धान्त के अनुसार मन्त्रि परिषद् में २० सदस्य होने चाहिये । शुक्रनीति सार में १० मंत्रियों का वर्णन है ।[1] यह मंत्रिमण्डल ८ सदस्यों का भी हो सकता है—

सुमन्त्रः पण्डितो मन्त्री प्रधानः सचिवस्तथा ।
अमात्यः प्राड्विवाकश्च तथा प्रतिनिधि स्मृतः ॥ ७२ ॥ (शुक्र० अ० २)

शिवाजी ने अपने अष्टप्रधान मण्डल की रचना इसी आधार पर की थी । उस के अनुसार हम इन आठों सचिवों के कार्य का विभाग इस प्रकार कर सकते हैं—

१. सुमन्त्र—अर्थ सचिव (Minister of Finance)

इस का कार्य राष्ट्र के आय व्यय का प्रबन्ध करना, बजट बनाना, आय वृद्धि के उपाय सोचना, करों का प्रबन्ध करना, व्यापार पर नियन्त्रण रखना, कोष रक्षा और प्रत्येक राष्ट्रीय आर्थिक बात के लिये राजा के सामने उत्तरदायी होना है ।

२. पण्डितामात्य—विधान सचिव (Minister of Law)

इस का कार्य कानूनों का रूप बनाने में मन्त्रिमण्डल को सहायता करना,[1] उन क व्याख्या करना, नियमों को धर्म और स्मृति का विरोधी न होने देना और इस सम्बन्ध में राजा के सन्मुख पूर्ण उत्तरदायी होना है ।

३. मन्त्री—अन्तर्राष्ट्र सचिव (Home Minister)

इस का कार्य राष्ट्र की घरेलु बातों का प्रबन्ध करना, पोलीस आदि द्वारा शान्ति रक्षा का यत्न करना, नगर समितियों तथा गण पूगादि का नियन्त्रण, प्रजा की सुशिक्षा का प्रबन्ध और इन बातों के लिये राजा के सामने उत्तरदायी होना है ।

४. प्रधान—सभाध्यक्ष (President of the council)

यह जन-सभा[2] का अध्यक्ष होता था और इसी अधिकार से मन्त्री मण्डल में सम्मिलित समझा जाता था । इस का कार्य सभा की बैठकों में शान्ति और व्यवस्था रखना है,

५. सचिव—युद्ध सचिव (Minister of war)

इस का कार्य सेना की व्यूहशिक्षा का प्रबन्ध करना, सैनिक व्यय पर नियन्त्रण रखना, युद्धादि का प्रबन्ध तथा इन बातों के लिये राजा के सामने उत्तरदायी होना है ।

६. अमात्य—कृषि तथा कर सचिव (Minister for Revenue and Agriculture)

---

१. पुरोधाश्च प्रतिनिधिः प्रधानः सचिवस्तथा ॥ ६९ ॥
मन्त्री च प्राड्विवाकश्च पण्डितश्च सुमन्त्रकः ।
अमात्यो दूत इत्येता राज्ञः प्रकृतयो दश ॥ ७० ॥ (शुक्र० अ० २)

२. शुक्र नीति प्रथम अध्याय के ३५२-५३ श्लोकों के अनुसार उस समय जन-सभा की सत्ता सिद्ध होती है । इस विषय पर विस्तार से हम अगले अध्याय में लिखेंगे ।

इस का कार्य प्रजा पर कर नियुक्त करने में अर्थ सचिव की सहायता करना, कर जमा करने का प्रबन्ध करना, भूमि का माप रखना, उसे कृषि योग्य बनाने के लिये यत्न करना और इस सम्बन्ध में राजा के सामने उत्तरदायी रहना है ।

७. प्राड् विवाक—न्यायसचिव (Minister of Justice and Chief Justice)

यह व्यक्ति स्वयं राष्ट्र का प्रधान न्यायाधीश होता था, और इसी अधिकार से मन्त्रिमण्डल का सदस्य होता था, इस का कार्य राष्ट्र भर के न्यायालयों का निरीक्षण करना, न्याय सम्बन्धी विवादों का निर्णय देना और इस सम्बन्ध में राजा के सन्मुख उत्तरदायी होना है ।

८. प्रतिनिधि-(Represntative),

प्रतिनिधि का वास्तविक कार्य नहीं जाना जा सका है ; सम्भवतः यह राजा के प्रतिनिधि रूप से मन्त्रि-मण्डल में होगा । मन्त्रिमण्डल में इस का एक विशेष स्थान है । राजा की अनुपस्थिति में यही उसका कार्य करता है । आचार्य शुक्र ने इस के चतुर और कार्य-कुशल होने पर विशेष बल दिया है ।

दूसरे सिद्धान्त के अनुसार अगर मंत्रिमण्डल में १० सदस्य अभीष्ट हों तो ये दो सचिव और होंगे—

९. पुरोहित-धर्म सचिव (Minister of Religion)

इस का कार्य राष्ट्र के धार्मिक कृत्यों और उत्सवों का प्रबन्ध करना, राजा का पुरोहित बन कर रहना और प्रजा के आचार का निरीक्षण करना है ।

१०. दूत—(Minister of Deplomacy)

इस का कार्य विदेशी राष्ट्रों से सम्बन्ध रखना है । आवश्यकता पड़ने पर अन्य राष्ट्रों से सन्धि या विग्रह करने के लिए राजा इसी को सम्पूर्ण अधिकार देकर अपने प्रतिनिधि के रूप से भेजता है ।

इन मन्त्रियों के कर्तव्यों की व्याख्या करते हुए हम ने, शिवाजी के समय शुक्रनीति के आधार पर जिस प्रकार मन्त्रीमण्डल, (अष्टप्रधान मण्डल) की रचना की गई थी—उस से भी सहायता ली है । शुक्रनीति में इन दोनों की परिषदों के सम्बन्ध में ये निर्देश प्राप्त होते हैं—

उपर्युक्त प्रकार से आचार्य शुक्र के अनुसार मन्त्रिमण्डल में १० व्यक्ति होने चाहिये । परन्तु कुछ अन्य आचार्यों के मत से मंत्रिमण्डल में ८ ही व्यक्ति होने चाहिये । इन दोनों मंत्रिमण्डलों में एक विशेष व्यवस्था सम्बन्धी भेद है । आचार्य शुक्र के अनुसार मंत्रिपरिषद् के १० सदस्य होने चाहिये और 'पुरोहित' इन में सब से मुख्य है,[1] राष्ट्र की रक्षा और उन्नति मुख्यतया उसी पर

---

१. भारतीय शासन व्यवस्था में पुरोहित की मुख्यता बहुत प्राचीन है । रामायण काल में भी पुरोहित ही प्रधानामात्य का कार्य करता था ।

परन्तु दूसरे आचार्यों के अनुसार मन्त्रि-परिषद् के जो आठ सदस्य हैं उन में पुरोहित का नाम नहीं है। इस से सिद्ध होता है कि शुक्र के अनुसार "पुरोहित" शब्द प्रधानामात्य का वाचक है, जिस की महान् शक्तियों के आधार पर ही राज्य की उन्नति आश्रित है। इस अवस्था में राजा बहुत अधिक सीमित अधिकारों वाला ही रह जाता है। शासन-विभाग में भी उस के बहुत अधिक अधिकार नहीं बचते। परन्तु दूसरे मत के अनुसार मंत्रिमंडल एक प्रकार से राजा का सहायक मात्र है। राजा स्वयं ही प्रधान मंत्री का कार्य भी करता है, आठों मंत्री अपने अपने विभागों द्वारा उस की सहायता करते हैं।

मन्त्रि परिषद् की महत्ता—ये मंत्री केवल राजा को सलाह मात्र देने वाले ही नहीं थे। राजा पर इन का बहुत अधिक प्रभाव होता था। मंत्रिपरिषद् से सलाह लिये बिना वह कुछ न कर सकता था। आचार्य शुक्र ने मंत्रियों की महत्ता अनुभव करते हुए प्रबल शब्दों में उन्हें शक्तिशाली बनने को कहा है—

"इन मंत्रियों की सलाह के बिना राज्य का नाश हो जायगा, इस लिये मन्त्रियों को चाहिये कि वे राजा को सदैव उत्तम सलाह और सहायता देते रहें। जिन मन्त्रों से राजा नहीं डरता उन से राष्ट्र की उन्नति सर्वथा असम्भव है, वे केवल स्त्रियों के आभूषणों की तरह ही राष्ट्र की नाम मात्र के लिये कुछ शान बढ़ाते हैं। जिन मन्त्रियों को होते हुए बल और कोश नहीं बढ़ता उन से लाभ ही क्या है।"[1]

मन्त्रियों की वैयक्तिक स्थिति—इन १० मन्त्रियों में 'पुरोधा' सब से बड़ा है; राष्ट्र की उन्नति और रक्षा मुख्यतया उसी पर ही निर्भर है। पुरोधा के बाद प्रतिनिधि और उस के बाद प्रधान की स्थिति है, उसके बाद क्रमशः सचिव, मन्त्री, प्राड् विवाक, पण्डित, सुमन्त्र, अमात्य और दूत की स्थिति है।[2]

---

१. विना प्रकृति सन्मन्त्राद्राज्यनाशो भवेद् ध्रुवम्।
रोधनं न भवेत् तस्मात् राज्ञस्ते स्युः सुमन्त्रिणः॥ ८१॥
न बिभेति नृपो येभ्यस्तै स्यात् किं राज्यवर्धनम्।
यथालङ्कार वस्त्राद्यैः स्त्रियो भूष्यास्तथा हि ते॥ ८२॥
राज्यं प्रजा बलं कोशः सुनृपत्वं च वर्धितम्।
यन्मन्त्रयतोरि नाशस्तै र्मन्त्रिभिः किं प्रयोजनम्॥ ८३॥ (शुक्र० अ० २)

२. पुरोधा प्रथमं श्रेष्ठः सर्वेभ्यो राजराष्ट्रभृत्।
तदनुस्यात् प्रतिनिधिः प्रधानस्तदनन्तरम्॥ ७४॥
सचिवस्तु ततः प्रोक्तो मन्त्री तदनु चोच्यते।
प्राड्विवाकस्ततः प्रोक्तः पण्डितस्तदनन्तरम्॥ ७५॥
सुमन्त्रस्तु ततः ख्यातो ह्यमात्यस्तु ततः परम्।
दूतस्तथा क्रमादेते पूर्व श्रेष्ठा यथा गुणाः॥ ७६॥

इन सब में प्रधानामात्य ही सब से अधिक महत्वपूर्ण है अतः उसे सब विद्याओं में निपुण और कर्तव्यशील होना चाहिये। वह जितेन्द्रिय हो, वह निर्व्यसनी और दुर्बलता रहित हो। वह छहों शास्त्र पढ़ा हो, युद्ध-विद्या में में कुशल हो। यह इतना प्रभावशाली हो कि उस से डर कर राजा भी सदैव धर्मनीति का ही अनुसरण करे। वह राष्ट्र की रक्षा में समर्थ और राजनीति शास्त्र में प्रवीण हो। उस के पास किसी को दण्ड देने व किसी को इनाम देने के अबाधित अधिकार हों।[1]

प्रतिनिधि की काम करने की सूझ बहुत प्रबल होनी चाहिये, प्रधान खूब अच्छी तरह निरीक्षण करने वाला हो, सचिव सैन्य संचालन में निपुण हो। मन्त्री राज नीतिज्ञ हो और पण्डित धर्म और कानून का वास्तविक तत्व समझता हो, प्राड्विवाक समाजशास्त्र का विद्वान हो, दुनियाँ का व्यवहार समझता हो। अमात्य अवसर को पहचानता हो, सुमन्त्र राष्ट्रीय आय-व्यय-शास्त्र में प्रवीण हो; दूत मनुष्य को पहचानता हो, अवसर को समझता हो और बात चीत करने में चतुर, निर्भय और समझ दार हो।[2]

---

१. मन्त्रानुष्ठानसम्पन्नस्त्रैविद्यः कर्मतत्परः ।
जितेन्द्रियो जितक्रोधो लोभमोहविवर्जितः ॥ ७७ ॥
षडङ्गवित् साङ्गधनुर्वेद विच्चार्थ धर्मवित् ।
यत् कोपभीत्या राजापि धर्मनीतिरतो भवेत् ॥ ७८ ॥
नीतिशास्त्रास्त्रव्यूहादि कुशलस्तु पुरोहितः ।
सैवाचार्य्य पुरोधा यः दण्डानुग्रहयोक्षमः ॥ ७९ ॥
(शुक्र० अ० २)

२. कार्याकार्य प्रविज्ञाता स्मृतः प्रतिनिधिस्तुः सः ।
सर्वदर्शी प्रधानस्तु सेनावित् सचिवस्तथा ॥ ८४ ॥
मन्त्री तु नीतिकुशलः पण्डितो धर्मतत्ववित् ।
लोकशास्त्रनयज्ञस्तु प्राड्विवाकः स्मृतः सदा ॥ ८५ ॥
देशकाल प्रविज्ञाता ह्यमात्य इति कथ्यते ।
आयव्ययप्रविज्ञाता सुमन्त्रः स च कीर्तितः ॥ ८६ ॥
इङ्गिताकारचेष्टज्ञः स्मृतिमान् देशकालवित् ।
षाड्गुण्यमन्त्रविद्वाग्मी वीतभीर्दूत इष्यते ॥ ८७ ॥
(शुक्र० अ० २)

मन्त्रियों का कार्य—इन मन्त्रियों के कार्यों का विभाग आचार्य शुक्र ने इस प्रकार किया है—

"राष्ट्र के लिये कौन सा कार्य हितकर है कौन सा अहितकर, कौन सा कार्य बहुत आवश्यक है, इन सब बातों की सलाह राजा को देना; चाहे राजा उस की सलाह पर न भी चले तथापि अपनी बात को मनवाने का यत्न करना 'प्रतिनिधि' का कार्य है।" [1]

"सब राज कर्मचारियों तथा सभा के नियमानुकूल और नियम विरुद्ध कार्यों का निरीक्षण करना 'प्रधान' का कार्य है।" [2]

"सेना के हाथी, घोड़े, रथ, पैदल, ऊँट और बैलों का निरीक्षण करना, सैनिकों को व्यूहाभ्यास बैण्ड तथा झण्डियों से बातचीत करने की शिक्षा देने का प्रबन्ध करना, कौन सी सेना आगे चले, कौन सी पीछे रहे, किस के पास राष्ट्र का झण्डा रहे, कौन कैसे शस्त्र धारण करे, नौकर कहां रहें–इन सब बातों का अध्ययन करना; शस्त्रास्त्रों का उच्च ज्ञान, सेना में कितने सैनिक काम के लायक हैं, कितने काम के अयोग्य हैं, कितने नये और कितने पुराने हैं इन सब बातों का पता रखना; सेना के पास कितना बारूद, कितने शस्त्र और गोले हैं इन का ज्ञान रखना, और इन सब बातों की सूचना राजा को देना 'सचिव' का कार्य है। [3]

---

१. अहितञ्चापि यत् कार्यं सद्यः कर्तुं यदोचितम्।
अकर्तुं यद्धितमपि राज्ञः प्रतिनिधिः सदा।
बोधयेत् कारयेत् कुर्यान्न कुर्यान्न बोधयेत्॥ ८८॥

२. सत्यं वा यदि वासत्यं कार्यजातं च यत् किल।
सर्वेषां राजकृत्येषु प्रधानस्तद्विचिन्तयेत्॥ ८९॥

३. गजानाञ्च तथाश्वानां रथानां पदगामिनाम्।
सुदृढानां वथोष्ट्राणां वृषाणां सद्य एव हि॥ ९०॥
वाद्यभाषासु संकेत व्यूहाभ्यासन शालिनाम्।
प्राक् प्रत्यक्गामिनां राज्यचिन्हशस्त्रास्त्रधारिणाम्॥ ९१॥
परिचारगणानां हीनमध्योत्तमकर्मणाम्।
अस्त्राणामस्त्र जातीनां सङ्घःस्वतुरगीगणः॥ ९२॥
कार्यक्षमश्च प्राचीनः साद्यस्कः कति विद्यते।
कार्यासमर्थः कत्यस्ति शस्त्रगोलाग्निचूर्णयुक्॥ ९३॥
सांग्रामिकश्च कत्यस्ति सम्भारस्ताञ्च विचिन्त्य च।
सचिवश्चापि तत् कार्यं राज्ञे सम्यक् निवेदयेत्॥ ९४॥

"साम, दान, दण्ड, भेद इन में से कौन सा कहाँ व्यवहृत किया जाय, किस के व्यवहार से कैसा फल होगा, यह सब सोच कर इस की सलाह 'मन्त्री' राजा को दे।" [१]

"कौन सी साक्षी सच्ची है कौन सी झूठी है, तर्क और प्रमाणों के आधार पर मुकद्दमे में कौन सा पक्ष सच्चा है, जूरियों की सम्मति किस दल के पक्ष में है इन बातों की मन्त्रणा और सूचना जूरियों के साथ 'प्राड् विवाक्' राजा को दे।" [२]

"समाज का आचार कैसा है, वह किस प्रकार उन्नत हो सकता है, कौन से कार्य शास्त्र और स्मृति सम्मत हैं, कौन से विरुद्ध हैं, इनकी सलाह 'पण्डित' राजा को दे।" [३]

"कोश में इतना धन जमा है, इस वर्ष इतनी आय होगी, इतना व्यय होगा और यह शेष रहेगा; राष्ट्र की चल और अचल सम्पत्ति कितनी है इस विषयक परामर्श 'सुमन्त्र' राजा को दे।" [४]

"राष्ट्र में कितने शहर और कितने गाँव हैं, कितना भाग जंगलों से आच्छादित है, कितनी जमीन में कृषि की जाती है, कितनी उपज होती है, उस पर कितना कर लिया जाता है; खाली भूमि में से कितनी बंजर है कितने पर खेती हो सकती है; राष्ट्र में कितनी कानें हैं उन से वर्ष भर में क्या निकलता है,

---

१. साम दानञ्च भेदश्च दण्डः केषु कदा कथम् ।
कर्तव्यः किं फलं तेभ्यो बहु मध्यं तथाल्पकम् ।
एतत् सञ्चिन्त्य निश्चित्य मन्त्री सर्वं निवेदयेत् ॥ ९५ ॥

२. साक्षिभिर्लिखितै भोगैश्छलै भूतैश्च मानुषान् ।
स्वेनोत्पादितसम्प्राप्त व्यवहारान् विचिन्त्य च ॥ ९६ ॥
दिव्यसंसाधनाद्वापि केषु किं साधनं परम् ।
युक्ति प्रत्यक्षानुमानोपमानैर्लोक शास्त्रतः ॥ ९७ ॥
बहुसम्मत संसिद्धान् विनिश्चित्य सभास्थितः ।
ससभ्यः प्राड्विवाकस्तु नृपं संबोधयेत् सदा ॥ ९८ ॥

३. वर्तमानाश्च प्राचीना धर्माः के लोकसंश्रिताः ।
शास्त्रेषु के समुद्दिष्टा विरुद्धयन्ते च केऽधुना ॥ ९९ ॥
लोकशास्त्रविरुद्धाः के पण्डितस्तान् विचिन्त्य च ।
नृपं संबोधयेत् तैश्च परत्रेह सुखप्रदैः ॥ १०० ॥

४. इयच्च सञ्चितं द्रव्यं वत्सरेऽस्मिन् तृणादिकम् ।
व्ययीभूतमियच्चैव शेषं स्थावरजङ्गमम् ।
इयदस्तीति वै राज्ञे सुमन्त्रो विनिवेदयेत् ॥ १०१ ॥

कितनी सम्पत्ति बिना किसी मालिक के है, कितने की चोरी हुई है, कितना कर जमा किया गया है † इन सब बातों की सूचना 'अमात्य' राजा को दे ।"[1]

राजाज्ञाओं का प्रकाशन— आचार्य शुक्र के अनुसार राजा के मुख से निकला हुवा प्रत्येक वाक्य वेद वाक्य नहीं है। उस की प्रत्येक बात राष्ट्र का कानून नहीं मानी जा सकती। राष्ट्रीय-विधान नियमपूर्वक राजा द्वारा अन्तिम स्वीकृति लिये जाने के पश्चात् राजकीय घोषणा द्वारा प्रचारित करने के बाद से ही नियम का रूप धारण कर सकते हैं। किसी नियम के लागू होने से पूर्व उस का प्रकाशन आवश्यक है। शुक्रनीति प्रथम अध्याय में लिखा है—

"राजा को चाहिये की वह राष्ट्रीय कानूनों को लिखवा कर या खुदवा कर चौराहों पर लगवा दे;-कोई दुष्ट व्यक्ति या शत्रु (विद्रोही) नियमों का उल्लंघन करे तो उसे पूर्ण दण्ड दे।"[2]

"राजा को सिंहासनारूढ़ होते ही निम्नलिखित आज्ञाएँ अपने राज्य में प्रकाशित करनी चाहिये-मेरे राष्ट्र के सेवकों को स्त्रियों, बच्चों, विद्यार्थियों, नौकरों अथवा दासों से भी कठोरता पूर्वक वातचीत नहीं करनी चाहिये। किसी व्यक्ति को भार में, माप में, सिक्के में, रसों में, धातुवों में, घी, दूध, चरबी या तेल में कभी मिलावट नहीं करनी चाहिये। कोई मनुष्य किसी से कोई बयान अथवा गवाही ज़बरदस्ती अथवा घूस देकर न लिखवाए, कोई किसी से घूस न ले, नौकर को रुपया देकर स्वामी के काम में बाधा न डाले। कोई बदमाश, चोर, व्यभिचारी या राष्ट्रद्रोही को अपने यहाँ आश्रय न दे। कोई मान्य जनों का अपमान न करे। कोई व्यक्ति पति और पत्नि, स्वामी और भृत्य, गुरु और शिष्य, पिता और पुत्र अथवा भाइयों में फूट डालने

---

† अमात्य का काम राष्ट्र की गणना तालिकाएँ (Imperial gazeteer) प्रकाशित करना होता था।

१. पुराणि च कति ग्रामा अरण्यानि च सन्ति हि ।
कर्षिता कति भूः केन प्राप्तो भागस्तथा कति ॥ १०२ ॥
भागशेषं स्थितं कस्मिन् कत्यकृष्टा च भूमिका ।
भागद्रव्यं वत्सरेऽस्मिन् शुल्कदण्डादिजं कति ॥ १०३ ॥
अकृष्ट पच्यं कति च कति चारण्यसम्भवम् ।
कतिचाकर संजातं निधिप्राप्तं कतीति च ॥ १०४ ॥
अस्वामिकं कति प्राप्तं नाष्टिकं तस्कराहृतम् ।
सञ्चितन्तु विनिश्चित्यामात्यो राज्ञे निवेदयेत् ॥ १०५ ॥ (शुक्र० अ० २)

२. लिखित्वा शासनं राजा धारयीत चतुष्पथे ।
सदा चोद्यतदण्डः स्यादसाधुषु च शत्रुषु ॥ ३१३ ॥ (शुक्र० अ० १)

का यत्न न करे, । कोई मनुष्य बावड़ी, कुआँ, पञ्चायत का स्थान, धर्म-शाला अथवा शराब घर के मार्गों को न रोके, किसी अंग हीन या कमज़ोर व्यक्ति को भी मार्ग में न रोका जाय । मेरी विशेष आज्ञा के बिना कोई व्यक्ति जूआ न खेले, शराब न पीए, शिकार न खेले और शस्त्र धारण न करे। पशु, जमीन, सोना, चांदी, रत्न, मादक पदार्थ, विष आदि बेचने की रजिस्टरी करवानी चाहिये । क्रय, विक्रय, दान और ऋण के लिये भी रजिस्टरी कर-वाना आवश्यक है । कोई वैद्य बिना अधिकारपत्र (Licence) लिये चिकित्सा नहीं कर सकता । किसी को ये काम नहीं करने चाहिये—भयंकर गाली गलौच, शपथें लेना, नये सामाजिक नियम उद्घोषित करना, वर्ण संकरता, खोई हुई चीज़ों को छिपाना, राज्य के रहस्यों का प्रकाशन और राजा की निन्दा । स्वधर्म त्याग, असत्य भाषण, व्यभिचार, झूठी साक्षी, घूस लेना नियम से अधिक कर लेना, चोरी, हत्या आदि बुरे कार्य भी नहीं करने चाहिये । नौकरों को किसी प्रकार से भी स्वामी के विरुद्ध भड़काना नहीं चाहिये । भार और लम्बाई के माप राज्य द्वारा ही निश्चित होंगे । जब कभी कोई अपराध हो जाय तो लोगों को चाहिये कि वे अपराधी को पकड़ कर सरकार के हवाले करदें । बैल आदियों को सड़कों पर खुला छोड़ देना मना है । जो व्यक्ति इन आज्ञाओं का उल्लङ्घन करेगा उसे मैं भारी दण्ड दूँगा ।" [1]

---

१. शासनं त्वीदृशं कार्यं राज्ञा नित्यं प्रजासु च ॥ २९३ ॥
दासे भृत्येऽथ भार्यायां पुत्रे शिष्येऽपि वा क्वचित् ।
वाग्दण्डपरुषं नैव कार्य्यं मद्देशसंस्थितैः ॥ २९४ ॥
तुला शासनमानानां नाणकस्यापि वा क्वचित् ।
निर्य्यासानाञ्च धातूनां सजातीनां घृतस्य च ॥ २९५ ॥
मधुदुग्धवसादीनां पिष्टादीनाञ्च सर्वदा ।
कूटं नैव तु कार्यं स्याद् बलाच्च लिखितं जनैः ॥ २९६ ॥
उत्कोच ग्रहणं नैव स्वामीकार्यविलोभनम् ।
दुर्वृत्त कारिणञ्चोरं जारं मद् द्वेषिणं द्विषम् ॥ २९७ ॥
न रक्षन्त्वप्रकाशं हि तथान्यानपकारकान् ।
मातॄणां पितॄणाञ्चैव पूज्यानां विदुषामपि ॥ २९८ ॥
नावमानं नोपहासं कुर्युः सद्वृत्तशालिनाम् ।
न भेदं जनयेयुर्वै नृनार्य्योः स्वामिभृत्ययोः ॥ २९९ ॥
भ्रातॄणां गुरुशिष्याणां न कुर्युः पितृपुत्रयोः ।
वापी कूपारामसीमा धर्मशालासुरालयान् ॥ ३०० ॥

राजा की दिनचर्या— राष्ट्र की उत्तरदायिता सब से बढ़ कर राजा पर ही है। अतः उसे अपना जीवन खूब नियमित रखना चाहिये। आचार्य शुक्र की सम्मति में राजा का दैनिक समय विभाग इस प्रकार होना चाहिये। एक दिन, अर्थात् २४ घण्टों में, ३० मुहूर्त्तों के हिसाब से ही शुक्र ने राजा का दैनिक समय विभाग निश्चित किया है— [१]

मार्गाग्नैर्व प्रबाधेयुर्हीनाङ्ग विकलाङ्गकान्।
द्यूतञ्च मद्यपानञ्च मृगयां शस्त्रधारणम् ॥ ३०१ ॥
गोगजाश्वोष्ट्रमहिषी नृणां वै स्थावरस्य च।
रजतस्वर्णरत्नानां मादकस्य विषस्य च ॥ ३०२ ॥
क्रयो वा विक्रयो वापि मद्यसंधानमेव च।
क्रयपत्रं दानपत्रं ऋणनिर्णय पत्रकम् ॥ ३०३ ॥
राजाज्ञया विनानैव जनैः कार्यं चिकित्सितम्।
महापापाभिशपनं निधि ग्रहणमेव च ॥ ३०४ ॥
नवसमाज नियमं निर्णयं याति दूषणम्।
अस्वामिनाह्निक धनसंग्रहं मन्त्र भेदनम् ॥ ३०५ ॥
नृप दुर्गुणालापन्तु नैव कुर्युः कदाचन।
स्वधर्म हानिमनृतं परदाराभिमर्शनम् ॥ ३०६ ॥
कूटसाक्ष्यं कूटलेख्यमप्रकाश प्रतिग्रहम्।
निर्धारित कराधिक्यं स्तेयं साहसमेव च ॥ ३०७ ॥
मनसापि न कुर्वन्तु स्वामिद्रोहं तथैव च।
भृत्या शुल्केन भागेन वृद्धा दर्पात् बलाच्छलात् ॥ ३०८ ॥
आधर्षणं न कुर्वन्तु यस्य कस्यापि सर्वदा।
परिमाणोन्मानमानं धार्य्यं राजविमुद्रितम् ॥ ३०९ ॥
गुणसाधनसंदक्षा भवन्तु निखिला जनाः।
साहसाधिकृते दद्युः विनिगृह्याततायिनम् ॥ ३१० ॥
उत्सृष्टा वृषभाद्या यैस्तैस्ते धार्याः सुयन्त्रिताः।
इतिमच्छासनं श्रुत्वा येन्यथा वर्तयन्ति तान् ॥ ३११ ॥
विनिष्यामि दण्डेन महता पापकारकान्।
इति प्रबोधयेन्नित्यं प्रजा शासनडिण्डिमैः ॥ ३१२ ॥ (शुक्र० अ० १!)

१. उत्थाय पश्चिमे यामे मुहूर्त्त द्वितयेन वै।
नियतायश्च कत्यस्ति व्ययश्च नियतः कति ॥ २७६ ॥
कोश भूतस्य द्रव्यस्य व्ययः कति गतस्तथा।
व्यवहारे मुद्रिताय व्यय शेषं कतीति च ॥ २७७ ॥
प्रत्यक्षतो लेखतश्च ज्ञात्वा चाद्यं व्ययः कति।

३० मुहूर्त्त = ६० दण्ड = २४ घण्टे ।	
२	” — राजकीय आय व्यय पर विचार ।
१	” — शौच और स्नान ।
२	” — धार्मिक कर्तव्य सन्ध्या आदि ।
१	” — व्यायाम ।
१	” — इनाम बाँटना ।
४	” — अनाज, वस्त्र, धातु आदि का बाज़ारी भाव निश्चित करना ।
१	” — भोजन और विश्राम ।
१	” — नई और पुरानी वस्तुओं का निरीक्षण ।
२	” — न्यायाधीशों से परामर्श ।
२	” — शिकार आदि
१	” — सेना के व्यूहाभ्यास (Parade) का निरीक्षिण ।
१	” — सायंकालीन सन्ध्या ।
१	” — भोजन ।
२	” — गुप्तचरों से बात चीत
८	” — निद्रा ।
३०	मुहूर्त्त

भविष्यति च तत्तुल्यं द्रव्यं कोशात्तु निर्हरेत् ॥ २७८ ॥
पश्चात्तु वेगनिर्मोचं स्नानं मौहूर्त्तिकं मतम् ।
सन्ध्या पुराण दानैश्च मुहूर्त द्वितयं नयेत् ।
गवाश्वयान व्यायामैर्नयेत् प्रातर्मुहूर्त्तकम् ॥ २७९ ॥
पारितोषिकदानेन मुहूर्तन्तु नयेत् सुधीः ।
धान्यवस्त्र स्वर्णरत्न सेना देश विलेखनैः ॥ २८० ॥
आयव्ययैर्मुहूर्तानां चष्कन्तु नयेत् सदा ।
स्वस्थचित्तो भोजनेन मुहूर्त्तं ससुहृन्नृपः ॥ २८१ ॥
प्रत्यक्षीकरणाज्जीर्ण नवीनानां मुहूर्त्तकम् ।
ततस्तु प्राड्विवाकादि बोधित व्यवहारतः ॥ २८२ ॥
मुहूर्त्त द्वितयश्चैव मृगया क्रीडनैर्नयेत् ।
व्यूहाभ्यासैर्मुहूर्त्तन्तु मुहूर्त्तं सन्ध्यया ततः ॥ २८३ ॥
मुहूर्त्तं भोजनेनैव द्विमुहूर्त्तं च वार्त्तया ।
गूढचारैः श्राविततया निद्रयाष्ट मुहूर्तकम् ॥ २८४ ॥
एवं विहरतो राज्ञः सुखं सम्यक् प्रजायते ।
अहोरात्रं विभज्यैवं त्रिंशद्भिस्तुमुहूर्तकैः ॥ २८५ ॥ (शुक्र० अ० १)

राजकीय सेवाएँ— उस समय आजकल की तरह राजकर्मचारियों की व्यवस्था बहुत सुसंगठित थी। प्रत्येक विभाग के अधिकारियों की संख्या उन का पद तथा सम्मान निश्चित होते थे। इन सेवाओं में योग्य पुरुष अपनी योग्यता के आधार पर ही सम्मिलित किए जाते थे।

"प्रत्येक विभाग में तीन मनुष्य नियुक्त करने चाहिये। इन में से जो सब से अधिक योग्य हो उसे इन का प्रधान नियुक्त करना चाहिये। प्रत्येक विभाग पर दो दो निरीक्षक नियुक्त करने चाहिये। ये कार्यकर्ता तीन, पाँच, सात अथवा १० वर्ष के लिये नियुक्त किये जांय। कार्यकर्त्ताओं की योग्यता देख कर उन की पदवृद्धि की जाय, उन को अयोग्य पाकर उन से वह पद छीन लिया जाय। जो जिस अधिकार के योग्य हो उसे उस से बड़ा अधिकार नहीं देना चाहिये। अन्यथा वह बहुत अव्यवस्था उत्पन्न करता है।"[1]

स्थिर सेवक— प्रान्तीय तथा राष्ट्रीय कार्यों के लिये अलग २ स्थिर कर्मचारी नियुक्त करने चाहिये— "राष्ट्र के हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल, पशु, ऊँट, मृग और पक्षियों के प्रबन्ध के लिये अलग अलग कर्मचारी नियुक्त करने चाहिये। इसी प्रकार सुवर्ण, रत्न, स्थिर और अस्थिर सम्पत्ति आदि के प्रबन्ध के प्रबन्ध के लिये भिन्न २ कार्यकर्त्ता नियुक्त किये जांय। राष्ट्र के बाग, भ्रमणीय स्थान, भवन, धार्मिक स्थान और जनता की सम्पत्ति के लिये अलग अलग २ निरीक्षक नियत किये जाँय। प्रत्येक शहर और गाँव में ये छः अधिकारी नियुक्त किये जांय— न्यायाधीश, नगर का प्रधान, कर संग्रह करने वाला, लेखक, चुङ्गी का अध्यक्ष और समाचार वाहक।"[2]

---

१. एकस्मिन्नधिकारे तु पुरुषाणां त्रयं सदा।
नियुञ्जीत प्राज्ञतमं मुख्यमेकन्तु तेषु वै॥ १०९॥
द्वौ दर्शकौ तु तत्कार्ये हायनैस्तन्निवर्तयेत्।
त्रिभिर्वा पञ्चभिर्वापि सप्तभिर्दशभिश्च वा॥ ११०॥
दृष्ट्वा तत्कार्य कौशल्ये तथा तौ परिवर्त्तयेत्।
नाधिकारं चिरं दद्याद्यस्मै कस्मै सदा नृपः॥ २२१॥
अधिकारे क्षमं दृष्ट्वा ह्यधिकारे नियोजयेत्।
अधिकार मदं पीत्वा को न मुह्येत् पुनश्चिरम्॥ ११२॥

२. गजाश्वरथ पादात पश्वुष्ट्र मृगपक्षिणाम्॥ ११७॥
सुवर्ण रत्न रजत वस्त्राणामधि पान् पृथक्।
वित्तानामधिपं धान्याधिपं पाकाधिपं तथा॥ ११८॥
आरामाधिपतिं चैव सौध गेहाधिपं पृथक्।
सम्भारं देवतुष्टि पतिं दान पतिं सदा॥ ११९॥
साहसाधिपतिं चैव ग्रामनेतारमेव च।
भागहारं तृतीयं तु लेखकं च चतुर्थकम्॥
शुल्कग्राहं पञ्चमञ्च प्रतिहारं तथैव च॥ १२०॥
षट्कमेतन्नियोक्तव्यं ग्रामे ग्रामे पुरे पुरे॥ १२१॥ (शुक्र० अ० २)

इन सब पदों पर योग्य पुरुषों को ही नियुक्त करना चाहिये । इन की नियुक्ति में जातपात का विचार नहीं करना चाहिये—

"जिस प्रकार पिघला कर सोने की परीक्षा की जाती है, उसी प्रकार कर्मचारियों के कार्य, सहवास तथा गुणशीलादियों से उन की परीक्षा होती है । कर्मचारी की सदा परीक्षा करते रहना चाहिये, जिस से कि जो विश्वास योग्य हो उसी पर विश्वास किया जाय; उन की जाति और कुल पर ही सन्तोष नहीं करना चाहिये । मनुष्य का सम्मान उस के गुण कर्म और स्वभाव से ही होता है, जाति या कुल के आधार पर ही किसी को श्रेष्ठ नहीं समझना चाहिये । जात पात और कुल का विचार तो केवल भोजन और विवाह में ही करना चाहिये ।"[1]

पद वृद्धि—राजकीय सेवाओं में कोई भी मनुष्य अपनी प्रतिभा और योग्यता के आधार पर सम्मिलित हो सकता है । परन्तु फिर उसकी पद वृद्धि करते हुए सदैव उसकी योग्यता के साथ ही साथ सेवा काल की अवधि का भी ध्यान रक्खा जायगा—

"कोई बहुत योग्य हो तो उस की पद वृद्धि कर के उस के स्थान पर उस के योग्य उत्तराधिकारी, उस के नीचे काम करने वाले व्यक्ति, को उस पद पर नियुक्त कर देना चाहिये । उस के बाद फिर ऐसे व्यक्ति को जिस का सेवाकाल उस से कम हो । अगर एक अधिकारी का पुत्र बहुत योग्य हो तो उसे ही उसके स्थान पर नियुक्त कर देना चाहिये । राजकीय सेवाओं में शामिल हुए २ व्यक्ति को योग्यता के अनुसार उसके सेवाकाल की अवधि के हिसाब से उस की पद वृद्धि होती रहे ।"[2]

---

१. परीक्षकैर्द्रावयित्वा यथा स्वर्णं परीक्ष्यते ।
कर्मणा सहवासेन गुणैः शील कुलादिभिः ॥ ५३ ॥
भृत्यं परीक्षयेन्नित्यं विश्वास्यं विश्वसेत् सदा ।
नैव जातिर्न कुलं केवलं लक्षयेदपि ॥ ५३ ॥
कर्मशील गुणाः पूज्यास्तथाजाति कुलेन हि ।
न जात्या न कुलेनैव श्रेष्ठत्वं प्रतिपद्यते ॥ ५५ ॥
विवाहे भोजने नित्यं कुलजाति विवेचनम् ॥ २६ ॥ (शुक्र० अ० २)

२. अतः कार्य क्षमं दृष्ट्वा कार्येऽन्ये तं नियोजयेत् ।
तत् कार्ये कुशलं चान्यं तत् पदानुगतं खलु ॥ ११३ ॥
नियोजयेद्वर्तने तु तदभावे तथापरम् ।
तद्गुणे यदि तत्पुत्रः तत्कार्ये तं नियोजयेत् ॥ ११४ ॥
यथा यथा श्रेष्ठपदे ह्यधिकारी यदा भवेत् ।
अनुक्रमेण संयोज्यो ह्यन्ते तं प्रकृतिं नयेत् ॥ ११५ ॥ (शुक्र० अ० २)

निरीक्षक— राज्य के प्रत्येक विभाग तथा कार्य पर निरीक्षक अवश्य नियुक्त करने चाहियें— "जो कार्य जितना अधिक महत्वपूर्ण हो, उस पर उतने ही अधिक निरीक्षक नियुक्त किए जायँ। अथवा उस कार्य के अध्यक्ष रूप से एक बहुत ही योग्य व्यक्ति को नियुक्त किया जाय।"[1]

गुप्तचर— शासन कार्य भली प्रकार चलाने के लिये राजा को गुप्तचर रखने का आदेश आचार्य शुक्र ने दिया है। ये गुप्तचर विश्वास पात्र और बुद्धिमान हों। राजा प्रतिदिन रात के समय एकान्त में इस विभाग के अध्यक्षों से मिलकर राज्य के वास्तविक रहस्य जाना करे। गुप्तचर रखने की व्यवस्था केवल शुक्र ने ही नहीं दी है, बहुत प्राचीन काल से-रामायण काल से भी पूर्व-राजा अपने दोष जानने के लिये गुप्तचर रखा करते थे। ये गुप्तचर राज्य के निवासियों की राजा और सरकार के सम्बन्ध में की हुई आलोचनाओं को राजा तक पहुंचाते थे, ताकि राजा अपनी वास्तविक स्थिति से अभिज्ञ रह सके। इन आलोचनाओं को सुन कर राजा जहां अपने दोष जान सकता है, वहाँ उसका कौन सा कर्मचारी कैसा है- इस बात का भी पता रख सकता है।[2]

ये गुप्तचर न केवल साधारण प्रजा की आलोचनाओं को जानने के लिये ही रखने चाहियें अपितु राजकर्मचारियों पर उन की वास्तविक स्थिति जानने के लिये भी गुप्तचरों को नियुक्त करना चाहिये।

आवागमन के साधन— आज कल के राष्ट्रों के शासन की उत्तमता तथा स्थिरता में आवागमन के साधनों का अच्छा होना एक मुख्य कारण है। रेल और तार आदि द्वारा समूचे देश के समाचार एक ही दिन में राजधानी की सरकार को ज्ञात हो जाते हैं। बिना आवागमन के अच्छे साधनों के एक बड़े देश में एक ही सरकार सफलता पूर्वक शासन नहीं कर सकती। इसी लिये आचार्य शुक्र ने राजा को आदेश दिया है कि वह-

"दस हज़ार कोस दूर तक के समाचार एक ही दिन में जान ले।"[3]

इस से प्रगट होता है कि राज्य के समाचार जानने के लिये उस समय सरकार कितना पूर्ण प्रबन्ध रक्खा करती होगी। राजधानी में प्रतिदिन समाचार भेजने के लिये केन्द्रीय सरकार की ओर से प्रत्येक नगर तथा गाँव में एक एक प्रतिनिधि रखना चाहिये।

---

१. अधिकारि बलं दृष्ट्वा योजमेद्बहुर्शकान बहून् ।
अधिकारिणमेकं वा योजयेद्दर्शकैर्विना ॥ ११६ ॥ (शुक्र० अ० २)

२. शुक्र० अ० १ ।१३० श्लोक से १३६ तक।

३. अयुत क्रोशजां वार्त्तां हरेदेवा दिनेन वै ॥ ३६७ ॥ (शुक्र० अ० १)

इस कार्य के लिये उस समय सड़कों का पूर्ण प्रबन्ध था। राज्य भरमें सदृढ़ और सुरक्षित सड़कें थी; जिन पर यात्रियों के आराम के लिये सराय, घुड़शालाएँ, वृक्ष और मील दर्शक पत्थर आदि लगाए जाते थे।[1] इन सड़कों का वर्णन हम आर्थिक अवस्था के प्रकरण में करेंगे।

---

१. शुक० अ० १ राजमार्ग प्रकरण ।

चतुर्थ अध्याय

शासन व्यवस्था (ख)

प्रजा के अधिकार और स्थानीय स्वराज्य

आचार्य शुक्र ने जिस प्रकार की शासन पद्धति का वर्णन किया है उसे हम 'मुकुटधारी प्रजा-तन्त्र शासन' कह सकते हैं। उन के अनुसार शासन में प्रजा की स्थिति क्या होनी चाहिये इस का वर्णन हम इस अध्याय में करेंगे। परन्तु इस से पूर्व हम यह बता देना आवश्यक समझते हैं कि उस समय प्रजा के अधिकार के सम्बन्ध की ये सब बातें केवल अव्यवहारिक आदर्श राजनीतिक सिद्धान्त मात्र ही न थीं, अपितु ये सब बातें उस समय व्यवहार में भी आया करती थीं, अपनी यह स्थापना सिद्ध करने के लिये हम केवल दो उदाहरण देना पर्याप्त समझते हैं।

(१) महात्मा बुद्ध का जन्म ईसा से कम से कम ५०० वर्ष पूर्व हुवा था उन के पिता का नाम, शुद्धोधन था। सभी ऐतिहासिक इस बात से सहमत हैं कि शाक्यवंशीय शुद्धोधन कपिलवस्तु के जन-तन्त्र शासन के निर्वाचित प्रधान थे। कपिलवस्तु में उस समय शुद्ध रूप से जन-तन्त्र शासन ही था। प्रजा स्वयं राज्याधिकारियों को निर्वाचित किया करती थी, इसी प्रकार उस समय अन्य भी कतिपय छोटी२ रियासतों में प्रजातन्त्र शासन होने का प्रमाण मिलता है।

(२) सम्राट् चन्द्रगुप्त के दरबार में यूनान के राजदूत की हैसियत से आए हुए मैगस्थनीज़ ने अपने भारतवर्ष के वर्णन में यहां के निवासियों का जिकर करते हुए लिखा है—"सातवीं जाति मन्त्री और सभासद् लोगों की है—अर्थात् वे लोग जो राज काज की देखभाल करते हैं। संख्या की दृष्टि से तो यह श्रेणी सब से छोटी है परन्तु अपने उन्नत चरित्र और बुद्धि के कारण सब से अधिक प्रतिष्ठित है क्यों कि इसी वर्ग से राजा के मन्त्री गण राज्य के कोषाध्यक्ष और विचारकर्त्ता, जो झगड़ों को निपटाते हैं—लिये जाते हैं। सेनाके नायक और प्रधान न्यायाधीश गण भी प्रायः इसी वर्ग के होते हैं।"[1]

1. The Fragments of the Indika of Megasthenes. Fragment I. Para 51.

यद्यपि ये उदाहरण शुक्रनीति सार के निर्माण से कुछ पीछे के हैं तथापि इन से सिद्ध होता है कि उस समय भारतवर्ष में प्रजा के अधिकारों का स्वीकार किया जाना कोई आश्चर्यकारी बात नहीं थी।

जनता की योग्यता—इङ्गलैण्ड के सुप्रसिद्ध दार्शनिक जे० एस० मिलने किसी देश की जनता को प्रजातंत्र शासन के योग्य सिद्ध करने के लिए दो परखें दी हैं—देश की जनता प्रतिनिधि-शासन के नियमों के संचालन में व्यावहारिक रूप से सहायक हो। कोई नागरिक किसी दूसरे नागरिक के पाप को छिपाये नहीं। लोग उस शासन व्यवस्था के मार्ग में बाधक न हों।" आचार्य शुक्र ने भी राजा के राज्यारोहण करते ही उसे जनता के लिये इसी कर्म की उद्घोषणा करने का आदेश दिया है। राजा राष्ट्र के नियमों के संचालन में प्रजा से व्यवहारिक सहायता की आकांक्षा करे। राजनियमों के पालन में जनता किसी प्रकार भी बाधक न हो। इस प्रकार उस समय जनता कितनी सुसंगठित ठित और समझदार समझी जाती थी, यह ज्ञात होता है।

प्रजा के अधिकार— पाश्चात्य देशों में जिस सिद्धान्त को १६ वीं सदी में आकर स्वीकार किया गया, वह सिद्धान्त भारतवर्ष में बहुत प्राचीन समय से सर्वमान्य है राष्ट्र भर में राजा सब से अधिक उत्तरदायी व्यक्ति है परन्तु वह राष्ट्र की जतना का स्वामी नहीं नौकर है। वह प्रजा पर मनमाना निरंकुश शासन नहीं कर सकता अपितु वह राजा ही तभी तक रह सकता है जब तक कि वह प्रजा के अधिकारों की रक्षा करता है, राष्ट्र के नियमों का पालन करता है; अगर वह निरंकुश हो उठे तो प्रजा को यह अधिकार है कि वह उसे राज्यच्युत भी कर सके। स्वेच्छाचारी राजा को राज्यच्युत करने का यह वैध उपाय आचार्य शुक्र ने लिखा है— "यदि राजा निरंकुश अधार्मिक और आचार भ्रष्ट हो उठे तो उसे राष्ट्र का नाशक समझ कर प्रजा राज्य च्युत कर दे। उस के स्थान पर प्रधानामात्य (पुरोहित) प्रजा के नेताओं और प्रतिनिधियों की अनुमति लेकर उसके वंशज किसी योग्य पुरुष को राजा नियुक्त करदे।" [२] तत्कालीन इङ्गलैण्ड में कोई इस प्रकार का स्वप्न भी न ले सकता था।

---

१. शुक्र० अ० १ श्लोक २९७-९८ और ३१० ।

२. गुणनीति बल द्वेशी कुलभूतोप्यधार्मिकः ।
नृपो यदि भवेत् तन्तु त्यजेद्राष्ट्रविनाशकम् ॥ २७ ॥
तत्पदे तस्य कुलजं गुणयुक्तं पुरोहितः ।
प्रकृत्यनुमतिं कृत्वा स्थापयेद्राज्य गुप्तये ॥ २७५ ॥ (शुक्र० अ० २)

"राजा के विना प्रजा में अव्यवस्था फैल जाती है और प्रजा के सहयोग के विना राजा का राजत्व ही नहीं रहता इस लिये राजा और प्रजा दोनों अन्योन्याश्रित हैं। राजा अगर न्याय मार्ग पर चले तो वह अपने को और प्रजा को धर्म अर्थ ओर काम से युक्त कर देता है; अगर वह अन्यायाचरण करे तो वह जहां राष्ट्र को हानि पहुंचाता है वहां स्वयं भी नष्ट हो जाता है।" [1]

वैध शासन— राष्ट्र में राजा को वैयक्तिक महत्ता ज़रा भी नहीं है। राष्ट्र के सम्बन्ध में वह जो मौखिक आज्ञाएं दे उन्हें राजाज्ञा ही नहीं समझना चाहिये। वास्तविक वैधशासक राजा की मुद्रा है, राजा की मुद्रा से अङ्कित प्रत्येक आज्ञा जनता को अवश्य शिरोधार्य करनी चाहिये—

"राज्याधिकारी राजा की लिखित आज्ञाओं के विना कोई भी कार्य न करें। राजा भी अपनी प्रत्येक छोटी से छोटी आज्ञा भी लिखित रूप से ही प्रकाशित करे। मनुष्य स्वभाव से भ्रमपूर्ण है इसलिये लिखित नियम ही प्रामाणिक मानने चाहिये। वह राजा और वे राज कर्मचारी जो लिखित आज्ञाओं के विना कार्य करते हैं शासक नहीं अपितु चोर हैं। वे लिखित आज्ञाएँ जिन पर राजा की मुद्रा अङ्कित है, वास्तव में राजा हैं, राजा व्यक्ति रूप में राजा नहीं है।" [2]

"राजा की मुद्रा से अंकित लिखित आज्ञा सब से उत्तम आजा है, राजा की लिखित आज्ञा भी उत्तम है; मन्त्री आदियों की लिखित आज्ञाएं मध्यम हैं; नगर समितियों के अधिकारियों की लिखित आज्ञाएं तीसरे दर्जे की हैं परन्तु इन सब के द्वारा कार्य सिद्ध हो सकता है।" [3]

---

१. न तिष्ठन्ति स्वधर्मे विना पालेन वै प्रजा।
प्रजया तु विना स्वामी पृथिव्यां नैव शोभते॥ ६६॥
न्याय प्रवृत्तो नृपतिरात्मानमथ च प्रजा।
त्रिवर्गेणोपसन्धत्ते निहन्ति ध्रुवमन्यथा॥ ६७॥ (शुक्र० अ० १)

२. न कार्यं भृत्यकः कुर्यान्नृप लेखाद्विना क्वचित्।
नाज्ञापयेल्लेखनेन विनाल्पं वा महन्नृपः॥ २९०॥
भ्रान्तेः पुरुष धर्मत्वाल्लेख्यं निर्णायकं परम्।
अलेख्यमाज्ञापयति ह्यलेख्यं यत् करोति यः।
राजकृत्यमुभौ चोरौ तौ भृत्य नृपती सदा॥ २९१॥
नृप संचिन्हितं लेख्यं नृपस्तन्न नृपो नृपः॥ २९२॥

३. समुद्र लिखितं राज्ञा लेख्यं तच्चोत्तमोत्तमम्।
उत्तमं राज लिखितं मध्यं मन्त्र्यादिभिः कृतम्।
पौरलेख्यं कनिष्ठं स्यात् सर्वं संसाधन क्षमम्॥ २९३॥

"युवराज और मन्त्रियों से लेकर साधारण राज्याधिकारी तक सब शासकों को चाहिये कि वे अपने दैनिक, मासिक, वार्षिक और बहु वार्षिक विवरण लिख कर राजा के पास भेजा करें । राजा की मुद्रा से अंकित लिखित कानूनों को संगृहीत करते रहना चाहिये, ताकि बहुत समय व्यतीत हो जाने पर भी उन के अनुसार कार्य करने में कोई बाधा उपस्थित न हो सके ।"[1]

व्यवस्थापिका सभा— शुक्रनीति में बड़ी स्पष्टता के साथ व्यवस्थापिका सभा का वर्णन पाया जाता है। व्यवस्थापिका सभा को उस समय सभा ही कहा जाता था। यह सभा राष्ट्र के नियमों का निर्धारण करती थी, आवश्यक शासन सम्बन्धी कार्यों में भी राजा को सलाह दिया करती थी। सभा की बैठकों में चारों जातियों तथा गण पूगादियों के प्रतिनिधि, मन्त्रि मण्डल के सदस्य, स्वयं राजा द्वारा निर्वाचित सदस्य तथा राष्ट्र के कार्यकर्त्ता सम्मिलित हुवा करते थे। यद्यपि शुक्रनीतिसार द्वारा यह ज्ञात नहीं होता कि इस सभा के प्रतिनिधियों का निर्वाचन किस प्रकार और कितने समय के लिये होता था, इस के अधिकार कहां तक थे, मन्त्रि परिषद् और राजा का इस से क्या सम्बन्ध था, तथापि सभा की सत्ता और उस की यत्किञ्चित् महत्ता का ज्ञान अवश्य होता है—

"राजा को चाहिये कि वह मंत्रि परिषद् के सभ्यों, राज्य के मुख्य अधिकारियों और जनता द्वारा निर्वाचित सभा के सभासदों की अनुमति पर चल कर ही कार्य करे, यथेच्छ कार्य न करे।"[2]

हमारा अनुमान है कि सभ्य और सभासद में अन्तर है। मन्त्रि परिषद् के सदस्य को सभ्य कहा जाता था और जन सभा के सदस्य को सभासद्। सभ्य, सभासद् और अधिकारी ये तीनों 'सभा' के सदस्य होते थे।

आचार्य शुक्र ने राजा के छोटे सेवकों के कार्य लिखते हुए दौवारिक के लिये निर्देश दिया है कि—

---

१. यस्मिन् यस्मिन् हि कृत्ये तु राज्ञा योऽधिकृतो नरः ।
सामात्य युवराजादिर्यथानुक्रमतश्च सः ॥ २९४ ॥
दैनिकं मासिकं वृत्तं वार्षिकं बहुवार्षिकम् ।
तत् कार्यजात लेख्यन्तु राज्ञे सम्यङ् निवेदयेत् ॥ २९५ ॥
राजाद्यङ्कित लेख्यस्थ धारयेत स्मृति पत्रकम् ।
कालेतीते विस्मृतिर्वा भ्रान्तिः संजायते नृणाम् ॥ २९६ ॥ (शुक्र० अ० २)

२. सभ्याधिकारि प्रकृति सभासत्सुमते स्थितः ।
सर्वदा स्यान्नृपः प्राज्ञः स्वमते न कदाचन ॥ ३ ॥ (शुक्र० अ० २)

"वह जब देखे कि सभा भवन में सभासद आगए हैं तब वह राजा को उन का नमस्कार निवेदित करे और वापिस आकर उन के स्थान की सूचना उन्हें दे।"[1]

"राज-सभा में जब पुरोहित (प्रधानामात्य) आए तब राजा को खड़े होकर उसका सम्मान करना चाहिये, उस से कुशल प्रश्न करने चाहिये। मन्त्री परिषद् के अन्य सभ्यों का भी इसी प्रकार सम्मान करना चाहिये। जब राज्याधिकारी सभा में आएं तब राजा को शान से बैठे रहना चाहिये; राज्याधिकारी उसे सम्मान पूर्वक प्रणाम करें।[2]

"राजा को अपने मित्रों, सम्बन्धियों तथा शरीर रक्षकों के साथ राज-सभा में जाना चाहिये। राजा का सिंहासन सभा-भवन के मध्य में हो तथा अन्य सदस्य उस के चारों ओर बैठें।"[3]

राजा सभा में जाने से पूर्व मन्त्रि परिषद् के सभ्यों से सब विषयों पर एकान्त में सलाह कर ले, अगर रातका समय हो तो यह मन्त्रणा महल में और अगर दिन का समय हो तो बाग के साफ़ मैदान में होनी चाहिये।"[4]

इस प्रकार शुक्रनीति के आधार पर उस समय जन-सभा की सत्ता सिद्ध होती है। इस जन सभा का सभापति 'प्रधान' होता था जो कि इसी हैसियत से मन्त्रि परिषद् का एक प्रभाव शाली सदस्य था।

---

१. दृष्ट्वागतान् सभामध्ये राज्ञे दण्डधरः क्रमात्।
निवेद्य तन्नतीः पश्चात् तेषां स्थानानि सूचयेत् ॥ २११ ॥ (शुक्र० अ० २)

२. पुरोगमनमुत्थानं स्वासने सन्निवेशनम्।
कुर्यात् स कुशल प्रश्नं क्रमात् सुस्मित दर्शनम् ॥ २८० ॥
राजापुरोहितादीनां त्वन्येषां स्नेह दर्शनम्।
अधिकारि गणादीनां सभास्थस्य निरालसः ॥ २८१ ॥

३. सुहृद्भिर्भ्रातृभिः सार्द्धं सभायां पुत्र बान्धवैः।
राजकृत्यं सेनपैश्च सभ्याद्यैश्चिन्तयेत् सदा ॥ ३५२ ॥
सभायां प्रत्यगद्गस्य मध्ये राजासनं स्मृतम्।
दक्षसंस्था वाम संस्था विशेयुः पार्श्वकोष्ठगाः ॥ ३५३ ॥

४. अन्तर्वेश्मनि रात्रौ वा दिवारण्ये विशोधिते।
मन्त्रयेन्मन्त्रिभिः सार्धं भावि कृत्यन्तु निर्जने ॥ ३५१ ॥ (शुक्र० अ० २)

तत्कालीन शासन का स्वरूप— उपर्युक्त विवेचना से स्पष्टतया सिद्ध होता है कि शुक्रनीति के अनुसार राष्ट्र में प्रजा की स्थिति बहुत महत्व पूर्ण है; राजा राष्ट्र का सब से अधिक महत्व पूर्ण व्यक्ति होते हुए भी बिलकुल सीमित अधिकारों वाला है। वह राष्ट्र की व्यवस्था तथा साधारण विधानों से ऊपर नहीं है, इन के आधीन है। इस शासन को हम "नियमित राजतन्त्र" (Constitutional Monarchy) कह सकते हैं। अपनी इस स्थापना को हम कुछ विस्तार के साथ पुष्ट करना चाहते हैं।

जर्मनी के सुप्रसिद्ध राजनीतिशास्त्रज्ञ ब्लंशली ने अपनी The Theory of the State नामक पुस्तक में नियमित राजसत्ता का स्वरूप इस प्रकार बतलाया है—

"नियमित राज-सत्ता (Constitutional Monarchy) में—

१. राजा का सम्मान तथा उस की शक्तियां राष्ट्र की शासन व्यवस्था (Canstitution) से शासित रहती हैं। इस पद्धति में राजा न तो राष्ट्र की शासन व्यवस्था से जुदा होता है और न उस से ऊपर होता है अपितु वह उस का एक अङ्ग होता है। यह निश्चित नहीं कि यह शासन व्यवस्था लिखित रूप में ही हो अपितु इस में राष्ट्र की प्रथाए' आदि भी शामिल हैं।

२. इस पद्धति में राजा न केवल शासन-व्यवस्था ही मानने को बाधित है अपितु उसे राष्ट्र के साधारण विधान भी मानने होते हैं। प्रजा से उसे केवल व्यवस्थानुकूल चलने की आशा ही रखनी चाहिये।

३. राष्ट्र के विधानों का निर्माण करते हुए उन के लिये प्रजा के प्रतिनिधियों की सहमति भी आवश्यक है। इस के बिना कोई विधान प्रजा के लिये मान्य नहीं हो सकता।

४. प्रजा पर कर लगाने में भी प्रजा के प्रतिनिधियों की सहमति आवश्यक है।

५. राष्ट्र के शासन में राजा के लिये मन्त्रियों की सहायता लेना आवश्यक है। राजा की आज्ञाओं पर उस विभाग के मन्त्री के भी हस्ताक्षर होने चाहिये।

६. मन्त्रियों तथा अन्य अधिकारियों का उत्तरदायित्व अबाध्य रूप से आवश्यक है।

७. राष्ट्र का न्याय विभाग शासकों के आधीन नहीं है, वह उनका भी निरीक्षण करता है।

८. व्यक्ति तथा श्रेणियों के अधिकार केवल वैयक्तिक और निजू ही नहीं समझे जाँयगे, उन्हें सामाजिक अधिकार स्वीकार किया जायगा। उनकी अवहेलना ठीक उसी प्रकार नहीं की जा सकती जिस प्रकार कि स्वयं राजा के अधिकारों की।" [1]

आचार्य शुक्र द्वारा वर्णित शासन-व्यवस्था भी ठीक इन्हीं सिद्धान्तों पर आश्रित है; उस में भी प्रजा के अधिकारों को इतनी ही महत्ता दी गई है, इसीलिये हम ने उस शासन व्यवस्था का नाम 'नियमित राज-सत्ता' ही दिया है।

स्थानीय स्वराज्य

आचार्य शुक्र ने अपने नीतिशास्त्र में स्थानीय स्वराज्य (Local self govt.) को बहुत मुख्यता दी है। इस सम्बन्ध में उनके बताये हुए निर्देश और विचार आजकल भी प्रामाणिक रूप से देखे जा सकते हैं। उन के अनुसार प्रत्येक नगर और गाँव में अलग २ प्रबन्ध समितियाँ होनी चाहिये। इन में कुछ सदस्य नागरिकों द्वारा निर्वाचित तथा कुछ सदस्य सरकार द्वारा नामज़द रहने चाहिये। इन नगर समितियों के पास शासन, न्याय तथा अपने स्थानीय नियम बनाने के अधिकार भी होने चाहिये। इतना ही नहीं व्यवसाय तथा पेशे के दृष्टि से भी प्रजा को संघ बनाने चाहिये, इन संघों को भी शासन, न्याय तथा स्थानीय नियम बनाने के यथोचित अधिकार होने चाहिये। इन संघों के लिये शुक्रनीति में गण, पूग और संघ ये तीन शब्द आते हैं।

"किसानों, श्रमियों, शिल्पियों, महाजनों, नर्तकों, सन्यासियों तथा तस्करों के संघों और नगर समितियों को अपने झगड़े आपस में मिटा लेने का अधिकार होना चाहिये।" [२]

इसी तरह मुकद्दमों में जब मध्यस्थ (जूरी) नियत करने हों तो उनका निर्वाचन भी अभियुक्त तथा अभियोगी के संघों द्वारा ही करवाना चाहिये।

---

1. Theory of the State. Bluntschli. Page 437–38.

२. कीनाशाः कारुकाः शिल्पि कुसीदि श्रेणीनर्तकाः।
लिङ्गिनस्तस्कराः कुर्युः स्वेन धर्मेण निर्णयम् ॥ १८ ॥ (शुक्र० अ० ४. V.)

"श्रेणियां (नगर-समितियां) उन मामलों का निर्णय करें जो कुलों (परिवारों) द्वारा निर्णीत नहीं हो सके हैं; गण (जातियों के संघ) उन मामलों का निर्णय करें जिनका निर्णय श्रेणियों द्वारा नहीं हो सका और श्रेणियों द्वारा भी अनिर्णीत मामलों का निर्णय सरकार करे।"[1]

"राजा को अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए देश के रीतिरिवाजों का पूर्ण ध्यान रखना चाहिये और उसे जातियों, ग्राम समितियों और कुलों के स्थानीय नियमों तथा रिवाजों का भी अध्ययन करना चाहिये। न्याय करते हुए इनका ध्यान अवश्य रखना चाहिये नहीं तो प्रजा में भयंकर आन्दोलन उठ खड़ा होता है।"[2]

इस प्रसंग में 'तस्कर संघों' का कुछ परिचय दे देना आवश्यक है। ये तस्कर-संघ क्या थे? तस्कर शब्द का अर्थ चोर है, इस लिये यह शब्द कई बार बड़ा भ्रम उत्पन्न करता है। चोरों के संघों को भी न्याय सम्बन्धी कुछ अधिकार देना बहुत हास्यास्पद प्रतीत होता है। हमारी सम्मति में इन तस्करसंघों के दो अभिप्राय हो सकते हैं—

१. संस्कृत के शब्दार्थ चिन्तामणि कोश में तस्कर शब्द की व्याख्या करते हुए कहा गया है—"तस्कर दो प्रकार के होते हैं—प्रकाश और अप्रकाश; राजा को चाहिये कि वह इन सब तस्करों का ज्ञान रक्खे। प्रकाश तस्कर वे होते हैं जो नाना प्रकार का थोड़ा २ सौदा बेच कर निर्वाह करते हैं और अप्रकाश तस्कर वे होते हैं जो दलाली द्वारा कमाते हैं।"[3]

तस्कर शब्द की इस व्याख्या के अनुसार तस्कर संघों का अभिप्राय खोंचेवालों का संघ और दलालों का संघ प्रतीत होता है।

---

१. राज्ञा ये विदिताः सम्यक् कुलश्रेणि गणादयः।
साहस-स्तेय वर्ज्यानि कुर्युः कार्याणि ते नृणाम् ॥ ३० ॥

२ प्रत्यहं देश दृष्टैश्च शास्त्र दृष्टैश्च हेतुभिः।
जाति जानपदान् धर्मान् श्रेणिधर्मांस्तथैव च ।
समीक्ष्य कुल धर्मांश्च स्व धर्मं प्रतिपालयेत् ॥ ४७ ॥
देश जाति कुलानां च ये धर्माः प्राक् प्रवर्तिताः।
तथैव ते पालनीयाः प्रजा प्रक्षुभ्यतेऽन्यथा ॥ ४८ ॥ (शुक्र० अ० ४.)

३. द्विविधान् तस्करान् विद्यात् पर द्रव्यापहारकान् ।
प्रकाशांश्चाप्रकाशांश्च चार चक्षुर्महीपतिः ॥
प्रकाशवञ्चकास्तेषां नाना पण्योपजीविनः ।
प्रच्छन्न वञ्चकास्त्वेते येस्तेनाटविकादयः ॥
(शब्दार्थचिन्तामणि, तस्कर शब्द)

२. कौटिल्य-अर्थशास्त्र में अनेक स्थानों पर आटविक-संघों का वर्णन आता है, ये आटविक जनपदों की सीमाओं पर निवास किया करते थे। इन के वागुरिक, शबर, पुलिन्द, चण्डाल, अरण्यचर आदि अनेक भेद अर्थ शास्त्र में वर्णित हैं। सम्भावतः तस्कर संघों से इन आटविक संघों का भी अभिप्राय समझा जासकता है।[1] इस के अनुसार ये तस्कर संघ सीमा प्रान्त के विदेशी शासकों के आक्रमण से भारत की रक्षा करते थे; आवश्यकता पड़ने पर डाके आदि डाल कर उन्हें तंग भी करते थे। सरकार इस के लिये इन्हें कुछ धन देती थी और इन के स्थानीय उपनियमों का मान करती थी।

---

१. कौटिल्य अर्थ शास्त्र. और २ अधि० १ अ०
११ अधि० १ अ०
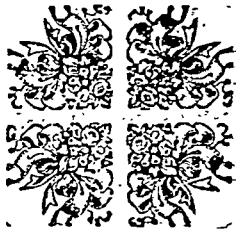
पञ्चम अध्याय
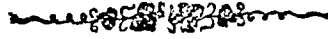
न्याय-व्यवस्था

न्याय विभाग—आचार्य शुक्र के अनुसार न्यायविभाग राष्ट्र के शासन विभाग से बिल्कुल अलग और स्वतन्त्र है। राजा इन दोनों विभागों में सम्बन्ध उत्पन्न करने वाला व्यक्ति है; प्राड्‌विवाक् इस विभाग का मुख्य अध्यक्ष है। न्याय-विभाग के शासन विभाग के आधीन न होने से ही उचित न्याय तथा प्रजा का धर्मानुकूल शासन सम्भव है। यदि न्यायकर्ता और शासक एक ही व्यक्ति हो तो अत्याचारी और स्वार्थी शासकों पर न्याय और कानून का नियन्त्रण रखने वाला कोई व्यक्ति नहीं रहेगा। इस अवस्था में शासकों की प्रवृत्ति बिगड़ने की ओर ही होगी। प्रजा की दुःखभरी आहों पर ध्यान देने वाली कोई भी बलशाली व्यवस्था शेष न रहेगी। इस लिये राष्ट्र के कल्याण को दृष्टि में रख कर न्याय विभाग और शासन विभाग का पृथक् होना नितान्त आवश्यक है।

इसी तथ्य को ध्यान में रख कर आचार्य शुक्र ने व्यवस्था दी है कि—"प्राड् विवाक (Chief Justice) अपनी सभा (Council) में बैठा हुवा गवाहों, लिखित पत्रों, भोग्य द्रव्यों और अपने सामने कही गई सच्ची या झूठी बातों से मुकद्दमे पर अच्छी तरह विचार कर के दिव्य परीक्षा अथवा युक्ति, प्रत्युक्ति, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शास्त्र द्वारा परीक्षा कर के बहुसम्मति द्वारा निर्णय कर के अपना फैसला राजा के सामने रक्खे। तब राजा उस पर हस्ताक्षर करे और अपराधी को यथायोग्य दण्ड दे।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण में न्याय-विभाग का अध्यक्ष और उस की सभा ये दोनों प्रधान न्यायाधीश और जूरी कमीशन की ही द्योतक हैं। राष्ट्र के प्रधान न्याया-

---

१. साक्षिभिर्लिखितैः भोगैश्छलैः भूतैश्च मानुषात् ।
स्वेनोत्पादित सम्प्राप्त व्यवहारम् विचिन्त्य च ॥ ९६ ॥
दिव्य संसाधनाद्वापि केषु किं साधनं परम् ।
युक्ति प्रत्यक्षानुमानोपमानैर्लौकि शास्त्रतः ॥ ९७ ॥
बहु सम्मत संसिद्धाम् विनिश्चित्य सभास्थितः ।
ससभ्यः प्राडविवाकस्तु नृपं संबोधयेत् सदा ॥ ९८ ॥ (शुक्र० अ० २)

धीश का कार्य यथासम्भव राजा स्वयं करे; जिन अवस्थाओं में वह ऐसा न कर सके उन में वह अपने स्थान पर वेदों के अच्छे ज्ञाता, जितेन्द्रिय, कुलीन, दूसरों के चित्त को दुखित न करने वाले, स्थिर स्वभाव, परलोक से डरने वाले, धर्मनिष्ठ, क्रोधशून्य ब्राह्मण को न्याय-विभाग का अधिष्ठाता बनावे । यदि कोई ब्राह्मण इस योग्य न मिले या ब्राह्मण के मुकाबले में कोई अधिक योग्य क्षत्रिय मिल जाय तो उसी द्वारा यह कार्य करावे । क्षत्रिय के अभाव में वैश्य भी नियुक्त किया जा सकता है ।"[1]

न्याय-सभा— "न्याय-सभा (Jury Commission) के सभासद् व्यवहार कुशल, शील और गुणों से युक्त, शत्रु के साथ भी न्यायानुकूल आचरण करने वाले, सत्य वक्ता, आलस्य रहित, काम क्रोधादियों को जीतने वाले और मधुरभाषी हों । सभी जातियों के ऐसे श्रेष्ठ पुरुषों को राजा न्याय-सभा का सदस्य बनाये ।"[2]

इसी प्रकार किसान, राज आदि शिल्पियों के संघों के सदस्यों का परस्पर कोई विवाद हो तो उस का निर्णय उन्हीं के धर्म तथा रिवाजों के अनुसार करना चाहिये; जूरी भी इन्हीं संघों द्वारा नियुक्त करवाने चाहिये ।[3]

"तपस्वियों के विवादों का निर्णय तथा मायाविद्या और योगविद्या जानने वालों के झगड़ों का निर्णय भी राजा को स्वयं न कर के तीनों वेदों के ज्ञाता ब्राह्मणों से करवाना चाहिये क्यों कि अशुद्ध निर्णय हो जाने पर ये लोग नाराज़ होकर राष्ट्र को पीड़ा पहुंचाते हैं । इसी प्रकार जंगल के वासियों के विवादों का निर्णय जंगल वासी, सैनिकों के विवादों का सैनिक ही निर्णय करें, जिस समूह का झगड़ा हो; उसी समूह के प्रतिनिधि मध्यस्थ बन कर उसका

---

१. यदा न कुर्यान्नृपतिः स्वयं कार्य विनिर्णयम् ।
तदा तत्र नियुञ्जीत ब्राह्मणं वेद पारगम् ॥ १२ ॥
दान्तं कुलीनं मध्यस्थमनुद्वेगकरं स्थिरम् ।
परत्र भीरुं धर्मिष्ठमुद्युक्तं क्रोधवर्जितम् ॥ १३ ॥
यदा विप्रो न विद्वान् स्यात् क्षत्रियं तत्र योजयेत् ।
वैश्यं वा धर्मशास्त्रज्ञं शूद्रं यत्नेन वर्जयेत् ॥ १४ ॥

२. व्यवहार विदः प्राज्ञा वृत्त शील गुणान्विताः ।
रिपौ मित्रे समा ये च धर्मज्ञाः सत्यवादिनः ॥ १६ ॥
निरालसा जितक्रोध काम लोभाः प्रियंवदाः ।
राज्ञा नियोजितव्यास्ते सभ्याः सर्वासु जातिषु ॥ १७ ॥ (शुक्र० अ० ४ ^{५})

३. शुक्र अध्याय ४, ^{५} श्लोक ५२–श्लोक १८–२० ।

निर्णय करें। इस प्रकार राजा लोक व्यवहार तथा न्याय व्यवहार के लिये धार्मिक सुपरीक्षित सभ्यों को कार्य में लगावे।" [१]

"लोक और वेद दोनों के जानने वाले पांच, सात या तीन ब्राह्मण जिस सभा में हों, वह सभा यज्ञ के सदृश पवित्र है। व्यवहार सम्बन्धी अभियोगों को सुनने के लिये वैश्यों को नियुक्त करना चाहिये। शास्त्र और कानून जानने वाले व्यक्ति को चाहे निर्णायक नियुक्त किया जाया या न किया जाय, उसे सदैव सत्य कह ही देना चाहिये।" [२]

ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय किसी अभियोग में केवल न्यायाधिकारियों, अभियुक्तों और गवाहों को ही बोलने का अधिकार नहीं होता था अपितु दर्शकों को भी अगर कोई बात सूझ जाय तो वह बात वे न्यायधीश से कह सकते थे, इस के लिये उन्हें साधारण अवस्था में रोक न थी। न्याय ठीक हो, इसी ओर सम्पूर्ण यत्न किया जाता था। जूरी बनने वाले व्यक्ति के लिये आचार्य शुक्र ने कहा है—"मनुष्य या तो सभा में जावे ही नहीं, अगर वह जाता है तो वहां सच्ची २ बात कहे, सच्ची बात न कह कर चुप चाप रहने वाला या झूठ बोलने वाला मनुष्य पापी होता है।" [३]

"राजा जिन संघों, गणों या कुलों पर पूरा विश्वास रखता हो उन को डाका या चोरी आदि के मामलों को छोड़ कर शेष स्थानीय विवादों के अधिकार दे। कुल जिस बात का विचार न कर सके उस का निर्णय श्रेणियाँ करें,

---

१. तपस्विनां तु कार्याणि त्रैविद्यैरेव कारयेत्।
मायायोगविदां चैव न स्वयं कोपकारणात्॥ २१॥
सम्यग् विज्ञान सम्पन्नो नोपदेशं प्रकल्पयेत्।
उत्कृष्ट जातिशीलानां गुर्वाचार्य तपस्विनाम्॥ २२॥
आरण्यकास्तु स्वकैः कुर्युः सर्थिकाः सर्थिकैः सह।
सैनिका सैनिकैरेव ग्रामेऽप्युभय वासिभिः॥ २३॥
अभियुक्ताश्च ये यत्र यन्निबन्ध नियोजनाः।
तत्रत्य गुण दोषानां त एव हि विचारकाः॥ २४॥
राजा तु धार्मिकान् सभ्यान् नियुञ्ज्यात् सुपरीक्षितान्।
व्यवहारधुरं वोढुं ये शक्ता पुङ्गवा इव॥ २५॥

२. लोक वेदज्ञ धर्मज्ञाः पञ्च सप्त त्रयोपि वा।
यत्रोपविष्टा विप्राः स्युः सा यज्ञ सदृशी सभा॥ २॥
श्रोतारो वणिजस्तत्र कर्तव्या सुविचक्षणाः॥ २७॥
अनियुक्तो वा नियुक्तो वा धर्मज्ञो वक्तुमर्हति।
दैवीं वाचं स वदति यः शास्त्रं उपजीवति॥ २८॥

३. सभा वा न प्रवेष्टव्या वक्तव्यं वा समञ्जसम्।
अब्रुवन् विब्रुवन् वापि नरो भवति किल्विषी॥ २९॥ (शुक्र॰ अ॰ ४ ५)

यह अभियोग श्रेणियों के बाद गण और गण के बाद राजा के न्यायालय में जाना चाहिये। कुलादियों से उत्कृष्ट सभा के सभ्य हैं, उन से उत्कृष्ट उनका अध्यक्ष–न्यायाधीश–है। परन्तु वास्तविक मुख्यता तो न्यायानुकूल निर्णय की है। ऊंच, नीच और सब प्रकार के झगड़ों का निर्णय राजा को करना होता है इस लिये सब से ऊपर राजा की सत्ता है।" [1]

एक ही अभियोग में जूरी कमीशन को परिवर्तित करके अथवा उस की कई बैठकें करवा कर भी विचार किया जाता था–"न्याय-सभा के सभ्यों द्वारा अलग २ एक बार, दो बार, तीन बार या चार बार भी विचार करवा कर निर्णय करना चाहिये। वादी और प्रतिवादी को, शेष सभ्यों तथा लेखकों और और दर्शकों को जो सदस्य न्यायानुकूल बातों से प्रसन्न करता है उसे 'सभास्तार' कहना चाहिये।" [2]

"किसी अभियोग का निर्णय करने में ये दस चीज़ें सहायक हैं– राजा, अधिकारी, सभ्य, स्मृतियें (कानून), गणक, लेखक, सोना, अग्नि, जल और राज-पुरुष (पोलीस)। राजा को न्यायासन पर बैठ कर इन्हीं दस अंगों की सहायता से ही न्याय करना चाहिये।" [3]

इन दसों के कार्य निम्नलिखित है–"वक्ता या प्राड विवाक् न्यायाध्यक्ष है, शासक राजा है, और कार्य की परीक्षा करने वाले सभ्य लोग हैं, स्मृति निर्णय

---

१. राज्ञा ये विदिता सम्यक् कुल श्रेणिगणादयः।
साहसस्तेय वर्ज्यानि कुर्युः कार्याणि ते नृणाम्॥ ३० ॥
विचार्य श्रेणिभिः कार्यं कुलैर्यन्न विचारितम्।
गणैश्च श्रेण्यविज्ञातं गणाज्ञातं नियुक्तकैः॥ ३१ ॥
कुलादिभ्योऽधिकाः सभ्यास्तेभ्योऽध्यक्षोऽधिकः कृतः।
सर्वेषामधिको राजा धर्माधर्म नियोजकः॥ ३२ ॥
उत्तमाधम मध्यानां विवादानां विचारणात्।
उपर्युपरि बुद्धीनां चरन्तीश्वर बुद्धयः॥ ३३ ॥

२. एक द्वित्रि चतुर्वारं व्यवहारानुचिन्तनम्।
कार्यं पृथक् पृथक् सभ्यै राज्ञा श्रेष्ठोत्तरैः सह॥ ३६ ॥
अर्थि प्रत्यर्थिनौ सभ्यान् लेखक प्रेक्षकांश्च यः।
धर्मवाक्यै रञ्जयति स सभास्तारतामियात्॥ ३७ ॥

३. नृपोधिकृत सभ्याश्च स्मृतिर्गणक लेखकौ।
हेमाग्न्यम्बुस्वपुरुषा साधनाङ्गानि वै दश॥ ३८ ॥
एतद्दशाङ्ग करणं यस्यामध्यास्य पार्थिवः।
न्यायान् पश्येत् कृतमतिः सासभाध्वर सन्निभा॥ ३९ ॥ (शुक्र० अ० ४ ५.)

देती है और जप, दान और दम का उपदेश देती है। शपथ के लिये सोना और आग है। प्यासे के लिये जल है, गणक वस्तु की परीक्षा करे और लेखक गवाहियों और निर्णय को लिखे।"[१]

"राजा को गणक और लेखक उस प्रकार के रखने चहिये जो शब्द शास्त्र और भाषा के दोषों को जानने वाले तथा भिन्न २ भाषाओं में प्रवीण हों।"[२]

न्यायालय— न्यायालय को प्राचीन काल में धर्माधिकरण कहा जाता था क्योंकि इस सभा में धर्म शास्त्र और स्मृति शास्त्रों के आधार पर अभियोगों और विवादों का निर्णय किया जाता था—"इस धर्म सभा में व्यवहारों को देखने की इच्छा वाला राजा उत्तम मन्त्रियों और ब्राह्मणों के साथ प्रवेश करे, और धर्मासन पर बैठ कर उपस्थित अभियोगों को देखे। पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष दोनों के प्रति समदर्शी होकर राजा दोनों पक्षों से उन के बयान ले। प्रतिदिन देश में प्राप्त होने वाले उदाहरणों तथा शास्त्रों में दिये हेतुओं के अनुसार राजा राष्ट्र, सम्प्रदायों तथा कुलों के स्वार्थों की रक्षा करे।"[३]

"पहले से चले आए हुए राष्ट्र और जाति के कानूनों तथा प्रथाओं के आधार पर ही न्याय करना चाहिये जिस से प्रजा विरुद्ध होकर बिगड़ न उठे।"[४]

---

१. दशानमपि चैतेषां कर्म प्रोक्तं पृथक् पृथक् ।
वक्ताध्यक्षो नृपः शास्ता सभ्याः कार्यपरीक्षकाः ॥ ४० ॥
स्मृतिर्विनिर्णयं ब्रूते जपं दानं दमं तथा ॥ ४१ ॥
शपथार्थे हिरण्याग्नि अम्बुतृषित लुब्धयोः ।
गणको गणयेदर्थं लिखेन्न्यायं च लेखकः ॥ ४२ ॥

२. शब्दाभिधान तत्वज्ञौ गणना कुशलौ शुची ।
नाना लिपिज्ञौ कर्तव्यौ राज्ञा गणक लेखकौ ॥ ४३ ॥

३. धर्मशास्त्रानुसारेण ह्यर्थ शास्त्र विवेचनम् ।
अत्राधिक्रियते स्थाने धर्माधिकरणं हि तत् ॥ ४४ ॥
व्यवहारान् दिदृक्षुस्तु ब्राह्मणैः सह पार्थिवः ।
मन्त्रज्ञैर्मन्त्रिभिश्चैव विनीतः प्रविशेत सभाम् ॥ ४५ ॥
धर्मासनमधिष्ठाय कार्य दर्शनमारभेत् ।
पूर्वोत्तर समो भूत्वा राजा पृच्छेद् विवादिनौ ॥ ४६ ॥
प्रत्यहं देश दृष्टैश्च शास्त्र दृष्टैश्च हेतुभिः ।
जाति जानपदान् धर्मान् श्रेणिधर्मास्तथैव च ।
समीक्ष्य कुल धर्मांश्च स्व धर्मं प्रतिपालयेत् ॥ ४७ ॥

४. देश जाति कुलानां च ये धर्माः प्राक् प्रवर्त्तिताः ।
तथैव ते पालनीयाः प्रजा प्रक्षुभ्यतेन्यथा ॥ ४८ ॥ (शुक्र० अ० ४, ५)

न्यायालय की कार्यवाही—मुद्दई को अर्थी और मुद्दाला को प्रत्यर्थी कहा जाता है। कोई अभियोग प्रारम्भ होने पर पहले अर्थी धर्मासन पर बैठे हुए राजा को झुककर नमस्कार कर के अपना अभियोग लिखित रूप में ठीक २ उसके सामने निवेदित करे। राजा उसे साम पूर्वक शान्त कर के उस अभियोग के सम्बन्ध में अपना कानून बतला दे और फिर विनीत अर्थी से कहे कि 'तुम डरो नहीं, सच सच कहो; तुम्हें क्या कष्ट है ? किस से तुम्हें शिकायत है ? तुम्हें किस दुष्ट ने कब, किस प्रकार, कहां, कैसे कष्ट पहुंचाया है ?' यह कह कर वह अर्थी का उत्तर सुने, उस की आवाज़ और ढंग से यह पहिचानने का यत्न करे कि वह सत्य बात कह रहा है या नहीं। लेखक अर्थी की बातों को न्यायालय द्वारा स्वीकृत भाषा में लिखता चला जाय। जो लेखक अर्थी या प्रत्यर्थी की बात को कुछ का कुछ लिख दे उसे राजा चोर की तरह दण्ड दे। इसी प्रकार अगर सभा के सभ्य (जूरी) भी कभी इसी तरह कुछ का कुछ लिख दें तो राजा उन्हें भी चोर की तरह दण्ड दे।"[1]

"राजा के अभाव में प्राड्विवाक् (प्रधान न्यायाधीश) को धर्मासन पर बैठ कर इसी प्रकार के प्रश्न करने चाहिये। प्राड्विवाक् दोनों वादी प्रतिवादियों से प्रश्न (जिरह) करता है इस लिये उसे प्राड् विवाक् कहते हैं; वह सभ्यों द्वारा विवेचन करता है अथवा सत्यासत्य का निर्णय करता है इस लिये भी प्राड्विवाक् कहाता है।"[2]

---

१. धर्मासन गतं दृष्ट्वा राजानं मन्त्रिभिः सह ।
गच्छेन्निवेदयमानं यत् प्रतिरुद्धमधर्मतः ॥ ५७ ॥
यथा सत्यं चिन्तयित्वा लिखित्वा च समाहितः ।
नत्वा च प्राञ्जलिः प्रह्वो ह्यर्थी कार्यं निवेदयेत् ॥ ५८ ॥
यथार्हमेनमभ्यर्च्य ब्राह्मणैः सह पार्थिवः ।
सान्त्वेन प्रशमय्यादौ स्व धर्मं प्रतिपादयेत् ॥ ५९ ॥
काले कार्यार्थिनं पृच्छेत् प्रणतं पुरतः स्थितम् ।
किं कार्यं का च ते पीड़ा मा भैषी ब्रूहि मानव ! ॥ ६० ॥
केन कस्मिन् कदा कस्मात् पीड़ितोऽसि दुरात्मना ।
एवं पृष्ट्वा स्वभावोक्तं तस्य संशृणुयाद् वचः ॥ ६१ ॥
प्रसिद्ध लिपि भाषाभिस्तदुक्तं लेखको लिखेत् ॥ ६२ ॥
अन्यदुक्तं लिखेदन्योऽर्थि प्रत्यर्थिनां वचः ।
चौरवत् त्रासयेद्राजा लेखकं द्रागतन्द्रियः ॥ ६३ ॥
लिखितं तादृशं सभ्या न विब्रूयुः कदाचन ।
बलाद् गृह्णन्ति लिखितं दण्डयेत् तांस्तु चौरवत् ॥ ६४ ॥

२. प्राड् विवाको नृपाभावे पृच्छेदेवं सभागतम् ॥ ६५ ॥
वादिनौ पृच्छति प्राड् वा विवाको विविनक्त्यतः ।
विचारयति सभ्यैर्वा धर्माधर्मान् विवक्ति वा ॥ ६६ ॥ (शुक्र० अ० ४. ५.)

"सभा के श्रेष्ठ पुरुष को सभ्य कहते हैं। स्मृति नियमों और आचार से रहित दुष्टों से पीड़ित हो कर दुखी आदमी राजा के पास आकर अपनी शिकायत करता है, इसी से कचहरी के लिये धर्माधिकरण शब्द प्रयुक्त होता है।"[1]

"राजा स्वयं कभी किसी से झगड़ा या विवाद न करे। राजा के कर्मचारियों को भी कभी किसी व्यक्ति पर अभियोग नहीं चलाना चाहिये। राजा कभी लोभ या क्रोध से पीड़ित हो कर किसी को कष्ट न दे। राजा सूचकों और स्तोभकों की सलाह ले कर उन अभियोगों का भी निर्णय करे जिन की दरखास्त किसी प्रार्थी ने नहीं दी है। विशेषतः उन बातों का निर्णय जिन से कि उस के अपने अधिकारियों का सम्बन्ध है बिना किसी प्रार्थी के निवेदन के भी करे। राजा की आज्ञा लिये बिना ही जो लोग शास्त्र के अनुकूल उस से न्याय के लिये निवेदन करते हैं वे स्तोभक कहाते हैं। जिन लोगों को प्रजा के दोष देखने के लिये राजा ने स्वयं नियुक्त किया है वे सूचक कहाते हैं।"[2]

वादी को दण्ड— "वह वादी दण्ड के योग्य है जो उद्धत, कठोरता से बोलने वाला, गर्वित या क्रोधी हो अथवा न्यायाधिकारियों के बराबर आसन पर बैठने का यत्न करे।"[3]

आवेदन और साक्षी— "अर्थी की लिखित प्रार्थना 'आवेदन पत्र' कहाती है। प्राड् विवाक् अथवा अन्य न्यायाधिकारियों के प्रति इजहार देते हुए कही गई भाषा बहुत सरल होनी चाहिये, जिसे सब कोई समझ सकें।

---

१. सभायां ये हिता योग्याः सभ्यास्ते चापि साधवः॥ ६७॥
स्मृत्याचार व्यपेतेन मार्गेणाधर्षितः परैः।
आवेदयति चेद्राज्ञे व्यवहार पदं हि तत्॥ ६८॥

२. नोत्पादयेत्स्वयं कार्यं राजा नाप्यस्य पूरुषः।
न रागेण न लोभेन न क्रोधेन ग्रसेन्नृपः।
परैरप्रापितानर्थान्न चापि स्वमनीषया॥ ६९॥
छलानि चापराधांश्च पदानि नृपतेस्तथा।
स्वयमेतानि गृह्णीयान्नृपस्त्वावेदकैर्विना।
सूचक स्तोभकाभ्यां वा श्रुत्वा चैतानि तत्वतः॥ ७०॥
शास्त्रेणानिन्दितस्त्वर्थी नापि राजा प्रचोदितः।
आवेदयन्ति यत् पूर्वं स्तोभकः स उदाहृतः॥ ७१॥
नृपेण विनियुक्तो यः परदोषानुवीक्षणे।
नृपं संसूचयेज्ज्ञात्वा सूचकः स उदाहृतः॥ ७२॥

३. उद्धतः क्रूरवाग्वेशो गर्वितश्चण्ड एव हि।
सहासनश्चातिमानी वादी दण्डमवाप्नुयात्॥ ८९॥ (शुक्र० अ० ४. ५.)

अर्थी के इस आवेदन पत्र को पूर्व पक्ष समझना चाहिये, न्यायाधीश यदि उचित समझे तो अर्थी द्वारा निर्दिष्ट गवाहों से अतिरिक्त गवाहों की भी गवाहियाँ ले अथवा उन में से भी कुछ गवाहियां व्यर्थ समझ कर छोड़ दे। इस आवेदन पत्र पर अर्थी के हस्ताक्षर करवा कर न्यायालय की मोहर कर देनी चाहियें।" [1]

"न्याय सभा के जो सभ्य विना स्पष्ट किये ही राग लोभादि के वशीभूत हो कर अन्याय करें राजा उन्हें यथोचित दण्ड देकर पदच्युत कर दे।" [2]

"राजा पूर्व पक्षी के इजहार की ग्राह्य और अग्राह्य बातों पर अच्छी तरह विचार करे। पूर्व पक्ष को भली प्रकार सुन लेने के उपरान्त राजा प्रार्थी को बाहर भेज दे। फिर उस अपराध स्वीकार न करने वाले प्रत्यर्थी को राजा अपनी आज्ञा द्वारा पकड़वा कर न्यायालय में बुलावे। प्रत्यर्थी को इस प्रकार पकड़ना आसेध कहाता है। यह आसेध स्थान, समय, प्रवास और कार्य के अनुसार चार प्रकार का होता है। प्रत्यर्थी को चाहिये कि वह भूल कर भी इस आसेध का उल्लङ्घन न करे। परन्तु जो राजकर्मचारी प्रत्यर्थी को आसेध करते हुए उसे अनुचित उपायों से तंग करता है वह स्वयं ही अपराधी है।" [3]

---

१. अर्थिना कथितं राज्ञे तदावेदन संज्ञकम् ।
कथितं प्राड्विवाकादौ सा भाषाखिल बोधिनी ॥ ९० ॥
सपूर्वपक्षः सभ्यादिस्तं विमृश्य यथार्थतः ।
अर्थितः पूरयेद्धीनं तत्साक्ष्यंमधिकं त्यजेत् ॥ ९१ ॥
वादिनश्चिन्हितं साक्ष्यं कृत्वा राजा विमुद्रयेत् ॥ ९२ ॥

२. अशोधयित्वा पक्षं ये ह्युत्तरं दापयन्ति तान् ।
रागाल्लोभाद् भयाद्वापि स्मृत्यर्थे वाधिकारिणः ।
सभ्यादीन् दण्डयित्वा तु ह्यधिकारान्निवर्तयेत् ॥ ९३ ॥

३. ग्राह्याग्राह्यं विवादन्तु सुविमृश्य समाश्रयेत् ।
सञ्ज्ञातपूर्वपक्षं तु वादिनं सन्निरोधयेत् ॥ ९४ ॥
राजाज्ञया सत्पुरुषैः सत्यवाग्भिर्मनोहरैः ।
निरालसेङ्गितज्ञैश्च दृढ शस्त्रास्त्र धारभिः ॥ ९५ ॥
वक्तव्येऽर्थे ह्यतिष्टन्तं उत्क्रामन्तं च तद्वचः ।
आसेधयेद् विवादार्थी यावदाह्वान दर्शनम् ।
प्रत्यर्थिनं तु शपथैराज्ञया वा नृपस्य च ॥ ९६ ॥
स्थान सेधः कालकृतः प्रवासात् कर्मणस्तथा ।
आसेधयदनासेधैः स दण्डयो न त्वतिक्रमी ॥ ९८ ॥
आसेध काल आसिद्ध आसेधं योऽतिवर्तते ।
स विनेयोन्यथा कुर्वन्नासेद्धा दण्डभाग भवेत् ॥ ९९ ॥ (शुक्र० अ० ४. ५.)

वारण्ट—"जिसका अभियोग हो और जिस पर अभियोग हो अथवा जिस पर अभियोग होने की आशंका हो उसे राजा अपनी मुद्रा से अंकित आज्ञा से राजकर्मचारियों द्वारा न्यायालय में बुलाये। इन वारण्टों द्वारा राजा रोगियों, बालकों, बूढ़ों, नवकार्यों में संलग्न, आपद्ग्रस्तों, दुखियों, राज कार्य में लगे हुओं, उत्सवों में मस्त और मत्त तथा कष्ट में पड़े हुए नौकरों को न बुलाए। अकेली युवती, कुलदेवी, प्रसूता, उच्च वर्ण की कन्या, और विधवा स्त्रियों को भी राजा वारण्ट द्वारा ज़बरदस्ती न्यायालय में न बुलावे।"[1]

"इसी प्रकार राजा विवाह कार्यों में संलग्न, रोगी, यज्ञ में व्यग्र, आपद्-ग्रस्त, किसी अन्य अभियोग में फँसे हुए, ग्वालों, किसानों, शिल्पियों, युद्ध में गए हुवों और नाबालिग़ों को भी वारण्ट निकाल कर न बुलावे।"[2]

"परन्तु अगर कार्य बहुत अधिक आवश्यक हो, इन के बिना न हो सकता हो तो राजा को इन्हें भी वारण्ट निकाल कर बुलाना चाहिये, परन्तु इस अवस्था में उन के आने जाने के लिये तेज़ सवारियों का पूर्ण प्रबन्ध उसी को करना चाहिये। अभियोग की ठीक जाँच पड़ताल करने के बाद अगर उस में किसी वानप्रस्थ या सन्यासी की गवाही की आवश्यकता प्रतीत हो तो उसे भी बुलवाना चाहिये, परन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि इस में उन का अधिक समय व्यय न हो।"[3]

---

१. यस्याभियोगं कुरुते तत्वेनाऽशङ्कयाथवा।
तमेवाह्वानयेद्राजा मुद्रया पुरुषेण वा ॥ १०० ॥
अकल्य बाल्य स्थविर विषमस्थ क्रियाकुलान्।
कार्यातिपाति व्यसनी नृपकार्योत्सवाकुलान्।
मत्तोन्मत्त प्रमत्तार्त भृत्यानाह्वानयेन्नृपः ॥ १०२ ॥
न हीन पक्षां युवतीं कुले जातां प्रसूतिकाम्।
सर्व वर्णोत्तमां कन्यां नाज्ञात प्रभुका स्त्रियः ॥ १०३ ॥

२. निर्वेष्टुकामो रोगार्त्तो यियक्षुर्व्यसने स्थितः।
अभियुक्तस्तथान्येन राजकार्योद्यतस्तथा ॥ १०४ ॥
गवां प्रचारे गोपालाः शस्यावापे कृषीवलाः।
शिल्पिनश्चापि तत्कालमायुधीयाश्च विग्रहे ॥ १०५ ॥
अप्राप्त व्यवहारश्च दूतो दानोन्मुखो व्रती।
विषमस्थाश्च नासेध्या न चैतानाह्वयेन्नृपः ॥ १०६ ॥

३. कालं देशं च विज्ञाय कार्याणां च बलाबलम्।
अकल्यादीनपि शनैर्यानैराह्वानयेन्नृपः ॥ १०८ ॥
ज्ञात्वाभियोगं ये ऽपि स्युर्वने प्रव्रजितादयः।
तानप्याह्वानयेद्राजा गुरुकार्येष्वकोपयन् ॥ १०९ ॥ (शुक्र० अ० ४ ५)

प्रतिनिधि (वकील)— व्यवहार (कानून) से अनभिज्ञ अर्थी या प्रत्यर्थी अपना पक्ष पुष्ट करने के लिये किसी योग्य कानूनदाँ को अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर सकता है। मूर्ख, पागल, वृद्ध, स्त्री, बालक और रोगियों की ओर से उन का कोई बन्धु या अन्य नियुक्त मनुष्य उन का पक्ष स्थापित कर सकता है। अगर किसी वादी या प्रतिवादी के अभियोग को उस के पिता, माता, मित्र, बन्धु, भाई या अन्य कोई जानकार और अधिक अच्छी तरह उपस्थित करना चाहें तो उन्हें इस की आज्ञा देनी चाहिये। जो कोई जिस की आज्ञा से कार्य करे वह कार्य आज्ञा देने वाले का ही समझा जायगा, उस का अपना नहीं। वकील जो कुछ कहता है वह उस के मुवक्किल का कथन समझना चाहिये।"[3]

वकील का वेतन—"अभियोग को जीत लेने से जितना धन प्राप्त हो उस का १६ वां भाग वकील को मेहनताने के रूप में देना चाहिये। ज्यों ज्यों अभियोग द्वारा रक्षणीय द्रव्य की मात्रा बढ़ती जाय त्यों त्यों वकील की भृति कम होती जाती है। यह भृति रक्षणीय द्रव्य की मात्रा का २० वां भाग, ४० वां भाग, ८० वां भाग अथवा कम से कम १६० वां भाग होनी चाहिये। अगर एक ही पक्ष की ओर से बहुत से वकील नियुक्त किये जाँय तो उनका मेहनताना और किसी प्रकार ही निश्चित होना चाहिये।

"वकील को स्मृति, आचार नियम और कानूनों का ज्ञाता होना चाहिये। कानून के आधार पर ही उसे अपना पक्ष पुष्ट करना चाहिये, वह अगर घूस आदि देकर अपने पक्ष में निर्णय प्राप्त करने का यत्न करे तो उसे भी दण्ड मिलना चाहिये। आवश्यकता पड़ने पर अभियुक्तों के लिए राजा को स्वयं वकील नियुक्त करदेना चाहिये। यह वकील अगर लोभवश अपने कर्तव्य का भली प्रकार पालन न करे तो इसे भी दण्ड मिलना चाहिये। अभियुक्त को राजा अपनी इच्छा के अनुसार वकील नियुक्त करने के लिये बाधित न करे। जो व्यक्ति न तो वादी या प्रतिवादी में से किसी का रिश्तेदार है और न वकील है वह अगर

---

३. व्यवहारानभिज्ञेन ह्यन्यकार्याकुलेन च।
प्रत्यर्थिनार्थिना तज्ज्ञः कार्यः प्रतिनिधिस्तदा॥ ११०॥
अप्रगल्भ जडोन्मत्त वृद्धस्त्री बालरोगिणाम्।
पूर्वोत्तरं वदेद् बन्धुर्नियुक्तो वाथवा नरः॥ १११॥
पिता माता सुहृद् बन्धुर्भ्राता सम्बन्धिनोऽपि च।
यदि कुर्युरुपस्थानं वादं तत्र प्रवर्तयेत्॥ ११२॥
यः कश्चित् कारयेत्-किञ्चिन्नियोगाद् येन केनचित्।
तत् तेनैव कृतं ज्ञेयमनिवार्यं हि तत् स्मृतम्॥ ११३॥ (शुक्र० अ० ४.V.)

कसी अभियुक्तके पक्ष या विपक्षमें बिना पूछे कुछ कहे तो उसे दण्ड मिलना चाहिहिये। अभियोग प्रारम्भ होजाने पर अगर अभियुक्त या अभियोगी की मृत्यु हो जाय तो उस मुकद्दमे को उस के पुत्र या सम्बन्धी जारी रख सकते हैं।"

गुरुतर अपराध— "इन अपराधों के अभियुक्त को वकील करने का अधिकार नहीं होना चाहिये; इन में अभियुक्त स्वयं ही अपना पक्ष पुष्ट करे—हत्या, चोरी, व्यभिचार, अभक्ष्य भक्षण, कन्याहरण, कठोरता, जालसाजी, राज द्रोह और डकैती।"[२]

जमानत—"यदि कोई व्यक्ति न्यायालय में राजा की आज्ञा द्वारा बुलाया जाकर घमण्ड या परिवार की महत्ताके बल पर आने से इन्कार करे तो उसे इस बात का भी, अभियोग की गुरुता के अनुसार दण्ड मिलना चाहिये। अभियोग चलने पर वादी या प्रतिवादी को अगर कोई विशेष कार्य हो तो उन्हें जमानत पर छोड़ा भी जा सकता है। जो व्यक्ति उन की जमानत ले उसे न्यायालय में यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये— 'मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि यह मनुष्य जो कुछ नहीं चुकायेगा वह मैं चुकाऊँगा। इसे मैं अमुक तिथि को न्यायालय में अवश्य उपस्थित कर दूंगा, इस बात की आप कोई चिन्ता न कीजिये, जो कार्य यह नहीं करेगा, वह मैं कर दूंगा। यह मनुष्य अमुक कार्य करता है, आप विश्वास कीजिये यह असत्य व्यवहार नहीं करेगा।" जो व्यक्ति जमानत ले वह ईमानदार,

---

१. नियोगितस्यापि भृतिं विवादात् षोडाशांशिकम् ।
विंशत्यंशं तदर्द्धं वा तदर्द्धं च तदर्द्धिकाम् ॥ ११४ ॥
यथा द्रव्याधिकं कार्यं हीना हीना भृतिस्तथा ।
यदि वहु नियोगी स्यादन्यथा तस्य पोषणम् ॥ ११५ ॥
धर्मज्ञो व्यवहारज्ञो नियोक्तव्योऽन्यथा न हि ।
अन्यथा भृतिगृह्णन्तं दण्डयेच्च नियोगिनम् ॥ ११६ ॥
कार्यो नित्यो नियोगी न नृपेण स्वमनीषया ।
लोभेन अन्यथा कुर्वन् नियोगी दण्डमर्हति ॥ ११७ ॥
यो न भ्राता न च पिता न पुत्रो न नियोग कृत् ।
परार्थ वादी दण्डयः स्याद् व्यवहारेषु विब्रुवन् ॥ ११८ ॥
प्रवर्तयित्वा वादन्तु वादिनौ तु मृतौ यदि ।
तत्पुत्रो विवदेत् तज्ज्ञो ह्यन्यथा तु निवर्तयेत् ॥ १२० ॥
२. मनुष्य मारणे स्तेये परदाराभिमर्शने ।
अभक्ष्य भक्षणे चैव कन्या हरण दूषणे ॥ १२१ ॥
पारुष्ये कूटकरणे नृपद्रोहे च साहसे ।
प्रतिनिधिर्न दातव्यः कर्त्ता तु विवदेत् स्वयम् १२२ ॥ (शुक्र० अ० ४. ५.)

धनी, चतुर और सम्माननीय होना चाहिये। जमानत दोनों दलों से लेनी चाहिये, परन्तु अच्छा यही है कि जब तक सत्यासत्य का निर्णय न हो जाय तब तक वादि प्रतिवादी को नजरबन्द ही रक्खा जाय ; उनका व्यय चाहे सरकार दे या चाहे वे स्वयं दें। उनके परिवार का खर्च देने के लिये सरकार उत्तरदाता नहीं।" [१]

अर्जी या प्रतिज्ञा के वाक्य— "वादी को अपना पक्ष ऐसा रखना चाहिये जिस में हेत्वाभास न हों, उस की युक्तियाँ सन्देह जनक और असम्भव न हो। भाषा के ये दोष हैं, न्यायाधीश को इन का ध्यान रखना चाहिये-उस से कई मतलब निकलना, कोई अर्थ न होना, युक्ति शास्त्र (तर्क) के विरुद्ध होना, रुक २ कर बोलना या बहुत कम बोलना। भाषा अप्रसिद्ध, उच्छृङ्खल, निष्प्रयोजन, निरर्थक, असाध्य व विरुद्ध नहीं होनी चाहिये।"

"जो किसी ने न देखा हो न सुना हो वह अप्रसिद्ध है जैसे-मुझे एक गूंगे ने गाली दी अथवा वन्ध्या के पुत्र ने मारा। ये बातें निष्प्रयोजन और निरबाध का उदाहरण हैं—यह पढ़ता है अपने घर में आनन्द करता है, इस के घर का दरवाजा बाजार में खुलता है इत्यादि। मेरी दी हुई कन्या का मेरा यह जमाई उपयोग करता है, यह वन्ध्या होकर गर्भ धारण नहीं करती, यह मरा हुवा मनुष्य नहीं बोलता-ये बातें असध्य का उदाहरण हैं। यह संसार मेरे दुख में दुखी और सुख में सुखी नहीं होता-इत्यादि बातें निरर्थक हैं। वादी का पूर्व पक्ष इन दोनों से

---

१. आहूतो यत्र नागच्छेद् दर्पाद् बन्धुबलान्वितः।
अभियोगानुरूपेण तस्य दण्डं प्रकल्पयेत् ॥१२३॥
दूतेनाह्वानितं प्राप्ताधर्षकं प्रतिवादिनम्।
दृष्ट्वा राजा तयोश्चिन्त्यो यथा हि प्रतिभूस्त्वतः ॥ ११४ ॥
दास्याम्यमत्तमेतेन दर्शयामि तवन्तिके।
एनमार्धि दापयिष्ये ह्यस्मात्ते न भय क्वचित् ॥ १२५ ॥
अकृतञ्च करिष्यामि ह्यनेनायञ्च वृत्तिमान्।
अस्तीति न च मिथ्यैतदङ्गी कुर्यादतन्द्रियः ॥ १२६ ॥
प्रगल्भो बहु विश्वस्तानधीनो विश्रुतो धनी।
उभयो प्रतिभूर्ग्राह्यः समर्थः कार्य निर्णये ॥ १२७ ॥
विवादिनौ सन्निरुध्य ततो वादं प्रवर्तयेत्।
स्वपुष्टौ परपुष्टौ वा स्वभृत्या पुष्ट रक्षकौ।
ससाधनौ तत्वमिच्छुः कूट साधनशङ्कया ॥ १२२ ॥ १२८ ॥

(शुक्र० अ० ४. V)

रहित होनी चाहिये । इस प्रकार का निर्दोष पूर्व पक्ष लिखा जाने के बाद फिर उत्तर पक्ष लिखना चाहिये ।”[1]

“दोनों पक्ष लिखे जाने के बाद पहले अभियोगी से प्रश्न करने चाहिये और फिर उस के बाद अभियुक्त से । राज्याधिकारियों से प्रश्न स्वयं न्यायाधीश को ही करने चाहिये ।”[2]

जिरह्—वादी या प्रतिवादी ने जो बात डर या धूर्तता से नहीं कही है, अथवा अशुद्ध बात कह दी है, उस को भिन्न २ प्रकार के प्रश्न कर के जान लेना चाहिये ।”[3]

---

१. प्रतिज्ञा दोष निर्मुक्तं साध्यं सत्कारणान्वितम् ।
निश्चितं लोक सिद्धञ्च पक्षं पक्षविदो विदुः ॥ १२९ ॥
अन्यार्थं अर्थहीनञ्च प्रमाणागम वर्जितम् ।
लेख्य हीनाधिकं भ्रष्टं भाषा दोषा उदाहृताः ॥ १३० ॥

अप्रसिद्धं निराबाधं निरर्थं निष्प्रयोजनम् ।
असाध्यं वा विरुद्धं वा पक्षाभासं विवर्जयेत् ॥ १३१ ॥
न केनचिच्छ्रुतो दृष्टः सो ऽप्रसिद्ध उदाहृतः ।
अहं मूकेन संशप्तो वन्ध्या पुत्रेण ताड़ितः ॥ १३२ ॥
अधीते सुस्वरं गाति स्वगेहे विहरत्ययम् ।
धत्ते मार्ग मुख द्वारं मम गेह समीपतः ।
इति ज्ञेयं निराबाधं निष्प्रयोजनमेव च ॥ १३३ ॥
सदा मद्वृत्त कन्यायां जामाता विरहत्ययम् ।
गर्भं धत्ते न वन्ध्येयं मृतोयं न प्रभाषते ।
किमर्थमिति तज्ज्ञेयमसाध्यञ्च विरुद्धकम् ॥ १३४ ॥
मद् दुःख सुखतो लोको दूयते न च नन्दति ।
निरर्थमिति या ज्ञेयं निष्प्रयोजनमेव वा ॥ १३५ ॥
विनिश्चिते पूर्वपक्षे ग्राह्याग्राह्य विशोधिते ।
प्रतिज्ञाते स्थिरीभूते लेखयेदुत्तरं ततः ॥ १३७ ॥

२. तत्राभियोक्ता प्राक् पृष्टो ह्यभियुक्तस्त्वनन्तरम् ।
प्राड् विवाकः सदस्याद्यैदाप्यते ह्युत्तरं ततः ॥ १३८ ॥

३. मोहाद् वा यदि वा शाठ्यात् यन्नोक्तं पूर्ववादिना ।
उत्तरान्तर्गतं वा तत् प्रश्नैर्ग्राह्यं द्वयोरपि ॥ १४३ ॥ (शुक्र० अ० ४. V.)

उत्तरों का वर्गीकरण—वादी या प्रतिवादी द्वारा दिए गए उत्तर चार प्रकार के हो सकते हैं-स्वीकृति, इन्कारी, प्रत्यवस्कन्दन, और पूर्वन्याय। वादी द्वारा लगाये दोष को उसी प्रकार स्वीकार कर लेना स्वीकृति कहाता है। विपक्षी की कही बात को अस्वीकार कर के उस के विरोध में उस द्वारा बताए तथ्यों अथवा भाषा में से दोष निकालना अस्वीकृति कहाता है, यह-'मैं इस सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता, यह झूठ है, मैं तब वहां नहीं था मैं तब पैदा ही नहीं हुआ था, इन चार प्रकारों से हो सकता है। वादी द्वारा दिये गए बयान को स्वीकार करते हुए उसी से उसके प्रतिकूल अर्थ निकालना प्रत्यवस्कन्दन है। अपने पक्ष में न्यायालय द्वारा दिए गए ऐसे ही एक पुराने मामले के निर्णय को उद्धृत करना पूर्वन्याय कहाता है। यह तीन प्रकार का होता है-पुराने निर्णय को उद्धृत करना, वह निर्णय देने वाले न्यायाधीश को गवाह रूप में उपस्थित करना या इस सम्बन्ध में किसी अन्य व्यक्ति की गवाही देना।"[1]

अभियोग का प्रकार—"अभियोग का सारा कार्य दोनों दलों-वादी और प्रतिवादी-की उपस्थिति में ही होना चाहिये। जो न्यायाधीश ऐसा नहीं करते उन्हें चोर की तरह दण्ड देना चाहिये। अर्थी और प्रत्यर्थी दोनों के बयान विधि पूर्वक लिख लेने के बाद ही अभियोग पर विचार प्रारम्भ होना चाहिये। किसी अभियोग के चार भाग किये जा सकते हैं—पूर्वपक्ष की स्थापना,

---

१. सत्यं मिथ्योत्तरं चैव प्रत्यवस्कन्दनं तथा।
पूर्वन्याय विधिवश्चैमुत्तरं स्याच्चतुर्विधम् ॥ १४४ ॥
अङ्गीकृतं यथार्थं यद्वाद्युक्तं प्रतिवादिना।
सत्योत्तरं तु तज्ज्ञेयं प्रतिपत्तिश्च सा स्मृता ॥ ११४५ ॥
श्रुत्वा भाषार्थमन्यस्तु यदि तं प्रतिषेधति।
अर्थतः शब्दतो वापि मिथ्या तज्ज्ञेयमुत्तरम् ॥ १४६ ॥
मिथ्यैतन्नाभिजानामि तदा तत्र न सन्निधिः।
अजातश्चास्मि तत्काले इति मिथ्या चतुर्विधम् ॥ १४७ ॥
अर्थिना लिखतो ह्यर्थः प्रत्यर्थी यदि तं तथा।
प्रपद्य कारणं ब्रूयात् प्रत्यवस्कन्दनं हि तत् ॥ १४८ ॥
अस्मिन्नर्थे ममानेन वादः पूर्वमभूत्तदा।
जितोऽयमिति चेद्ब्रूयात् प्राङ् न्याय स उदाहृतः ॥ १४९ ॥
जयपत्रेण सभ्यैर्वा साक्षिभिर्भावयाम्यहम्।
मया जितः पूर्वमिति प्राङ्न्यायः त्रिविधः स्मृतः ॥ १५० ॥ (शुक्र० अ० ४. ५)

उत्तर पक्ष की स्थापना, क्रिया(जिरह आदि) और निर्णय ।" [1]

अभियोगों का क्रम— "साधारण अवस्था में जिस क्रम से अभियोग आएं उसी क्रम से उन पर विचार करना चाहिये, अथवा अभियोग की महत्ता के अनुसार उन का क्रम निश्चित करना चाहिये, जो अभियोग जितना अधिक संगीन अथवा आवश्यक हो उस पर उतना शीघ्र विचार किया जाय, अथवा वर्णों के क्रम से अभियोगों की तिथि निश्चित करनी चाहिये ।" [2]

साक्षी—अभियोग में साक्षियों का स्थान सब से अधिक महत्व पूर्ण है, इस लिये इन के सम्बन्ध में आचार्य शुक्र ने बहुत विस्तार के साथ निर्देश दिये हैं । हम संक्षेप से उन में से कुछ बातें यहां देंगे—

"साक्षी निम्न लिखित प्रकार के होते हैं—
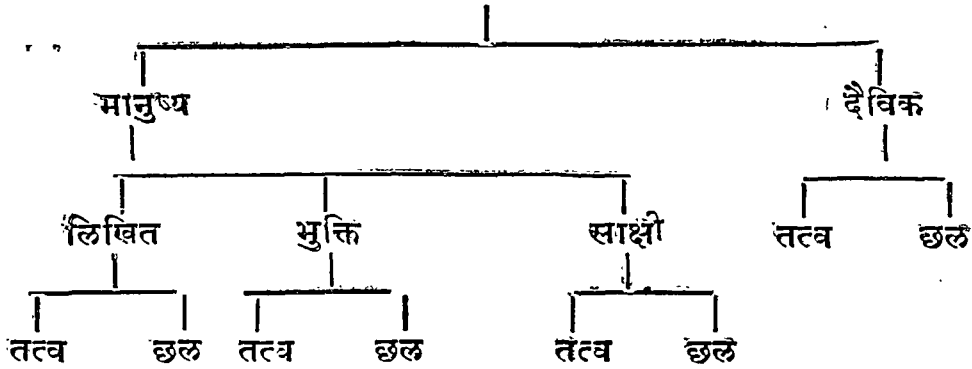
तत्व सच्ची गवाही को कहते हैं और छल झूठी गवाही को । न्यायाधीश को इन दोनों की पहिचान करने का पूर्ण यत्न करना चाहिये । गवाहियां लेने में देर नहीं करनी चाहिये अन्यथा उन से बड़ा भ्रम और दोष पैदा होसकता

---

१. अन्योऽन्ययोः समक्षन्तु वादिनो पक्षमुत्तरम् ।
न हि गृह्णन्ति ये सभ्या दण्डयास्ते चौरवत् सदा ॥ १५१ ॥
लिखते शोधिते सम्यक् सति निर्दोष उत्तरे ।
अर्थि प्रत्यर्थिनोर्वापि क्रिया कारणमिष्यते ॥ १५२ ॥
पूर्वपक्षःस्मृतः पादो द्वितीयश्चोत्तरात्मकः ।
क्रियापादस्तृतीयस्तु चतुर्थो निर्णयाभिधः ॥ १५३ ॥

२. क्रमागतान् विवादांस्तु पश्येद्वा कार्य गौरवात् ॥ १५६ ॥
यस्य वाभ्यधिका पीड़ा कार्यं वाभ्यधिकं भवेत् ।
वर्णानुक्रमतो वापि नयेत् पूर्वं विवादयेत् ॥ १५७ ॥ (शुक्र अ० ४. ५.)

है। सब साक्षियां अभियुक्त और अभियोगी दोनों की उपस्थिति में लेनी चाहियें।"[1]

साक्षियों के लिये निर्देश— "जिस मनुष्य की बुद्धि, स्मृति और कान दोष युक्त नहीं हैं; जो बहुत दिनों के बाद भी अपनी बात नहीं बदलता वही साक्षी बनने योग्य है। साक्षी यथा सम्भव किसी मकान का मालिक, स्वतन्त्र, बुद्धिमान, अप्रवासी और जवान होना चाहिये। स्त्रियों की साक्षी स्त्रियों के अभियोगों में ही लेनी चाहिये। हत्या, डाका, अपमान और स्त्रियों को चुराने के अपराधों में साक्षियों को बहुत महत्ता नहीं देनी चाहिये। बालक, स्त्रियों, सम्बन्धियों, और शत्रुओं की साक्षी नहीं लेनी चाहिये। न्यायालय में आए हुए किसी साक्षी को साक्षी देने के लिए कहा जाए और वह इन्कार करे तो उसे दण्ड देना चाहिये; इसी प्रकार किसी जानकार को साक्षी देने के लिए बुलाया जाय और वह आने से इन्कार करे अथवा झूठ बोले तो उसे भी दण्ड देना चाहिए।"[2]

---

१. तत् साधनन्तु द्विविधं मानुषं दैविकं तथा ॥१६३॥
क्रिया स्याल्लिखितं भुक्तिः साक्षिणश्चेति मानुषम्।
दैवं घटादि तद्द्रव्यं भूतालाभाभियोजयेत् ॥१६४॥
तच्च छलानुसारित्वात् भूतं भव्यं द्विधा स्मृतम्।
तत्वं सत्यार्थाभिधायि कूटाद्याभिहितं छलम् ॥१६५॥
छलं निरस्य भूतेन व्यवहारान् नयेन्नृपः।
युक्त्यानुमानतो नित्यं सामादिभिरुपक्रमैः ॥१६६॥
न कालहरणं कार्यं राज्ञा साधन दर्शने।
महान् दोषो भवेत् कालाद्धर्म व्यापत्ति लक्षणः ॥१६७॥
अर्थि प्रत्यर्थि प्रत्यक्षं साधनानि प्रदर्शयेत्।
अप्रत्यक्षं तयोर्नैव गृह्णीयात् साधनं नृपः ॥१६८॥

२. यस्य नोपहताः बुद्धिः स्मृतिः श्रोत्रं च नित्यशः।
सुदीर्घेणापि कालेन स वै साक्षित्वमर्हति ॥१८६॥
गृहिणो न पराधीनाः सूरयश्चाप्रवासिनः ॥१८८॥
युवानः साक्षिणः कार्याः स्त्रियः स्त्रीषु च कीर्तिताः ॥१८९॥
साहसेषु च सर्वेषु स्तेयं संग्रहणेषु च।
वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये न परीक्षेत साक्षिणः ॥१९०॥
बालोऽज्ञानादसत्यात् स्त्री पापाभ्यासाच्च कूटकृत।
विब्रूयाद् बान्धवः स्नेहाद्वैरनिर्यातनादरिः ॥१९१॥
प्रत्यक्षं वादयेत् साक्ष्यं न परोक्षं कथंचन।
नाङ्गीकरोति यः साक्ष्यं दण्ड्यः स्याद्देशितो यदि ॥१९२॥
यः साक्षान्नैव निर्दिष्टो नाहूतो नैव देशितः।
ब्रूयात् मिथ्येति तथ्यं वा दण्ड्यः सोऽपि नराधमः ॥१९६॥ (शुक्र अ० ४, ५)

साक्षियों के आने पर न्यायाधीश को चाहिये कि वह उन्हें सत्य सत्य कहने के लिये भली प्रकार समझाए और उनकी गवाही सुनने के बाद वकीलों को उन से जिरह करने की आज्ञा भी दे ।[१]

"परन्तु किसी अभियोग का निर्णय करने के लिए केवल साक्षियों पर ही आश्रित नहीं रहना चाहिये । क्योंकि वे बहुत बार स्नेह, लोभ, भय या क्रोध से झूठ बोल देते हैं ।"[२]

मुद्रापत्र (Stamp Paper)–स्टाम पेपर को उस समय 'लिखित' कहा जाता था । ये लिखित दो प्रकार के होते थे—राजकीय और लौकिक (official and nonofficial) ये देश काल के अनुसार अपने हाथ से लिखे हुए या किसी दूसरे के हाथ से लिखे हुए, गवाही सहित या बिना गवाही के होते हैं । लौकिक लिखित इन सात कार्यों के लिये होते हैं—विभाग, दान, विक्रय, स्वीकृति, प्राप्ति, सम्विभाग और ऋण । राजकीय लिखित इन तीन कार्यों के लिये होता है—शासन की आज्ञा देना, विज्ञापन (नोटिस) और निर्णय । धन के विभाग सम्बन्धी सभी लिखितों पर धन के उत्तराधिकारियों के हस्ताक्षर अवश्य होने चाहिये अन्यथा वह उतने प्रमाणिक न होंगे । सम्पत्ति और धन सम्बन्धी सभी लिखितों पर साक्षियों तथा भूमि या नगर के अधिकारियों के हस्ताक्षर होने चाहिये । राजकीय लिखितों पर राजा की मुद्रा तथा उस विभाग के प्रधानाध्यक्ष के हस्ताक्षर होने चाहिये । इन लिखितों पर काल, वर्ष, मास, पक्ष, तिथि, समय, प्रान्त, नगर, स्थान, जाति, आकृति और आयु आदि सभी कुछ अंकित होने चाहिये, जिन लिखितों पर ये सब अंकित न होगें वे बहुत कमज़ोर समझे जायंगे । जिन का क्रम या भाषा ठीक न होगी वे निरर्थक होंगे । जो लिखित अवधि समाप्त होने के बाद लिखे जायंगे अथवा जो पागलों, बच्चों या स्त्रियों से लिखाए जाएंगे या जिन्हें बल पूर्वक लिखवाया जायगा वे प्रमाणित नहीं होंगे ।"[३]

---

१. शुक्र० अ० ४. V. श्लोक १९८ से २०८ तक ।

२. स्नेह लोभ भयैः क्रोधैः कूटसाक्षित्व शंकया ।
केवलैः साक्षिभिर्नैव कार्यं सिद्ध्यति सर्वदा ॥ २१४ ॥

३. राजकीयं लौकिकं च द्विविधं लिखितं स्मृतम् ।
स्वहस्त लिखितं वान्य हस्तेनापि विलेखितम् ।
असाक्षिमत् साक्षिमच्च सिद्धिर्देश स्थितिस्तयोः ॥ १७३ ॥
भाग दान क्रियादान संविद्दान ऋणादिभिः ।
सप्तधा लौकिकं चैतत् त्रिविधं राज शासनम् ।   (शुक्र० ४. अ० ५.)

भूमि का मौरूसी होना— आचार्य शुक्र के अनुसार भूमि पर निरन्तर निवास के अधिकार को स्वीकार करना चाहिये—"किसी व्यक्ति का अगर एक भूमि से ज़रा भी भुक्ति सम्बन्ध नहीं है तो उस भूमि पर वह अपना अधिकार सिद्ध नहीं कर सकता, चाहे वह उस ने पट्टे पर क्यों न लिखवा रक्खी हो। किसी व्यक्ति की कोई छोटी सी चल सम्पत्ति भी अगर निरन्तर किसी अन्य व्यक्ति के पास रही हो तो उस पर उसका अधिकार नहीं रहता। किसी व्यक्ति की भूमि अगर निरन्तर २० बरस तक किसी अन्य व्यक्ति के हाथ में रहे तो उस पर उस का अधिकार नहीं रहता। विना पट्टा लिखाए भी अगर कोई व्यक्ति लगातार ६० बरस तक एक भूमि को उपयोग में लाता रहे तो वह भूमि उसी की हो जाती है। निम्नलिखित पर अवधि व्यतीत हो जाने पर भी उपर्युक्त नियम लागू नहीं होते— गिरवी, सीमा की भूमि, नाबालिग की जायदाद, ट्रस्ट की सम्पत्ति, दासियों का धन, राज कर और विद्वानों के लिये दी हुई सम्पत्ति।"[1]

शासनार्थं ज्ञापनार्थं निर्णयार्थं त्रितीयकम् ॥ १७४ ॥
साक्षिमद्रिकृत्यभिमतं भागपत्रं सुभक्तियुक् ।
सिद्धिकृच्चान्यथा पित्रा कृतमप्यकृतं स्मृतम् ॥ १७५ ॥
दायादाभिमतं दान क्रय विक्रय पत्रकम् ।
स्थावरस्य ग्रामपादि साक्षिकं सिद्धिकृत् स्मृतम् ॥ १७६ ॥
राज्ञा स्वहस्त संयुक्तं स्वमुद्राचिन्हितं तथा ।
राजकीयं स्मृतं लेख्यं प्रकृतिभिश्च मुद्रितम् ॥ १७७ ॥
निवेश्य कालं वर्षं च मासं पक्षं तिथिं तथा
वेलां प्रदेशं विषयं स्थानं जात्याकृती वयः ॥ १७८ ॥
यत्रैतानि न लिख्यन्ते हीनं लेख्यं तदुच्यते ।
भिन्न क्रमं व्युत्क्रमार्थं प्रकीर्णार्थं निरर्थकम् ॥ १८१ ॥
अतीतकाल लिखितं न स्यात् तत् साधनक्षमम् ।
अप्रगल्भेन च स्त्रिया बलात्कारेण यत् कृतम् ॥ १८२ ॥

१. आगमेपि बलं नैव भुक्ति स्तोकापि यत्र नो ॥ २२० ॥
यं कश्चिद्दश वर्षाणि सन्निधौ प्रेक्षते धनी ।
भुज्यमानं परैरर्थं न स तं लब्धुमर्हति ॥ २२१ ॥
वर्षाणि विंशतियस्य भूर्भुक्ता तु परैरिह ।
सति राज्ञि समर्थस्य तस्य सेह न सिद्धयति ॥ २२२ ॥
अनागमापि या भुक्तिर्विच्छेदो परमोज्झिकता ।
षष्टि वर्षात्मिका सापहर्तुं शक्या न केनचित् ॥ २२४ ॥
आधिः सीमा बालधनं निक्षेपोपनिधिस्तथा ।
राजस्वं श्रोतृयस्वं न च भोगेन प्रणश्यति ॥ २२५ ॥ (शुक्र० अ० ४ ५.)

दैवी साक्षी— उस समय दैवी साक्षी लेने की भी प्रथा थी,-अग्नि, वायु, जल आदि द्वारा अभियुक्त की सत्यता पहिचानने का यत्न किया जाता था, इस दैवी साक्षी का कोई अभिप्राय स्पष्ट नहीं होता। इतना अवश्य प्रगट होता है कि कोई मानुषीय साक्षी प्राप्त न होने पर ही दैवी साक्षी लेने का यत्न किया जाता था। मानुषीय साक्षी के मुकाबले में दैवी साक्षी बहुत कमज़ोर समझी जाती थी। दैवी साक्षी इन साधनों से ली जाती थी— "अग्नि, विष, घड़ा, पानी, धर्म, अधर्म, चावल और शपथ। इन में से अपराध की गुरुता के अनुसार अगली अगली वस्तु लेनी चाहिये, शपथ सब से छोटे अपराध के लिये है। अग्नि द्वारा इस प्रकार साक्षी लेनी चाहिये— लोहे का गोला आग से लाल कर के हाथ में रख कर नौ कदम चलाना चाहिये, धधकते अङ्गारों पर सात कदम चलाना चाहिये; जिह्वा से तपे हुए लोहे के चटवाना चाहिये, इत्यादि।

अगर एक मनुष्य मानुषी साक्षी दे और दूसरा दैवी तो न्यायाधीश को मानुषी साक्षी ही स्वीकार करनी चाहिये। अगर मानुषी साक्षी का कुछ अंश भी प्राप्त हो जाय तो उसे सम्पूर्ण दैवी साक्षी से अधिक प्रामाणिक समझना चाहिये।"[1]

आय के भाग (Shares)— किसी सम्मिलित व्यवसाय से जो आय होती है उस के विभाग के लिये की शुक्रनीति में खूब विस्तार से नियम बताए गए है। भिन्न २ संघों में आय विभाग की रीति भिन्न २ है। हम उन में से कुछ उदाहरण यहां देते हैं— "राजा की आज्ञा से चोर लोगों ने जो धन विदेशों से लूटा हो उस में से छटा भाग राष्ट्र के कर रूप में देकर शेष

---

१. अग्निर्विषं घटस्तोयं धर्माधर्मौ च तण्डुलाः।
शपथाश्चैव निर्दिष्टा मुनिभिर्दिव्य निर्णये ॥ २३९ ॥
पूर्वं पूर्वं गुरुतरं कार्यं दृष्ट्वा नियोजयेत्।
लोक प्रत्ययतः प्रोक्तं सर्वं दिव्यं गुरुस्मृतम् ॥ २४० ॥
तप्तायोगोलकं धृत्वा गच्छेन्नवपदं करे।
तप्ताङ्गारेषु वा गच्छेत् पद्भ्यां सप्तपदानि हि ॥ २४१ ॥
तप्त तैल गतं लोहमाषं हस्तेन निर्हरेत्।
सुतप्त लोहपात्रं वा जिह्वायासंलिहेदपि ॥ २४२ ॥
यद्येको मानुषीं ब्रूयादन्यो ब्रूयात्तु दैविकीम्।
मानुषीं तत्र गृह्णीयान्न तु दैवीं क्रियां नृपः ॥ २६९ ॥
यद्येक देश प्राप्तापि क्रिया विद्येत मानुषी।
सा ग्राह्या न तु पूर्णापि दैविकी वदतां नृणाम् ॥ २७० ॥ (शुक्र० अ० ४. vi.)

धन उन्हें बराबर २ बांट लेना चाहिये। अगर उन में से कोई व्यक्ति विदेशियों द्वारा पकड़ लिया जाय तो उसे छुड़वाने के लिये शेष सब को बराबर २ धन देना चाहिये। जो संघ (Componies) सोना, अनाज, रस आदि का व्यवसाय करते हैं उन की आय का विभाग हिस्सेदारों के हिस्सों के अनुपात से ही होना चाहिये। जो हिस्सेदार हिस्से को पहले से निश्चित, बराबर, कम या अधिक मात्रा को नियत समय पर दे दें और संघ द्वारा हिस्सेदारों के लिये निश्चत अन्य कार्य भी कर दें उनका अपने हिस्से के अनुपात से आय पर पूर्ण अधिकार है।"[1]

इस प्रसंग में हमारी तस्कर संघों के सम्बन्ध में की हुई दूसरी कल्पना और भी अधिक पुष्ट हो जाती है। ये चोर स्पष्ट रूप से राष्ट्र द्वारा आज्ञप्त थे।

कुछ अन्य नियम— जो मनुष्य चोर से, मालिक से पूछे विना किसी अन्य व्यक्ति से अथवा गुप्त रूप से कोई सामान खरीदता है वह भी चोर के समान दण्डनीय है। जब सूद पर उधार लिये धन का सूद मूलधन से दुगना हो जाय तो फिर उस पर और सूद नहीं लगना चाहिये। किसी नकली चीज़ को असली कह कर बेचने वाले को चोर के समान दण्ड देना चाहिये। राजा प्रतिदिन की चांदी की बिक्री का पांचवां, चौथा, तीसरा या आधा भाग कर रूप से ले इस से अधिक नहीं। जो व्यक्ति धातुओं में खोट मिला कर उन्हें बेचे उसे दुगना दण्ड देना चाहिये।"[2]

---

१. पर राष्ट्र धनं यच्चौरैः स्वाम्याज्ञया हृतम्।
राज्ञे षष्ठांशमुद्धृत्य विभजेरन् समांशकम्॥ ३११॥
तेषां चेत् प्रसृतानां च ग्रहणं समवाप्नुयात्।
तन्मोचार्थं च यद्दत्तं वहेयुस्ते समांशतः॥ ३१२॥
प्रयोगं कुर्वते ये तु हेम धान्य रसादिना।
समन्यूनाधिकैरंशैर्लाभस्तेषां तथाविधः॥ ३१३॥
समोन्यूनोऽधिको ह्यंशो योऽनुक्षिप्तस्तथैव सः।
व्ययं दद्यात् कर्म कुर्यात् लाभं गृह्णीत चैव हि॥ ३१४॥

२. अस्वामिकेभ्यश्चौरेभ्यो विगृह्णाति धनं तु यः।
अप्रकाममेव क्रीणाति स दण्ड्यश्चौरवन्नृपः॥ ३१८॥
मूलात्तु द्विगुणा वृद्धिर्गृहीता चाधमर्णिकात्।
तदीत्तमर्णमूलं तु दापयेन्नाधिकं ततः॥ ३२२॥
कूट पण्यस्य विक्रेता स दण्ड्यश्चौरवत् सदा॥ ३२७॥
(शुक्र० अ० ४)

उपसंहार— "प्राचीन समय के बुद्धिमानों द्वारा प्रचलित की गई व्यवहार पद्धतियों का हमने संक्षेप से वर्णन किया है, यह व्यवहार अनन्त है, इस का पूरा वर्णन नहीं किया जा सकता। इस प्रकरण में हम ने संक्षेप से न्याय के सम्बन्ध में कुछ विधान बताए हैं इन के गुण दोषों की आलोचना यहां नहीं की, वह लोक व्यवहार से ही परखी जा सकती है।"[1]

पञ्चमांशं चतुर्थांशं तृतीयांशं तु कर्षयेत्।
अर्धं वा राजताद्राजा नाधिकं तु दिने दिने ॥ ३२९ ॥
धातूनां कूट कारी तु द्विगुणो दण्डमर्हति ॥ ३३७ ॥

१. लोक प्रचारैरुत्पन्नो मुनिभिर्विधृतः पुरा।
व्यवहारोनन्तपथः स वक्तुं नैव शक्यये ॥ ३३८ ॥
उक्त राष्ट्र प्रकरणं समासात् पञ्चमं तथा।
अत्रानुक्ता गुणा दोषास्तेज्ञेया लोक शास्त्रतः ॥ ३३९ ॥ (शुक्र अ० ४ ५.)
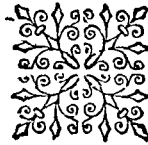
छठा अध्याय

सेना-प्रबन्ध, शस्त्रास्त्र तथा युद्धनीति

यद्यपि शुक्रनीतिसार एक नीति ग्रन्थ है, इस लिये उस में लिखी अधिकांश बातें आचार्य शुक्र के राजनीति सम्बन्धी आदर्श मात्र कही जा सकती हैं तथापि उस में वर्णित सेना-प्रबन्ध तथा शस्त्रास्त्रों के सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती। क्योंकि एक राजनीतिज्ञ शासन-व्यवस्था, न्याय-व्यवस्था या कार्य-विभागादि के सम्बन्ध में तो अपने आदर्श अवश्य रख सकता है परन्तु सेना-प्रबन्ध तथा शस्त्रास्त्रों का वर्णन करते हुए उसे अपनी कल्पना को लगभग विश्राम ही दे देना होगा।

आचार्य शुक्र कोई चतुर सेनापति नहीं थे, वह एक महान नीतिशास्त्रज्ञ थे, इस लिये सेना के प्रबन्ध तथा शस्त्रास्त्र के सम्बन्ध में लिखते हुए उन्होंने सीधी तरह से तत्कालीन सैन्य व्यवस्था का वर्णन मात्र ही किया है। उन्होंने जो सेना के विभाग और बारूद आदि बनाने के गुर वर्णित किये हैं वे उस समय उसी प्रकार प्रचलित थे-यह बात निश्चित समझनी चाहिये। इतनी भूमिका के साथ हम इस अध्याय को प्रारम्भ करते हैं।

सेना विभाग— "सेना दो प्रकार की होती है स्वगमा और अन्य-गमा। स्वयं चलने वाली सेना को स्वगमा कहते है और रथ, घोड़े और हाथी इन तीन पर चलने वाली सेना को अन्यगमा। मुख्यतया हम सैन्य बल के दो विभाग कर सकते हैं-अपनी सेना और मित्र राष्ट्र की सेना। इन दोनों के भी फिर दो भाग होते हैं-स्थिर सेना (Standing army) और नई भरती की हुई सेना। इन दोनों के भी उपयोगी और अनुपयोगी ये दो विभाग हो सकते हैं। इस प्रकार सधी हुई, न सधी हुई, राष्ट्र द्वारा नियन्त्रित, सीधा राष्ट्र द्वारा नियन्त्रित न की हुई, सरकार द्वारा शस्त्र प्राप्त करने वाली और स्वयं शस्त्रों का प्रबन्ध करने वाली, सरकार द्वारा रथ प्राप्त करने वाली और स्वयं रथों का प्रबन्ध करने वाली इत्यादि द्वैधी भावों से सेना के

अनेक विभाग किए जा सकते हैं ।"[1]

"उपर्युक्त प्रकार से सेना के भिन्न २ विभागों के निम्नलिखित नाम हैं[2]—

मैत्र—मित्र राष्ट्र द्वारा आवश्यकता पड़ने पर सहायता के लिये प्राप्त सेना ।
स्वीय—राष्ट्र की निजू सेना जिसे वेतन देकर रक्खा जाता है ।
मौल—राष्ट्र की पुरानी स्थिर सेना ।
साद्यस्क—नए रंगरूट ।
सार—युद्ध करने के योग्य सेना ।
असार—युद्ध करने के अयोग्य सेना ।
शिक्षित—वह सेना जो व्यूहादि बनाने में खूब कुशल है ।
अशिक्षित—जिसे व्यूहाभ्यास नहीं ।
गुल्मीभूत—जिस सेना के नायक सरकार द्वारा नियुक्त किए गए हैं ।
अगुल्मक—जिस के नायक स्वयं सेना द्वारा चुने जाते हैं ।
दत्तास्त्र—जिस सेना को सरकार अस्त्र देती है ।
अदत्तास्त्र—जो स्वयं अपने शस्त्रों का प्रबन्ध करते हैं ।
कृतगुल्म—वह सेना जिस का निर्माण सरकार द्वारा नियुक्त नायकों ने किया है ।

स्वयंगुल्म—जो स्वयं अपना निर्माण करती है ।
आरण्यक—किरातादि जंगली जातियों से निर्मित वह सेना जो सर्वथा स्वतन्त्र होती है ।

---

१. स्वगमाऽन्यगमा चेति द्विधा सेना पृथक् त्रिधा ॥ २ ॥
स्वगमा या स्वयं गन्त्री यानगाऽन्यगमा स्मृता ।
पादातं स्वगमं चान्यद्रथाश्व गजगं त्रिधा ॥ ३ ॥
सेना बलं तु द्विविधं स्वीयं मैत्रं च तद्द्विधा ।
मौल साद्यस्क भेदाभ्यां सारासारं पुनर्द्विधा ॥ ८ ॥
अशिक्षितं शिक्षितञ्च गुल्मी भूतमगुल्मकम् ।
दत्तास्त्रादि स्वशस्त्रास्त्रं स्ववाहि दत्त वाहनम् ॥ ९ ॥

२. सौजन्यात् साधकं मैत्रं स्वीयं भृत्या प्रपालितम् ।
मौलं बह्वब्दानुबन्धि साद्यस्कं यत् तदन्यथा ॥ १० ॥
सुयुद्धकामुकं सारमसारं विपरीतकम् ।
शिक्षितं व्यूह कुशलं विपरीतं अशिक्षितम् ॥ ११ ॥
गुल्मीभूतं साधिकारी स्वस्वामिक गुल्मकम् ।
दत्तास्त्रादि स्वामिना यत् स्वशस्त्रास्त्रमतोन्यथा ॥ १२ ॥
कृतगुल्मं स्वयं गुल्मं तद्वच्च दत्त वाहनम् ।
आरण्यकं किरातादि यत् स्वाधीनं स्वचेतसा ॥ १३ ॥ (शुक्र० अ० ४. vii.)

सेना निर्माण— "राजा को चाहिये कि वह सैनिकों का वेतन बढ़ा कर, उन्हें खूब व्यायामादि करवा कर, अच्छे २ शस्त्र देकर और बुद्धिमान शास्त्रज्ञ लोगों से सलाह लेकर अपने सैन्य बल को खूब बढ़ावे। सेना का अनुपात इस प्रकार होना चाहिये[1]—

अगर सेना में एक घुड़ सवार हो तो इस अनुपात से अन्य सेना होनी चाहिये—

पैदल—४
बैल—$\frac{१}{५}$
ऊँट—$\frac{१}{८}$
हाथी—$\frac{१}{३२}$
रथ—$\frac{१}{६४}$
तोपें—$\frac{१}{३२}$

रथ— उस समय प्रायः बड़े बड़े योद्धा रथों पर बैठ कर ही युद्ध किया करते थे। महाभारत के युद्ध में भीष्म, द्रोण, अर्जुन, भीम, कृप आदि सब बड़े बड़े योद्धा रथारोही ही थे। इन लोगों के रथ खूब मज़बूत और हलके होते थे। शुक्रनीति में युद्ध के रथों के सम्बन्ध में कहा है—"युद्ध के लिये रथ लोहे के बने होने चाहिये, वे पहियों द्वारा सरलता से घूम सकते हों, रथारोही के लिये बैठने की जगह ऊँची हो, सारथी का स्थान रथ के मध्य में हो, रथ के अन्दर यथेष्ट हथियार रखे होने चाहिये, उन का छाता ऐसा होना चाहिये जिसे सब ओर घुमाया जा सके, वे सुन्दर हों और उन के घोड़े खूब उत्तम हों।"[2]

हाथी— उन दिनों युद्धों के लिये हाथी एक अत्यन्त आवश्यक साधन था, हाथियों को पालने का मुख्य उद्देश्य युद्ध ही समझे जाते थे।

---

१. सेना बलं सुभृत्या तु तपोऽभ्यासैस्तथास्त्रिकम्।
वर्धयेच्छास्त्र चतुर संयोगाद्धि बलं सदा ॥ १७ ॥
चतुर्गुणं हि पादातमश्वतो धारयेत् सदा।
पञ्चमांशांस्तु वृषभानष्टांशांश्च क्रमेलकान् ॥ १९ ॥
चतुर्थांशान् गजानुष्ट्राद्गजार्द्धांश्च रथान् सदा।
रथात्तु द्विगुणं राजा वृहन्नालीकमेव च ॥ २० ॥

२. लोहसार मयश्चक्र सुगमो मञ्चुकासनः।
स्वान्दोलायित रूढ़स्तु मध्यमासन सारथिः॥ २९ ॥
शस्त्रास्त्र सन्धायुदर इष्टच्छायो मनोरमः।
एवंविधो रथो राज्ञा रक्ष्यो नित्यं सदश्वकः ॥ ३० ॥ (शुक्र० अ० ४. vii)

हाथियों की पहिचान, उन की लम्बाई, चौड़ाई तथा उन के स्वभाव के सम्बन्ध में शुक्रनीति में बहुत से निर्देश दिए हैं— "नीले तालु और नीली जिह्वा वाले, टेढ़े दांतों वाले, देर तक क्रोध या मस्ती की हालत में रहने वाले, पीठ हिलाने वाले, जिन के पैरों के १८ से कम भाग हों, या जिन की पूंछ ज़मीन को छूती हो वे हाथी बुरे हाथी होते हैं, इन के अतिरिक्त अन्य हाथी अच्छे होते हैं। हाथी चार प्रकार के होते हैं— भद्र, मन्द्र, मृग और मिश्र।"[1]

"इन की लम्बाई चौड़ाई इस प्रकार होती है—[2]

१ हाथ = २ फीट	भद्र	मन्द्र	मृग
ऊँचाई—	७ हाथ	६ हाथ	५ हाथ
लम्बाई—	८ "	८ "	७ "
पेट की परिधि—	१० "	९ "	८ "

इन सब की विस्तृत पहिचान आचार्य शुक्र ने दी है। सेना के लिये इस पहिचान से परख कर ही हाथियों को रखना चाहिये और उन्हें युद्ध के लिये शिक्षित करना चाहिये।

घोड़े— वर्तमान समय में युद्ध के साधनों और प्रकारों में इतनी उन्नति और परिवर्तन हो जाने पर भी सधी हुई घुड़सवार सेना की महत्ता अभी तक कम नहीं हुई है। युद्ध के लिये घोड़ों को इस प्रकार सधाने की प्रथा भारतवर्ष में बहुत प्राचीन है। आचार्य शुक्र ने घोड़ों की पहिचान तथा स्वभाव आदि के सम्बन्ध में जो बातें कही हैं उन्हें पढ़ कर अब तक आश्चर्य होता है। घोड़ों के सम्बन्ध में उनका ज्ञान बहुत विस्तृत और बड़ी गहराई तक गया हुआ था। हम उदाहरण के लिये उन में से दो निर्देश यहां देते हैं—

"सब से उत्तम घोड़े का मुंह ४० अंगुल, उत्तम घोड़े का ३६ अंगुल,

---

१. नील तालुर्नील जिह्वो वक्रदन्तो ह्यदन्तकः ।
दीर्घद्वेषी क्रूरमदस्तथा पृष्ठ विधूनकः ॥ ३१ ॥
दशाष्टोन नखो मन्दो भूविशोधन पुच्छकः ।
एवं विधोऽनिष्ट गजो विपरीतः शुभावहः ॥ ३२ ॥
भद्रो मन्द्रो मृगो मिश्रो गजो जात्या चतुर्विधः ॥ ३३ ॥
(शुक्र० अ० ४ vii.)

२. शुक्र० अ० ४ vii. श्लोक ३९—४३ ।

मध्यम का ३२ अंगुल और निकृष्ट का २८ अंगुल लम्बा होता है।[१]

"घोड़े की आयु के अनुसार उस के दांत और जबड़ों के रंग में निम्नलिखित परिवर्तन आता है—[२]

वर्ष				रंग
१ म	......	......	......	सफेद
२ य	......	......	......	काला और लाल
३—६	......	......	......	गहरा काला
६—९	......	......	......	काला
९-१२	......	......	......	पीला
१२-१५	......	......	......	सफेद
१५-१८	......	......	......	शीशे का रंग
१८-२१	......	......	......	शहद का रंग
२१-२४	......	......	......	शंख का रंग

"घोड़ा अगर कभी हिन् हिनाए तो उसे पांसों पर मारना चाहिए, अगर हिचकिचाए तो कानों के नीचे, अगर सीधा न चले तो गले पर, अगर क्रोधित हो तो अगली दोनों टाँगों के बीच में, अगर सुस्त हो तो पेट पर, अगर डरा हुवा हो तो छाती पर और अगर ठीक न चले तो पिछले भाग पर मारना चाहिए। घोड़े को अशुद्ध स्थान पर कभी नहीं मारना चाहिये, नहीं तो वह बिगड़ जाता

---

१. चत्वारिंशाङ्गुल मुखो वाजी यश्चोत्तमोत्तमः।
षट्त्रिंशदंगुलमुखो ह्युत्तमः परिकीर्तितः ॥ ४३ ॥
द्वात्रिंशदंगुलमुखो मध्यमः स उदाहृतः।
अष्टाविंशत्यङ्गुलो यो मुखे नीचः प्रकीर्तितः ॥ ४४ ॥

२. दन्तानामुद्गमैर्वर्णैरायुर्ज्ञेयं वृषाश्वयोः ॥ १५८ ॥
अश्वस्य षट् सिता दन्ताः प्रथमाब्दे भवन्तिहि।
कृष्णा लोहित वर्णास्तु द्वितीयेऽब्देह्यधोगताः ॥ १५९ ॥
तृतीयेऽब्देतु संन्दशौ क्रमात् कृष्णौ षड्ब्दतः।
तत्पार्श्व वर्तिनौ तौतु चतुर्थे पुनरुद्गतौ ॥ १६० ॥
अन्त्यौ द्वौ पञ्चमाब्देतु सन्दंशौ पुनरुद्गतौ ।
मध्य पार्श्वन्तर्गतौ द्वौ द्वौ क्रमात् कृष्णौ षडब्दतः ॥ १६१ ॥
नवमाब्दात् क्रमात् पीतौ तौसितौ द्वादशाब्दतः।
दशपञ्चाब्दतस्तौतु काचाभौ क्रमशः स्मृतौ ॥ १६२ ॥
अष्टादशाब्दतस्तौ हि मध्वाभौ भवतः क्रमात्।
शङ्खाभौ चैकविंशाब्दाच्चतुर्विंशाब्दतः सदा।
छिद्रं सञ्चालनं पातो दन्तानाञ्च त्रिके त्रिके ॥ १६३ ॥ (शुक्र० अ० ४ vii.)

है। सब से अच्छे घोड़े को एक घण्टे में ६४ मील चलना चाहिये ।"[१]

सैन्य पालन — आचार्य शुक्र के अनुसार राष्ट्र की सेना का पालन सेना को भिन्न २ सूबेदारों के पास रख कर करना चाहिये । सूबेदारों की आय के अनुपात से उन के सैनिक निश्चित होने चाहिये । जिस सूबेदार की आय १ लाख रुपया वार्षिक हो उसे निम्नलिखित प्रकार से सेना रखनी चाहिये—[२]

१०० पृथक् (Reserve force.)
३०० बन्दूक धारी पैदल
८० घुड़ सवार
१ रथ
२ तोपें
१० ऊँट
२ हाथी
२ छकड़े
१६ बैल
६ लेखक
३ मन्त्री

---

१. हर्षिते कक्षयोर्हन्यात् स्खलिते पक्षयोस्तथा ।
भीते कर्णान्तरे चैव ग्रीवासून्मार्ग गामिनि ॥ १२३ ॥
कुपिते बाहुमध्ये च भ्रान्तचित्ते तथोदरे ।
अश्व सन्ताड्यते प्राज्ञैर्नान्य स्थानेषु कर्हिचित् ॥ १२५ ॥

अथवा हर्षिते स्कन्धेस्खलिते जघनान्तरे ।
भीते वक्षस्थलं हन्यात् वक्त्रमुन्मार्गगामिनि ॥
कुपिते पुच्छ संघाते भ्रान्तेजानुद्वयं तथा ॥ १२६ ॥
गच्छेत् षोड़श मात्राभिरुत्तमोऽश्वो धनुः शतम् ॥ १२९ ॥

(१०० धनु = २००गज़ । १० मात्रा = ४ सैकण्ड अतः १६ = मात्रा ६. ४ सैं०)

२. सवयः सारवेशोच्च शस्त्रास्त्रं तु पृथक् शतम् ।
लघुनालिक युक्तानां पदातीनां शतत्रयम् ॥ २२ ॥
अशीत्यश्वान् रथं चैकं बृहन्नालद्वयं तथा ।
उष्ट्रान् दश गजौ द्वौ तु शकटौ षोड़शर्षभान् २३ ॥
तथा लेखक षटकं हि मन्त्रित्रितयमेव च ।
धारयेन्नृपतिः सम्यग्वत्सरे लक्ष कर्षभाक् ॥ २४ ॥
यथा यथा न्यून गतिरश्वो हीनस्तथा तथा ॥ १२९ ॥ (शुक्र० अ० ४. vii.)

"उस सूबेदार को अपना वार्षिक वजट इस प्रकार बनाना चाहिये—[1]

	मासिक	वार्षिक
वैयक्तिक आवश्यकताओं तथा दान के लिये ...	१५००	१८०००
६ लेखकों का वेतन	१००	१२००
३ मन्त्रियों का वेतन	३००	३६००
पारिवारिक व्यय	३००	३६००
शिक्षा	२००	२४००
पैदल और घुड़ सवार सेना के लिये	४०००	४८०००
हाथी, ऊँट आदि	४००	४८००
स्थिर कोश के लिये बचत	१५००	१८०००
योग	८३००	९९६००
		(लगभग १ लाख)

सैनिकों के वेतन में से उन की पोशाक का व्यय काट लेना चाहिये।"

सूबेदारों की वार्षिक आय के इस प्रकार व्यय होने के खाके से दो एक अन्य मनोरञ्जक बातें भी ज्ञात होती हैं। इस वजट के अनुसार लेखकों का मासिक वेतन १६ रुपया और सूबेदारों के मन्त्रियों का मासिक वेतन १०० रुपया मासिक सिद्ध होता है, इस के द्वारा तत्कालीन समाज के जीवन निर्वाह के माप का अनुमान सरलता से किया जा सकता है। दूसरी बात यह ज्ञात होती है कि उस समय राष्ट्र की ओर से ही प्रजा की शिक्षा का प्रबन्ध किया जाता था। इस विषय पर हम अगले अध्यायों में विस्तार से लिखेंगे।

छावनियां— "सेना के घोड़े और बैलों को पानी के समीप रखना चाहिये, हाथी और ऊँटों को जंगलों में और पैदल सिपाहियों को बड़े शहरों के

---

१. सम्भार दान भोगार्थं धनं सार्धसहस्रकम्।
लेखकार्थं शतं मासि मन्त्र्यर्थे तु शतत्रयम् ॥ २५ ॥
त्रिशतं पुत्रदारार्थं विद्वदर्थं शतद्वयम्।
साद्यश्वपदगार्थं हि राजा चतुः सहस्रकम् ॥ २६ ॥
गजोष्ट्र वृषनालार्थं व्ययी कुर्याच्चतुः शतम्।
शेषं कोशे धनं स्थाप्यं राज्ञा सार्धसहस्रकम् ॥ २७ ॥
प्रतिवर्षं स्ववेशार्थं सैनिकेभ्यो धनं हरेत् ॥ २८ ॥
(शुक्र० अ० ४ vii.)

समीप रखना चाहिए। राष्ट्र-भर में चार चार मील के अन्तर पर सौ सौ सैनिकों को रखना चाहिए।" [1]

सम्भवतः सेना को इस प्रकार फैला कर रखने का उद्देश्य शान्ति रक्षा का कार्य हो।

"समय समय पर आवश्यकतानुसार हाथी, ऊंठ, घोड़े और बैलों द्वारा युद्ध सामग्री एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जानी चाहिये। वर्षा ऋतु को छोड़ कर साधारण अवस्था में सामान ढोने के लिये छकड़े सर्वोत्तम होते हैं।" [2]

सैनिकों की शिक्षा— वाद्यों (बिगुल बैण्ड आदि) द्वारा बनाए गए संकेत इस प्रकार गुप्त रखने चाहिये कि उन्हें अपने सैनिकों को छोड़ कर अन्य कोई न समझ सके। घुड़ सवार, हाथी-सवार और पैदलों के लिये वाद्यों के अलग २ चिन्ह निश्चित करने चाहिये। इन में से किसी विभाग का कोई सैनिक चाहे आगे, पीछे, दांए, बांए, कहीं ठहरा हुआ हो उसे अपना संकेत सुन कर तत्क्षण उस का पालन करना चाहिए। सैनिकों को प्रतिदिन टोलियां बनाना (Grouping), फैलना, घूम जाना, संकुचित हो जाना, चलना, तेज़ चलना, और एक दम पीछे लौटने का अभ्यास कराना चाहिये। इसी प्रकार सीधी पंक्ती में में एक साथ आगे जाना, सीधे खड़ा होना, एक साथ लेट जाना, झुक कर खड़ा होना, गोल घूमना, सूचिव्यूह, शकट व्यूह, अर्धचन्द्र व्यूह आदि का भी अभ्यास कराना चाहिये। साथ ही हिस्सों में फट जाना, एक दम एक लम्बी पंक्ती बांध लेना, शस्त्रों को तरीके से एक साथ उठाना और रखना, लक्ष्य भेद तथा एक साथ शस्त्र चलाने की शिक्षा भी देनी चाहिये।" [3]

---

१. अनूपे तु वृषाश्वानां गजोष्ट्राणान्तु जङ्गले।
साधारणे पादातीनां निवेशाद्रक्षणं भवेत् ॥ १७६ ॥
शतं शतं योजनान्ते सैन्यं राष्ट्रे नियोजयेत् ॥ १७७ ॥

२. गजोष्ट्र वृषभाश्वाः प्राक् श्रेष्ठाः सम्भारवाहनैः।
सर्वेभ्यः शकटा श्रेष्ठा वर्षाकालं विना स्मृताः ॥ १७८ ॥ (शुक्र० अ० ४ vii.)

३. व्यूहरचन संकेतान् वाद्यभाषा समीरितान्।
स्व सैनिकैर्विना कोपि न जानीयात् तथा विधान् ॥ २६६ ॥
नियोजयेच्च मतिमान् व्यूहान्नानाविधान् सदा ॥ २६८ ॥
अश्वानाञ्च गजानाञ्च पदातीनां पृथक् पृथक्।
उच्चैः संश्रावयेद् व्यूह संकेतान् सैनिकान् नृपः ॥ २६९ ॥
वाम दक्षिण संस्थो वा मध्यस्थो वाग्र संस्थितः।
श्रुत्वा तान् सैनिकैः कार्यमनुशिष्टं यथा तथा ॥ २७० ॥
सम्मीलनं प्रसरणं परिभ्रमणमेव च।
आकुञ्चनं तथा यानं प्रयाणमपयानकम् ॥ २७१ ॥
पर्यायेण च साम्मुख्यं समुत्थानञ्च लुण्ठनम्।
संस्थानं चाष्ट दल चक्रवद्गोल तुल्यकम् ॥ २७२ ॥

"सैनिकों को व्यूहाभ्यास की शिक्षा देने के लिए इन बातों का भी प्रतिदिन अभ्यास करना चाहिये—शस्त्रों को एक साथ ऊपर उठाना, उन्हें शीघ्र नीचे कर लेना, इस कार्य को शीघ्र शीघ्र कर सकना, शस्त्र चलना, संकुचित होकर अपनी रक्षा कर लेना, दो दो, तीन तीन या चार चार सैनिकों का कदम मिलाते हुए चलना और सीधा, उलटा या बाँए पार्श्व में मुड़ना।"[1]

सेना के लिये आवश्यक सामान—आचार्य शुक्र के अनुसार सैनिकों को किसी से लेन देन करने का सीधा अधिकार नहीं होना चाहिये, उनकी आवश्यकताएं पूरी करने के लिये अलग वस्तु भण्डार होने चाहियें। उन्हें शहरों से बाहर छावनी में रखना चाहिये। ये सब बातें वास्तव में बहुत लाभदायक हैं—

"शहर के बाहर परन्तु शहर के समीप सैनिकों के लिये छावनियां बनानी चाहिये। सैनिकों को शहर के वासियों से लेन देन करने का अधिकार नहीं होना चाहिये। उनके लिए सब वस्तुओं के भण्डार पृथक् होने चाहियें। सैनिकों को कहीं एक साथ एक वर्ष से अधिक नहीं रखना चाहिये।"[2]

सैनिकों के लिये अन्य नियम— यह समझा जाता है कि सैनिकों पर जनता के हित की दृष्टि से कठोर नियन्त्रण रखने की प्रथा बिल्कुल नवीन है। आज से चार सौ वर्ष पूर्व पश्चिम के सभ्य राष्ट्रों तथा मुसलमान देशों की सेनायें मौका पड़ने पर साधारण जनता को अपनी शक्ति के गर्व से बहुत तंग किया करती थीं। परन्तु शुक्रनीति से विदित होता है कि उस समय सैनिकों पर सरकार का कठोर शासन रहा करता था—

सूचि तुल्यं शकटवद्द्र्ध चन्द्रसमन्तु वा।
पृथग् भवनमल्पाल्पैः पर्यायैः पङ्क्तिवेशनम् ॥ २७३ ॥
शस्त्रास्त्रयोर्धारणञ्च सन्धानं लक्ष्यभेदनम्।
मोक्षणञ्च तथास्त्राणां शस्त्राणां परिघातनम् ॥ २७४ ॥ (शुक्र० अ० ४ vii)

1. द्राक् सन्धानं पुनः पातो ग्रहो मोक्षः पुनः पुनः।
स्वगूहनं प्रतीघातः शस्त्रास्त्र पदविक्रमैः ॥ २७५ ॥
द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिर्वा पङ्क्तितो गमनं ततः।
तथा प्राग् भवनं चापसरणं तूपसर्जनम् ॥ २७६ ॥

2. ग्रामाद्बहिः समीपे तु सैनिकान् धारयेत् सदा।
ग्राम्य सैनिकयोर्न स्यादुत्तमर्णाधमर्णता ॥ ३७९ ॥
सैनिकार्थं तु पण्यानि सैन्ये सन्धारयेत पृथक्।
नैकत्र वासयेत सैन्यं वत्सरन्तु कदाचन ॥ ३८० ॥

"सरकार को सैनिक नियमों की घोषणा प्रति सप्ताह छावनियों में करते रहना चाहिये। सैनिकों के लिये ये नियम होने चाहियें—वे हत्या और उद्दण्डता न करें, सरकारी कार्यों के करने में ढील न करें, राज्य के अपराधियों के प्रति उदासीन न रहें, राजा के शत्रुओं से मित्रता न करें, सरकार की विशेष आज्ञा के बिना वे शहरों में न जायें । वे अफसरों की समालोचना न करते रहें, उन से मित्रता के भाव से रहें। वे अपने शस्त्र, अस्त्र, और पोषाक को सदैव साफ (तैयार) रक्खें । सैनिकों को अपना भोजन, पानी, बर्तन आदि साथ रखने चाहिये। सरकार यह घोषणा करे कि जो सैनिक सरकारी आज्ञा का उल्लंघन करेगा उसे मृत्यु दण्ड मिलेगा।"[1]

सैनिकों की गणना— शुक्र नीति के अनुसार सैनिक गणना (Roll Call) का जिस प्रकार का वर्णन मिलता है वह आज कल की दृष्टि से भी भी सर्वथा पूर्ण है—"प्रातः सायं दोनों समय सैनिकों की हाज़री लेनी चाहिये; रजिस्टरों में सैनिकों का नाम, जाति, लम्बाई, मोटाई, उमर, निवास भूमि, प्रान्त और शहर का नाम लिखा होना चाहिये।"[2]

सैनिकों को वेतन— "लेखक को चाहिये कि वह सैनिकों को वेतन देते हुए उन की सेवा की अवधि, वेतन की मात्रा, कब तक का वेतन दिया जा चुका है, कितना शेष है, इस समय उसे कितना इनाम (भत्ता) दिया गया है, यह सब दर्ज कर ले । वेतन देकर सैनिकों से प्राप्ति के लिये हस्ताक्षर करवा कर "वेतन पत्र" काट दे । जो सैनिक सधे हुए हों उन्हें पूरा वेतन और नए

---

१. संशासयेत् स्वनियमान् सैनिकानष्टमे दिने ॥ ३८१ ॥
चण्डत्वमाततायित्वं राजकार्ये विलम्बनम् ।
अनिष्टोपेक्षणं राज्ञः स्वधर्म परिवर्जनम् ॥ ३८२ ॥
त्यजन्तु सैनिका नित्यं सल्लापमपि वा परैः ।
नृपाज्ञया विना ग्रामं न विशेयुः कदाचन ॥ ३८३ ॥
स्वाधिकारिगणस्यापि ह्यपराधं दिशन्तु नः ।
मित्रभावेन वर्तध्वं स्वामि कृत्ये सदाखिलैः ॥ ३८४ ॥
सूज्ज्वलानि च रक्षन्तु शस्त्रास्त्र वसनानि च ।
अन्नं जलं प्रस्थमात्रं पात्रं बह्वन्नसाधकम् ॥ ३८५ ॥
शासनादन्यथा चारान् विनेष्यामि यमालयान् ॥ ३८६ ॥

२. सायं प्रातः सैनिकानां कुर्यात् सङ्गणनं नृपः ।
जात्याकृति वयोदेश ग्राम वासान् विमृश्य च ॥ ३८८ ॥

(शुक्र० अ० ४, vii.)

रँगरूटों को आधा वेतन देना चाहिये।"[1]

सैनिकों को दण्ड— सैनिकों का दण्ड विधान साधारण जनता के दण्ड विधान से बहुत कठोर होना चाहिये। आचार्य शुक्र के अनुसार सैनिकों को दण्ड देने के लिये जुर्माना करने की अपेक्षा उन्हें शारीरिक दण्ड देना अधिक अच्छा है—

"पीटने से मनुष्य और पशु प्रायः दबा कर रक्खे जा सकते हैं, विशेष कर सैनिकों पर जुर्माना आदि न करके उन्हें सदैव शारीरिक दण्ड देना अधिक अच्छा है।"[2]

सैनिकों के लिये प्राणदण्ड की व्यवस्था बहुत से अपराधों के लिये है—

"उन सैनिकों की हत्या कर देनी चाहिये जो कि दुष्टों या शत्रुओं (विद्रोहियों) से गुप्त सम्बन्ध रखते हैं। सदैव उन सैनिकों का पता लगाते रहना चाहिये जो कि सेना में शत्रुओं की प्रशंसा और राजा निन्दा करते रहते हैं; ऐसे सैनिकों को भी प्राणदण्ड देना चाहिये। जो सैनिक आराम पसन्द हों उन्हें सेना से निकाल देना चाहिये।"[3]

इस सेना विभाग का मुख्य अध्यक्ष 'सचिव' होता था। यह मन्त्रि-मण्डल में युद्ध सचिव का कार्य करता था। अपने विभाग के सम्पूर्ण प्रबन्ध के लिये यह शक्तिसहित उत्तरदायी था।

तत्कालीन शस्त्रास्त्र

कतिपय ऐतिहासिकों का मन्तव्य है कि भारतवर्ष में बारूद और बन्दूक आदि का प्रयोग मुसलमानों के इस देश में आने के बाद से ही प्रारम्भ

---

१. कालं भृत्यवधिं देयं दत्तं भृत्यस्य लेखयेत्।
कति दत्तं हि भृत्येभ्यो वेतनं पारितोषिकम्।
तत्प्राप्तिपत्रं गृह्णीयाद्दद्याद्वेतन पत्रकम्॥३८९॥
सैनिकाः शिक्षिता ये ये तेषु पूर्णा भृतिः स्मृता।
व्यूहाभ्यासे नियुक्ता ये तेष्वर्द्धां भृतिमावहेत्॥३९०॥

२. सुताडनैर्विनेया हि मनुष्याः पशवः सदा।
सैनिकास्तु विशेषेण न ते वै धन दण्डतः॥१७५॥

३. सत्कर्त्राश्रितं सैन्यं नाशयेच्छत्रुयोगतः॥३९१॥
नृपस्यासद् गुणरताः के गुणद्वेषिणो नराः।
असद् गुणोदासीनाः के हन्यात्तान् विमृशन् नृपः।
सुखासक्तांस्त्यजेद् भृत्यान् गुणिनोऽपि नपः सदा॥३९२॥ (शुक्र० अ० ४. Viii.)

हुवा है। वे लोग बारूद के आविष्कार का श्रेय अरब वासियों को ही देते हैं। उनका कहना है कि मुसलमानों के साथ युद्ध करते हुए ही भारतवासियों को बारूद का परिचय हुवा है। परन्तु वह सिद्धान्त सर्वथा अयुक्तियुक्त और प्रमाण विरुद्ध है। अपने इतिहास के इसी खण्ड के प्रथम भाग में हम महाभारत के प्रमाणों द्वारा उस समय अग्न्यास्त्रों और बारूद आदि की सत्ता सिद्ध कर चुके हैं। शुक्रनीतिसार में तो बड़े स्पष्ट शब्दों में बारूद के फारमूले प्राप्त होते हैं; इस ग्रन्थ में तोप, बन्दूक, गोले आदि का वर्णन कई स्थानों पर प्राप्त होता है। केवल शुक्रनीति ही नहीं अपितु अन्य कतिपय स्मृति ग्रन्थों, पुराणों तथा साहित्यिक ग्रन्थों द्वारा मुसलमानों से बहुत पूर्व भारतवर्ष में बारूद तथा बन्दूक आदि की सत्ता सिद्ध होती है। उन ग्रन्थों के तथा कतिपय अन्य प्रमाण यहाँ दे देना अनुचित न होगा—

१. सन् १७९८ में महाशय लेंग्ले (M. Langle) ने फ्रान्स की साहित्य-परिषद् (French Institute) के सामने एक निबन्ध पढ़ा था जिसमें उन्होंने सिद्ध किया था कि अरब के लोगों ने भारतवासियों से बारूद बनाना सीखा और फिर उन से यूरोप के अन्य देशों ने। इसी बात को जे० बैकमैन ने अपनी पुस्तक 'आविष्कारों का इतिहास' (History of Inventions and Descoveries) में सिद्ध किया है।

२. मनुस्मृति में एक श्लोक आता है; उस का अर्थ है— "लड़ाई में कोई व्यक्ति अपने शत्रु को छिपे हथियारों से, तेज़ या विष में बुझे हुए तीरों से अथवा आग फेंक कर न मारे।"[1] इस श्लोक से स्पष्टतया किसी ऐसे हथियार की झलक मिलती है जिसके द्वारा कि आवश्यकता पड़ने पर अग्निवर्षा की जाती होगी।

३. हरिवंश पुराण में आए हुए एक श्लोक का अभिप्राय इस प्रकार है— "राजा सागर ने भार्गव ऋषि से अग्न्यास्त्र प्राप्त करके सप्त तालजंघों को मार कर सारी पृथिवी को जीता।"[2]

४. महाराज तथा महाकवि हर्ष द्वारा विरचित नैषध काव्य में एक श्लोक आता है जिस का अभिप्राय इस प्रकार है—

---

१. न कूटैरायुधैर्हन्यात् युद्ध्यमानो रणे रिपुम् ।
न कर्णिभिर्नापि दिग्धैर्नाग्निज्वलित तेजनैः ॥ ९३ ॥ (मनुस्मृति अ० १०)

२. आग्नेयमस्त्रं लब्ध्वा च भार्गवात् सगरो नृपः ।
जिगाय पृथिवीं हत्वा तालजंघान् सहैहयान् ॥
(हरिवंश पुराण अ० १४ श्लो० ३३)

"दमयन्ती की दोनों भुवें मदन और रति की भुवों के समान जान पड़ती हैं; उस की नाक के दोनों छेद कामदेव की वन्दूकों के समान हैं, जिन से कि वह सारे संसार को जीतता है।"[1]

इन सब प्रमाणों से यह भली प्रकार सिद्ध होता है कि वन्दूक आदि आग्नेयास्त्रों का प्रयोग भारत वर्ष में वहुत प्राचीन काल से चला आता है।

शस्त्रास्त्रों के भेद— शुक्रनीति के अनुसार उस समय के शस्त्रास्त्रों के सम्बन्ध में हमें यह ज्ञान प्राप्त होता है-

"जो मन्त्र, मशीन या आग की सहायता से फेंका जाय उसे अस्त्र कहते हैं, इन से भिन्न हथियारों-तलवार वर्छी आदि-को शस्त्र कहते हैं। अस्त्र दो प्रकार के होते हैं-मन्त्र की सहायता से फेंके जानेवाले और यन्त्र की सहायता से फेंके जाने वाले। जीतने की इच्छा वाले राजा को युद्ध में मान्त्रिक अस्त्रों के अभाव में यान्त्रिक अस्त्र तथा तेज़ शस्त्रों का प्रयोग करना चाहिये। इन शस्त्र अस्त्रों के आकार और तीक्ष्णता के भेद से अनेक नाम हो जाते हैं।"[2]

वन्दूक— "नालिक अस्त्र दो प्रकार के होते हैं-छोटे (वन्दूक) और वड़े (तोप)। इस नालिक अस्त्र में एक टेढ़ी और ऊपर तक गए हुए छेद वाली नालिका होती है जो ढाई हाथ (५ फीट) लम्बी होती है। इस अस्त्र के एक सिरे पर एक विन्दु वना होता है इस से निशाना साधा जाता है, इस के नीचे एक स्थान होता है जिस में वारूद रक्खा जाता है। इस पर मशीन द्वारा दवाव डालने से आग पैदा होती है। इस अस्त्र का कुन्दा मज़वूत लकड़ी का वना होता है; इस के द्वारा वारूद और गोली दोनों को छोड़ा जा सकता है। नालिका का छेद वीच की ऊँगली के वरावर मोटा होता है, रखने के लिये एक मज़वूत धातु की शलाका वनी होती है। इस लघु नालिका द्वारा पैदल और घुड़ सवार दोनों युद्ध कर सकते हैं। जिस नालिका का छेद जितना वड़ा, मज़वूत और गोल होता है उस

---

१. धनुषि पञ्च वाणयोरुदिते विश्वजयाय तद्भुवौ।
नालिके न तदुच्च नासिके त्वयी नालिका विमुक्तिमाप्नुयौ।
(नैपध. सर्ग २ श्लोक २८)

२. अस्यते क्षिप्यते यत्तु मन्त्र यन्त्राग्निभिश्च यत्॥ १९१॥
अस्त्रं तदन्यतः शस्त्रमसिकुन्तादिकञ्च यत्।
अस्त्रन्तु द्विविधं ज्ञेयं नालिकं मान्त्रिकं तथा॥ १९२॥
यदा तु मान्त्रिकं नास्ति नालिकं तत्र धारयेत्।
सह शस्त्रेण नृपतिर्विजयार्थन्तु सर्वदा॥ १९३॥
लघु दीर्घाकार धारा भेदैः शस्त्रास्त्र नामकम्।
प्रथयन्ति नवं भिन्नं व्यवहाराय तद्विदः॥ १९४॥

से उतना अधिक दूर तक निशाना मारा जा सकता है।"[1]

तोप—"बड़ी नालिका के एक सिरे पर कील लगा होता है। जिस के द्वारा उस का मुंह यथेच्छ घुमाया जा सकता है। इस का खाका मज़बूत लकड़ी का बना होता है; इसे छकड़ों पर उठा कर ले जाया जाता है। युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिये यह एक मुख्य साधन है।"[2]

बारूद बनाने की विधि—बारूद बनाने के लिये इस अनुपात से निम्नलिखित सामान लेना चाहिये-सुवर्चो नमक के पाँच हिस्से, गन्धक का एक हिस्सा और आक, स्नूही या किसी ऐसे ही पेड़ की लकड़ी के कोइले का एक हिस्सा, यह कोइला इस प्रकार बनना चाहिये जिस से कि धूआँ न निकला हो, इन तीनों चीजों को अलग अलग स्वच्छ बर्तनों में खूब बारीक पीस लेना चाहिये और फिर इन्हें मिला देना चाहिये। इस चूर्ण में स्नूही या आक का रस डाल कर इसे धूप में सुखाना चाहिये और फिर इसे खांड की तरह चूर्ण बना लेना चाहिये। यही बन्दूक में छोड़ने का बारूद है।

गन्धक और कोइले की मात्रा उतनी ही रख कर सुवर्चो नमक की चार या छः मात्राएं भी डाली जासकती हैं।"[3]

---

१. नालिकं द्विविधं ज्ञेयं वृहत् क्षुद्र विभेदतः॥ १९५ ॥
तिर्य्यगूर्ध्व च्छिद्र मूलं नालं पञ्च वितस्तिकम्।
मूलाग्रयो र्लक्ष्य भेदि तिल बिन्दु युतं सदा ॥ १९६ ॥
यन्त्राघाताग्नि कृद् ग्राव चूर्णधिक्कर्णमूलकम्।
सुकाष्ठोपाङ्ग बुध्नञ्च मध्याङ्गुलबिलान्तरम् ॥ १९७ ॥
स्वान्तेऽग्नि चूर्ण सन्धातृ शलाका संयुतं दृढम्।
लघु नालिक मप्येतत् प्रधार्य पत्तिसादिभिः ॥ १९८ ॥
यथा यथा तु त्वक्सारं यथा स्थूल बिलान्तरम्।
यथा दीर्घं वृहद्गोलं दूर भेदी तथा तथा ॥ १९९ ॥

२. मूल कील भ्रमाल्लक्ष्य सम सन्धान भाजि यत्।
वृहन्नालिक संज्ञं तत् काष्ठ बुध्न विनिर्मितम्।
प्रवाह्यं शकटाद्यैस्तु सुयुक्तं विजय प्रदम् ॥ २०० ॥

३. सुवर्चिलवणात् पञ्च पलानि गन्धकात् पलम्।
अन्तर्धूम विपक्वार्क स्नुह्याद्यङ्गारतः पलम् ॥ २०१ ॥
शुद्धात् संग्राह्य संचूर्ण्य सम्मील्य प्रपुटेद्रसैः।
स्नुह्यर्काणां रसोनस्य शोषयेदातपेन च।
पिष्ट्वा शर्करवच्चैतदग्निचूर्णं भवेत् खलु ॥ २०२ ॥
सुवर्चिलवणात् भागाः षड्वा चत्वार एव वा।
नालास्त्रार्थाग्निचूर्णे तु गन्धाङ्गारौ तु पूर्ववत् ॥ २०३ ॥ (शु० अ० ४. vii.)

गोले और गोलियाँ—"तोप के गोले लोहे के होते हैं; ये दो प्रकार के होते हैं एक में बारूद भरा होता है दूसरे केवल लोहे के ही होते हैं। बन्दूक की गोलियाँ प्रायः सीसे की बनाई जाती हैं, ये किसी अन्य धातु से भी बनाई जा सकती हैं,।[1]

"नालास्त्र (तोप) लोहा या किसी अन्य मज़बूत धातु से बना होना चाहिये, इसे सदैव स्वच्छ रखना चाहिए और सशस्त्र लोगों का इस के चारों ओर पहरा रहना चाहिये। निपुण लोग कई प्रकार से बारूद तैयार करते हैं-कोइला, गन्धक, सुवर्ची पत्थर, हरिताल, सीसा, हिंगुल, लोह चूर्ण, कपूर, जतु, नील, सरल वृक्ष के रस आदि से भी बारूद तैयार किया जाता है। इस बारूद का रंग आवश्यकतानुसार सफेद, काला या मटियाला रक्खा जा सकता है। तोप में गोलों को रख कर उन्हें आग छुवा कर लक्ष्य पर फेंकते हैं। नालास्त्र को पहले साफ करना चाहिये फिर बड़ी सावधानी से बारूद को इस के सिरे के पास वाले स्थान पर रखना चाहिये, इस पर गोले को रखना चाहिये और फिर गोले पर कुछ बारूद डाल देना चाहिये। इस बारूद को आग दिखा कर गोले को लक्ष्य पर छोड़ना चाहिये।"[2]

अन्य हथियार—तत्कालीन अन्य शस्त्रास्त्रों का विस्तार से परिचय देने की आवश्यकता नहीं। हम संक्षेप से उनका दिग्दर्शन मात्र कराएंगे—

---

१. गोलो लोहमयो गर्भ घुटिकः केवलोऽपि वा।
सीसस्य लघु नालार्थे ह्यन्यधातुभवोऽपि वा॥ २०४॥

२. लोह सारमयं वापी नालास्त्रं त्वन्य धातुजम्।
नित्यं सम्मार्जन स्वच्छमस्त्रपातिभिरावृतम्॥ २०५॥
अङ्गारस्यैव गन्धस्य सुवर्चि लवणस्य च।
शिलाया हरितालस्य तथा सीसमलस्य च॥ २०६॥
हिंगुलस्य तथा कान्त रजसः कर्पूरस्य च।
जतोर्नील्याश्च सरल निर्यासस्य तथैव च॥ २०७॥
समन्यूनाधिकैरंशैरग्नि चूर्णान्यनेकशः।
कल्पयन्ति च तद्विद्याश्चन्द्रिका भादि मन्ति च॥ २०८॥
क्षिपन्ति चाग्नि संयोगाद्गोलं लक्ष्ये सुनालगम्॥ २०९॥
नालास्त्रं शोधयेदादौ दद्यात्तत्राग्नि चूर्णकम्।
निवेशयेत्तद्दण्डेन नालमूले यथा दृढम्॥ २१०॥
ततः सुगोलकं दद्यात् ततः कर्णेग्नि चूर्णकम्॥
कर्ण चूर्णाग्नि दानेन गोलं लक्ष्ये निपातयेत्॥ २११॥
(शुक्र० अ० ४. vii.)

बाण—ऐसा हो जिस के द्वारा ४ फीट लम्बा तीर सरलता से छोड़ा जा सके ।

गदा—अष्ट कोण हो, छाती की ऊंचाई तक लम्बी हो ।

पट्टीश—मनुष्य के कद के बराबर लम्बा हो, दोनों पासों से तेज़ हो, एक ओर मुट्ठा लगा हो ।

एक धार—थोड़ा गोलाई लिये हुए हो, एक ओर से तेज़ और चार अंगुल चौड़ा हो ।

क्षुर प्रान्त— बीच में चौड़ा, मज़बूत मूंठ वाला और चांद के समान चमकीला हो ।

तलवार—चार हाथ लम्बी और उस्तरे के समान तेज़ हो ।

भाला—२० फीट लम्बा हो, सिरेपर शंकु के समान तेज़ भाला लगा हो ।

चक्र—१२ फीट परिधि युक्त, उस्तरे के समान तेज़ किनारे वाला तथा अच्छे केन्द्र वाला हो ।

पाश—यह ६ फील लम्बा डण्डा हो जिस पर तीन तेज़ नोकें और एक लोहे की ज़ंजीर लगी हो ।

कवच— यह घुटनों से ऊपर तक लम्बा हो, इस पर लोहे की टोपी भी लगी हो, देखने में अच्छा हो ।

करज— यह ठोस लोहे का बना हुआ हो, इसका एक सिरा खूब तेज़ हो ।

जिस राजा के पास ये शस्त्र प्रभूत मात्रा में हों, और जिसके मन्त्री षड्गुण युक्त युद्ध नीति में खूब निपुण हों उसी को किसी से युद्ध छेड़ने का साहस करना चाहिये नहीं तो अपने राज्य से भी हाथ धोना पड़ता है ।"[1]

---

१. लक्ष्य भेदी तथा बाणो धनुर्ज्या विनीयोजितः ।
भवेत् तथा तु सन्धाय द्विहस्तश्च शिलीमुखः ॥ २१२ ॥
अष्टाश्रा पृथु बुध्ना तु गदा हृदय सम्मिता ।
पट्टीशः स्वसमो हस्त बुध्नश्चोभयतो मुखः ॥ २१३ ॥
ईषद्वक्रश्चैक धारो विस्तारे चतुरंगुलः ।
क्षुर प्रान्तो नाभि समो दृढ़ मुष्टि सुचन्द्ररुक् ॥ २१४ ॥
खड्गः प्रासश्चतुर्हस्त दण्ड बुध्नः क्षुरानकः ।
दश हस्तमितः कुन्तः फलाग्रः शङ्कु बुध्नकः ॥ २१५ ॥
चक्रं षड्हस्त परिधि क्षुरप्रान्तं सुनाभि युक् ।
त्रिहस्त दण्डः त्रिशिखो लोहरज्जु सुपाशकः ॥ २१६ ॥

अग्न्यास्त्रों का प्रयोग— उपर्युक्त बन्दूक, तोप आदि अग्न्यास्त्रों का उपयोग केवल युद्धादि के समय ही नहीं होता था, साधारण अवस्था में पुलीस और फौज के लोग भी बन्दूकें लेकर ही नगर रक्षा किया करते थे। अर्थात् इन अस्त्रों का प्रयोग करना कोई बड़ा गौरवपूर्ण असाधारण कार्य नहीं समझा जाता था अपितु आज कल की तरह बन्दूकें साधारण कार्यों के लिये भी प्रयुक्त होती थीं। शुक्रनीति प्रथम अध्याय में नगर रक्षा के प्रसङ्ग में कहा है—

"नगर के चारों ओर वाली दीवार पर सदैव बन्दूक हाथ में लिए हुए मज़बूत सिपाहियों पहरा रहना चाहिये।" फिर राजा के तुरगीगण में तोपों को भी गिनाया गया है।[1]

इस प्रकार शुक्रनीति के अनुसार तत्कालीन शस्त्रास्त्र बहुत पूर्णता तक पहुंचे हुए प्रतीत होते हैं।

युद्ध नीति

राजा को राष्ट्र की रक्षा के लिए युद्ध नीति में निपुण लोगों की सदैव आवश्यकता रहती है। इन के बिना अच्छी सेना तथा अच्छे शस्त्रास्त्र होते हुए भी राजा युद्ध में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता है। शुक्रनीति में इस युद्ध-नीति को षड्गुण नीति कहा है।

षड्गुण— ये षड्गुण सन्धी, विग्रह, यान, आसन, समाश्रय और द्वैधी भाव हैं। वे क्रियाएं जिन से कि दो प्रबल शत्रु मित्र हो जाते हैं सन्धी कहाती हैं। जिन उपायों से शत्रु को तंग किया जाय या आधीन कर लिया जाय वे विग्रह कहाते हैं। अपना मतलब सिद्ध करने तथा शत्रु को नष्ट करने के लिये जाने को यान कहते हैं। आसन उस अवस्थिति को कहते हैं जिसं

गोधूम सम्मित स्थूलपत्रं लोहमयं दृढ़म्।
कवचं शिरस्त्राणमूर्द्ध काय विशोभनम्॥ २१७॥
तीक्ष्णाग्रं करजं श्रेष्ठं लोहसारमयं दृढ़म्॥ २१८॥
यो वै सुपुष्ट सम्भारस्तथा षड्गुण मन्त्रवित्।
बहुस्त्र संयुतो राजा योद्धुमिच्छेत् स एव हि।
अन्यथा दुःखमाप्नोति स्वराज्याद् भ्रश्यतेऽपि च॥ २१९॥ (शुक्र० अ० ४. vii.)

१. यामिकैः रक्षितो नित्यं नालिकास्त्रैश्च संयुतः।
सुवहु दृढ़ गुल्मश्च सुगवाक्षप्रणालिकः॥ २३९॥
वृहन्नालिक यन्त्राणि ततः स्वतुरगीगणः॥ २५५॥ (शुक्र० अ० १.)

में स्थित होकर अपनी रक्षा और शत्रु का नाश किया जा सके। आश्रय उन उपायों को कहते हैं जिन से कि दुर्बल भी बलवान हो जाता है। अपनी सेना को अलग अलग खण्डों में फैला देने को द्वैधी भाव कहते हैं।" [1]

इन षड् गुणों में खूब प्रवीण मन्त्रियों की सलाह लेकर ही राजा को युद्ध की घोषणा तथा युद्ध का प्रत्येक कार्य करना चाहिये।

"साम, दान आदि उपायों में भेद और षड् गुणों में समाश्रय सर्वोत्तम हैं। सब युद्धों में इनका प्रयोग अवश्य करना चाहिये।" [2]

युद्ध प्रारम्भ करने से पूर्व ही अपनी शक्ति की जांच कर लेनी चाहिये। अगर शक्ति कम हो तो युद्ध शुरु ही नहीं करना चाहिये, परन्तु एक बार युद्ध प्रारम्भ हो जाने पर फिर जब तक ज़रा भी शक्ति या सामर्थ्य शेष है—युद्ध बन्द नहीं करना चाहिये। क्षत्रिय के लिये युद्ध से बढ़ कर और कोई उत्तम कार्य नहीं है। खाट पर पड़े २ बीमारी से हाय, हाय करते हुए मरना एक क्षत्रिय के लिये पाप है।" [3]

व्यूह—प्राचीन भारतीय युद्धनीति में व्यूह रचना का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। यह समझा जाता था कि व्यूह बनाने में खूब कुशल छोटी सेना भी एक बड़ी सेना को पराजित कर सकती है। ये व्यूह अनेक प्रकार के होते थे।

---

१. सन्धिं च विग्रहं यानमासनं च समाश्रयम्।
द्वैधीभावं च सम्विद्यान्मन्त्रस्यैतांस्तु षड्गुणान्॥ २३४॥
यभिः क्रियाभिर्बलवान् मित्रतां याति वै रिपुः।
सा क्रिया सन्धिरित्युक्ता विमृशेत् तां तु यत्नतः॥ २३५॥
विकर्षितः सन् बाधीनो भवेच्छत्रुस्तु येन वै।
कर्मणा विग्रहस्तं तु चिन्तयेन्मन्त्रिभिर्नृपः॥ २३६॥
शत्रुनाशार्थं गमनं यानं स्वाभीष्ट सिद्धये।
स्वरक्षणं शत्रु नाशो भवेत् स्थानात् तदासनम्॥ २३७॥
यैर्गुप्तो बलवान् भूयाद् दुर्बलोऽपि स आश्रयः।
द्वैधीभावः स्वसैन्यानां स्थापनं गुल्म गुल्मतः॥ २३८॥
२. उपायेषूत्तमो भेदः षड्गुणेषु समाश्रयः।
कार्यौ द्वौ सर्वदा तौ तु नृपेण विजिगीषुणा॥ २९६॥
ताभ्यां विना नैव कुर्यात् युद्धं राजा कदाचन॥ २९७॥
३. उपायान् षड् गुणान वीक्ष्य शत्रोः स्वस्यापि सर्वदा।
युद्धं प्राणात्यये कुर्यात् सर्वस्व हरणे सति॥ २९९॥
अधर्मः क्षत्रियस्यैष यच्छय्या मरणं भवेत्।
विसजन् श्लेष्म पित्तानि कृपणं परिदेवयन्॥ ३०५॥ (शुक्र० अ० ४. vii.)

किसी में सेना को फैला दिया जाता था; किसी में संकुचित कर दिया जाता था, किसी में उस को एक विशेष स्वरूप में खड़ा किया जाता था । इन अनेक व्यूहों में से कुछ व्यूह निम्न लिखित हैं [1]—

क्रौञ्च व्यूह—इस में क्रौञ्च पक्षी के आकार के समान सेना को खड़ा किया जाता था, इस व्यूह का गला पतला, पूंछ मध्यम आकार की और पंख मोटे होते थे, यह व्यूह इसी रूप में चलता भी था ।

श्येन व्यूह—बाज़ के आकार का । पंख लम्बे, गला और पूंछ मध्यम और मुंह छोटा ।

मकर व्यूह– मगरमच्छ के आकार का। चार टांगे, लम्बा और पतला मुंह तथा दो होंठ ।

सूचि व्यूह–आठ छल्ले के समान चक्कर हों, मुंह केवल एक ही हो ।

सर्वतो भद्र व्यूह—इस व्यूह के आठ पासे होते हैं ।

शकट व्यूह—रथ के आकार का ।

सर्प व्यूह—साँप की तरह कुण्डली दार ।

युद्ध के प्रकार—मन्त्रों की सहायता से किया गया युद्ध सर्वोत्तम है, आग्नेयास्त्रों से किया गया मध्यम, शस्त्रों से किया गया कनिष्ठ और बाहु-युद्ध निकृष्ट होता है । मंत्रों की सहायता से बाण और शक्तियां चला कर जो युद्ध किया जाता है वह मान्त्रिकास्त्र युद्ध होता है । तोप और बन्दूक से गोला बारूद बरसाने को नालिकास्त्र युद्ध कहते हैं, यह सब से अधिक भयंकर होता है । बाण भाला आदि शस्त्र चला कर जो कनिष्ठ युद्ध किया जाता है वह प्रायः बन्दूक और तोपों के अभाव में ही करना चाहिये । आपस में मुक्कामुक्की

---

१. क्रौञ्चानां खे गतिर्यादृक् पंक्तितः सम्प्रजायते ।
तादृक् सञ्चारयेत् क्रौञ्च व्यूहं देश बलं यथा ॥ २७९ ॥
सूक्ष्म ग्रीवं मध्य पुच्छं स्थूल पक्षन्तु पङ्क्तितः ।
बृहत्पक्षं मध्यगलपुच्छं श्येनं मुखे तनु ॥ २८० ॥
चतुष्पात् मकरो दीर्घ स्थूल वक्त्र द्विरोष्ठकः ।
सूची सूक्ष्ममुखो दीर्घः सम दण्डान्तरन्ध्रयुक् ॥ २८१ ॥
चक्रव्यूहश्चैक मार्गो ह्यष्टधा कुण्डलीकृतः ।
चतुर्दिक्ष्वष्ट परिधिः सर्वतो भद्रसंज्ञकः ॥ २८२ ॥
अमार्गश्चाष्टवलयी गोलकः सर्वतो मुखः ।
शकटः शकटाकारो व्यालो व्यालाकृतिः सदा ॥ २८३ ॥ (शुक्र० अ० ४. ver.)

या बाल आदि खींच कर जो युद्ध किया जाता है वह बाहु युद्ध होता है।"[२]

"सैनिकों को युद्ध से पहले शराब पिला कर उत्तेजित कर के युद्ध भूमि में लेजाना चाहिये।"[३]

धर्मयुद्ध और कूट युद्ध—आचार्य शुक्र ने धर्म युद्ध और कूट युद्ध में भेद किया है। धर्म युद्ध में बहुत से नियमों का ध्यान रखना चाहिये, परन्तु कूट युद्ध में सब प्रकार की धोखे बाजी आज्ञप्त है, उस में केवल विजय और शत्रु नाश ही उद्देश्य होना चाहिये। धर्मयुद्ध में-"हाथी सवार को हाथी सवार से, पैदल को पैदल से, घुड़सवार को घुड़सवार से और रथी को रथी से ही युद्ध करना चाहिये। इतना ही नहीं जिस के पास जैसा हथियार हो उसे वैसे ही हथियार वाले से युद्ध करना चाहिये।

धर्म युद्ध में इन लोगों को नहीं मारना चाहिये—भय से छिप कर बैठे हुए, नपुंसक, हाथ जोड़ते हुए, खुले हुए बालों वाले, मैं तेरा हूं ऐसा कहने वाले, सोए हुए, बिना कवच के, नंगे, निरस्त्र, न लड़ने वाले, दर्शक, किसी दूसरे से लड़ते हुए, पीते हुए, खाते हुए, किसी दूसरे काम में लगे हुए, डरे हुए और भागने वाले। इन लोगों को कभी नहीं मारना चाहिये-वृद्ध, बालक और स्त्री।

परन्तु ये सब नियम धर्म युद्ध के लिये हैं। कूट युद्ध में इन में से कोई नियम लागू नहीं होता, उस में विजय प्राप्त करना ही उद्देश्य होना चाहिये। प्राचीन काल में राम, कृष्ण आदि महापुरुषों ने भी छल से ही बाली और नमुचि

---

२. उत्तमं मान्त्रिकास्त्रेण नालिकास्त्रेण मध्यमम् ।
शस्त्रैः कनिष्टं युद्धन्तु बाहुयुद्धं ततोधमम् ॥ ३३४ ॥
मन्त्रेरित महाशक्ति बाणाद्यैः शत्रुनाशनम् ।
मान्त्रिकास्त्रेण तद्युद्धं सर्वयुद्धोत्तमं स्मृतम् ॥ ३३५ ॥
नालाग्नि चूर्ण संयोगाल्लक्ष्ये गोल निपातनम् ।
नालिकास्त्रेण तद्युद्धं महात्रासकरं रिपोः ॥ ३३६ ॥
कुन्तादि शस्त्र संघातै रिपूणां नाशनञ्च यत् ।
शस्त्र युद्धन्तु तज्ज्ञेयं नालास्त्राभावतः सदा ॥ ३३७ ॥
कर्षणैः सन्धि मर्माणां प्रतिलोमानुलोमतः ।
बन्धनैर्घातनं शत्रोर्युक्त्या तद् बाहु युद्धकम् ॥ ३३८ ॥

३. पाययित्वा मदं सम्यक् सैनिकान् शौर्यवर्द्धनम् ।
उत्तेजितांश्च निर्द्वंधान् वीरान् युद्धे नियोजयेत् ॥ ३५२ ॥

(शुक्र० अ० ४. vii.)

यवन को मारा था !" [1]

हमारा अनुमान है कि यह धर्म युद्ध के नियम भारतवर्षीय तथा अन्य पूर्वीय राजाओं के संघ के नियम होंगे। वे सब राष्ट्र जो परस्पर इस प्रकार की सन्धी करते होंगे, इन्हीं नियमों पर चलते हुए आपस में युद्ध भी करते होंगे। कूट युद्ध उन जातियों व राष्ट्रों से किया जाता होगा जो राष्ट्र कि इस 'पूर्वीय संघ' की सन्धियों में शामिल न होंगे।

इसी प्रसंग में आचार्य शुक्र ने कूट युद्ध के बहुत से उपायों का निर्देश किया है। धन का लोभ देकर, धोखा देकर, शत्रु सेना में फूट डाल कर किसी भी प्रकार से शत्रु को पराजित करना इस युद्ध का उद्देश्य है।

विजित सम्पत्ति का विभाग— "युद्ध में जो पक्ष जीतता है उस का दूसरे पक्ष की सम्पत्ति पर पूर्ण अधिकार होजाता है। विजित दल के सोना, चांदी, अनाज आदि पर विजयी दल का अधिकार होजाता है। विजयी होजाने पर राजा को चाहिये कि वह सैनिकों को उन की बहादुरी के अनुसार उस प्राप्त धन में से पर्याप्त भाग देकर उन्हें प्रसन्न करे। विजयी राजा को शत्रुओं से समुचित कर लेकर उन का सम्पूर्ण राज्य अथवा उस का कुछ भाग अपने शासन के आधीन कर लेना चाहिये। इस के अनन्तर उस विजित देश की

---

१. गजो गजेन यातव्यस्तुरगेण तुरङ्गमः।
रथेन च रथो योज्यः पत्तिना पत्तिरेव च।
एकेनैकश्च शस्त्रेण शस्त्रमस्त्रेण वास्त्रकम् ॥ ३५४ ॥
न च हन्यात् स्थलारूढं न क्लीवं न कृताञ्जलिम्।
न मुक्तकेशमासीनं न तवास्मीति वादिनम् ॥ ३५५ ॥
न सुप्तं न विसन्नाहं न नग्नं न निरायुधम्।
नायुद्धयमानं पश्यन्तं युद्धयमानं परेण च ॥ ३५६ ॥
पिबन्तं न च भुञ्जानमन्यकार्याकुलं न च।
न भीतं न परावृत्तं सतांधर्ममनुस्मरन् ॥ ३५७ ॥
वृद्धो बालो न हन्तव्यो नैव स्त्री केवलो नृपः।
यथायोग्यं तु संयोज्य निघ्नन् धर्मो न हीयते ॥ ३५८ ॥
धर्म युद्धे तु, कूटे वै न सन्ति नियमा अमी।
न युद्धं कूट सदृशं नाशनं बलवद्रिपोः ॥ ३५९ ॥
रामकृष्णेन्द्रादि देवैः कूट मेवाद्रितं पुरा।
कूटेन निहतो बालिर्यवनो नामुचिस्तथा ॥ ३६० ॥

(शुक्र० अ० ४. vii.)

जनता को भी प्रसन्न करने का यत्न ही करना चाहिये ।"[1]

इस प्रकार युद्ध के अनन्तर साधारण सेना को विजित देश में खुली लूटमार करने देने के आचार्य शुक्र नितान्त विरुद्ध हैं ।

---

१. रूप्यं हेम च कुप्यं च यो यज्जयति तस्य तत् ।
दद्यात् कार्यानुरूपं च हृष्टो योद्धान् प्रहर्षयन् ॥ ३७२ ॥
विजित्य च रिपूनेवं समादद्यात् करं तथा ।
राज्यांशं वा सर्वराज्यं नन्दयीत ततः प्रजा ॥ ३७९ ॥ (शुक्र० अ० ४, vii)
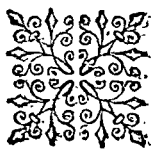
सातवां अध्याय
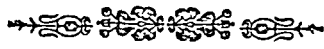
राष्ट्रीय आय व्यय

वर्तमान समय के अर्थ शास्त्रज्ञों के अनुसार राष्ट्रीय आय व्यय का हिसाब बहुत उन्नत अवस्था तक पहुंच चुका है। आज कल के राष्ट्रीय बजटों में आय व्यय का विश्लेशण जिस ढंग से किया होता है वह स्पष्ट और विस्तृत होता है। इसी कारण शुक्रनीति में वर्णित राष्ट्रीय आय व्यय की तुलना अगर हम इङ्गलैण्ड के सुप्रसिद्ध अर्थ शास्त्रज्ञ मार्शल द्वारा वर्णित राष्ट्रीय आय व्यय से करने लगें तो वह हमें बहुत सन्तोषप्रद प्रतीत न होगा। परन्तु यदि हम इस ढाई, तीन सहस्र वर्ष पुराने नीति शास्त्र में वर्णित राष्ट्रीय आय व्यय की तुलना फ्रांस के १६ वीं सदी के सुप्रसिद्ध नीतिशास्त्रज्ञ बोडिन (Jean Bodin) के राष्ट्रीय आय व्यय से करें तो आचार्य शुक्र का विश्लेषण उस की अपेक्षा बहुत उन्नत प्रतीत होगा। बोडिन ने जहां राष्ट्रीय आय के स्रोतों के छः विभाग किये हैं वहां आचार्य शुक्र ने इस के नौ विभाग किये हैं। अस्तु; हम इस तुलना के विस्तार में न जाकर अपने प्रकरण को प्रारम्भ करते हैं।

आय के स्रोत—शुक्रनीति में अमात्य (अर्थ सचिव) के कर्तव्यों का निर्देश करते हुए उसे इन नौ साधनों से आय प्राप्त करने का निर्देश दिया गया है—[1]

१. भाग—भूमि कर
२. शुल्क—व्यापार, वाणिज्य पर कर।
३. दण्ड—जुर्मानों की आय।
४. अकृष्टपच्या—प्रकृति द्वारा प्रदत्त पदार्थ।
५. आरण्यक—जंगल की आय।
६. आकर—कानों द्वारा आय।
७. निधि—राष्ट्र ने जो धन अमानत (Deposites) के तौर पर धनी नागरिकों के पास रक्खा हुआ है, उसकी आय।
८. अस्वामिक—जिस सम्पत्ति का कोई मालिक नहीं।
९. तस्कराहित—तस्कर जातियों द्वारा प्राप्त।

---

१. शुक्र० अ० २ श्लोक १०२-१०५।

"तस्कराहित" के दो अभिप्राय हो सकते हैं—सीमा प्रान्त की तस्कर जातियों द्वारा विदेशी राष्ट्रों से लूट कर लाया गया धन, जिस में से कुछ भाग वे सरकार को देतीं हैं। अथवा चोरों के पास से पोलीस द्वारा बरामद किया हुवा चोरी का माल, जिस में से कुछ भाग सरकार अपने श्रम के बदले रख लेती है।

इन नौ साधनों में से चौथा, सातवां, आठवां और नौवां ये चार साधन राष्ट्र की आय के स्थिर साधन नहीं हैं। ये साधन मुख्य नहीं अपितु गौण हैं। इन की आय अनिश्चित हैं।

शुक्रनीति के चतुर्थ अध्याय के द्वितीय विभाग में राष्ट्रीय आय की जो तालिका दी है उस के अनुसार राष्ट्रीय आय के १० साधन होते हैं। इन के सम्बन्ध में शुक्रनीति में निम्न लिखित निर्देश प्राप्त होते हैं—

वाणिज्य कर—(शुल्क) यह कर चुंगी और आन्तरिक कर (Excise) इन दोनों रूपों में लगाया जाता था—"ग्राहकों और व्यापारियों के माल पर लगाए राज कर को 'शुल्क' कहते हैं। यह कर सीमा पर (चुंगी) तथा मण्डियों में (Excise) लगाया जाता है। प्रत्येक पदार्थ पर किसी न किसी रूप में एक वार कर अवश्य लग जाना चाहिये। किसी पदार्थ पर दुहरा कर नहीं लगना चाहिये। किसी पदार्थ के मूल्य का $\frac{१}{३२}$ वां भाग उस पर शुल्क लगाना चाहिये। $\frac{१}{२०}$ वां या $\frac{१}{१६}$ वां भाग कर लगाने से भी वस्तुओं के मूल्य में कोई बहुत बड़ा अन्तर नहीं आता। अगर कोई व्यक्ति लागत के दाम से भी कम मूल्य पर अपना सामान बेच रहा है तब उस पर कर नहीं लगाना चाहिये। कर तभी लगना चाहिये जब कि बेचने वाले को पर्याप्त लाभ हो रहा हो।"[१]

ये ३ $\frac{१}{८}$ प्रति शत से लेकर ६ $\frac{१}{४}$ प्रति शत कर की दर बहुत अधिक नहीं है।

भूमि कर—(भोग) की दर भूमियों की उपज के अनुसार भिन्न होनी चाहिये—"उन भूमियों पर जो तालाब, नहर, कूआं, वर्षा या नदी से सींची

---

१. विक्रेतृ क्रेतृतो राज भागः शुल्कमुदाहृतम् ।
शुल्क देशा हट्टमार्गाः कर सीमाः प्रकीर्तितः ॥ १०८ ॥
वस्तुजातस्यैक वारं शुल्कं ग्राह्यं प्रयत्नतः ।
क्वचिन्नैवासकृच्छुल्कं राष्ट्रे ग्राह्यं नृपैश्छलात् ॥ १०९ ॥
द्वात्रिंशांशं हरेद्राजा विक्रेतुः क्रेतुरेव वा ।
विंशांशं वा षोड़शांशं शुल्कं मूल्याविरोधकम् ॥ ११० ॥
न हीन सम मूल्याद्धि शुल्कं विक्रेतृतो हरेत् ।
लाभं दृष्ट्वा हरेच्छुल्कं क्रेतृतश्च सदाः नृपः ॥ १११ ॥ (शुक्र० अ० ४ ii.)

ज़ाती हैं, उन की उपज के अनुसार उपज का चौथाई, तिहाई या आधा भाग कर लगाना चाहिये। जो भूमि अनुपजाऊ और बंजर हो उस की उपज का छटा भाग ही कर रूप में लेना चाहिये। [1]

यह भूमि कर प्रत्येक किसान से अलग अलग नहीं लिया जाता था अपितु गांव के एक धनी व्यक्ति से ही सारे गांव की भूमि का लगान ले लिया जाता था, लगान का सारा उत्तरदायित्व उस पर ही रहता था। किसान लोग उसी को अपने लगान का अंश दे देते थे। इस प्रकार लगान जमा करने का तरीका पूरी तरह केन्द्रित था–"भूमि कर निश्चित होने पर उस की सम्पूर्ण मात्रा राजा को गांव के एक धनी से ले लेनी चाहिये अथवा गांव के एक मनुष्य को ज़ामिन बना कर उस से एक निश्चित समय के बाद लगान लेते रहना चाहिये।" [2]

इस से प्रतीत होता है कि सम्भवतः कुछ वर्षों के लिये लोगों को लगान जमा करने के ठेके दिये जाते होंगे। लगान जमा करने के लिए जो सरकारी कर्मचारी नियुक्त किये जाते थे उनका वेतन प्राप्त लगान का $\frac{1}{16}$, $\frac{1}{12}$, $\frac{1}{10}$, $\frac{1}{8}$ या $\frac{1}{6}$ होता था। [3]

यह अन्तर भी भूमि की उपजाऊ शक्ति के आधार पर ही होता था।

भूमि कर की मात्रा भूमि की उपजाऊ शक्ति के अनुसार सरकार ही निश्चित करती थी। आचार्य शुक्र ने स्पष्ट शब्दों में निर्देश दिया है कि अगर ज़मींदार को खेती करने से पर्याप्त लाभ हो तभी उस पर उपर्युक्त मात्रा में भूमिकर लगाना चाहिये–

"वही कृषि सफल समझनी चाहिये जिस के द्वारा कि ज़मींदार को अपने कुल खर्च–जिस में सरकारी लगान भी शामिल है–से दुगुना लाभ अवश्य हो। इसी के अनुसार उत्तम, मध्यम और निकृष्ट भूमि निश्चित करनी चाहिये। जिस भूमि से इस से कम आय हो वह 'दुःखद' भूमि है।" [4]

---

१. तड़ाग वापिका कूप मातृकाद्देव मातृकात्।
देशान्नदी मातृकात् तु राजानुक्रमतः सदा ॥ ११५ ॥
तृतीयांशं चतुर्थांशमर्द्धांशन्तु हरेत् फलम्।
षष्ठांशमूषरात् तद्वत् पाषाणादि समाकुलात् ॥ ११६ ॥

२. नियम्य ग्राम भूभागमेकस्माद् धनिकाद्धरेत् ॥ १२४ ॥
गृहीत्वा तत्प्रतिभुवं धनं प्राक् तत्समन्तु वा।
विभागशो गृहीत्वापि मासि मासि ऋतौ ऋतौ ॥ २५ ॥

३. षोडश द्वादश दशाष्टांशतो वाधिकारिणः।
स्वांशात् षष्ठांश भागेन ग्रामपान् सन्नियोजयेत् ॥ १२६ ॥

४. बहुमध्याल्प फलतस्तारतम्यं विमृश्य च।
राज भागादि व्ययतो द्विगुणं लभ्यते यतः।
कृषि कृत्यन्तु तच्छ्रेष्ठं तन्न्यूनं दुःखदं नृणाम् ११४ ॥ (शुक्र० अ० ४. ii)

जिस भूमि को अभी ऊपजाऊ बनाने का यत्न किया जा रहा हो उस पर भूमि कर नहीं लगाना चाहिये—"जो लोग अभी नया व्यवसाय शुरु करें, नई भूमि पर कृषि प्रारम्भ करें, अथवा जो लोग कूआं, नहर या तालाब आदि खुदवा रहे हों उन पर तब तक सरकार को लगान नहीं लगाना चाहिये जब तक कि खर्च से आय दुगनी न होने लगे।"[१]

"सरकार को किसानों की आय देख कर ही उन पर लगान लगाना चाहिये।"[२]

"राजा को जमीदारों से लगान इस प्रकार लेना चाहिए जिस प्रकार कि माली वृक्षों से फूल तोड़ता है, ताकि ज़मीन्दारों का नाश न हो। लगान कोइले के व्यापारियों की तरह नहीं लेना चाहिए।"

कोइले के व्यापारी कोइला वनाने के लिये लकड़ी को जला कर उसका नाश कर देते हैं, परन्तु माली सदैव फूल इस प्रकार इकट्ठे करता है कि उस के द्वारा वृक्ष को किसी प्रकार की हानी न पहुंचे। लगान इकट्ठा करने की यह उपमा इतनी अच्छी है कि सम्राट् अकबर के वज़ीर अब्बुल फाज़िर ने भी इसे 'आइने अकबरी' में उद्धृत किया है।

लगान जमा करने का प्रबन्ध वहुत ही उत्तम था, इस में मुगल काल की तरह कोई अव्यवस्था न हो सकती थी—"सरकार को चाहिये कि वह सब किसानों को, उन पर लगाए हुए कर की मात्रा आदि अपनी मुद्रा से अंकित कर के दे।"[४] इसी के अनुसार किसानों से कर लिया जायगा।

आचार्य शुक्र के अनुसार उस समय रैयतवारी नहीं अपितु ज़मीन्दारी की प्रथा ही सिद्ध होती है। परन्तु ये ज़मीन्दार स्वयं किसान हैं; ये जितनी ज़मीन बोते हैं उस पर इन का स्वतन्त्र अधिकार है।

खनिज कर—शुक्रनीति द्वारा यह स्पष्टतया ज्ञात नहीं होता कि कानें राष्ट्र की सम्पत्ति समझी जाती हैं या वैयक्तिक, तथापि कानों की उत्पत्ति पर कर की मात्रा इतनी निश्चित की गई है कि उस की आय का पर्याप्त भाग राष्ट्र के कोश में आजाय। इस साधन से भी सरकार को एक अच्छी रकम प्राप्त होती थी। खनिज कर की दरें इस प्रकार हैं—

---

१. कुर्वन्त्यन्यत् तद्विधं वा कर्षन्त्यभिनवां भुवम्।
तद् व्यय द्विगुणं यावन्न तेभ्यो भागमाहरेत्॥ ११८॥

२. लाभाधिक्यं कर्षकादेर्यथा दृष्ट्वा हरेत् फलम्॥ ११९॥ (शुक्र० अ० ४. ii.)

३. हरेच्च कर्षकाद्भागं यथा नष्टो भवेन्न सः।
मालाकार इव ग्राह्यो भागो नाङ्गारकारवत्॥ ११३॥

४. दद्यात् प्रतिकर्षकाय भाग पत्रं स्वचिन्हितम्॥ १२४१ (शुक्र० अ० ४ ii.)

"सोने पर ५० प्रतिशत, चांदी पर ३३⅓ प्रतिशत; लोहे और जस्त पर १६⅔ प्रतिशत और हीरे, खनिज शीपे तथा सीसे पर ५० प्रतिशत खनिज कर लगाना चाहिये।"[1] सरकार यह धन भी कर रूप में ही लेगी।

जंगलात— राष्ट्रीय आय का चौथा साधन जंगलों की उपज पर लगाया गया कर है। यह कर जंगलों की घास, लकड़ी तथा ऐसी ही अन्य उपजों पर लगता है। इस की दर इस प्रकार है—"वनों की उपज के अनुसार यह दर ३३⅓ प्रतिशत, २० प्रति शत, १४⅓ प्रतिशत, १० प्रतिशत या ५ प्रतिशत होनी चाहिये।"[2]

पशु कर— राष्ट्रीय आय का पांचवां साधन पालतू पशुओं पर लगाया हुवा कर है—"बकरी, भेड़, गौ, भैंस और घोड़ों की जितनी संख्या बढ़े उनके मूल्य पर १२½ प्रतिशत कर लगाना चाहिये; और बकरी, गौ, तथा भैंस के दूध से जो आय हो इस पर ६¼ प्रतिशत कर लगाना चहिये।"[3]

श्रम— राष्ट्रीय आय का यह छटा साधन कुछ विचित्र प्रतीत होता है। राष्ट्र के शिल्पियों और कारीगरों को राष्ट्र के लिये कुछ दिन तक बाधित रूप से कार्य करना पड़ता था।[4] उन का यह कार्य ही उन पर कर समझा जाता था।

चार अन्य साधन— (७) महाजनों को रुपया उधार देने से जो व्याज मिलता है उस पर ३⅛ प्रतिशत कर लगाना चाहिए।[5] (८) मकानों पर कर।[6] (९) दूकानों पर और मण्डियों पर कर।[7] (१०) सड़कों तथा गलियों की मुरम्मत के लिए उन पर चलने वालों पर लगाया गया कर।[8]

---

१. स्वर्णाद्धं च रजतात् तृतीयांशञ्च ताम्रतः।
 चतुर्थांशन्तु षष्ठांशं लोहात् वंगाच्च सीसकात् ॥ ११८ ॥
 रत्नार्धं चैव क्षाराद्धं खनिजात् व्यय शेषतः।
२. त्रिधा वा पञ्चधा कृत्वा सप्तधा दशधापि वा ॥ ११९ ॥
 तृणकाष्ठादि हरकात् त्रिंशत्यंशं हरेत् फलम्।
३. अजावि गोमहिष्याश्व वृद्धितोऽष्टांशमाहरेत्।
 महिष्यजावि गो दुग्धात् षोड्शांशं हरेन्नृपः ॥ १२० ॥
४. कारु शिल्पि गणात् पक्षे दैनिकं कर्म कारयेत् ॥ १२१ ॥
५. वाड्र्धुषिकाच्च कौसीदात् द्वात्रिंशांशं हरेन्नपः।
६. गृहाद्याधार भूशुल्कं कृष्ट भूमेरिवाहरेत् ॥ १२८ ॥
७. तथा चापणिकेभ्यस्तु पण्य भूशुल्कमाहरेत्।
८. मार्ग संस्कार रक्षार्थं मार्गगेभ्यो हरेत् फलम् ॥ १२९ ॥ (शुक्र० अ० ४, [illegible])

इन उपर्युक्त १० विभागों में जनता की आय के सभी स्रोत अन्तर्गत हो जाते हैं। कोई भी सम्पत्ति ऐसी नहीं बचती जिस पर किसी न किसी रूप में कर न लगा हो।

इस प्रकरण से यद्यपि यह प्रतीत होता है कि आचार्य शुक्र व्यवसाय तथा वाणिज्य पर सरकार का कठोर नियन्त्रण रखने के पक्ष में हैं, तथापि वह राष्ट्रीय व्यवसाय चलाने के पक्ष में हैं या नहीं—यह बात स्पष्ट प्रतीत नहीं होती। केवल—"मध्यम राजा वैश्यों का अनुसरण करता है।"[1] इस एक पद से राष्ट्रीय व्यवसायों की सत्ता की कुछ झलक मिलती है। परन्तु केवल इसी एक आधार से कोई परिणाम निकालने का साहस हम नहीं कर सकते। इस पद का अभिप्राय सम्भवतः यह भी हो सकता है कि जो राजा अपनी वैयक्तिक आय बढ़ाने लिये व्यवसाय करे वह मध्यम होता है। यहां तक कि नमक की उत्पत्ति पर भी राष्ट्र का एकाधिकार होने का प्रमाण शुक्रनीति में नहीं मिलता।

करों की पूर्वोक्त सब दरें साधारण अवस्था के लिए हैं। आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्र के हित के लिये इन दरों को कुछ समय के लिये बढ़ाया भी जा सकता है। धार्मिक संस्थाओं और मन्दिरों की जायदाद पर साधारण अवस्था में कर नहीं लगाया जाता, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर उन पर भी कर लगाया जा सकता है।[2] राष्ट्र के धनी पुरुषों से ऐसे समय धन की एक विशेष मात्रा ली जा सकती है।[3]

राष्ट्रीय ऋण— राष्ट्र पर कोई आपत्ति आने पर अथवा कोई अन्य आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्रीय ऋण लेने का विधान शुक्रनीति में हैं। यह ऋण सरकार देश के धनी धनी नागरिकों से लेती थी। वे लोग सरकार को यह ऋण देने के लिये बाधित होते थे। आपत्ति हट जाने पर सरकार उन को यह धन व्याज सहित वापिस कर देती थी।[4]

कर सिद्धान्त—"जिस राष्ट्र की शक्ति जितनी अधिक हो उसका खज़ाना उतना ही बढ़ता है, जिस राष्ट्र का खज़ाना भरा हुआ हो उस की शक्ति बढ़ती है—दोनों बातें परस्पर सहायक हैं। राजा को चाहिये कि वह जिस किसी

---

१. ......मध्यमो वैश्य वृत्तितः ॥ १९ ॥

२. दण्डभूभाग शुल्कानामाधिक्यात् कोश वर्धनम् ।
अनापदि न कुर्वीत तीर्थ देव कर ग्रहात् ॥ ९ ॥

३. यदा शत्रु विनाशार्थं बल संरक्षणोद्यतः ।
विशिष्ट दण्ड शुल्कादि धनं लोकात् तदा हरेत् ॥ १० ॥

४. धनिकेभ्यो भृतिं दत्वा स्वापत्तौ तद्धनं हरेत् ।
राजा स्वापत्समुत्तीर्णस्तत् स्वं दद्यात्सवृद्धिकम् ॥ ११ ॥ (शुक्र० अ० ४. ॥)

प्रकार भी सब उपायों से धन संग्रह करे और उस के द्वारा राष्ट्र की रक्षा करे।"[1] इस प्रकार इस प्रसङ्ग में आचार्य शुक्र ने धन की महिमा बता कर धन-संग्रह के लिये सभी उचित और अनुचित (येन केन प्रकारेण) उपायों को बरतने का निर्देश किया है। कर संग्रह के इन उचित और अनुचित उपायों की उन्होंने स्वयं ही संक्षिप्त व्याख्या करदी है—

"वह मनुष्य जो धन को उचित उपायों से कमाता है और उचित ढंग पर खर्च करता हैं, पात्र है; इस से उलटा करने वाला व्यक्ति अपात्र है। राजा को चाहिये कि वह अपात्र का सम्पूर्ण धन ज़बरदस्ती ले ले, यह करने से राजा को पाप नहीं लगता है। पापी व्यक्ति का सारा धन राजा को छीन लेना चाहिये। धोखे से, बल से या चोरी से शत्रु राष्ट्र का धन छीन लेना चाहिये। परन्तु इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि जो राजा अपनी प्रजा को धन प्राप्त करने के लिये तंग करता है प्रजा उस के विरुद्ध होजाती है और शत्रु उस देश पर विजय प्राप्त कर लेते हैं।"

इस प्रकरण में तो आचार्य शुक्र एक साम्यवादी प्रतीत होते हैं। उन के अनुसार जो व्यक्ति समाज की रचना का अनुचित उपयोग उठा कर, बुरे उपायों से, धनी बन जाते हैं उन की सम्पत्ति राष्ट्र को ज़ब्त कर लेनी चाहिये। यह कर-सिद्धान्त साम्यवादियों का है।

आय के ये स्रोत कर रूप में नहीं हैं, इन्हें ऊपर की आय समझना चाहिये, इन से पूर्व हमने जिन आय के स्रोतों का वर्णन किया था वे सब कर रूप में ही थे। शत्रु राष्ट्रों को अपने आधीन लाकर उन से भेंट लेने के पक्ष में ही आचार्य

---

१. बल मूलो भवेत् कोशः कोशमूलं बलं स्मृतम्।
बल संरक्षणात् कोश राष्ट्र वृद्धिररि क्षयः॥ १४॥
येन केन प्रकारेण धनं सञ्चिनुयात् नृपः।
तेन संरक्षयेद्राष्ट्रं बलं यज्ञादिकाः क्रियाः॥ २॥

२. स्वागमी सद्व्ययी पात्रमपात्रं विपरीतकम्।
अपात्रस्य हरेत् सर्वं धनं राजा न दोषभाक्॥ ६॥
अधर्म शीलात् नृपतिः सवशः संहरेद्धनम्।
छलाद् बलाद्दस्यु वृत्त्या परराष्ट्राद्धरेत् तथा॥ ७॥
त्यक्त्वा नीति बलं स्वीय प्रजा पीड़नतो धनम्।
सञ्चितं येन तत्तस्य स राज्यं शत्रुसाद्भवेत्॥ ८॥

(शुक्र० अ० ४. ११)

शुक्र ने अपनी राय दी है। इन भेटों से राष्ट्र का कोश बहुत बढ़ता है।[१] इन भेटों को छोड़ कर राष्ट्रीय आय के लिए राष्ट्रीय व्यवसाय आदि किसी अन्य साधन का वर्णन शुक्रनीति में नहीं प्राप्त होता।

इस कर प्रकरण से हम करों के सम्बन्ध में निम्न लिखित परिणाम निकाल सकते हैं—

१. राष्ट्र भर की सब समाजों, जातियों तथा संघों पर समान रूप से कर लगाना चाहिये।[२] कोई भी समूह करों से वञ्चित न रक्खा जाय।

२. जिस व्यक्ति या समूह पर जो कर निश्चित किया जाय वह उस से शीघ्र ही ले लेना चाहिये। उसको चुकाने की प्रतीक्षा देर तक नहीं करनी चाहिये— "भूमि कर, भृति, आयात निर्यात कर, व्याज और जुर्माना आदि शीघ्र ही चुका लेने चाहिये।"[३]

३. कर संग्रह कर्त्ताओं का यह कर्तव्य है कि वे अपने हिसाब को खूब स्पष्ट रक्खें। कर की दर, वस्तु परिमाण, प्राप्त कर आदि की विस्तृत सूचियाँ उन्हें बनानी चाहिये।

४. कर राष्ट्र के सामूहिक हित के लिये ही लिया जाता है यह बात सदैव स्मरण रखनी चाहिये। इस लिये सदैव लाभ पर ही कर लेना चाहिये। सब प्रकार के करों—चुंगी, आन्तरिक कर और भूमि कर—को उसी अवस्था में पुष्ट किया जासकता है जब कि वे लाभ पर लिये जा रहे हों। भूमि कर तब लेना चाहिये जब कि किसान को अपने व्यय से कम से कम दुगनी आय अवश्य हुई हो। भूमि में या कृषि के साधनों में जब सुधार किया जा रहा हो तब भी कर नहीं लेना चाहिये। नये व्यवसायों से तब तक कर नहीं लेना चाहिये जब तक कि उन से आय न होने लगे।[४] इस प्रकार कर-मुक्ति द्वारा नए व्यवसायों को संरक्षण देना चाहिये। प्रत्येक पदार्थ पर एक बार कर अवश्य लगना चाहिये, साथ ही किसी वस्तु पर दुहरा कर नहीं लगना चाहिये।

---

१. मालाकारस्य वृत्त्यैव स्वप्रजा रक्षणेन च।
शत्रुं हि करदीकृत्य तद्धनैः कोशवर्द्धनम् ॥ १८ ॥

२. सर्वतः फलभुग् भूत्वा दासवत् स्यात्तु रक्षणे ॥ १३० ॥

३. भूविभागं भृतिं शुल्कं वृद्धिमुत्कोचकं करम्।
सद्य एव हरेत् सर्वं नतु कालविलम्बनैः ॥ १२३ ॥

४. शुक्र० अ० ४. ii. श्लोक १०९, ११४, और ११९।

(शुक्र० अ० ४ ii.)

इस प्रसङ्ग में हम एक और बार आचार्य शुक्र की कर सम्बन्धी उपमा की ओर अपने पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं— "राजा को प्रजा से कर इस प्रकार लेना चाहिये जिस प्रकार कि माली वृक्षों से फल या फूल चुनता है।"[1]

मुद्रा पद्धति और विनिमय माध्यम— शुक्रनीति के अनुसार उस समय बड़ी स्पष्टता से मुद्रापद्धति का प्रमाण मिलता है। यह कहना कि उस समय केवल वस्तु विनिमय (बार्टर) की प्रथा थी, नितान्त भ्रममूलक है । इन उदाहरणों से उस समय मुद्रा पद्धति स्पष्टतया सिद्ध होती है—

"वे वस्तुएं जो संसार में बहुत कम पाई जाती हैं —हीरों के दाम से बिकती हैं। किसी वस्तु का मूल्य समय और स्थान के अनुसार निश्चित होता है। अनुपयोगी वस्तुओं का कोई दाम नहीं होता। महंगे दाम, मध्यम दाम और सस्ते दाम सभी बुद्धिमानों के व्यवहार के अनुसार निश्चित होते हैं।"[2] इन सिद्धान्तों में दामों के सम्बन्ध के मुख्य २ अर्थशास्त्रीय नियम —न्यूनता, मांग, ऊपलब्धि और उपयोगिता—संक्षेप से आजाते हैं।

शुक्रनीति चतुर्थ अध्याय के पञ्चम विभाग में ऋण, व्याज आदि की जो संख्याएं दी, हैं उन से भी स्पष्टतया उस समय किसी मुद्रापद्धति की सत्ता सिद्ध होती है।

उस समय धातुओं और हीरों का दाम इस प्रकार था—"एक रत्ती हीरे का दाम पांच स्वर्ण मुद्राओं के बराबर होता है । अगर हीरा एक रत्ती से भारी तथा आकार में बड़ा हो तो उस का दाम २५ स्वर्ण मुद्रा होता है।"[3] इस प्रसंग में भिन्न भिन्न मणियों और हीरों के दाम भी दिए गए हैं।

---

१. हरेच्च कर्षकाद्भागं यथा नष्टो भवेन्न सः ।
मालाकार इव ग्राह्यो भागो नाङ्गारकार वत् ॥ ११३ ॥

२. रत्न भूतन्तु तत्तत् स्याद् यद्यदप्रतिमं भुवि ।
यथादेशं यथाकालं मूल्यं सर्वस्य कल्पयेत् ॥ १०६ ॥
न मूल्यं गुणहीनस्य व्यवहाराक्षमस्य च ।
नीच मध्योत्तमत्वन्तु सर्वस्मिन् मूल्य कल्पने ।
चिन्तनीयं बुधैर्लोकाद् वस्तुजातस्य सर्वदा ॥ १०७ ॥

३. एकस्यैव हि वज्रस्य त्वेक रक्तिमितस्य च ।
सुविस्तृत दलस्यैव मूल्यं पञ्च सुवर्णकम् ॥ ६८ ॥
रक्तिकादल विस्ताराच्छ्रेष्ठं पञ्चगुणं यदि ।
यथा यथा भवेन्न्यूनं हीन मौल्यं तथा तथा ॥ ६९ ॥

मोतियों का दाम इस प्रकार निकाला जाता है—"एक मोती का जितने रत्ती भार हो उसे १४$\frac{?}{४}$ से गुणा कर के २४ से भाग दे देना चाहिये। इस प्रकार प्राप्त रत्तियों की संख्या के समान सोना ही उस मोती का दाम होगा।" [१] यह दाम सर्वोत्तम मोतियों का है, मध्यम और साधारण मोतियों के दाम उनकी चमक के अनुसार निश्चित होते हैं। [२]

धातुओं के दाम में परस्पर यह अनुपात होता है—

सोना = १६ चांदी
चांदी = ८० ताम्बा
ताम्बा = १$\frac{१}{२}$ ज़िङ्क
जिङ्क = २ टीन
" = ३ सीसा
ताम्बा = ६ लोहा

हीरों के दोष स्वाभाविक होते हैं, परन्तु धातुओं के मल अस्वाभाविक होते हैं, इस लिए धातुओं को शुद्ध करके ही उन के सिक्के बनाने चाहिये। वास्तव में यही उपर्युक्त सात धातुएं ही असली धातुएं हैं, अन्य धातुएं -कांसी, पीतल आदि-इन्हीं के मेल से बनती हैं। जिङ्क और ताम्बा मिला कर कांसी बनाई जाती है और ताम्बा तथा रांगा मिला कर पीतल।" [३]

---

१. त्र्यङ्घ्रि चतुर्दश हतो वर्गो मौक्तिक रक्तिजः।
चतुर्विंशतिभिर्भक्तोलब्धास्तु मूल्यं प्रकल्पयेत् ॥ ८४ ॥
उत्तमन्तु सुवर्णार्घमूनमूनं यथा गुणम् ॥ ८५ ॥

२. रजतं षोड़श गुणं भवेत् स्वर्णस्यमूल्यकम् ॥ ९२ ॥
ताम्रं रजत मूल्यं स्यात् प्रायोऽशीति गुणं तथा।
ताम्राधिकं सार्द्धगुणं वङ्गं वङ्गात् तथा परे ॥ ९३ ॥
रङ्ग सीसे द्वित्रिगुणे ताम्राल्लोहं तु षड्गुणम्।
मुल्यमेतद्विशिष्टन्तु ह्युक्तं प्राङ् मूल्य कल्पनम् ॥ ९५ ॥

३. रत्ने स्वाभाविका दोषाः सन्ति धातुषु क्रित्रिमा :।
अतो धातून् सम्यग्परीक्ष्य तन्मूल्यं कल्पयेद्बुधः ॥ ८७ ॥
सुवर्णं रजतं ताम्रं वङ्गं सीसं च रङ्गकम्।
लोहं च धातवः सप्त ह्येषामन्ये तु सङ्करा ॥ ८८ ॥
यथा पूर्वं तु श्रेष्ठं स्यात् स्वर्णं श्रेष्ठतरं मतम्।
वङ्ग ताम्र भवं कांस्यं पित्तलं ताम्र रङ्गजम् ॥ ८९ ॥
(शुक्र० अ अ० ४ ii,)

ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय सोना और चांदी दोनों धातुओं के सिक्के "स्वीकृत मुद्रा" (Legal tender) थे। इस प्रकार उस समय द्विधात्वीय मुद्रा पद्धति थी। सोने के सिक्के को 'सुवर्ण' और चांदी के सिक्के को 'कर्पक' कहा जाता था। एक सुवर्ण का भार १० माशे होता था और ५ सुवर्णों के बराबर ८० कर्पकों का दाम होता था। [1] साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि इन सिक्कों में उतने दाम की धातु वास्तव में होती थी, जो दाम कि इन पर लिखा रहता था। आचार्य शुक्र के अनुसार विनियम मध्यम रूप धन (Money) को द्रव्य कहा जाता है। [2] द्रव्य और धन में वही भेद है जो Money और Wealth में है।

बजट— राष्ट्रीय वार्षिक बजट बनाने का कार्य शुक्र नीति के अनुसार दो व्यक्तियों के आधीन होता है-सुमन्त्र और अमात्य। सुमन्त्र राष्ट्र के प्राप्त और अप्राप्त धन की सूचियाँ तैयार करता है। राष्ट्र की चल और अचल सम्पत्ति, ऋण, सम्पूर्ण व्यय, बचत आदि की विस्तृत तालिकाएँ भी वही तैयार करता है। अमात्य 'कर सचिव' का कार्य करता है। पूर्वोक्त १० आय के स्त्रोतों की तालिकाएँ बनाना उसका कर्तव्य होता है। [3] ये दोनों विभाग अपने अपने सम्बन्ध की सब गणनाएँ विस्तार से प्रकाशित करते रहते हैं।

व्यय के विभाग— एडम स्मिथ के अनुसार यूरोप के मध्ययुग में राजाओं के कार्य बहुत सीमित हुआ करते थे। जनता के प्रति उन के कर्तव्य बहुत कम होते थे। धीरे २ विकास होते होते अब जनता के प्रति सरकारों के कर्तव्य बहुत बढ़ गए हैं। परन्तु आचार्य शुक्र के अनुसार हम प्राचीन भारत के विषय में यह बात नहीं कह सकते हैं। शुक्र नीति द्वारा स्पष्टतया प्रतीत होता है कि उस समय भी प्रजा के प्रति सरकार के कर्तव्य कम नहीं होते थे। आज कल की तरह राष्ट्र की सामूहिक तथा वैयक्तिक उन्नति करना ही राष्ट्र का उद्देश्य समझा जाता था; प्रथम अध्याय

---

१. अत्राष्ट रक्तिको माषो दशमाषै सुवर्णकम्
स्वर्णस्य तत् पञ्चमूल्यं राजताशीति कर्षकम् ॥ ७० ॥
(शुक्र० अ० ४. ii.)

२. रजत स्वर्णताम्रादि व्यवहारार्थ मुद्रितम् ।
व्यवहार्यं वराटाद्यं रत्नान्तं द्रव्यमीरितम् ।
स पशु धान्य रत्नादि तृणान्तं धन संज्ञिकम् ॥ ३५४ ।
व्यवहारे चाधिकृतं स्वर्णाद्यं धन संज्ञिकम् ॥ ३५५ ॥
(शुक्र० अ० २)

३. शुक्र० अ० २० श्लोक १०१—१०५ ।

में कहा है— "राजा को प्रति वर्ष शिल्प में उन्नत व्यक्तियों तथा विद्वानों का सम्मान करना चाहिये । उसे सदैव इस प्रकार का यत्न करना चाहिये जिससे कि राष्ट्र में विद्या तथा विज्ञान की उन्नति हो ।"[1]

"राजा को सदैव राष्ट्र में बसने वाले इन लोगों की इज़्ज़त करनी चाहिये; इनको वज़ीफे, वेतन आदि देकर उत्साहित करना चाहिये— तपस्वी, दानी, जो श्रुति और स्मृति में पारंगत हैं, पौराणिक (इतिहासज्ञ), शास्त्रज्ञ, ज्योतिषी, मान्त्रिक, डाक्टर, कर्मकाण्डी, तान्त्रिक तथा अन्य गुणी पुरुष ।"[2]

यह व्यय किस अनुपात से करना चाहिए, इस सम्बन्ध में हमें दो तालिकाएं शुक्रनीति में ही उपलब्ध होती हैं । पहली तालिका के अनुसार प्रत्येक सामन्त शासक को, जिस की वार्षिक आय १ लाख कर्ष है, इस अनुपात से व्यय करना चाहिये ।[3]

विभाग		सम्पूर्ण आय का—
१. ग्रामों के अधिकारियों का वेतन	...	$\frac{१}{१२}$ भाग
२. सेना	... ...	$\frac{३}{१२}$ "
३. दान	... ...	$\frac{१}{२४}$ "
४. जनता की शिक्षा तथा मनोरञ्जन	...	$\frac{१}{२४}$ "
५. राज कर्मचारी	... ...	$\frac{१}{२४}$ "
६. उच्च स्थिर सेवक	... ...	$\frac{१}{२४}$ "
		$\frac{१२}{२४} = \frac{१}{२}$

१. समाप्तविद्यं संदृष्ट्वा तत्कार्ये तन्नियोजयेत् ।
विद्या कलोत्तमान् दृष्ट्वा वत्सरे पूजयेच्च तान् ॥ ३६८ ॥
विद्या कलानां वृद्धिः स्यात्तथा कुर्यान्नृपः सदा ॥ ३६९ ॥ (शुक्र० अ० १)

२. तपस्विनो दानशीला श्रुति स्मृति विशारदाः ।
पौराणिकाः शास्त्र विदो दैवज्ञा मान्त्रिकाश्च ये ॥ १२२ ॥
आयुर्वेदविदः कर्मकाण्डज्ञास्तान्त्रिकाश्च ये ।
ये चान्ये गुणिनः श्रेष्ठाः बुद्धिमन्तो जितेन्द्रियाः ॥ १२३ ॥
तान् सर्वान् पोषयेद् भृत्या दानैर्मानैः सुपूजितान् ।
हीयते चान्यथा राजा ह्यकीर्त्तिं चापि विन्दति ॥ १२४ ॥ (शुक्र अ० २)

३. त्रिभिरंशैः बलं धार्यं दानमर्द्धांशकेन च ॥ ३१५ ॥
अर्द्धांशेन प्रकृतयो ह्यर्द्धांशेनाधिकरिणः ।
अर्द्धांशेनात्मभोगश्च कोशोंऽशेन रक्ष्यते ॥ ३१६ ॥
आयस्यैवं षड्विभागैर्व्ययं कुर्यात् तु वत्सरे ।
सामन्तादिषु धर्मोऽयं न न्यूनस्य कदाचन ॥ ३१७ ॥

शेष $\frac{1}{2}$ भाग को राष्ट्र की सामयिक आवश्यकताओं के लिये स्थिर कोश में जमा करते जाना चाहिये ।

इस का अभिप्राय यह हुवा कि जनता की उन्नति के लिये राष्ट्रीय आय का $\frac{1}{12}$ वां भाग व्यय किया जाता था और सेना के लिये $\frac{1}{4}$ भाग व्यय होता था। यह सैनिक व्यय यद्यपि भारत वर्ष के वर्तमान सैनिक-व्यय के मुकाबले में बहुत कम है तथापि इसे कम नहीं समझना चाहिये। हमारी सम्मति में यह बात उस समय के लिये बहुत गौरव पूर्ण नहीं हैं ।

राष्ट्रीय व्यय की दूसरी तालिका हम छटे अध्याय में १८१ पृष्ठ पर दे चुके हैं, उसे यहां दुहराने की आवश्यकता नहीं है। उस के अनुसार स्थिर कोश के लिये बचत करने की मात्रा कुल आय का केवल $\frac{1}{6}$ टा भाग है।

राष्ट्रीय व्यय के सिद्धान्त— राष्ट्रीय व्यय की उपर्युक्त दोनों तालिकाओं के अनुसार हम व्यय के तीन भाग कर सकते हैं— सेना, राष्ट्र और त्याग (यज्ञ) ।[1] जो राजा राष्ट्रीय आय का उपयोग अपने तथा स्त्री पुत्रादियों के लिए ही करता है वह इस लोक तथा परलोक में दुख ही प्राप्त करता है।[2] इस का अभिप्राय यही है कि राजा को यथा शक्ति वैयक्तिक व्यय कम करने चाहिये। राष्ट्र से अभिप्राय जनता का है। जनता की उन्नति तथा मनोरञ्जक के लिये भी स्पष्ट रूप से शुक्रनीति में व्यय करने का आदेश है।

राष्ट्रीय व्यय में सब से मुख्य भाग सेना का है। प्रथम तालिका के अनुसार सम्पूर्ण राष्ट्रीय आय का चौथाई भाग और द्वितीय तालिका के अनुसार सम्पूर्ण आय का आधा भाग सैनिक-प्रबन्ध तथा अस्त्रादि में व्यय करना चाहिये। ये अंक बहुत अधिक प्रतीत होते हैं। परन्तु अगर यूरोप के १६ वीं सदी के आरम्भ से लेकर गत महायुद्ध तक के सब युद्धों का सम्पूर्ण व्यय तथा इसी काल में यूरोप के सब देशों की सम्पूर्ण आय का अनुपात निकालें तो आचार्य शुक्र का सैनिकव्यय-विधान बहुत अधिक प्रतीत नहीं होगा। सरकार का सर्व सम्मत उद्देश्य राष्ट्र की आन्तरिक तथा बाह्य आपत्तियों से रक्षा करना है, इस उद्देश्य के अनुसार एक उन्नति शील स्वतन्त्र राष्ट्र के लिये सेना पर पर्याप्त व्यय करना स्वाभाविक है। प्रसिद्ध अमेरिकन सेनापति स्टौक्टन के शब्दों में सैनिक व्यय शान्ति रक्षा का स्थिर बीमा है।

---

१. तेन संरक्षयेद्राष्ट्रं बलं यज्ञादिकाः क्रियाः ॥ २॥ ॥

२. स्त्री पुत्रार्थं कृतो यश्च स्वोपभोगाय केवलम् ।
नरकायैव स ज्ञेयो न परत्र सुखप्रदः ॥ ४ ॥ (शुक्र० अ० ४ ii)

आचार्य शुक्र ने भी यही बात कही है—"अच्छी सेना के बिना राज्य, धन, या प्रभाव की रक्षा नहीं हो सकती। जो बलवान् है, लोग उसके मित्र बन कर रहते हैं। जो दुर्बल है, उसके सभी शत्रु बन जाते हैं; साधारण लोगों में भी यही बात देखी जाती है फिर राष्ट्र के लिये तो क्या कहना है।"[1] इसलिये सेना पर व्यय किए गए धन को भी उत्पादक व्यय ही समझना चाहिये।

प्रति वर्ष जो धन भावी आवश्यकताओं के लिये बचाया जाय, वह सम्पूर्ण धन मुद्रा रूपमें ही नहीं बचाना चाहिये। परन्तु उसके कुछ भाग से अनाज, दवाइयाँ, खानिज पदार्थ, घास, लकड़ी, अस्त्र, शस्त्र, बारूद, बरतन, कपड़े आदि खरीद कर जमा करते जाना चाहिये।[2] यह सामान आवश्यकता पड़ने पर बहुत काम आता है। इस धन से बढ़ई, राज आदिकों के औज़ार खरीद कर भी स्थिर कोश में जमा करने चाहिये।[3]

राज कर्मचारियों का वेतन.

वेतन— वेतन तीन प्रकार का होता है— कार्य के परिमाण से, काल के परिमाण से, कार्य और काल दोनों के परिमाण से। इस गट्ठे के भार को तू वहाँ रख दे तो तुझे इतना वेतन मिलेगा, यह कार्य के मान से वेतन कहाता है। प्रति दिन, प्रति मास या प्रति वर्ष इतना वेतन मिलेगा–यह काल के परिमाण से वेतन हुवा। तुम यदि इतने काल में इतना कार्य करोगे तो इतना वेतन मिलेगा, यह कार्य और काल के परिमाण से वेतन कहलाता है।[4]

---

१. सैन्याद्विना नैव राज्यं न धनं न पराक्रमः।
बलिनो वशगाः सर्वे दुर्बलस्य च शत्रवः।
भवन्त्यल्प जनस्यापि नृपस्य तु न किं पुनः॥ ४॥ (शुक्र० अ० ४ vii.)

२. गृह्णीयात् सुप्रयत्नेन वत्सरे वत्सरे नृपः॥ २९॥
ओषधीनां च धातूनां तृणकाष्ठादिकस्य च।
यन्त्र शस्त्रास्त्राग्निचूर्ण भाण्डादेर्वाससां तथा॥ ३०॥
यद्यच्च साधकं द्रव्यं यद्यत्कार्ये भवेत् सदा।
संग्रहस्तस्य तस्यापि कर्तव्यः कार्य सिद्धिदः॥ ३१॥ (शुक्र० अ० ४. ii.)

३. यन्त्राणि धातुकारणां संरक्षेद् वीक्ष्य सर्वदा॥ ४०॥ (शुक्र० अ० ४. iv.)

४. कार्यमाना कालमाना कार्य कालमितिस्त्रिधा।
भृतिरुक्ता तु तद्विज्ञैः सा देया भाषिता यथा॥ ३९२॥
अयं भारस्त्वया तत्र स्थाप्यस्त्वैतावतीं भृतिम्।
दास्यामि कार्यमाना सा कीर्तिता तन्निदेशकैः॥ ३९३॥
वत्सरे वत्सरे वापि मासि मासि दिने दिने।
एतावतीं भृतिं तेऽहं दास्यामीति च कालिका॥ १९४॥
एतावता कार्यमिदं कालेनापि त्वया कृतम्।
भृतिमेतावतीं दास्ये कार्यकालमिता च सा॥ ३९५॥

सरकार न तो किसी का वेतन मारे और न किसी को वेतन देर में दे।[1]

जितने वेतन से सेवक का अपना तथा उसके माता पिता आदि परिवार के व्यक्तियों का पालन हो सके, उतना वेतन मध्यम वेतन होता है। इन के पालन के अतिरिक्त और भी अधिक द्रव्य मिलने पर श्रेष्ठ वेतन कहाता है। जिस वेतन से केवल एक ही व्यक्ति का पालन हो उसे हीन वेतन समझना चाहिये। राजा को चाहिये कि वह व्यक्ति की योग्यतानुसार उसे वेतन दे। योग्य सेवक को इतना वेतन अवश्य देना चाहिये जिससे कि उसका और उसके परिवार का पालन भली प्रकार हो सके। जो सेवक योग्य होते हुए भी कम वेतन पर रक्खे जाते हैं वे राजा के स्वयं बनाए हुए शत्रु हैं। ये राजा को सब प्रकार की हानि पहुंचाते हैं; आपत्ति आने पर ये शत्रु से मिल जाते हैं।[2]

शूद्रों को केवल इतना ही वेतन देना चाहिये जिस से कि उनका भोजन वस्त्रादि का गुजारा भली प्रकार हो सके, अधिक वेतन देने से वे उसे मांस, शराब आदि में व्यय करने लगते हैं, जिसका पाप वेतन देने वाले पर ही पड़ता है। नौकर मन्द, मध्य और शीघ्र इन तीन प्रकार के होते हैं। इनका वेतन भी क्रमशः सम, मध्य और श्रेष्ठ इन तीन प्रकार का होना चाहिये।[3]

भृत्यों को अवकाश— सेवकों को घर के कार्य के लिए एक दिन में एक पहर और रात को तीन पहर का अवकाश देना चाहिये—इस प्रकार आठ पहरों में से ४ पहर नौकर को अवकाश मिलेगा। जो नौकर केवल दिन के लिए ही हों उन्हें दिन में आधा पहर अवकाश देना चाहिये।

---

१. न कुर्याद् भृति लोपं तु तथा भृतिविलम्बनम्।

२. अवश्य पोष्य भरणा भृतिर्मध्या प्रकीर्तिता॥ ३९६॥
परिपोष्या भृतिः श्रेष्टा समान्नाच्छादनार्थिका।
भवेदेकस्य भरणं यया सा हीन संज्ञिका॥ ३९७॥
यथा यथा तु गुणवान् भृतकस्तद् भृतिस्तथा।
संयोज्या तु प्रयत्नेन नृपेणात्म हिताय वै॥ ३९८॥
अवश्य पोष्य वार्गस्य भरणं भृतकाद्भवेत्।
तथा भृतिस्तु संयोज्या तद्योग्य भृतकाय वै॥ ३९९॥
ये भृत्या हीन भृतिकाः शत्रवस्ते स्वयं कृताः।
परस्य साधकास्ते तु छिद्र कोश प्रजाहराः॥ ४००॥

३. अन्नाच्छादन मात्रा हि भृतिः शूद्रादिषु स्मृता।
तत्पाप भागन्यथा स्यात् पोषको मांस भोजिषु॥ ४०१॥
मन्दो मध्यस्तथा शीघ्रस्त्रिविधो भृत्य उच्यते।
समामध्या च श्रेष्ठा च भृतिस्तेषां क्रमात् स्मृता॥ ४०३॥ (शुक्र० अ० २.)

उत्सव आदियों पर भी नौकरों को अवकाश देना उचित है, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर त्यौहार के दिनों में भी उन से काम लिया जा सकता है ।[1]

रुग्णावकाश तथा वेतन— रोगी होने पर उन दिनों का चौथाई वेतन काट लेना चाहिये । लम्बी बीमारी होने पर अगर सेवक ५ मास का अवकाश ले तो उसे उस अवधि में ३ मास का ही वेतन देना चाहिये । और अधिक लम्बा, एक वर्ष तक, रुग्णावकाश लेने पर आधा वेतन देना चाहिये । आवश्यकता पड़ने पर १५ दिन का रुग्णावकाश बिना कुछ भी वेतन काटे दे देना चाहिये । अगर सेवक बीमार पड़े तो कम से कम एक वर्ष तक तो उसे बर्खास्त न कर के उस के स्थान पर उतने समय के लिये एक और आदमी रख कर काम चलाना चाहिये । अगर बहुत गुणी कर्मचारी हो तो वह जब तक बीमार रहे उसे आधा वेतन देते रहना चाहिये ।[2]

पेन्शन— जिस व्यक्ति ने निरन्तर ४० बरस तक सरकारी सेवा की हो उसको इस सेवा के बाद उसके अन्तिम दिनों के वेतन का आधा वेतन जीवन पर्यन्त पेन्शन स्वरूप देते रहना चाहिये । यदि उसकी मृत्यु के बाद उसका कोई बालक–पुत्र या कन्या–नाबालिग हो, अथवा स्त्री जीवित हो तो उसकी पेन्शन का आधा भाग उन्हें देते रहना चाहिये ।[3]

---

१. भृत्यानां गृहकार्यार्थं दिवा यामं समुत्सृजेत् ।
निशि याम त्रयं नित्यं दिन भृत्येर्धयामकम् ॥ ४०४ ॥
तेभ्यः कार्यं कारयीत ह्युत्सवाद्यैर्विना नृपः ।
अत्यावश्यं तूत्सवेऽपि हित्वा श्राद्धदिनं सदा ॥ ४०५ ॥

२. पाद हीनां भृतिं त्वार्त्ते दद्यात् त्रैमासिकीं ततः ।
पञ्च वत्सर भृत्ये तु न्यूनाधिक्यं यथा तथा ॥ ४०६ ॥
षाण्मासिकीं तु दीर्घार्त्ते तदूर्द्धं न च कल्पयेत् ।
नैव पक्षार्द्धमार्त्तस्य हातव्याल्पापि वै भृतिः ॥ ४०७ ॥
सम्वत्सरोषितस्यापि ग्राह्यः प्रतिनिधिस्ततः ।
सुमहद्गुण वर्तिनं त्वार्त्तं भृत्यर्द्धं कल्पयेत् सदा ॥ ४०८ ॥
सेवां विना नृपः पक्षं दद्यात् भृत्याय वत्सरे ॥ ४०९ ॥

३. चत्वारिंशत् समा नीता सेवया येन वै नृपः ।
ततः सेवां विना तस्मै भृत्यर्द्धं कल्पयेत् सदा ॥ ४१० ॥
यावज्जीवं तु तत्पुत्रेऽक्षमेबाले तदर्द्धकम् ।
भार्यायां वा सुशीलायां कन्यायां वा स्वश्रेयसे ॥ ४११ ॥ (शुक्र० अ० २.)

इनाम— एक वर्ष के बाद सेवक को उस के वेतन का आठवां भाग इनाम रूप में देना चाहिये; अथवा किये कार्य के आठवें भाग का वेतन बिना कार्य कराए ही दे देना चाहिये।[1]

स्वामी की सेवा करते हुए जिसका देहान्त होजाय उसका वेतन उस के पुत्र के पास पहुँचा देना चाहिये। जब तक उस का पुत्र नाबालिग रहे उसे सहायता देते रहनी चाहिये; जब वह बालिग़ हो जाय तब उसकी योग्यतानुसार उसे भी किसी सेवा पर नियुक्त कर लिया जाय। सेवक के वेतन का छटा या चौथाई भाग स्वामी को अपने पास रख लेना चाहिये और दो तीन वर्ष बाद उस के वेतन का आधा या पूरा भाग उसे दे देना चाहिये।[2]

कर्मचारियों पर दण्ड का प्रभाव— कठोर वाणी का प्रयोग, वेतन की न्यूनता, अपमान या प्रबल दण्ड, इन सब के द्वारा भी राजा सेवकों के हृदय में शत्रुता का बीज बोता है। इस के प्रतिकूल सेवकों को सम्पत्ति देने से उन्हें राजा पूरी तरह अपने वश में कर लेता है। अधम लोग धन चाहते हैं, मध्यम धन और मान दोनों चाहते हैं, परन्तु उत्तम पुरुष मान ही चाहते हैं। क्यों कि मान ही बड़े पुरुषों का धन है।[3]

आय व्यय के लेख पत्र— राष्ट्रीय आय तथा व्यय के खूब विस्तार से रजिस्टर आदि बने रहते थे, जिस से कि इस मामले में किसी प्रकार की गड़बड़ न हो सके। इन में आय, व्यय, लेन, देन, किस विभाग में व्यय हुआ-आदि के खाने बने रहते थे। इन लेख पत्रों पर उच्च अधिकारियों के हस्ताक्षर होते थे, उन की अनुमति से ही कोई व्यय किया जा सकता था।

---

१. अष्टमांशं पारितोष्यं दद्यात् भृत्याय वत्सरे।
कार्याष्टमांशं वा दद्यात् कार्यं द्रागधिकं कृतम्॥ ४१२॥

२. स्वामि कार्ये विनष्टो यस्तत्पुत्रेतद् भृतिं वहेत्।
यावद् बालोऽन्यथा पुत्र गुणान्दृष्ट्वा भृतिं वहेत्॥ ४१३॥
षष्ठांशं वा चतुर्थांशं भृतेर्भृत्यस्य पालयेत्।
दद्यात् तदर्धं भृत्याय द्वित्रिवर्षेऽखिलं तु वा॥ ४१४॥

३. वाक् पारुष्यान्न्यून भृत्या स्वामी प्रबल दण्डतः।
भृत्यं प्रशिक्षयेन्नित्यं शत्रुत्वमपमानतः॥ ४१५॥
भृति दानेन सन्तुष्टा मानेन परिवर्धिताः।
सान्त्विता मृदु वाचा ये न त्यजन्त्यधिपं हि ये॥ ४१६॥
अधमा धनमिच्छन्ति धनमानौ तु मध्यमाः।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम्॥ ४१७॥ (शुक्र० अ० २.)

लेख पत्रों की स्वीकृति— लेख पत्रों पर अन्तिम स्वीकृति राजा की ली जाती है, राजा को चाहिये कि वह हस्ताक्षर करते समय व्यय की जाँच पड़ताल कर लिया करे। उस लेखपत्र पर प्राड्विवाक, दूत और पण्डित को, यह लिख कर कि "यह लेख अपने विरूद्ध नहीं है", अपने हस्ताक्षर करने चाहिये। फिर अमात्य को उस पर लिखना चाहिये— "यह लेख ठीक लिखा है"। फिर सुमन्त्र उस पर लिखे— "इस पर ठीक तरह से विचार किया गया है"। तब प्रधान यह लिखे— "यह लेख सत्य और यथार्थ है"। फिर प्रतिनिधि लिखे— "यह स्वीकार करने योग्य है"। फिर युवराज और पुरोहित क्रमशः यह लिखें— "यह स्वीकार कर लिया जाय" और "यह लेख मुझे स्वीकृत है"। सब मन्त्रियों को हस्ताक्षर करने के साथ ही साथ अपनी मुद्रा भी अङ्कित कर देनी चाहिये। अन्त में राजा उस पर "स्वीकृत है" यह लिख कर अपनी मोहर करदे।

यदि युवराज आदि बहुत कार्य व्यग्र होने से स्वयं उस लेख पत्र को न देख सकें तो उस पर लिख दें—"इसे अमुक व्यक्ति को ठीक तरह से दिखा दिया गया है।" परन्तु मन्त्री को मोहर करके उस को ठीक२ जाँच पड़ताल अवश्य कर लेनी चाहिये। अगर राजा के पास समय न हो तो वह उस पर "देख लिया" यही लिख दे।[२]

---

१. राजा स्वलेख्य चिन्हं तु यथाभिलषितं तथा।
लेखानुपूर्वं कुर्याद्धि दृष्ट्वा लेख्यं विचार्य हि॥ ३६२॥
मन्त्री च प्राड् विवाकश्च पण्डितो दूत संज्ञकः।
स्वाविरुद्धं लेख्यमिदं लिखेयुः प्रथमं त्विमे॥ ३६३॥
अमात्यः साधु लिखनमस्त्येतत् प्राग्लिखेदयम्।
सम्यग्विचारितमिति सुमन्त्रो विलिखेत् ततः॥ ३६४॥
सत्यं यथार्थमिति च प्रधानश्च लिखेत् स्वयम्।
अङ्गीकर्त्तुं योग्यमिति ततः प्रतिनिधिर्लिखेत्॥ ३६५॥
अङ्गीकर्त्तव्यमिति च युवराजो लिखेत् स्वयम्।
लेख्यं स्वाभिमतं चैतत् विलिखेच्च पुरोहितः॥ ३६६॥
स्व स्व मुद्रा चिन्हितं च लेख्यान्ते कुर्युरेव हि।
अङ्गीकृतमिति लिखेन्मुद्रयेच्च ततो नृपः॥ ३६७॥

२. कार्यान्तरस्याकुलत्वात् सम्यग् द्रष्टुं न शक्यते।
युवराजदिभिर्लेख्यं तदनेन च दर्शितम्॥ ३६८॥
समुद्रं विलिखेयुर्वै मन्त्रं मन्त्रिगणस्ततः।
राजा दृष्टमिति लिखेत् प्राक् सम्यग्दर्शनक्षमः॥ ३६९॥ (शुक्र० अ० २.)

आय व्यय का लेखा— रजिस्टर में पहले आय लिखे और फिर व्यय; अथवा आधे पृष्ठ पर आय लिखे और आधे पर व्यय। इन आधे २ हिस्सों में जो जो संख्याएँ लिखी गई हैं, उनका योग दोनों के नीचे कर देना चाहिये। यथा सम्भव संख्याएँ एक दूसरे के नीचे ही लिखनी चाहियें। यदि राशियाँ अधिक हों तो उन्हें एक पंक्ती में भी लिखा जा सकता है।[1]

सुगमता के लिये हम एक कल्पित उदाहरण यहां देते हैं—

८ चैत्र शुक्ले २०७१ विक्रमाब्दे।
राज कोशस्य आय व्यय लेखम्।

आय	व्यय
३००००) भौम करः दशार्ण देशीयः	२०००) गजानां मासिकं भोजनम्
४००००) सौवीराणां सुपायनी कृतम्	२०००००) कर्मचारिभ्यो वेतनम्
५०००००) सामुद्रिक व्यापारिणां शुल्कम्	२०००) गज सेवकानाम्
१०००००) कालिकातातः	८०००) अश्व सेवकानाम्
२०००००) मद्रासतः	१६००००) राजधानी सेवकानाम्
३०००००) मुम्बापुरीतः	१००००००) युद्ध सामग्री प्रेषणार्थम्
	५०००) दुःखित दीने भोजनार्थम्
५०७००००) सर्वयोगः।	१३०७००००) सर्व योगः।
हः— प्रधानः— प्रतिनधिः— मन्त्री— पुरोहितः—	युवराजः— राजा—

1. आयमादौ लिखेत् सम्यक् व्ययं पश्चात् तथागतम्।
वामेवायं व्ययं दक्षे पत्र भागे च लेखयेत्॥ ३७० ॥
यत्रोभौ व्यापक व्याप्यौ वामोर्द्ध भागगौ क्रमात्।
आधाराधेय रूपौ वा कालार्थं गणितं हि तत्॥ ३७१ ॥
अधोऽधश्च क्रमात् तत्र व्यापकं वामतो लिखेत्।
व्याप्यानां मूल्य मानादि तत्पङ्क्तयां सन्निवेशयेत्॥ ३७२ ॥
ऊर्ध्वगानां तु गणितमधः पङ्क्त्यां प्रजायते।
यत्रोभौ व्यापक व्याप्यौ व्यापकत्वेन संस्थितौ॥ ३७३ ॥
सजातीनां च लिखनं कुर्याच्च समुदायतः।
यथा प्राप्तं तु लिखनमाद्यन्त समुदायतः॥ ३७५ ॥ (शुक्र० अ० २.)

इस से यह ज्ञात होता है कि किसी भी विभाग में राष्ट्रीय आय व्यय करते हुए उस पर सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल की स्वीकृति आवश्यक होती थी, चाहे वह कोई भी विभाग क्यों न हो। प्रत्येक लेख पर सब मन्त्रियों की मोहरें भी लगाई जाती थीं। अन्तिम स्वीकृति राजा से ली जाती थी, परन्तु यह स्वीकृति नाम मात्र की ही होती थी।

---

* आठवाँ अध्याय *

समाज की आर्थिक दशा.

मनुष्य समाज में धनियों का सम्मान बहुत प्राचीन काल से चला आता है। आचार्य शुक्र से धन की यह महिमा छिपी नहीं हुई है। उन्होंने लिखा है— "धनियों के द्वार पर अच्छे २ गुणी लोग नौकरों की तरह खड़े रहते हैं। धनी मनुष्य के दोष भी लोगों को गुण प्रतीत होते है और निर्धनों के गुण भी दोष समझे जाते हैं। बहुत गरीब होने के कारण ही बहुत से लोगों की मृत्यु हुई है, बहुत से शहर छोड़ कर भाग गए हैं, बहुत से पहाड़ों में चले गए हैं, बहुतों ने आत्म-हत्या की है और बहुत से पागल और दास बन गए हैं।"[1]

धन कमाने के उपाय— धन की उपर्युक्त महिमा अनुभव करते हुए आचार्य शुक्र ने कहा है— "मनुष्य को जिस किसी प्रकार भी धनवान बनने का यत्न करना चाहिये। धन कमाने के ये आठ उपाय हैं— (१) विद्वत्ता के आधार पर कमाना-पढ़ाना आदि (२) राजकीय सेवाएँ (३) सेना में प्रविष्ट होकर कमाना (४) कृषि (५) रुपया उधार देकर उस पर सूद लेना (६) व्यापार-थोक या फुटकर (७) शिल्प और व्यवसाय. (८) भीख मांगना।"[2]

---

१. तिष्ठन्ति सधन द्वारे गुणिनः किङ्करा इव ॥ १८२ ॥
दोषा अपि गुणायन्ते दोषायन्ते गुणा अपि।
धनवतो निर्धनस्य निन्द्यते निर्धनोऽखिलै ॥ १८३ ॥
सुनिर्धनत्वं प्राप्यैके मरणं भेजिरे जनाः।
ग्रामायैके चलायैके नाशायैके प्रवव्रजुः।
उन्मादमेके पुष्यन्ति यान्त्यन्ये द्विषतां वशम्।
दास्यमेके च गच्छन्ति परेषामर्थ हेतुना ॥ १८५ ॥

२. सुविद्यया सुसेवाभिः शौर्येण कृषिभिस्तथा।
कौसीद वृद्धया पण्येन कलाभिश्च प्रतिग्रहैः।
यया कया चापि वृत्या धनवान् स्यात्तथा चरेत् ॥ १८६ ॥
(शुक्र० अ० ३.)

इस सब उपायों की कुछ व्याख्या तथा आलोचना भी आचार्य शुक्र ने स्वयं ही कर दी है— "सरकारी नौकरी धन कमाने का अच्छा साधन है, परन्तु वह बहुत ही कठिन है, बुद्धिमान लोग ही उसे कर सकते हैं, साधारण लोगों के लिये वह तलवार की धारा के समान असाध्य है। पुरोहित का कार्य बहुत आराम का है और उस से धन भी पर्याप्त मिलता है। कृषि, जो कि नदियों पर निर्भर है, सो कमाई का उत्तम साधन है।[1] भूमि ही सब धनों का प्रारम्भिक स्रोत है, भूमि के लिये राजा भी अपने प्राण दे देते हैं। धन और जीवन की रक्षा मनुष्य उपभोग के लिये करता है, परन्तु जिस मनुष्य ने भूमि की रक्षा नहीं की उस के धन और जीवन दोनों निरर्थक हैं।[2] आचार्य शुक्र की सम्मति में व्यापार विशेष लाभ कर नहीं है।[3] इस बात से विशेष आश्चर्य नहीं होना चाहिये। एक और प्रकरण में आचार्य ने शुक्र ने व्यवहार को धनोपार्जन का एक उत्तम साधन बताया है और साथ ही व्यापारिक संघों, श्रेणी और गणों का भी वर्णन किया है; इस से प्रतीत होता है कि उस समय व्यापार में बड़ी तीव्र प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो चुकी होगी, साधारण लोगों के लिये व्यापार विशेष लाभ कर न रहा होगा, इसी से उन्होंने व्यापार को विशेष लाभकर नहीं बताया। इस का अभिप्राय यह नहीं समझना चाहिये कि व्यापार अर्थ शास्त्रीय परिभाषा में अनुत्पादक है क्योंकि जब पुरोहित के कार्य को उत्पादक बताया गया है तब व्यापार को अनुत्पादक नहीं समझा जा सकता। इसी प्रकार शुक्रनीति के तीसरे अध्याय में सूद ऋण आदि की भी विस्तार से व्याख्या की गई है।

---

१. राजसेवां विना द्रव्यं विपुलं नैव जायते।
राज सेवातिगहना बुद्धिमद्भिर्विना न सा।
कर्त्तुं शक्या चेतरेण ह्यसिधारेव सा सदा॥ २७७॥
आध्वर्यादिकं कर्म कृत्वा या गृह्यते भृतिः।
सा किं महाधनायैव ?……… ॥ २७६॥
कृषिस्तु चोत्तमा वृत्तिर्या सरिन्मातृका मता।
मध्यमा वैश्य वृत्तिश्च शूद्र वृत्तिस्तु चाधमा॥ २७४॥ (शुक्र० अ० ३.)

२. खनिः सर्वधनस्येयं देवदैत्यविमर्दिनी।
भूम्यर्थे भूमि पतयः स्वात्मानं नाशयन्त्यपि॥ १७९॥
उपभोगाय च धनं जीवितं येन रक्षितम्।
न रक्षिता तु भूर्येन किं तस्य धनजीवितैः॥ १८०॥ (शुक्र० अ० १)

३.………वाणिज्यमलमेव किम् ? २७६॥ (शुक्र० अ० ३)

शिल्प और व्यापार – शुक्रनीति में अनेकों शिल्पों तथा व्यवसायों का वर्णन उपलब्ध होता है। इन सब का यहां विस्तार से वर्णन करना असम्भव है, हम संक्षेप से इन व्यवसायों के नाम ही गिना देंगे। लगभग ५० व्यवसाय ऐसे हैं जिन की सरकार को अत्यन्त आवश्यकता रहती है, अतः सरकार को इन व्यवसायों के करने वाले लोगों को उत्साह और सहायता देनी चाहिए। इन में (१) गायक, बजाने वाले, नाचने वाले, मसौलिए, चित्रकार आदि भी शामिल हैं। शेष में से कुछ के नाम निम्नलिखित हैं (२) शिल्पी (इञ्जनीयर), किला बनाने वाले, शहर का खाका बनाने वाले, बाग बनाने वाले तथा सड़कें बनाने वाले आदि (३) मशीनें बनाने वाले, तोपची, बड़ी २ तोपें और बन्दूकें बनाने वाले तथा हलकी मशीनें, बारूद, गोले, बाण, तलवार, धनुष, ज्या, हथियार, औज़ार आदि बनाने वाले। (४) सुनार, जौहरी, रथ, ओर आभूषण बनाने वाले और बढ़ई। (५) नाई, धोबी और भंगी। (६) डाकिये, दर्जी, सम्मन ले जाने वाले, युद्ध में ढोल बजाने वाले, खलासी, खानों में काम करने वाले, शिकारी, किरात और मुरम्मत करने वाले। (७) जुलाहे, चमार, घर साफ करने वाले, सामान की सफाई करने वाले, गन्धी और कवच बनाने वाले। अनाज साफ करने वाले, तम्बू लगाने वाले। (८) गायक और वेश्याएँ। इन सब को इन के कार्यों की महत्ता या लघुता के आधार पर इन्हें सरकार की ओर से नियुक्त करना चाहिये।[1]

---

१. ये चान्ये साधकाले च तथा वित्त विरञ्जकाः।
सुभृत्यास्ते ऽपि सन्धार्या नृपेणात्म हिताय च ॥ १९३ ॥
वैतालिकाः सुकवयो येत्र दण्ड धराश्च ये।
शिल्पज्ञाश्च कलावन्तो ये सदाप्युपकारिणः ॥ १९४ ॥
दुर्गुणा सूचका भाणा नर्तका बहुरूपिणः।
आराम कृत्रिमवन कारिणो दुर्ग कारिणः ॥ १९५ ॥
महानालिक यन्त्रस्य गोलैर्लक्ष्य विभेदिनः।
लघुयन्त्राग्नेय चूर्ण बाणगोलासि कारणः ॥ १९६ ॥
अनेक यन्त्र शस्त्रास्त्र धनुस्तूणादि कारिकाः।
स्वर्णरत्नाद्यलङ्कार घटका रथकारिणः ॥ १९७ ॥
पाषाण घटका लोह कारा धातु विलेपकाः।
कुम्भकाराः शौल्विकाश्च तक्षाणो मार्गकारकाः ॥ १९८ ॥
नापिता रजकाश्चैव वासिका मलहारिकाः।
वार्ताहराः सौचिकाश्च राजचिन्हाग्र धारिणः ॥ १९९ ॥
भेरी पटह गोपुच्छ शङ्ख वेण्वादि निस्वनैः।
ये व्यूह रचका यानव्यपयानादि बोधकाः ॥ २०० ॥

कला— राजा का कर्तव्य है कि वह अपने राज्य में विद्या और कला दोनों की उन्नति के लिये यत्न करे। विद्या किसी सिद्धान्त सम्बन्धी ज्ञान को कहते हैं और कला से अभिप्राय शिल्प का है। आचार्य शुक्र ने ६४ कलाओं का वर्णन किया है। इन में निम्न लिखित २३ कलाओं का सीधा उद्गम वेदों को माना गया है।

इन २३ मेंसे ७ कलाएँ मनोरञ्जन के लिये हैं—नाचना, वाद्ययन्त्र बजाना, वस्त्र और आभूषणों से शरीर को सजाना, अनेक हाव-भाव कर सकना, मालाएँ गूंथना और लोगों को प्रसन्न कर सकना।[1] १० कलाओं का सम्बन्ध चिकित्सा और आयुर्वेद से है फूलों में से आसव निकालना आदि, चिकित्सा के लिये चीरा-फाड़ी (operations) करना, दवाइयोंका पाक, आयुर्वेदोक्त दवाइयों को बोना, धातु पत्थर आदि को जला कर उन की भस्में बनाना खाँड और गुड़ द्वारा ही सब बीमारियों का इलाज करना, धातुओं और औषधियों का गुणज्ञान, मिली हुई धातुओं को शुद्ध करना, एक धातु को देख कर उसकी पूरी रचना को पहिचानना, भिन्न २ क्षार बनाना।[2] ५ कलाओं

नत्रिका खनका व्याधाः किराता भारिका अपि ।
शस्त्र सम्मार्जन करा जल धान्य प्रवाहिकाः ॥ २०१ ॥
आपणिकाश्च गणिका वाद्यजाया प्रजीविनः ।
तन्तुवायाः शाकुनिकाश्चित्रकाराश्च चर्मकाः ॥ २०२ ॥
गृहसम्मार्जकाः पात्र धान्य वस्त्र प्रमार्जकाः ।
शय्यावितानस्तरण कारकाः शासकाश्चपि ॥ २०३ ॥
हीनाल्प कर्मिणश्चैते योज्याः कार्यानुरूपतः ॥ २०४ ॥ (शुक्र० अ० २)

१. हाव भावादि संयुक्तं नर्तनं तु कला स्मृता ।
अनेक वाद्य करणे ज्ञानं तद्वादने कला ॥ ६७ ॥
वस्त्रालङ्कार सन्धान स्त्री पुंसोश्च कलास्मृता ।
अनेक रूपाविभावाकृति ज्ञानं कला स्मृता ॥ ६८ ॥
शय्यास्तरण संयोग पुष्पादि ग्रथनं कला ।
द्यूताद्यनेक क्रीडाभिः रञ्जनं तु कला स्मृता ॥ ६९ ॥
अनेकासन सन्धानैः रतेर्ज्ञानं कला स्मृता ।
कला सप्तक मेतद्धि गान्धर्वे समुदाहृतम् ॥ ७० ॥ (शुक्र० ४ iii).

२. मकरन्दास वादीनां मद्यादीनां कृतिः कला ।
शल्य गूढाहृतौ ज्ञानं शिराव्रणे व्यधेकला ॥ ७१ ॥
हिङ्ग्वादि रस संयोगादन्नादि पचनं कला ।
वृक्षादि प्रसवारोप पालनादि कृतिः कला ॥ ७२ ॥
पाषाण धात्वादिदृतिस्तद्भस्मी करणं कला ।
यावदिक्षुविकाराणां कृति ज्ञानं कला स्मृता ॥ ७४ ॥
धात्वौषधीनां संयोग क्रियाज्ञानं कला स्मृता ।

का सम्बन्ध सैनिक कार्यों से है— हथियारों को एक साथ उठाना और इकट्ठा छोड़ना, कदम मिलाते हुए चलना, मल्ल युद्ध, वाहु युद्ध, विगुल द्वारा संकेत करने का अभ्यास, व्यूह बनाना, हाथी सवारों और घुड़ सवारों का एक पंक्ती में तरीके से युद्ध करना।[1] तन्त्रों के अनुसार भिन्न २ आसनों पर स्थित होकर तप करना भी कला है। परन्तु ये छहों कलाएं कला होते हुए भी शिल्प के कार्य नहीं हैं।

इनके अतिरिक्त अन्य कलाएँ ये हैं—मिट्टी, पत्थर या धातु के बर्तन बनाना, इन पर रोगन करना, चित्र आदि बनाना, तालाव, नहर और चौक आदि बनाना, बड़ी और छोटी घड़ियां तथा बाजे बनाना, कपड़ों को हलका, मध्यम या गाढ़े रंग से रंगना; पानी वायु या आग की शक्ति से कार्य लेना, नौका और रथ आदि बनाना, धागा और रस्सियां वँटना, भिन्न २ प्रकार से बुनना, मोतियों की पहिचान करना और उन में छेद करना, सोना तथा अन्य धातुओं की परीक्षा करना, नकली सोना और नकली मोती बनाना, भिन्न २ धातुओं से आभूषण बनाना, चमड़े को नरम करना, पशुओं की खाल को उनके शरीर से जुदा करना; दूध दोहना, कपड़े सीना, तैरना, घर के बर्तन और सामान आदि साफ करना, कपड़े धोना, नाई का काम, तेल निकालना, खेती करना और वाग लगाना, दूसरों को खुश करना, वांस आदि से टोकरे बुनना, शीशे के बर्तन बनाना, पानी के नलके लगाना, लोहे के औज़ार बनाना, घोड़े हाथी और ऊंटों के हौदे बनाना, बच्चों को पालना, उन्हें खुश रखना, अपराधियों को चाबुक लगाना, बहुतसी भिन्न २ लिपियोंमें लिख सकना, और पान लगाना।[2]

ये सब कुल मिला कर ६४ कलाएं हैं। इन में से अधिकांश शिल्प हैं और कुछ पेशे हैं।

धातु सांकर्य पार्थक्य करणन्तु कला स्मृता ॥ ७५ ॥
संयोगापूर्व विज्ञानं धात्वादीनां कला स्मृता।
क्षार निष्काषन ज्ञानं कलासंज्ञन्तु तत् स्मृतम्।
कला दशक मेतद्धि ह्यायुर्वेदागमेषु च ॥ ७५ ॥

१. शस्त्र संधान विक्षेपः पादादि न्यासतः कला।
सन्ध्याघाताकृष्टि भेदैर्मल्लयुद्धं कला स्मृता ॥ ७६ ॥
कालाभि लक्षिते देशे यन्त्राद्यस्त्रनिपातनम्।
वाद्य संकेततो व्यूह रचनादि कला स्मृता ॥ ८० ॥
गजाश्व रथ गत्या तु युद्ध संयोजनं कला।
कला पञ्चकमेताद्धि धनुर्वेदागमे स्थितम् ॥ ८१ ॥

२. मृत्तिका काष्ट पाषाण धातु भाण्डादि सत्क्रिया।
पृथक् काला चतुष्कं तु चित्राद्यालेखनं कला।

व्यवसायों में स्वतन्त्रता— उपर्युक्त आठ पेशों और ६४ कलाओं में पढ़ाने से लेकर चमार तक के सब कार्य अन्तर्गत हो जाते हैं। परन्तु इन कार्यों के लिए आचार्य शुक्र ने कोई ऐसी व्यवस्था नहीं दी है कि अमुक वर्ण का व्यक्ति ही अमुक कार्य करे। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में यह निर्देश दिया है कि जो व्यक्ति जिस कार्य के लिये अधिक अनुकूल सिद्ध हो वह वही कार्य करे। उदाहरणार्थ राजकर्मचारी बनने का कार्य उन लोगों को करना चाहिये जो दिमागी शक्ति में उन्नत हों, शासन करना जानते हों। इस प्रकरण

तड़ाग वापी प्रासाद समभूमि क्रिया कला ।
घट्याद्यनेक यन्त्राणां वाद्यानान्तु कृतिः कला ॥ ८४ ॥
हीन मध्यादि संयोग वर्णाद्यै रञ्जनं कला ।
जल वाय्वग्नि संयोग निरोधैश्च क्रिया कला ॥ ८५ ॥
नौका रथादि यानानां कृतिज्ञानं कला स्मृता ।
सूत्रादि रज्जु करण विज्ञान्तु कला स्मृता ॥ ८६ ॥
अनेक तन्तु संयोगैः पट बन्धः कला स्मृता ।
वेधादि सदसज्ज्ञानं रत्नानाञ्च कला स्मृता ॥ ८७ ॥
स्वर्णादीनान्तु याथात्म्य विज्ञानञ्च कला स्मृता ।
कृत्रिम स्वर्ण रत्नादि क्रिया ज्ञानं कला स्मृता ॥ ८८ ॥
स्वर्णाद्यलङ्कार कृतिः कलालेपादि सत्कृतिः ।
मार्दवादि क्रियाज्ञानं चर्मणान्तु कला स्मृता ॥ ८९ ॥
पशु चर्माङ्ग निर्हार क्रियाज्ञानं कला स्मृता ।
दुग्ध दोहादि विज्ञानं घृतान्तन्तु कला स्मृता ॥ ९० ॥
सीवने कञ्चुकादीनां विज्ञानन्तु कलात्मकम् ।
बाह्वादिभिश्च तरणं कला संज्ञं जले स्मृतम् ॥ ९१ ॥
मार्जने गृह भाण्डादेर्विज्ञानन्तु कला स्मृता ।
वस्त्र सम्मार्जनञ्चैव क्षुरकर्म कलेह्युभे ॥ ९२ ॥
तिलमांसादि स्नेहानां कला निष्कासने कृतिः ।
सीराद्याकर्षणे ज्ञानं वृक्षाद्यारोपणे कला ॥ ९३ ॥
मनोकूल सेवायाः कृतिः ज्ञानं कला स्मृता ।
वेणुपत्रादि पात्राणां कृति ज्ञानं कलास्मृता ॥ ९४ ॥
काच पात्रादि करण विज्ञानन्तु कला स्मृता ।
संसेचनं संहरणं जलानां तु कला स्मृता ॥ ९५ ॥
लोहाभिसार शस्त्रास्त्र कृति ज्ञानं कला स्मृता ।
गजाश्व वृषभोष्ट्राणां पल्याणादि क्रिया कला ॥ ९६ ॥
शिशोः संरक्षणे ज्ञानं धारणे क्रीड़ने कला ।
सुयुक्त ताड़न ज्ञानमपराधिजने कला ॥ ९७ ॥
नाना देशादि वर्णानां सुसम्यग् लेखने कला ।
ताम्बूल रक्षादि कृति विज्ञानन्तु कला स्मृता ॥ ९८ ॥   (शुक्र० अ० ४ iii)

से यह भी नहीं प्रतीत होता कि किसी पेशे में खास लोगों को ही शामिल होने की व्यवस्था हो; अन्य लोग इच्छा करने पर भी उस में शामिल न हो सकें। अर्थात् उस किस्म की श्रेणी प्रथा (Gild system) का अभास, जिसे कि पाश्चात्य अर्थ शास्त्रज्ञ मध्ययुग का मानते हैं, इस प्रकरण में नहीं पाया जाता।

संघों द्वारा उत्पत्ति— शुक्रनीति में स्पष्ट रूप से संगठित व्यवसायों की सत्ता के प्रमाण मिलते हैं। इस तरह की ज्वाइण्ट स्टौक कम्पनियों का वर्णन, जिन का मूल धन जमा करने के लिए हिस्से वेचे जाते हैं, दूसरे अध्याय में है। इन के लेख को "सामयिक पत्र" कहा जाता था— "हिस्से-दार लोग व्यापार या व्यवसाय चलाने के लिये अपने २ हिस्सों का धन दे कर उस के लिये जो लेख पत्र लिखते है उन्हें सामयिक पत्र कहा जाता है।"[१] इस प्रकार का सम्मिलित उद्योग व्यापार व्यवसाय के लिये ही नहीं होता था, अन्य पेशों के लोग भी संघ वना कर अपना कार्य करते थे— "यह सम्मिलित उद्योग की प्रथा केवल व्यापारियों के लिये ही नहीं है, किसान लोग भी ऐसा ही किया करते हैं।"[२] "जो लोग सोना, अनाज, रस आदि वेचने के कार्य सम्मिलित उद्योग द्वारा करते हैं, उन्हें अपने अपने हिस्सों के अनुसार लाभ हुए हुए धन को बाँट लेना चाहिये।"[३] इसी तरह— "जो सुनारे संघ बना कर व्यवसाय करते हैं उन्हें अपने कार्य के अनुसार लाभ का विभाग करना चाहियें।"[४]

तस्कर संघों का वर्णन हम पहले ही कर चुके हैं। "उन लोगों के मुखिया को, जो लोग कि मिल कर महल, मन्दिर या तालाब बनवाएँ, शेष सब से दुगना, लाभ मिलना चाहिये।"[५] इस मुखिया का अभिप्राय कार्य का संचालन तथा संगठन करने वाले से है। यही नहीं, नाचने और गाने वालों के संघ भी हुआ करता थे। इन संघों पर भी वही नियम लागू होते थे जो

---

१. मेलयित्वा स्वधनांशान् व्यवहाराय साधकाः।
कुर्वन्ति लेख्यपत्रं यत् तच्च सामयिकं स्मृतम्॥ ३१२॥ (शुक्र० अ० २)

२. वणिजानां कर्षकाणामेष एव विधिः स्मृतः॥ ३१५॥

३. प्रयोगं कुर्वते ये तु हेम धान्य रसादिना।
सम न्यूनाधिकैरंशैर्लाभस्तेषां तथाविधः॥ ३१३॥

४. हेम कारादयो यत्र शिल्पं सम्भूय कुर्वते।
कार्यानुरूपं निर्वेशं लभेरंस्ते यथार्हतः॥ ३०७॥ (शुक्र० अ० ४. ५.)

५. हर्म्यं देवगृहं वापि वापिकोपस्कराणि च।
सम्भूय कुर्वतां तेषां प्रमुख्यो द्व्यंशमर्हति॥ ३०९॥

कि अन्य व्यावसायिक संघों पर होते थे।[1] इन संघों का आधार भूत सिद्धान्त यह था— "जो हिस्सेदार प्रत्येक हिस्से (share) को संघ द्वारा पहले से निश्चित बराबर, कम या अधिक मात्रा को नियत समय पर दे दें और संघ द्वारा निर्दिष्ट अन्य कार्य भी कर दें उनको अपने २ हिस्से के अनुपात से आय का भाग मिलेगा।"[2]

श्रेणियाँ और उनके अधिकार— उपर्युक्त संघ केवल आर्थिक उद्देश्य से ही बने होते हैं, इन के सदस्यों में परस्पर केवल आर्थिक संबन्ध ही होता है, अन्य वैयक्तिक मामलों में उनका संघ कोई दखल नहीं देता। परन्तु यही पेशेवार संघ अगर और अधिक संगठित होजाँय, अर्थात् संघके सदस्यों का परस्पर सामाजिक संगठन भी हो जाय, तब इन्हें 'श्रेणी' कहा जायगा। उपर्युक्त सभी पेशे वालों के संघ श्रेणी रूप में परिवर्तित हो सकते हैं। एक श्रेणी के सदस्य, एक पेशे के व्यक्ति और एक पेशे वाले कई संघ दोनों ही हो सकते हैं। इन श्रेणियों के लिये हम "गिल्ड" शब्द प्रयुक्त कर सकते हैं। यूरोप के मध्यकालीन gilds से इन श्रेणियों की रचना की तुलना भी की जा सकती है।[3]

तत्कालीन नियमों में इन श्रेणियों की सत्ता सरकार स्वीकार करती थी— "इन श्रेणी, पूग और गणों के सम्बन्ध में अगर कोई विवाद उठ खड़ा हो तो उस का निर्णय गवाहों, लिखित प्रमाणपत्रों तथा प्रचलित अधिकार से करना चाहिये। अगर कोई व्यक्ति श्रेणी आदि से द्वेश करता हो तो उसकी गवाही, उन के विरुद्ध मामलों में, नहीं सुननी चाहिये क्योंकि वह व्यक्ति द्वेशवश सत्य नहीं कहेगा।"[4]

इन श्रेणियों का संगठन केवल आर्थिक और सामाजिक उद्देश्य से ही नहीं होता था, इनको सरकार की ओर से कुछ राजनीतिक अधिकार भी प्राप्त थे। सरकार इन के उपनियमों को स्वीकार करती थी, आवश्यकता पड़ने पर पर उनकी प्रामाणिता का सम्मान करती थी। ये श्रेणियां अपने सदस्यों को,

---

१. नर्तकानामेव धर्मः सद्भिरेष उदाहृतः।
तालज्ञो लभतेऽर्थार्द्धं गायकास्तु समांशिनः॥ ३१०॥

२. समो न्यूनोऽधिको ह्यंशो योऽनुक्षिप्तस्तथैव सः।
व्ययं दद्यात् कर्म कुर्यात् लाभं गृह्णीत चैव हि॥ ३१४॥

३. स्थावरेषु विवादेषु पूग श्रेणिगणादिषु।
......साक्षिभिर्लिखिते नाथ भुक्त्या चैतान् प्रसाधयेत्॥ २९५-९६॥
श्रेण्यादिषु च वर्गेषु कश्चिच्चेद्द्वेष्यतामियात्।
तस्य तेभ्यो न साक्ष्यं स्याद्द्वेष्टारः सर्व एव ते॥ १३३॥
(शुक्र० अ० ४. V.)

अपराध करने पर, थोड़ा बहुत दण्ड भी दे सकती थीं। इस प्रकार इनकी सत्ता साम्राज्यान्तर्गत साम्राज्यों के समान प्रतीत होती है।

इन श्रेणियों को दो राजनीतिक अधिकार प्राप्त थे। (१) अपने लिये उपनियम बनाना (२) अपने झगड़ों का स्वयं निर्णय करना– "न्यायाधीश को चाहिये कि वह न्याय करते हुए जाति, श्रेणी, नगर संघ आदि के उप नियमों को भी अवश्य ध्यान में रक्खे।"[1] "किसान, बढ़ई, कारीगर, महाजन, गायक, तपस्वी और तस्करों की श्रेणियों को स्वयं अपने विवादों का निर्णय करने का अधिकार होना चाहिये।"[2] "वे कुल, श्रेणी और गण जो सरकार द्वारा रजिस्टर्ड हैं, अपने सदस्यों के खून और डाके आदि गुरुतर अपराधों को छोड़ कर अन्य मामलों का निर्णय स्वयं कर सकते हैं।"[3] कुलों का निर्णय सब से छोटी अदालत का निर्णय समझा जाता था, इस के बाद क्रमशः श्रेणी, गण और सरकारी न्यायालयों में अपील की जासकती थी।[4]

कुल का अभिप्राय बिरादरी से है। गण और पूग एक ही संस्था के पर्यायवाची हैं। हमारी सम्मति में गण 'शहर के संघ' (Municipality) को कहा जाता होगा। ये नगर संघ नागरिक झगड़ों का स्वयं निर्णय करते थे। इन के अधिकारों का क्षेत्र नगर की सीमा तक सीमित होगा।

आवागमन के मार्ग— शुक्रनीति में सड़कों आदि का जो वर्णन है उस से प्रतीत होता है कि उस समय मार्गों की महत्ता से सरकार अपरिचित नहीं थी। सड़कों का परिमाण उन के उपयोग और उन की राजनीतिक महत्ता के अनुसार रक्खा जाता था। राष्ट्र भर के प्रत्येक गांव और शहर को सड़कों द्वारा मिलाया हुआ था। इन सड़कों की रक्षा खूब अच्छी प्रकार की जाती थी। मार्गों पर डाका डालने वालों के लिए फांसी के दण्ड का विधान है—"सरकार का कर्तव्य है कि यात्रियों के आराम के लिये सड़कों की रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध करे। जो रास्तों पर डाका डालें उन का वध कर देना चाहिये।"[5]

---

१. जाति जानपदान् धर्मान् श्रेणिधर्मांस्तथैव च।
समीक्ष्य कुल धर्मांश्च स्वधर्मं प्रतिपालयेत् ॥ ४७ ॥

२. कीनाशाः कारुकाः शिल्पि कुसीदि श्रेणिनर्तकाः।
लिङ्गिनस्तस्करा कुर्युः स्वेन धर्मेण निर्णयम् ॥ १८ ॥

३. राज्ञा ये विदिताः सम्यक् कुल श्रेणि गणादयः।
साहसस्तेय वर्ज्यानि कुर्युः कार्याणि ते नृणाम् ॥ ३० ॥

४. विचार्य श्रेणिभिः कार्यं गणैर्यन्न विचारितम्।
गणैश्च श्रेण्यविचार्तं गणाज्ञातं नियुक्तकैः ॥ ३१ ॥ (शुक्र० अ० ४ प्र.)

५ मार्गं संरक्षणं कुर्य्यात् नृपः पान्थ सुखाय च।
पान्थ प्रपीडिका ये ये हन्तव्यास्ते प्रयत्नतः ॥ ३१५ ॥

इन सड़कों की प्रति वर्ष मुरम्मत कराई जाती थी— "सरकार को चाहिये कि वह सड़कों पर प्रति वर्ष पत्थर कुटवा कर उनकी मुरम्मम करवाया करे। यह कार्य चोरों और कैदियों से करवाना चाहिये।"[१] चतुर्थ अध्याय के प्रथम प्रकरण में भी कैदियों के लिये यही दण्ड कहा है।[२]

सड़कों की मुरम्मत के लिये जो व्यय होता था, वह उन पर चलने वालों पर इसी उद्देश्य से कर लगा कर पूरा किया जाता था।[३]

सड़कें चौड़ाई के अनुसार भिन्न २ प्रकार की होती थीं। इन के उद्देश्य भी भिन्न २ होते थे। "पद्य पगदण्डी को कहते हैं, यह ४½ फीट चौड़ी होती है। वीथी गाँव की गलियों को कहते हैं, यह ७½ फीट होती है। मार्ग साधारण रास्तों को कहते हैं, ये १५ फीट चौड़े होते हैं। ये तीनों मार्ग प्रत्येक गाँव में यथेष्ट होने चाहिये जिस से कि उसका सम्बन्ध राजधानी से से हो सके।"[४] "इन के अतिरिक्त राज मार्ग–जो कि एक शहर को दूसरे शहर से मिलाते हैं— २५ फीट से ४५ फीट तक चौड़े होने चाहिये। राजमार्गों का उद्देश्य सामान को इधर उधर ले जाना है, जहाँ आवश्यकता हो, चाहे शहर में और चाहे गाँव में, राज–मार्ग बनाने चाहिये। इन सब मार्गों का सम्बन्ध राजधानी से होना चाहिये।"[५]

"वीचि और पद्य ये दोनों गाँवों में ही होनी चाहिये; बड़े शहरों और राजधानी में नहीं।"[६] "इन सड़कों पर सरायें भी बहुतायत से होनी चाहिये।

---

१. मार्गान् सुधा शर्करैर्वा घटितान् प्रतिवत्सरम्।
अभियुक्त निरुद्धैर्वा कुर्यात् ग्राम्य जनैर्नृपः॥ २६९॥ (शुक्र० अ० १)

२. मार्ग संस्करणे योज्या······॥ १०८॥
निगडैर्बन्धयित्वा तं योजयेन्मार्ग संस्कृतौ॥ १५॥ (शुक्र० अ० ४ i.)

३. मार्ग संस्कार रक्षार्थं मार्गगेभ्यो हरेत फलम्॥ १५९॥ (शुक्र० अ० ४. ii.)

४. कर त्रयात्मिका पद्या वीथिः पञ्चकरात्मिका।
मार्गो दश करः प्रोक्तो ग्रामेषु नगरेषु च॥ २६२॥
प्राक् पश्चाद्दक्षिणोदक् तान् ग्राममध्यात् प्रकल्पयेत्।
पुरं दृष्ट्वा राजमार्गान् सुबहून्कल्पयेन्नृपः॥ २६३॥

५. राजमार्गास्तु कर्तव्याश्चतुर्दिक्षु नृपगृहात्।
उत्तमो राजमार्गस्तु त्रिंशद्धस्तमितो भवेत्॥ २६०॥
मध्यमो विंशति करो दशपञ्चकरोधमः।
पण्यमार्गस्तथा चैते पुरग्रामादिषु स्थिताः॥ २६१॥

६. न वीथिं न च पद्यां हि राजधान्यां प्रकल्पयेत्॥ २६४॥ (शुक्र० अ० १)

ये सरायें पानी के निकट और सुरक्षित स्थान पर हों, इन के कमरे एक बराबर और एक पंक्ती में हों।[1]

सड़कों की बनावट— सड़कें खूब साफ रखी जाती थीं। इन्हें बीच में से कुछ ऊँचा और दोनों ओर को ढलवाँ बनाया जाता था ताकि इन पर पानी खड़ा न हो सके। जहाँ नाले आदि आते थे वहाँ पुल बनाये जाते थे। सड़कों के दोनों ओर नालियाँ होती थीं, ताकि उनके द्वारा सारा पानी निकल जाय। शहरों में सड़कों के पास जो मकान होते थे उन का मुंह सदैव सड़क की ओर ही होता था। और घरों के पिछवाड़े की ओर गलियाँ और गन्द निकलने की नालियाँ होती थीं।[2]

इस प्रकार शुक्र नीति द्वारा सड़कों का बहुत उन्नत वर्णन प्राप्त होता है।

मण्डियाँ— प्रत्येक शहर में सामान बेचने के लिये बाज़ार और मण्डियाँ होती थी। इनका विभाग क्रम से किया जाता था— "मण्डियों में दूकानें और गोदाम अलग २ सामान के क्रम से बनाने चाहिये। सड़कों की दोनों तरफ़ से धन के क्रम से समान पेशे वाले लोगों को बसाना चाहिये। यह प्रबन्ध शहर और गाँव दोनों में हों।"[3]

दूर से आए हुए व्यापारियों को ठहराने का भी यथोचित उत्तम प्रबन्ध किया जाता था, इस का वर्णन हम भौतिक सभ्यता के प्रकरण में करेंगे।

पदार्थों का मूल्य तथा मुनाफा— पिछले अध्याय में हम शुक्र-नीति सारकालीन धातुओं का आपेक्षिक मूल्य बतला चुके हैं; परन्तु उस समय चाँदी या सोने की तुलनात्मक क्रय शक्ति क्या थी यह ठीक २ बता सकना बहुत कठिन है। तथापि शुक्रनीति के चतुर्थ अध्याय के द्वितीय प्रकरण में कुछ ऐसे निर्देश प्राप्त होते हैं जिन के आधार पर हम वस्तुओं के तत्कालीन मूल्य

---

१. पन्यशाला नतः कार्या सुगुप्ता सुजलाश्रया ।
सजातीय गृहाणां हि समुदायेन पंक्तितः ॥ २५७ ॥

२. कूर्म पृष्ठा मार्ग भूमिः कार्याः ग्राम्यैः सुसेतुका ।
कुर्यान्मार्गान् पार्श्वं खातान्निर्गमार्थं जलस्य च ॥ २६६ ॥
राजमार्ग मुखानि स्युः गृहाणि सकलान्यपि ।
गृह पृष्टे सदा वीथिर्मल निर्हरणस्थलम् ॥ २६७ ॥

३. सजाति पण्य निवहैरापणे पण्य वेशनम् ॥ २५८ ॥
धानिकादि क्रमेणैव राजमार्गस्य पार्श्वयोः ।
सर्वं हि पत्तनं कुर्यात् ग्रामञ्चैव नराधिपः ॥ २५९ ॥ (शुक्र० अ० १)

को वर्तमान रुपयों की संख्या में जान सकते हैं। पदार्थों के मूल्य की यह तालिका बहुत महत्वपूर्ण है। ये दाम साधारण तथा उत्तम पदार्थों के भिन्न २ हैं। निम्नलिखित पशुओं का अधिकतम मूल्य इस से अधिक नहीं होना चाहिये।[1] इसका अभिप्राय यही है इन पशुओं का मूल्य उस समय लगभग इतना ही रहा करता होगा। यह स्मरण रखना चाहिये कि उस समय सोना और चाँदी के अपेक्षिक मूल्य का अनुपात एक और सोलह था।

साधारण पशु

नाम	मूल्य	आधुनिक रुपयों में
गाय	१ पल	८ रुपया
बकरी	१/२ „	४ „
भेड़	१/४ „	२ „
मेंढ़ा	१ „	८ „
हाथी	२५० से ५०० तक	२००० से ४००० तक
घोड़ा	„ „	„ „
ऊंट	७ या ८	५६ या ६४
भैंस	„	„

१. सुश्रृङ्गवर्णा सुदुघा बहुदुग्धा सुवत्सका।
तरुणरूपा वा महती मूल्याधिक्याय गौर्भवेत् ॥ ९५ ॥
पीतवत्सा प्रष्ठदुग्धा तन्मूल्यं राजतं पलम्।
अजायाश्च गवार्धं स्यान्मेष्या मूल्यमजार्धकम् ॥ ९६ ॥
दृढस्य युद्धशीलस्य पलं मेषस्य राजतम्।
दश वाष्टौ पलं मूल्यं राजतं तूत्तमं गवाम् ॥ ९७ ॥
पलं मेष्या अवेश्चापि राजतं मूल्यमुत्तमम्।
गवां समं सार्धगुणं महिष्या मूल्यमुत्तमम् ॥ ९८ ॥
सुश्रृङ्गवर्णं बलिनो वोढुः शीघ्रगमस्य च।
अष्टतालवृषस्यैव मूल्यं षष्टिपलं स्मृतम् ॥ ९९ ॥
महिषस्योत्तमं मूल्यं सप्त चाष्टौ पलानि च।
द्वित्रिचतुःसहस्रं वा मूल्यं श्रेष्ठं गजाश्वयोः ॥ १०० ॥
उष्ट्रस्य माहिषसमं मूल्यमुत्तममीरितम् ॥ १०१ ॥
योजनानां शतं गन्ता चैकेनाह्नाश्व उत्तमः।
मूल्यं तस्य सुवर्णानां श्रेष्ठं पञ्च शतानि हि ॥ १०२ ॥
त्रिंशद्योजनगन्ता वै उष्ट्रं श्रेष्ठस्तु तस्य वै।
पलानां तु शतं मूल्यं राजतं परिकीर्त्तितम् ॥ १०३ ॥
बलेनोच्चेन युद्धेन मदेनाप्रतिमो गजः।
यस्तस्य मूल्यं निष्काणां द्विसहस्रं प्रकीर्त्तितम् ॥ १०४ ॥ (शुक्र० अ० ४, ii.)

उत्तम पशु

नाम	मूल्य	आधुनिक रुपयों में
गाय	८ से १० पल	६४ से ८० रुपया
बकरी	१ "	८ "
भेड़	१ "	८ "
भैंस	८ से १५ "	६४ से १२० "
बैल	६० "	४८० "
सर्वोत्तम घोड़ा	५०० सुवर्ण	८००० "
" ऊँट	१०० पल	८०० "
" हाथी	२००० निष्क	६६६६ "

इस तालिका द्वारा हम तत्कालीन सामाजिक जीवन तथा पदार्थों के मूल्य की कल्पना बड़ी सुगमता से कर सकते हैं। यद्यपि इस तालिका द्वारा चाँदी की तत्कालीन क्रय शक्ति उसकी वर्तमान क्रय शक्ति की अपेक्षा अधिक प्रतीत होती है; तथापि वह मुगल कालीन भारत की अपेक्षा बहुत ही कम है। सम्राट् अकबर के समय इन पशुओं का मूल्य इस तालिका में वर्णित मूल्य की अपेक्षा बहुत कम था। इस का अभिप्राय यही है कि भारतवर्ष व्यावसायिक उन्नति की दृष्टि से शुक्रनीति के समय में मुगलकाल की अपेक्षा अधिक उन्नत था।

इसी प्रकार व्यापारियों के लाभ को भी नियन्त्रित करने का यत्न किया जाता था। "व्यापारियों को व्यवसाय में अपने व्यय का १/३२ से लेकर १/१६ तक (अर्थात् ३ १/८ से ६ १/४ प्रतिशत तक) लाभ लेना चाहिये। यह लाभ स्थानीय अवस्थाओं और लागत के दामों के अनुसार ही निश्चित होना चाहिये।"[1] स्थानीय अवस्थाओं का अभिप्राय आवागमन के व्यय, मण्डी की भूमि का किराया और राजकर आदि से है। प्रतीत होता है कि शुक्रनीति में वर्णित पूर्वोक्त वस्तुओं के दाम यही लाभ मान कर निश्चित किए गए हैं।

मूल्य और दाम— "एक चीज़ के बनने में या प्राप्ति में उस पर जितना व्यय हुआ है वह उसका मूल्य है। एक वस्तु का दाम मुख्यतया उसकी प्राप्ति में कष्ट तथा उसकी उपयोगिता के आधार पर ही निश्चित होता है।"[2]

---

१. द्वात्रिंशांशं षोड्शांशं लाभं पण्ये नियोजयेत्।
नान्यथा तद्व्ययं ज्ञात्वा प्रदेशाद्यनुरूपतः ॥ ३२० ॥ (शुक्र० अ० ४. v.)

२. येन व्ययेन संसिद्धस्तद् व्ययस्तस्य मूल्यकम् ॥ ३५६ ॥
सुलभासुलभत्वाच्चागुणत्व गुणसंश्रयैः।
यथा कामात् पदर्थानामर्घं हीनाधिकं भवेत् ॥ ३५७ ॥ (शुक्र० अ०२)

इस का अभिप्राय यही है कि वस्तुओं के दाम उन पर हुए व्यय तथा उन की उपयोगिता के आधार पर बदलते रहते हैं परन्तु सिक्कों तथा विनिमय मध्यम खानिजों-यथा हीरा-आदि के दामों में परिवर्तन नहीं आने देना चाहिये। अर्थात् जिस प्रकार अन्य पदार्थों के दामों में प्रतिदिन परिवर्तन आता रहता है, उस प्रकार सोना और चाँदी के सिक्कों के मूल्य में नहीं आना चाहिये। विशेषकर धातुओं का मूल्य गिरना तो व्यापार के लिये विशेष हानिकर है— "धातुओं और खनिजों के मूल्य में हीनता नहीं आनी चाहिये। इन को मूल्य-हानि सरकार के दोष से ही होती है।"[1]

मूल्य और दामों के सम्बन्ध में शुक्रनीति की यह उपर्युक्त स्थापना वर्तमान अर्थशास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार भी पूर्ण और तथ्य है। इस प्रकरण में हम शुक्रनीति में वर्णित उपयोगिता पर आश्रित मूल्य के सिद्धान्त की ओर भी अपने पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार मुख्यतया किसी वस्तु की उपयोगिता द्वारा ही उसका दाम निश्चित होता है— "किसी गुणहीन वस्तु का कोई दाम नहीं होता।"[2] "किसी वस्तु के कम, अधिक या मध्यम दाम उस की उपयोगिता के आश्रय पर ही निश्चित होते हैं। उसकी यह उपयोगिता बुद्धिमानों द्वारा ही निश्चित की जाती है।"[3] "जो वस्तुएँ बहुत अधिक उपयोगी और अत्यन्त दुर्लभ हैं उनके दाम उनकी माँग के अनुसार निश्चित होते हैं।"[4]

कृषि— भारत वर्ष की भूमि बहुत उपजाऊ होने से यह देश बहुत प्राचीन काल से कृषिप्रधान देश माना जाता है। यहां कृषि को सदैव आदर की दृष्टि से देखा जाता रहा है। आचार्य शुक्र ने व्यापार व्यवसाय की अपेक्षा कृषि को अधिक श्रेष्ठता दी है।[5] धन कमाने का यह सर्वोत्तम उपाय है, प्रत्येक व्यक्ति को धन कमाने के लिए कृषि, व्यापार या नौकरी का आश्रय लेना चाहिये।[6]

---

१. न हीनं मणिधातूनां क्वचिन् मूल्यं प्रकल्पयेत्।
मूल्य हानिस्तु चैतेषां राज दौष्ट्येन जायते ॥ ३५८ ॥ (शुक्र० अ० २.)

२. न मूल्यं गुणहीनस्य व्यवहाराक्षमस्य च।

३. नीच मध्योत्तमत्वन्तु सर्वस्मिन् मूल्य कल्पने।
चिन्तनीयं बुधैर्लोकाद् वस्तु जातस्य सर्वदा ॥ १०७ ॥

४. अत्यन्त रमणीयानां दुर्लभानां च कामतः ॥ ८३ ॥ (शुक्र० अ० ४. ii.)

५. कृषिस्तु चोत्तमावृत्तिर्या सरिन्मातृका मता ॥ २७२ ॥ (शुक्र० अ० ३)

६. कौसीद वृद्ध्या पण्येन कलाभिश्च प्रतिग्रहैः।
यया कया चापि वृत्या धनवान्स्यात्तथाचरेत् ॥ १८१ ॥ शुक्र० अ० ३)

सरकार को चाहिये कि वह राष्ट्र के व्यवसाय तथा कृषि दोनों की वृद्धि के लिए शिल्पियों तथा कृषकों को आवश्यकतानुसार सहायता दे, उन्हें इन कार्यों में अपनी ओर से नियुक्त करे।[1] कृषकों और जमींदारों के संघों का वर्णन हम पिछले अध्यायों में कर चुके हैं, इन संघों को यथेष्ट अधिकार प्राप्त थे। उन दिनों जिस प्रकार व्यवसाय में सम्मिलित उद्योग किया जाता था, उसी प्रकार कृषि में भी करने की प्रथा थी, इस के लिये ज्वाइन्ट स्टौक कम्पनियां बना करती थीं। उन दिनों भारतवर्ष के ग्रामों और नगरों में स्थानीय स्वराज्य प्रथा प्रचलित थी। इन ग्राम संघों में प्रायः कृषकों की अधिकता रहती थी, इस कारण कृषिकार्य खूब सम्मान पूर्ण कार्य समझा जाता था। कृषि में स्त्रियां भी अपने पतियों की सहायता करती थीं।[3]

सरकार कृषकों से भूमिकर लेती थी। भूमि की उपजाऊ शक्ति के अनुसार इस कर की दर भिन्न २ होती थी। आचार्य शुक्र ने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा है कि सरकार को भूमिकर उसी अवस्था में लेना चाहिये जब कि कृषकों को कृषि से पर्याप्त लाभ हो रहा हो। भूमिकर के रेट हम सातवें अध्याय में दे चुके हैं, ये रेट बहुत अधिक नहीं हैं, इस कारण हम सुगमता से अनुमान कर सकते हैं कि उस समय के कृषक बहुत आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करते होंगे।

---

१. कारु शिल्पि गणान राष्ट्रे रक्षेत् कार्यानुमानतः।
अधिकाश्च कृषि कृत्ये वा भृत्य वर्गे नियोजयेत् ॥ ४१ ॥

२. शुक्र० अ० ४ v. श्लोक १८

३. कृषि पण्यादि पुङ्कृत्ये भवेयुस्ताः प्रसाधिकाः ॥ २६ ॥ (शुक्र० अ० ४ vi.)
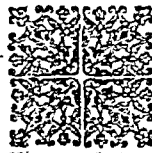
* नौवां अध्याय *

भौतिक सभ्यता और धर्म

यद्यपि धार्मिक तथा सामाजिक दृष्टि से शुक्रनीतिसार काल को 'आदर्श काल' कहने का साहस नहीं किया जा सकता, तथापि हम यह स्थापना बड़ी दृढ़ता से कर सकते हैं कि शुक्रनीति के आधार पर ज्ञात होने वाली भारतवर्ष की पुरानी भौतिक सभ्यता वर्त्तमान बृटिशकाल के भारतवर्ष की भौतिक अवस्था की अपेक्षा बहुत अधिक उन्नत है। इस अध्याय में हम शुक्रनीति के आधार पर फुटकर प्रमाण देकर अपनी यह स्थापना पुष्ट करने का यत्न करेंगे।

जंगलात— आचार्य शुक्र जंगलों की महत्ता से भली प्रकार परिचित थे; उन्होंने राष्ट्र के अन्य विभागों में जंगलात को भी एक पृथक् विभाग स्वीकार किया है, इस विभाग का अध्यक्ष अमात्य होता था। अमात्य जंगलों से सबन्ध रखने वाले सब अंक अपने पास रक्खा करता था।[1] इन सरकारी बन्द जंगलों द्वारा भी सरकार को अच्छी आय हुआ करती थी।

आचार्य्य शुक्र ने जंगलों के चार मुख्य उपयोग बताए हैं— १. मनुष्य जीवन को चार आश्रमों में विभक्त किया जा सकता है, इन में तृतीय आश्रम 'वानप्रस्थ' जंगलों में ही व्यतीत करना चाहिये।[2] २. राजा के शिकार के लिये कुछ जंगलों को सुरक्षित रखना चाहिये। शिकार करते हुए राजा को भयंकर पशुओं का ही वध करना चाहिये।[3] ३. जंगल सैनिक कार्यों के लिये बहुत उपयोगी हैं। जंगलों द्वारा यह कार्य दो प्रकार से किया जाता है, वनदुर्ग बना कर और वन्य सेना का प्रबन्ध करके। वन दुर्ग को शुक्रनीति

---

१. पुराणि च कति ग्रामा अरण्यानि च सन्ति हि ॥ १०२ ॥ (शुक्र० अ० २)

२. (शुक्र० अ० ४. ii. १ से ३.)

३. व्याघ्रादिभिर्वनचरैः मयूराद्यैश्च पक्षिभिः ।
क्रीड़येत् मृगयां कुर्यात् दुष्ट सत्वान्निपातयन् ॥ ३३१ ॥ (शुक्र० अ० १.)

में सर्व श्रेष्ठ किलों में गिना गया है।[१] वन में रहने वाली सेना को 'किरात' नाम से कहा गया है। प्राचीन युद्धों में शत्रुराष्ट्र के जंगलों में आग लगा कर उन्हें तङ्ग करने का यत्न किया जाता था। "किरात सेना" ऐसे समयों में जंगलों की रक्षा करती थी।[२] ४. जंगलों का चौथा उपयोग राष्ट्रीय आय में है। जंगलों से शहतीर, जलाने की लकड़ी, घास, बाँस आदिकी प्राप्ति होती है। सरकार इन सब वस्तुओं के ठेके दिया करती थी। इन ठेकेदारों को जो आय होती थी, उस पर भिन्न २ अनुपात से आय कर लगता था। इस आय कर का अनुपात हम राष्ट्रीय आय के प्रकरण में लिख चुके हैं।

इन जंगलों में आवश्यकतानुसार भिन्न २ किस्मों के वृक्ष, पौदे और झाड़ियाँ बोई जाया करती थीं। यह कार्य करने के लिये सरकार निपुण व्यक्तियों को नियुक्त करती थी। जंगलों में काँटेदार वृक्ष बोए जाते थे और शहरों के निकट फलों के वृक्ष छाया के लिये लगाए जाते थे।[३] इसी प्रकरण में बीसों प्रकार के फलों के नाम भी गिनाए गए हैं।

इस प्रकरण में यह बता देना भी आवश्यक होगा कि शुक्राचार्य ने अपने ग्रन्थ में आयुर्वदीय वनस्पतियों की उत्पत्ति की ओर भी पर्याप्त ध्यान दिया है। उनका कहना है कि संसार में ऐसा एक भी पौधा नहीं है जो किसी दवाई के काम न आसके।[४] उन्होंने वनस्पतियों के जो आयुर्वेदीय प्रयोग बताए हैं उन्हें हम प्रकरणान्तर होने से यहाँ नहीं दे सकते।

तोल और परिमाण—शुक्रनीति में एक रत्ती से लेकर एक टन तक के समान वाटों का वर्णन है। ये तोल निम्न लिखित हैं[५]—

---

१. महा कण्टक वृक्षौघैः व्याप्तं तद्वनदुर्गमम् ॥ ३ ॥ (शुक्र० अ० ४. vi.)

२. तृणान्न जल संम्भारा ये चान्ये शत्रुपोषकाः ।
सम्यङ् निरुध्य तान् यत्नात् परितश्चिरमासनात् ॥ २८६ ॥
(शुक्र० अ० ४. vii.)

३. शुक्रनीति अ० ४ vi. ४४ से ५०.

४. अमन्त्रं अक्षरं नास्ति नास्ति मूलं अनौषधम् ।
अयोग्यः पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभः ॥ १२६ ॥ (शुक्र ० अ० २.)

५. गुञ्जा माषस्तथा कर्षः पदार्धः प्रस्थ एव हि ।
यथोत्तरा दश गुणाः पञ्च प्रस्थस्य चढ़काः ॥ ३८५ ॥
ततश्चाष्टाढ़कः प्रोक्तो द्यर्मणस्तेतु विंशतिः ।
खारिका स्यान्नियते तद् देशे, देशे प्रमाणकम ॥ ३८६ ॥ (शुक्र० अ० २.)

परिमाण	वर्तमान पैमाने में				
१ गुञ्ज	...	...		...	१ रत्ती
१० गुञ्ज = १ माष	...	...		...	१० "
१० माष = १ कर्ष	...	...		१ तोला	४ "
१० कर्ष = १ पदार्ध	...		२ छटांक	——	४० "
१० पदार्ध = १ प्रस्थ	...	१ सेर	४ "	४ "	१६ "
५ प्रस्थ = १ आढक	...	६ "	८ "	——	८० "
८ आढक = १ अर्मण	१ मन	१२ "	१ "	१ "	६४ "
२० अर्मण = १ स्वरिका	२६ "	१ "	१२ "	३ "	७२ "

(लगभग १ टन)

एक चार अङ्गुल चौड़े, चार अङ्गुल लम्बे और पांच अङ्गुल गहरे बर्तन में जितना पानी आता है उसे एक प्रस्थ परिमाण कहते हैं।[१]

आचार्य शुक्र ने दो नाप प्रमाणिक माने हैं एक प्रजापति का नाप और दूसरा मनु का। ये दोनों नाप इस प्रकार हैं[२]—

प्रजापति		मनु		पैमाना
(क) ८ यव	...	५ यव	=	१ अंगुल
२४ अंगुल	...	२४ अंगुल	=	१ हाथ
४ हाथ	...	५ हाथ	=	१ दण्ड
अतः ७६८ यव	...	६०० यव	=	१ दण्ड

---

१. पञ्चाङ्गुलावटं पात्रं चतुरङ्गुल विस्तृतम् ।
प्रस्थ पादं तु तज्ज्ञेयं परिमाणे सदा बुधैः ॥ ३८७ ॥ (शुक्र० अ० २)

२. करैः पञ्च सहस्रैर्वा क्रोशः प्रोक्तः प्रजापतेः ।
हस्तैश्चतुसहस्रैर्वा मनोः क्रोशस्य विस्तरः ॥ १९४ ॥
सार्धं द्विकोटि हस्तैश्च क्षेत्रं क्रोशस्य ब्रह्मणः ।
पञ्चविंशशतैः प्रोक्तं क्षेत्रस्तद्विनिवर्तनम् ॥ १९५ ॥
मध्यमामध्यम पर्व दैर्घ्यं यच्च तदङ्गुलम् ।
यवोदरैरष्टभिस्तद्दैर्घ्यं स्थौल्यन्तु पञ्चभिः ॥ १९६ ॥
चतुर्विंशत्यङ्गुलैस्तै प्राजापत्यः करः स्मृतः ।
स श्रेष्ठो भूमिमाने तु तदन्यास्त्वधमा मताः ॥ १९७ ॥
चतुः करात्मको दण्डो लघुः पञ्च करात्मकः ।
तदङ्गुलं पञ्च यवै मानवं मानमेव तत् ॥ १९८ ॥
वसु षण्मुनि संख्याकैर्यवै दण्डः प्रजापतेः ।
यवोदरैः षट् शतैस्तु मानवो दण्ड उच्यते ॥ १९९ ॥

	प्रजापति		मनु		पैमाना
(ख)	५००० हाथ	...	४००० हाथ	=	१ कोश
	अतः ५००० × ५०००	...	४००० × ४०००		
	अर्थात्		अर्थात्		
	२५००० ००० वर्ग हाथ	...	१६००० ००० वर्ग०	=	१ वर्ग कोश
(ग)	२५०० परिवर्तन	...	...	=	१ वर्ग कोश
	अतः १०००० वर्ग हाथ	...	...	=	१ परि० क्षेत्र फल
	अतः १०० हाथ	...	...	=	परि० की एक भुजा
(घ)	२५ दण्ड	...	२५ दण्ड	=	१ निवर्तन
	अतः २५ × ७६८ यव अर्थात् १९२००	...	२५ × ६०० यव १५०० यव	=	१ निवर्तन
	अथवा २५ × ४ = १०० हाथ		२५ × ५ = १२५ हाथ	=	१ निवर्तन
	इसी प्रकार २५ × ४ × २४ अंगुल = २४०० अंगुल		२५ × ५ × २४ अंगुल = ३००० अंगुल	=	१ निवर्तन
	,, २५ × ४ × २४ × ८ १९२०० यव		२५ × ५ × २४ × ५ यव १५००० यव	=	१ निवर्तन

पञ्चविंशतिभिर्दण्डैरुभयोस्तु निवर्तनम् ।
त्रिंशच्छतैरंगुलैर्यवैस्त्रि पञ्चसहस्रकैः ॥ २०० ॥
सपाद शत हस्तैश्च मानवन्तु निवर्तनम् ।
ऊन विंशति साहस्रै द्विशतैश्च यवोदरैः ॥ २०१ ॥
चतुर्विंश शतैरेव ह्यंगुलैश्च निवर्तनम् ।
प्राजापत्यन्तु कथितं शतैश्चैव करैः सदा ॥ २०२ ॥
सपाद षट शता दण्डा उभयोश्च निवर्तने ।
निवर्तनान्यपि सदोभयोर्वै पञ्च विंशतिः ॥ २०३ ॥
पञ्च सप्तति साहस्रै रङ्गुलैः परिवर्तनम् ।
मानवं षष्टि साहस्रैः प्राजापत्यं तथाङ्गुलैः ॥ २०४ ॥
पञ्चविंशाधिकैर्हस्तैरेकत्रिंशच्छतैर्मनोः ।
परिवर्तनमाख्यातं पञ्चविंशशतैः करैः ॥ २०५ ॥
प्राजापत्यं पाद हीनं चतुर्लक्ष यवैर्मनोः ।
अशीत्यधिक साहस्र चतुर्लक्ष यवैः परम् ॥ २०६ ॥
निवर्तनानि द्वात्रिंशन्मनुमानेन तस्य वै ।
सप्तः सहस्र हस्ताःस्युर्दण्डाश्चाष्ट शतानि हि ॥ २०७ ॥

(ङ) २५ × २५ वर्ग दण्ड२ =६२५ वर्ग दण्ड	५×२५ वर्ग दण्ड =६२५ वर्ग दण्ड	१ निवर्तन का क्षेत्र फल
६२५ × ४ =२५०० हाथ	६२५ × ४ =३१२५ हाथ	१ परिवर्तन का क्षेत्र फल
अतः २५०० × २४ अंगुल = ६०००० अंगुल	३१२५ × २४ = ७५००० अंगुल	१ परिवर्तन या १ निवर्तन का क्षेत्र फल
६०००० × ८ यव =४८०००० यव	७५००० × ५ यव =३७५३०० यव	,, ,,
(च) १०० हाथ	१२५ हाथ	१ निवर्तन
	१२५ × ३२ हाथ = ४००० हाथ	३२ निवर्तन
	$\frac{4000}{५}$ ८०० दण्ड =	३२ निवर्तन

राजधानी— समग्र नगरों का निर्माण जिस ढंग से होता था, वह तत्कालीन भारत के लिये गौरव की वस्तु है । भारतवर्ष के प्राचीन नगरों के जो अवशेष आज उपलब्ध होते हैं वे प्रायः मुगलकालीन हैं; रात दिन किसी बाह्य आक्रमण की आशंका से भयभीत रहने के कारण ये नगर बहुत संकुचित और भद्दे रूप में बसाये गये हैं। परन्तु शुक्रनीति के आधार पर नगर निर्माण का जो ढंग ज्ञात होता है उस के आधार पर हम कह सकते हैं कि उस समय भारतवर्ष की भौतिक सभ्यता बहुत उन्नत अवस्था तक पहुँच चुकी थी ।

आचार्य शुक्र ने विस्तार से राजधानी का जो खाका खींचा है, उसके आधार पर हम तत्कालीन नगरनिर्माण कला का अनुमान सुगमता से कर सकते हैं । राजधानी का स्थान ऐसा होना चाहिये—"जो स्थान बहुत उपजाऊ और जल पूर्ण हो, जिस पर अच्छे २ बाग़ लगाए जा सकें, जहां लकड़ी आदि सुगमता से प्राप्त हो सके, जो स्थान किसी ऐसी नदी के निकट हो जिस से कि

पञ्चविंशतिभिर्दण्डैर्भुजः स्यात् परिवर्तने ।
करैरयुत संख्याकैः क्षेत्रं तस्य प्रकीर्तितम् ॥ २०८ ॥
चतुर्भुजैः समं प्रोक्तं कष्ट भू परिवर्तम् ॥ २०९ ॥ (शुक्र० अ० १)

समुद्र में जाया जा सके, जिससे पर्वत बहुत दूर न हो, जो सुन्दर और समतल हो, ऐसे स्थान पर राजधानी बनानी चाहिये।"[1]

राजधानी का चित्र यह होना चाहिये—"वह आधे चांद के समानगोलाई लिये हुए हो, अथवा चौकोन हो; उस के चारों ओर मोटी दीवार और खाई होनी चाहिये। वह अनेक भागों में विभक्त हो। राजधानी के मध्य में राजसभा भवन होना चाहिये। इस में पर्याप्त मात्रा में कूएं, तालाव और बावड़ियां होनी चाहियें। राजधानी में सड़कें, उद्यान, उपवन, नलके आदि यथेष्ट परिमाण में हों; यात्रियों के लिये धर्मशालाएं तथा सरायें भी होनी चाहियें। राजसभा भवन के चारों ओर राजमहल होने चाहियें; गौ, घोड़े और हाथियों के रहने के लिये अलग स्थान होना चाहिये। महल चतुर्भुज न हो कर पञ्चभुज, सप्तभुज आदि होने चाहिये, केवल साधारण कमरे और साधारण मकान ही चतुर्भुज होने चाहियें; राजमहलों के चारों ओर सुदृढ़ दीवार हो, जिस की प्रत्येक दिशा में एक एक फाटक हो। यह दीवार सुदृढ़ मशीनों (तोपों) से सुरक्षित हो; इस के अन्दर तीन बड़े आंगन होने चाहियें। फाटकों पर रात दिन पहरा रहना चाहिये।"[2]

---

१. नाना वृक्षलताकीर्णे पशु पक्षिगणावृते।
सुबहूदकधान्ये च तृणकाष्ठसुखे सदा॥ २१३॥
आसिन्धु नौगमाकूले नातिदूर महीधरे।
सुरम्य सम भूदेशे राजधानीं प्रकल्पयेत्॥ २१४॥

२. अर्धचन्द्रां वर्तुलां वा चतुरस्रां सुशोभनाम्।
सप्राकारां सपरिखां ग्रामादीनां निवेशिनीम्॥ २१५॥
सभामध्यां कूपवापी तड़ागादि युतां सदा।
चतुर्दिक्षु चतुर्द्वारां सुमार्गाराम वीथिकाम्॥ २१६॥
दृढ़सुरालय मठ पान्थशाला विराजिताम्।
कल्पयित्वा वसेत् तत्र सुगुप्तः सप्रजो नृपः॥ २१७॥
राजगृहं सभामध्यं गवाश्वगज शालिकम्।
प्रशस्तवापी कूदादि जलयन्त्रैः सुशोभितम्॥ २१८॥
सर्वतः स्यात् समभुजं दक्षिणोच्चमुदङ् गतम्।
शालां विना नैकभुजं तथा विषम बाहुकम्॥ २१९॥
प्रायः शालो नैकभुजा चतुः शालं विना शुभा।
शस्त्रास्त्रधारि संयुक्त प्राकारं सुगुप्तयन्त्रकम्॥ २२०॥
सत्रिकक्ष चतुर्द्वारं चतुर्दिक्षु सुशोभितम्।
दिवारात्रौ सशस्त्रास्त्रैः प्रतिकक्षासु गोपितम्॥ २२१॥ (शुक्र० अ० १)

राजनिवास का क्रम इस प्रकार होना चाहिये—"पूर्व की ओर राजा का स्नानागार, पाकशाला, भोजनालय, उपासना गृह और कपड़े धोने के भवन होने चाहियें । दक्षिण की ओर शयनागार, पानागार, विहार भवन, रोदनगृह, भण्डार और परिचारक गणों के कमरे होने चाहियें, पश्चिम की ओर राजकीय पशुशाला, गोशाला, हस्तिशाला, मृगशाला आदि होनी चाहिये और उत्तर की ओर शस्त्रागार, व्यायामशाला, घुड़साल, रथ आदि रखने के कमरे, पुस्तकालय, अन्वेशण विभाग के भवन और रक्षकों की बैरकें होनी चाहियें । ये भवन राजा की, इच्छानुसार बनने चाहियें । राजनिवास के उत्तर की ओर राजा की शिल्पशाला होनी चाहिये ।" [1]

भवन निर्माण— एक भवन (Hall) की दीवार की ऊँचाई उस की लम्बाई की अपेक्षा $\frac{1}{5}$ या इस से अधिक हो । भवन की चौड़ाई उस की लम्बाई का $\frac{1}{6}$ या इस से अधिक हो । यह परिमाण एक तल्ला मकानों के लिये ही है, दुमञ्जले मकानों का अनुपात इस से भिन्न होना चाहिये । एक भवन के कमरों को एक दूसरे से जुदा करने के लिये दीवारों या खम्बों से काम लेना चाहिये । एक घर में तीन, पांच, या सात कमरे होने चाहियें । साधारणतया मकानों के फर्श की ऊँचाई मकान की कुल ऊँचाई से $\frac{1}{8}$ हो । पास के घरों की खिड़कियां आमने सामने नहीं होनी चाहियें । खपरैल से बनी हुई छतें बीच में से ऊँची होनी चाहियें ताकि उन पर पानी न खड़ा हो सके । कमरे की छत और फर्श कमजोर या झुके हुए न हों ।" [2]

---

१. वस्त्रादि मार्जनार्थं च स्नानार्थं यजनार्थकम् ।
भोजनार्थञ्च पाकार्थं पूर्वस्यां कल्पयेत् गृहान् ॥ २२३ ॥
निद्रार्थञ्च विहारार्थं मानार्थं रोदनार्थकम् ।
धान्यार्थं घरठाद्यर्थं दासी दासार्थमेव च ॥ २२४ ॥
उत्सर्गार्थं गृहान् कुर्याद्दक्षिणस्यामनुक्रमात् ।
गोमृगोष्ट्र गजाद्यर्थं गृहान् प्रत्यक् प्रकल्पयेत् ॥ २२५ ॥
रथवाज्यस्त्र शस्त्रार्थं व्यायामायामिकार्थकम् ।
वस्त्रार्थकन्तु द्रव्यार्थं विद्याभ्यासार्थ मेव च ॥ २२६ ॥
धर्माधिकरणं शिल्पशालां कुर्यात् उदग् गृहात् ।

२. पञ्चमांशाधिकच्छाया भित्तिविस्तारतो गृहे ॥ २२८ ॥
कोष्ट विस्तार षष्ठांश स्थूला सा च प्रकीर्तिता ।
एकभूमेरिदं मानं ऊर्ध्वमूर्ध्वं समन्ततः ॥ २२९ ॥
स्तम्भैर्वाभृत्तिभिर्वापि पृथक्कोष्टानि संन्यसेत् ।
त्रिकोष्टं पञ्च कोष्टं वा सप्त कोष्टं गृहं स्मृतम् ॥ २३० ॥

सभा भवन— राष्ट्र की समस्याओं तथा शासन प्रवन्ध के मामलों पर विचार करने के लिये 'सभा भवन' बनाया जाता था । राजसभा तथा मन्त्री परिषद् की बैठकें इसी भवन में होती थीं ।[1] यह भवन बहुत सुन्दर और खूब विस्तार वाला होता था—"सभा भवन के कमरों की दीवारों में यथेष्ट दरवाजे और खिड़कियां होनी चाहियें । मध्य के कमरे (Hall) की चौड़ाई पास के कमरों की चौड़ाई से दुगनी होनी चाहिये । भवन की ऊँचाई उस की चौड़ाई का $\frac{1}{5}$ या इस से अधिक होनी चाहिये । बीच का बड़ा कमरा एक तल्ला और दोनों भुजाओं के कमरे दो तल्ले होने चाहियें । सभा भवन खूब सुन्दर हो, इस के अन्दर उत्तम २ स्तम्भ और बाहर यथेष्ट सड़कें होनी चाहियें । सभाभवन में फव्वारे, वाद्य यन्त्र, बड़े २ पंखे, क्लौक, दर्पण और चित्र लगे होने चाहियें ।"[2]

"सभाभवन के पूर्व और उत्तर में मन्त्रियों, लेखकों, सभा के सदस्यों और अधिकारियों के रहने का प्रवन्ध हो । इसी ओर काफ़ी अन्तर छोड़ कर सेना के निवास स्थान होने चाहियें ।"[3]

सरायें— शुक्रनीति के अनुसार आवागमन के लिये सभी आवश्यक प्रवन्ध करना राष्ट्र का कार्य है । अतः आचार्य शुक्र ने जहां सड़कों के सम्बन्ध में

द्वारार्थं ग्रष्टधा भक्तं द्वारस्यांशौ तु मध्यमौ ॥ २३१ ॥
गृहपीठं चतुर्थांशमुच्छ्रायस्य प्रकल्पयेत् ॥ २३४ ॥
विस्तारार्धांश मध्योच्चा छदिः खर्पर सम्भवा ।
पतितं तु जलं तस्यां सुखं गच्छति याप्यधः ॥ २३६ ॥
हीना निम्ना छदिर्न स्यात् तादृक् कोष्टस्य विस्तरः ॥ २३७ ॥ (शुक्र० अ० १)

१. एवं विधा राजसभा मन्त्रार्था कार्य दर्शने ॥ २५० ॥

२. परितः प्रतिकोष्टे तु वातायन विराजिता ।
पार्श्व कोष्टात् तु द्विगुणो मध्य कोष्टस्य विस्तरः ॥ २४५ ॥
पञ्चमांशाधिकं तूच्चं मध्य कोष्टस्य विस्तरात् ।
विस्तारेण समं तूच्चं पञ्चमांशाधिकं तु वा ॥ २४६ ॥
कोष्टकानाञ्च भूमिर्वा छदिर्वा तत्र कारयेत् ।
द्विभूमिके पार्श्व कोष्टे मध्यमं त्वेकभूमिकम् ॥ २४७ ॥
पृथक्स्तम्भान्तसत्कोष्ठा चतुर्मार्गगमा शुभा ।
जलोर्ध्व पाति यन्त्रैश्च युता सुस्वर यन्त्रकैः ॥ २४८ ॥
वातप्रेरक यन्त्रैश्च यन्त्रैः कालप्रवोधकैः ।
प्रतिष्ठिता च स्वादर्शैस्तथा च प्रतिरूपकैः ॥ २४९ ॥

३. तथा विधामात्यलेख्य सभ्याधिकृत शालिका ॥ २५० ॥
कर्तव्याश्च पृथक् त्वेताश्चदर्याच पृथक् पृथक् ।
उदग् द्विशत हस्तां प्राक् सेना संवेशनार्थिकाम् ॥ २५१ ॥ (शुक्र० अ० १)

खूब विस्तार से निर्देश दिए हैं वहां यात्रियों के आराम के लिये निवास स्थानों के प्रबन्ध का वर्णन भी किया है। इन सरायों का निरीक्षण करना नगर तथा ग्राम के अधिकारियों का आवश्यक कर्तव्य होता था। यह निरीक्षण राजनीतिक तथा सामाजिक दोनों दृष्टियों से किया जाता था—"प्रत्येक नगर में एक एक सराय होनी चाहिये। ग्राम के अधिकारियों का यह कर्तव्य है कि वे प्रतिदिन सराय का स्वयं निरीक्षण करें। जब सराय में कोई यात्री आए तो सराय के प्रबन्धकर्त्ता को उस से निम्नलिखित प्रश्न करने चाहिए—तुम कहाँ से और किस उद्देश्य से आए हो? तुम ने कहाँ जाना है? तुम्हारे साथ और आदमी हैं या नहीं? तुम्हारे पास कोई हथियार या सवारी है? अपनी जाति, कुल और निवास स्थान का ठीक २ पता दो?—ये सब बातें प्रबन्धकर्ता को अपने रजिस्टर में दर्ज कर लेनी चाहिये। यात्री से हथियार लेकर उसे कह देना चाहिये कि वह सराय में खूब सावधान होकर सोए। रात को सराय में जितने आदमी हों उन की गिनती कर के दरवाजा बन्द कर देना चाहिए। प्रातः काल सब यात्रियों को जगा कर उन्हें हथियार दे देने चाहिये। रात को सराय पर पहरा रहना चाहिये। यात्रियों को नगर की सीमा तक विदाई देने के लिये नगर के किसी आदमी को साथ कर देना चाहिए।"[1]

विद्याएं—पिछले अध्याय में हम ६४ कलाओं (Arts) का वर्णन कर चुके हैं। यहां ३२ विद्याओं (Sciences) का निर्देश कर देना उपयोगी होगा। ये विद्याएं निम्नलिखित हैं—[2]

---

१. ग्राम द्वयान्तरे चैव पान्थ शालां प्रकल्पयेत् ॥ २६९ ॥
नित्यं सम्मार्जिताञ्चैव ग्रामपैश्च सुगोपिताम् ।
तत्रागतन्तु सम्पृच्छेत् पान्थं शालाधिपः सदा ॥ २७० ॥
प्रयातोसि कुतः कस्मात् क्वगच्छसि ऋतंवद ।
ससहायोऽसहायो वा किं सशस्त्रः सवाहनः ॥ २७२ ॥
काजातिः किं कुलं नाम स्थितिः कुत्रास्ति ते चिरम् ।
इति पृष्ट्वा लिखेत् सायं शस्त्रं तस्य प्रगृह्य च ॥ २७२ ॥
सावधान मना भूत्वा स्वापं कुर्वति शासयेत् ।
तत्रस्थान् गणयित्वा तु शाला द्वारं पिधाय च ॥ २७३ ॥
संरक्षयेद् यामिकैश्च प्रभाते तान् प्रबोधयेत् ।
शस्त्रं दद्यात् च गणयेत् द्वारमुद्घाट्य मोचयेत् ॥ २७४ ॥
कुर्यात् सहायं सीमान्तं तेषां ग्राम्य जनः सदा ॥ २७५ ॥ (शुक्र० अ० १)

२. ऋग्यजुः साम चायर्वा वेदा आयुर्धनुःक्रमात् ।
गान्धर्वश्चैव तन्त्राणि उपवेदाः प्रकीर्तिताः ॥ २७ ॥

१. वेद	४
२. उपवेद	४
३. वेदाङ्ग	६
४. दर्शन	६
५. इतिहास	१
६. पुराण	१
७. स्मृति	१
८. नास्तिक मत	१
९. अर्थशास्त्र	१
१०. कामशास्त्र	१
११. शिल्प शास्त्र	१
१२. अलंकार	१
१३. काव्य	१
१४. देश भाषा	१
१५. अवसरोक्ति	१
१६. यवन मत	१
योग ...	३२

शुक्रनीति में इन विद्याओं का विस्तृत परिचय भी दिया गया है; हम इन में से कुछ विद्याओं का संक्षिप्त परिचय मात्र देना ही पर्याप्त समझते हैं–'नास्तिक मत' का अभिप्राय उस दार्शनिक सम्प्रदाय से है जो वेदों की प्रामाणिकता और ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं करते। राज वंशों की तालिका तथा चरित्र वर्णन को पुराण कहते हैं। 'अर्थशास्त्र' में राजनीति (politics) और अर्थशास्त्र (ecomonics) दोनों ही अन्तर्गत हैं। बातचीत और शिष्टाचार की विद्या में खूब प्रवीण होना 'अवसरोक्ति' में

शिक्षा व्याकरणं कल्पो निरुक्तं ज्योतिषं तथा।
छन्दः षडङ्गानीमानि वेदान्तं कीर्त्तितानि हि ॥ २८ ॥
मीमांसा तर्क सांख्यानि वेदान्तो योग एवच।
इतिहासाः पुराणानि स्मृतयो नास्तिकं मतम्॥ २९ ॥
अर्थशास्त्रं कामशास्त्रं तथा शिल्पमलङ्कृतिः।
काव्यानि देश भाषावसरोक्तिर्यावनं मतम्।
देशादि धर्मा द्वात्रिंशदेता विद्याभि संज्ञिताः ॥ ३० ॥ (शुक्र० अ० ४. iii.)

शामिल है। भिन्न २ देशों की भाषा में प्रवीणता प्राप्त करना 'देश भाषा' कहाता है। 'यवन मत' का अभिप्राय दार्शनिकों के उस सम्प्रदाय से है जो कि निराकार ईश्वर की सत्ता को तो स्वीकार करते हैं परन्तु वेद की प्रामाणिकता नहीं मानते। [1]

राजकीय पत्र—चतुर्थ अध्याय में हम राजकीय मुद्रा तथा लिखित राजाज्ञाओं का वर्णन कर चुके हैं। शुक्रनीति के अनुसार राष्ट्रीय मुद्रा से अंकित हुए बिना राष्ट्र का कोई भी नियम राष्ट्र में प्रामाणिक रूप से प्रचलित नहीं किया जा सकता। उस समय राज्य के प्रत्येक कार्य के लिए भिन्न २ वृत्तलेख्य भी (Documents) प्रकाशित किये जाते थे। ये वृत्तलेख्य १६ प्रकार के थे। इन के नाम तथा कार्य निम्नलिखित हैं— [2]

१. जय पत्र—न्यायालय का निर्णय।
२. आज्ञापत्र—अधीनस्थ राजाओं और ज़िलाध्यक्षादियों को विशेष अधिकार देकर उन्हें कोई विशेष कार्य्य सौंपना।
३. प्रज्ञान पत्र—पुरोहितों को राजकीय निर्देश।
४. शासन पत्र—प्रजा को सूचना (Govt. notifications)।
५. प्रसाद पत्र—कृपा के रूप में राजकीय आय का कुछ भाग देना।
६. भोग पत्र— कुछ समय के लिए किसी को कोई वस्तु देना।
७. भाग पत्र— सम्पत्ति का विभाग।
८. दान पात्र— कोई चीज़ किसी को दे देना।
९. क्रय पत्र —खरीदना या बेचना।
१०. सादि पत्र —गिरवी का वर्णन पत्र जिस पर साक्षियों के हस्ताक्षर होते थे।
११. सत्य पत्र —दो नगरों का पारस्परिक समझौता।
१२. संवित पत्र— संधी।
१३. ऋण पत्र —उधार।
१४. शुद्धि पत्र — प्रायश्चित्त का प्रमाण पत्र।
१५. सामयिक पत्र—ज्वाइण्ट स्टौक कम्पनियों का कागज (Share paper.)।
१६. क्षेम पत्र— दो व्यक्तियों का किसी मामले पर वह का समझौता जो न्यायालय में जाने से पूर्व हो जाय।

---

१. शुक्र० अ० ४. iii श्लोक ३२ से ६४ तक
२. शुक्र० अ० २ श्लोक २९९ से ३१५ तक।

इन सब लेख्य पत्रों पर अपने २ विभाग की राजकीय मुद्रा लगती थी, मुद्राङ्कित होने के अनन्तर ही ये प्रामाणिक माने जाते थे।

खनिज—आचार्य शुक्र ने सुमन्त्र के कार्यों का वर्णन करते हुए उसे खानों से प्राप्त होने वाली आय की गणना रखने का भी निर्देश दिया है।[1] खनिज कर उन दिनों राष्ट्रीय आय का एक उत्तम साधन था। खनिजों पर जिस प्रकार की दर से खनिज कर लगा करता था उस का वर्णन हम राष्ट्रीय आय के प्रकरण में कर चुके हैं। केवल कानों से निकाले जाते समय तक ही खनिजों पर राष्ट्रीय निरीक्षण सीमित न था अपितु लोहार, सुनार आदि खनिज पदार्थों के व्यवसाइयों पर भी सरकार का यथेष्ट नियन्त्रण रहता था, इन्हें सरकार की ओर से यथायोग्य सहायता भी दी जाया करती थी।[2] धातुओं में धोखे से मिलावट करने वाले को सरकार दण्ड देती थी।[3]

खनिजों से हम मुख्यतया धातुओं का ही अभिप्राय लेते हैं। शुक्रनीति में ७ धातुओं का वर्णन है—"सुवर्ण (सोना), रजत (चाँदी), ताम्र (ताम्बा) वङ्ग (टीन), सीसा (सीसा), रङ्गक (रांगा), और लोह (लोहा)। इन के अतिरिक्त अन्य धातुएं संकर होती हैं, जो इन में से किन्हीं धातुओं को परस्पर मिलाने से बनती हैं। इन में सोना सर्वोत्तम है, फिर क्रम से अन्य धातुएं श्रेष्ठ हैं।[4]

इन धातुओं को मुख्यतया चार कार्य में प्रयुक्त किया जाता था—१. आभूषण, २. सिक्के, ३. दवाइयां और ४. सजावट। आभूषण दो प्रकार के होते थे— i शारीरिक शोभा बढ़ाने के लिए स्त्री और पुरुष भिन्न २ प्रकार के आभूषण धारण किया करते थे।[5] पुरुषों का आभूषण धारण करना कोई

---

१. शुक्र० अ० २. श्लो० १०५।

२. शुक्र० अ० ४. iv. श्लो० ४३।

३. शुक्र१ अ० ४ v श्लोक ३३०।

४. सुवर्णं रजतं ताम्रं वङ्गं सीसं च रङ्गकम्।
लोहं च धातवः सप्त ह्येषामन्ये तु सङ्कराः ॥ ८८ ॥
यथा पूर्वं तु श्रेष्ठं स्यात् स्वर्णं श्रेष्ठतमं मतम्।
वङ्ग ताम्र भवं कांस्यं पित्तलं ताम्र रंगजम् ॥ ८९ ॥
(शुक्र० अ० ४ ii)

५. न भूषयत्यलङ्कारो न राज्यं न च पौरुषम्।
न विद्या न धनं तादृग् यादृग् सौजन्य भूषणम् ॥ २३४ ॥

विचित्र बात नहीं है आज कल भी पुरुष सोने की जंजीर और अंगूठी आदि के रूप में आभूषण धारण करते हैं । ii राजकीय इनाम जो पदक आदि के रूप में किसी सेवा के बदले दिये जाते थे। इन पदकों को चिन्ह रूप में राजकीय सेवक धारण करते थे। इन की भिन्न २ श्रेणियां (Orders) थीं। राजा का चिन्ह सब से मुख्य (grand master of the orders) समझा जाता था ।[१] सिक्कों का वर्णन हम आठवें अध्याय में कर चुके हैं। पूर्वोक्त ६४ कलाओं में से १० कलाएं ऐसी हैं जिन का सम्बन्ध खनिजों-मुख्यतया धातुओं से है-[२] धातुओं को औषधियों में मिलाना, धातुओं का संश्लेषण और विश्लेषण दो धातुओं को मिला कर नकली धातु बनाना, क्षार और लवण बनाना, धातुओं को साफ करना, उन पर पौलिश करना, धातुओं को रंगना, आभूषण बनाना, धातुओं से चित्रकारी के काम लेना, उनके यन्त्र, बर्तन आदि बनाना।

नकली धातुओं की परीक्षा करने के लिये शुक्रनीति में दो उपाय बताए गए हैं-"भिन्न २ धातुओं के एक समान भार के भिन्न २ खण्ड लिए जाँय तो उन सब के आयतन में अन्तर होगा। सोने का टुकड़ा सब से छोटा होगा क्यों कि वह सब से अधिक भारी होता है।"[३] यह सिद्धान्त धातुओं की अपेक्षिक घनता पर आश्रित है। इस आपेक्षिक घनता के आधार पर धातुओं की परख की जा सकती है। दूसरा उपाय निम्नलिखित है— "दो समान आकार (आयतन) के धातु खण्डों को ले लिया जाय, इन में से एक शुद्ध धातु का हो और दूसरे में मिलावट हो। इन दोनों खण्डों को तोला जाय तो इन के भार में अन्तर होगा।"[४] इस भार के अन्तर से उसकी मिलावट पहचानी जा सकती है। सब धातुओं का पारस्परिक आपेक्षिक भार जान कर यह परख

---

१. यत्कार्ये नियुक्ता ये कार्याङ्कै रङ्कयेच्च तान् ।
लोहजैस्ताम्रजै रीतिभवै रजत सम्भवैः ॥ २३४ ॥
सौवर्णै रत्नजैर्वापि यथा योग्यै स्वलाञ्छनैः ।
प्रविज्ञानाय दूरात्तु वस्त्रैश्च मुकुटैरपि ॥ ४२४ ॥
वाद्य वाहन भेदैश्च भृत्यान् कुर्यात् पृथक् पृथक् ।
स्वविशिष्टं च यच्चिन्हं न दद्याद् कस्यचिन्नृपः ॥ ४२५ ॥
(शुक्र० अ०-२)

२. शुक्र० अ० ४. iii ७५ से ९० तक ।

३. मानं सममपि स्वर्णं तनु स्यात् पृथुलाः परे ॥ ९० ॥

४. एक छिद्र समाकृष्टे समखण्डे द्वयोर्यदा ।
धातोः सूत्रं मानसमं निर्दुष्टस्य भवेत् तदा ॥ ९१ ॥

करनी चाहिये। उदाहणार्थ सोने और ताम्वे के एक ही समान आयतन वाले खण्डों के भार में १६ और ८ का अनुपात होगा।

आचार्य शुक्र के समय सोने और चाँदी के आपेक्षिक मूल्य का अनुपात १ और १६ था।[1] आज कल यह अनुपात १ और २४ तक पहुंच गया है। इस प्रकार चाँदी का मूल्य तब से लेकर अब तक के अन्तर में बहुत गिर गया है। भारतीत अर्थशास्त्र के अध्ययन में यह बात विशेष महत्वपूर्ण है।

इन सब फुटकर प्रमाणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि शुक्रनीतिसार कालीन भारत की भौतिक सभ्यता उस समय के अन्य संसार की अपेक्षा बहुत अधिक उन्नत थी।

धर्म और सामाजिक दशा.

शुक्रनीतिसार द्वारा उस समय की धार्मिक या सामाजिक दशा का अनुमान करना बहुत कठिन है। आचार्य शुक्र ने अपने इस ग्रन्थ में धर्म का वर्णन नहीं किया है। प्रकरण वश उन्होंने आचार की महत्ता को बहुत मुख्यता दी है। राजा के वैयक्तिक चरित्र के आदर्शों पर विचार करते हुए उन्होंने उसे पूर्णतया संयमी, दयालु, निस्वार्थ सेवी और सच्चा होने का आदेश दिया है। खास कर इन्द्रिय निग्रह पर उन्होंने बहुत अधिक बल दिया है। इस के लिये नहुष, रावण आदि कामी राजाओं के ऐतिहासिक दृष्टाँत भी दिए हैं।[2]

शराब और जूआ—परन्तु तत्कालीन सर्व साधारण समाज की धार्मिक दशा बहुत उन्नत नहीं जान पड़ती। उस समय शराब पीना, जूआ खेलना और वेश्याओं का नाच आदि कार्य प्रारम्भ हो चुके थे। तथापि सरकार इन बातों को मनुष्य समाज की कमजोरी ही समझती थी, इस लिये खुले आम यह कार्य करने की आज्ञा न थी, सरकारी आज्ञा लिये विना शराब वेचना, जूआ खेलना आदि कार्य नियम विरुद्ध थे। सरकारी आज्ञापत्र (Licence) लेकर ही शराब वेची जाती थी।[3] शिकार के लिये भी आज्ञापत्र लेना आवश्यक था। शराब की दूकाने शहर से बाहर होती थीं। शराबी केवल उन्हीं दूकानों पर ही

---

१. रजतं षोड़शगुणं भवेत् स्वर्णस्य मूल्यकम्॥ ९२॥ (शुक्र० अ० ४. ii.)
२. शुक्र० अ० १ श्लोक ९९ से ११४.
३. शुक्र० अ० १ श्लोक २०१-२.

शराब पी सकते थे; अपने घरों में नहीं। ये शराब की दुकानें केवल रात के समय ही खुलती थीं।[१]

प्रतिमा निर्माण— उस समय पौराणिक देवताओं का प्रतिमानिर्माण प्रारम्भ होचुका था। शुक्रनीति में प्रतिमा निर्माण और प्रतिमा स्थापन समारोह आदि का विस्तार के साथ वर्णन है। "देव-मन्दिर के आँगन में देवता के वाहन (सवारी) की मूर्ति की स्थापना करनी चाहिये। मुख्य वाहन गरुड़ है। उसकी मूर्ति इस प्रकार बनानी चाहिये—मूर्ति की बाहुएँ, चोंच, आँखें और पंख होने चाहिये। वह मनुष्य के आकार की हो परन्तु उस के मुंह पर चोंच लगी हो, सिर पर मुकुट और शरीर पर कवच हो; उस के हाथ बँधे हों, और सिर नीचे को झुका हो; उस की आँखें अपने प्रभु के चरण कमलों की ओर झुकी हुई हों।"[२]

"जिस जिस देवता के जो जो पक्षी, शेर या बैल वाहन हैं उन की प्रतिमा को उन देव-मन्दिरों के आँगन में बैठाना चाहिये।"[३] इस के बाद बैल आदि की मूर्त्ति का वर्णन किया गया है।

देव मूर्त्तियों में मुख्यतया गणपति, शक्ति, बाल, सप्तताल और पैशाची मूर्त्तिका वर्णन किया गया है। हम उदाहरणके लिये गणपतिकी मूर्ति का संक्षिप्त स्वरूप यहाँ उद्धृत करते हैं— "गणपति (गणेश) की मूर्ति का मुंह हाथी की तरह और शेष शरीर मनुष्य के ढंग का होना चाहिये। उस के कान लम्बे, पेट मोटा, कन्धे, हाथ तथा पैर छोटे परन्तु मोटे होने चाहियें; सूँड लम्बी और बांयाँ दाँत टूटा हो, सूंड और दाँत खूब सुन्दर ढंग से मुड़े हों; सारा शरीर खूब गढ़ा हुवा और मोटा हो, वह अपने वाहन पर सवार हों।"[४] इसके अनन्तर मूर्त्ति के अंगों का ठीक-ठीक माप दिया गया है।

---

१. गञ्जा गृहं पृथक् ग्रामात् तस्मिन् रक्षेत्तु मद्यपान् ॥ ४२ ॥
न दिवा मद्य पानंतु राष्ट्रे कुर्याद्धि कश्चन ॥ ४३ ॥ (शुक्र० अ७ ४. iv.)

२. देवतायाश्च पुरतो मण्डपे वाहनं न्यसेत्।
द्विबाहुर्गरुड़ः प्रोक्त सुचञ्चु स्वक्षिपक्ष युक् ॥ १६१ ॥
नराकृतिश्चञ्चु मुखो मुकुटी कवचाङ्गदी।
बद्धाञ्जलिर्नम्र शीर्षः सेव्यपादाब्ज लोचनः ॥ १६२ ॥

३. वाहनत्वं गता ये ये देवतानां च पक्षिणः।
काम रूप धरास्ते ते तथा सिंह वृषादयः ॥ १६३ ॥

४. गजाननं नराकारं ध्वस्त कर्णं पृथूदरम्।
बृहत्संक्षिप्त गहन पीन स्कन्धाङ्घ्रि पाणिनम् ॥ १६८ ॥ (शुक्र० अ० ४. iv.)

"शिल्पी को चाहिये कि वह मूर्ति को युवावस्था युक्त ही बनाए, आवश्यकता हो तो बालकपन का रूप भी दिया जा सकता है परन्तु बुढ़ापे का रूप कभी नहीं देना चाहिये।"[१]

इस प्रकार मूर्त्ति स्थापन का उद्देश्य क्या था, इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। शायद इन पौराणिक देवताओं की प्रतिमा-पूजा उस समय प्रारम्भ हो चुकी हो; अथवा इन का उद्देश्य पुराणों में वर्णित ईश्वर की भिन्न-भिन्न शक्तियों के प्रतिनिधि रूप आलंकारिक देवताओं की भावपूर्ण मूर्त्तियाँ स्थापित करना ही हो;— जिस प्रकार कि आजकल पाश्चात्यदेशों में 'स्वतन्त्रता' "लक्ष्मी" 'सरस्वती' आदि की भावपूर्ण मूर्त्तियाँ बनाई जाती हैं। शुक्रनीति में जहाँ इन देव-मूर्त्तियों के निर्माण का वर्णन खूब विस्तार के साथ किया गया है वहाँ इन की पूजा के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा गया। इसी कारण हमें उस समय मूर्त्तिपूजा प्रारम्भ हो गई थी, यह स्थापना करते हुए संकोच होता है। पूजा के उद्देश्य के विना ही प्रतिमा स्थापना के सम्बन्ध में हम अधिक विस्तार के साथ अपनी "पुराणमत पर्यालोचन" नामक पुस्तक में लिख चुके हैं। शुक्रनीति में इस सम्बन्ध में केवल एक ही श्लोक उपलब्ध होता है— "ध्यान योग की सिद्धि के लिये प्रतिमा निर्माण किया जाता है।"[२] परन्तु केवल इसी एक प्रमाण के आधार पर कोई निश्चित स्थापना नहीं की जा सकती।

सरकार और देव मंदिर— यह प्रतीत होता है कि तत्कालीन भारतवासी प्रायः इन उपर्युक्त देवों की प्रतिमाएँ ही मन्दिरों में स्थापित किया करते थे। सरकार स्वयं धर्म में कोई हस्ताक्षेप न करती थी, परन्तु क्योंकि प्रजा की प्रत्येक आवश्यकता को पूरा करना उस का कार्य था, अतः जनता की इच्छा पर वह उपर्युक्त मन्दिरों का निर्माण कराती थी। इन देवताओं के नाम पर होने वाले मेलों तथा उत्सवों का प्रबन्ध भी सरकार ही करती थी। परन्तु यह बात विशेपतया ध्यान में रखने योग्य है कि आचार्य शुक्र ने स्पष्ट शब्दों राजा को प्रजा के परम्परागत प्रचलित उत्सवों में ही भाग लेने का आदेश दिया है। उसे स्वयं

वृहच्छ्रुपदं भग्न वामरदमीप्सित वाहनम्।
ईषत् कुटिल दण्डाग्र वामगुण्डमदक्षिणम्।
सन्ध्यस्थि धमनी गूढं कुर्यान्मानमितं सदा॥ १६९॥

१. क्वचित्तु बाल सदृशं सदैव तरुणं वपुः।
मूर्त्तीनां कल्पयेच्छिल्पी न वृद्ध सदृशं क्वचित्॥ २०१॥ (शुक्र० अ० ४. vi.)

२. ध्यान योगस्य संसिद्ध्यै प्रतिमा लक्षणं स्मृतम्॥ ४१॥ (शुक्र० अ० ४. iv.)

अपनी इच्छा से किसी धार्मिक मामले में दखल नहीं देना चाहिये, और किसी धार्मिक प्रथा में परिवर्तन लाने के लिये राजशक्ति का उपयोग भी न करना चाहिये—

"राजा को चाहिये कि वह राष्ट्र में इन देव-मन्दिरों की स्थापना करे और प्रति वर्ष इन के उत्सवों का प्रवन्ध करे। देव-मन्दिर में अप्रमाणिक परिमाण वाली और टूटी मूर्त्ति को नहीं रखना चाहिये, देव-मन्दिरों की मुरम्मत कराते रहना चाहिये। देव-मूर्तियों के निमित्त से उनके सन्मुख जो नाच आदि कराया जाता है उसे देख कर राजा को स्वयं भोगी नहीं बनना चाहिये। सर्वसाधारण प्रजा में जो त्योहार और उत्सव परम्परा से चले आरहे हैं, राजा को केवल उन्हीं उत्सवों के मनाने का प्रबन्ध करना चाहिये। उसे प्रजा की प्रसन्नता में ही प्रसन्नता मनानी चाहिये और प्रजा के दुख में दुख।" [1]

आश्रम व्यवस्था— शुक्रनीतिमें ब्रह्मचर्यादि चारों आश्रमों का वर्णन उपलब्ध होता है— "ब्राह्मण के लिये ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास ये चार आश्रम हैं, शेष तीन वर्णों के लिये चौथे आश्रम को छोड़ कर अन्य सब आश्रमों का विधान है। ब्रह्मचर्य्य में विद्याभ्यास, गृहस्थ में सब का पालन, वानप्रस्थ में संयम और स्वाध्याय तथा सन्यास में मोक्ष-प्राप्ति के लिये यत्न करना चाहिये।" [2]

वर्ण व्यवस्था— शुक्रनीति के समय जन्म से वर्ण व्यवस्था मौजूद होने के स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध होते हैं। राजा का कर्तव्य था कि वह सब वर्णों में

---

१. एवं विधान् नृपो राष्ट्रे देवान् संस्थापयेत् सदा।
प्रति सम्वत्सरं तेषां उत्सवान् सम्यगाचरेत् ॥ २०२ ॥
देवालये मान हीनां मूर्त्तिं भग्नां न धारयेत्।
प्रासादांश्च देवाञ्जीर्णानुद्धृत्य यत्नतः ॥ २०३ ॥
देवतां तु पुरस्कृत्य नृत्यादीन् वीक्ष्य सर्वदा।
न मनः स्वोपभोगार्थं विदध्यात् यत्नतो नृपः ॥ २०४ ॥
प्रजाभिर्विधृता ये ये ह्युत्सवास्तांश्च पालयेत्।
प्रजानन्देन सन्तुष्येत् तद्दुःखैर्दुःखितो भवेत् ॥ २०५ ॥ (शुक्र० अ० ४ iv.)

२. ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थी यतिः क्रमात्।
चत्वार आश्रमाश्चैते ब्राह्मणस्य सदैव हि।
अन्येषामन्त्य हीनाश्च क्षत्र विट् शूद्र कर्मणाम् ॥ १ ॥
विद्यार्थं ब्रह्मचारी स्यात् सर्वेषां पालने गृही।
वानप्रस्थः संदमने सन्यासी मोक्ष साधने ॥ २ ॥ (शुक्र० अ० ४. iv)

अव्यवस्था न आने दे; जिस वर्ण के लोग अपने वर्ण के विरुद्ध कार्य करते थे उन्हें सरकार की ओर से दण्ड मिलता था।[1] आचार्य्य शुक्र ने इन चार वर्णों के वही कर्तव्य बताए हैं जो कि मनु आदि अन्य स्मृतिग्रन्थों तथा धर्मग्रन्थों में वर्णित हैं। अतः हम उनके विस्तार में न जाकर वर्ण व्यवस्था के स्वरूप पर विचार करेंगे।

यह प्रतीत होता है कि उस समय वर्णाश्रम व्यवस्था का आधार मुख्यतया जन्म को ही माना जाता था। साथ ही बड़ी कड़ाई से वर्णाश्रम व्यवस्था का पालन किया जाता था। सरकार का कर्तव्य था कि वह प्रजा में वर्णसंकरता न आने दे, सब वर्णों को अपने २ मार्ग पर चलने के लिये शिक्षित और उत्साहित करे।[2]

प्रत्येक वर्ण को ठीक उसी प्रकार के कर्तव्य पालन करने होते थे जो कि परम्परा से चले आते थे। उन्हें सामूहिक रूप से भी अपने कर्तव्यों में परिवर्तन करने का अधिकार न था, यह करने पर वे राजा द्वारा दण्डित हो सकते थे। प्रत्येक वर्ण और आश्रम के लिये भिन्न-भिन्न चिह्न निश्चित थे।[3]

परन्तु आचार्य शुक्र स्वयं केवल जन्म के आधार पर वर्ण व्यवस्था मानने के पक्ष में नहीं हैं। उनका विचार है कि किसी वर्ण में जन्म होने पर भी प्रत्येक मनुष्य ब्राह्मण बन सकता है। उनका कहना है— "जिस प्रकार वृक्ष की उत्तमता बीज के अच्छा होने और जमीन के उपजाऊ होने पर निर्भर होती है उसी प्रकार वर्ण की उत्तमता जन्म और कर्म दोनों के आधार पर आश्रित है। विश्वामित्र, वसिष्ठ, मातङ्ग, नारद आदि सब यद्यपि अपने जन्म के आधार पर ब्राह्मण नहीं थे परन्तु अपने कर्मों के कारण वे ब्राह्मण बन गए।"[4]

---

१. वर्त्तयन्त्यन्यथा दण्ड्या या वर्णाश्रम जातयः ॥ ३ ॥ (शुक्र० अ० ४. iv.)

२. कुलान्यकुलतां यान्ति स्वकुलानि कुलीनताम् ।
यदि राज्ञोपेक्षितानि दण्डतोऽभिरक्षितानि च ॥ ४ ॥

३. स्व स्वजात्युक्त धर्मो यः पूर्वैराचरितः सदा ।
तमाचरेत्त्व सा जातिर्दण्ड्या स्यादन्यथा नृपैः ॥ ३९ ॥
जाति वर्णाश्रमान् सर्वान् पृथकचिन्हैः सुलक्षयेत् ॥ ४० ॥

४. कदाचिद् बीजमाहात्म्यात् क्षेत्रमाहात्म्यतः क्वचित् ।
नीचोत्तमत्वं भवति श्रेष्ठत्वं चेत्र बीजतः ॥ ३७ ॥
विश्वामित्रो वशिष्ठश्च मातङ्गो नारदादयः ।
तपो विशेषैः सम्प्राप्ता उत्तमत्वं न जातितः ॥ ३८ ॥ (शुक्र० अ० ४. iv.)

ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य शुक्र धर्म और राजनीति इन दोनों को बिल्कुल पृथक् रखना चाहते थे। उनका कहना है कि धर्म का राजनीति में कोई दखल न हो और राजनीति वहीं तक धर्म का आश्रय ले जहाँ तक की उस का सम्बन्ध प्रजा की प्रसन्नता तथा अन्य सामाजिक बातों से है। धार्मिक उत्सवों का वर्णन करते हुए हम इस बात का एक प्रमाण पहले ही दे चुके हैं। राज-कर्मचारियों की नियुक्ति का वर्णन करते हुए आचार्य शुक्र ने जाति या वर्ण को भूल जाने की सलाह दी है— "जो कर्मचारी विश्वासपात्र और गुणी हों उन्हें ही नियुक्त करना चाहिये, जाति या कुल के आधार पर ही किसी को नियुक्त करना ठीक नहीं। मनुष्य के कर्म, स्वभाव और गुणों की ही पूजा करनी चाहिये जाति और कुल की नहीं; जाति और कुल अच्छा होने से ही कोई व्यक्ति अच्छा नहीं हो जाता। जाति और कुल की पूछताछ तो केवल भोजन और विवाह में ही करनी चाहिये।" [1]

इन चार वर्णों के अतिरिक्त यवन लोग जो उत्तर पश्चिमीय भारत में रहते थे, वर्णाश्रम व्यवस्था को स्वीकार नहीं करते थे। वे वेदों की प्रमाणिकता ही स्वीकार नहीं करते थे।

स्त्रियों की स्थिति— भारत वर्ष में उन दिनों स्त्री समाज की दशा अत्यन्त शोचनीय हो चुकी थी। स्त्रियों के पास कोई अधिकार शेष नहीं रहा था, वे केवलमात्र पुरुष की सहायका ही समझी जाती थीं। एक प्रकार से उन की पृथक् सत्ता ही नष्ट कर दी गई थी। इस दृष्टि से यह काल इतना अधिक पतित हो चुका था कि आचार्य शुक्र से स्वतन्त्र विचारक और विद्वान नीतिज्ञ भी इस सम्बन्ध की सामाजिक कुरीतियों का विरोध नहीं कर सके हैं। शुक्रनीति सार में स्त्रियों के आठ दुर्गुणों का वर्णन किया गया है—"स्त्रियों के आठ स्वाभाविक दोष है— झूठ बोलना, साहस, कपटता, मूर्खता, लोभी पन, अपवित्रता, निर्दयता और घमण्ड।" [3] कैसे बुरे ढंग से संसार भर के सम्पूर्ण

---

१. भृत्यं परीक्षयेन्नित्यं विश्वास्यं विश्वसेत्सदा।
नैव जातिर्न कुलं केवलं लक्षयेदपि ॥ ५४ ॥
कर्मशील गुणाः पूज्यास्तथा जाति कुलेन हि।
न जात्या न कुलेनैव श्रेष्ठत्वं प्रतिपद्यते ॥ ५५ ॥
विवाहे भोजने नित्यं कुल जाति विवेचनम् ॥ ५६ ॥ (शुक्र० अ० २.)

२. शुक्र० अ० ४. iv. श्लो० ३५.

३. अनृतं साहसं माया मूर्खत्वं अतिलोभिता।
अशौचं निर्दया दर्पः स्त्रीणामष्टौ स्वदुर्गुणः ॥ ११६४ ॥

दोषों को स्त्रियों के माथे मढ़ा गया है! "पति को चाहिये कि वह अपनी पत्नी की अन्य घर वालों के विरुद्ध शिकायतों पर बिना स्पष्ट साक्षी प्राप्त किए विश्वास न करे।"[1] परन्तु इस के बाद ही स्त्रियों पर दया कर के एक और नियम बना दिया गया है—"१६ बरस की आयु के बाद पुत्र को और १२ बरस की आयु के बाद कन्या को मारना और गाली देना अच्छा नहीं है।"[2]

उन दिनों स्वयंवर की प्रथा का सर्वथा अभाव हो चुका था। कन्या के विवाह में उस के माता पिता का ही दखल होता था—"युवक और युवती का विवाह उन के धन, कुल, शील, रूप, विद्या, बल और आयु के आधार पर उन के माता पिता को कर देना चाहिये। परन्तु विवाह में माता पिता को धन का अधिक ख्याल नहीं रखना चाहिये। पुरुष अगर गरीब है परन्तु वह विद्यावान, बुद्धिमान और स्वस्थ है तो उस के साथ अपनी कन्या का विवाह कर देना चाहिये। इन सब में से किसी एक ही चीज़ के आधार पर विवाह करना अच्छा नहीं है।"[3] "विवाह में कन्या पुरुष के रूप का, माता उसके धन को, पिता उस की विद्वत्ता को, और सम्बन्धी उस के कुल को देखते हैं, अन्य बराती केवल मिठाई चाहते हैं।"[4]

शुक्रनीति में स्त्रियों की जो दिनचर्या बताई गई है, वह संक्षेप में इस प्रकार है—"जप, तप, तीर्थयात्रा, देवपूजा, यज्ञ आदि धार्मिक कर्तव्य स्त्री को पति के बिना अकेले नहीं करने चाहिये। उस की पति के बिना सत्ता ही नहीं है। स्त्री को पति से पहले ही उठ कर शौच आदि से निवृत्त होने के अनन्तर बिस्तरा लपेट कर कपड़े बदल लेने चाहिये। इस के बाद घर में

---

१. न प्रियाकथितं सम्यगमन्वेतानुभयं विना।
अपराधं मातृ स्नुषाभ्रातृ पत्नि सपत्निजम्॥ १६३॥

२. षोडशाब्दात् परं पुत्रं द्वादशाब्दात् परं स्त्रियम्।
न ताड़येत् दुष्ट वाक्यैः पीड़येन्न स्नुषादिकम्॥॥ १६५॥

३. दृष्टा धनं कुलं शीलं रूपं विद्यां बलं वयः।
कन्यां दद्यादुत्तमं चेन्मैत्रीं कुर्यादयात्मनः॥ १६९॥
भार्यार्थिनं वयो विद्या रूपिणं निर्धनंत्वपि।
न केवलेन रूपेण वयसा वा धनेन च॥ १७०॥

४. कन्या वरयते रूपं माता वित्तं पिता श्रुतम्।
बान्धवाः कुलमिच्छन्ति मिष्टान्नमितरे जनाः॥॥ १७२॥ (शुक्र० अ० ३)

चौका बुहारी कर के आग और घास की सहायता से यज्ञ के बर्तन साफ करने चाहिये। यज्ञपात्र क्योंकि चिकने होते हैं, अतः उन्हें गरम पानी से धोना चाहिए। इस प्रकार के अन्य कार्य करके उसे अपने श्वसुर आदियों को नमस्कार करना चाहिये, और तदनन्तर अपने पति, पिता या अन्य सम्बन्धियों के दिए हुए सुन्दर वस्त्र अलंकार आदि पहिन लेने चाहिये। स्त्री को शुद्धता पूर्वक अपने मन, वचन और कर्म से पति की आज्ञा का पालन करना चाहिए, छाया की तरह पति का अनुसरण करना चाहिये। उसे अच्छे कामों में पति के मित्र की तरह और घर के कामों में दासी की तरह बरतना चाहिए। पति को भोजन करवा कर तदनन्तर स्वयं भोजन करके घर के हिसाब किताब का पूरा विवरण रखना चाहिए। स्त्रियों का पति ही देवता है। शूद्र और किसानों की स्त्रियों को चाहिये कि वे खेतीबाड़ी के काम में अपने पतियों की मदद किया करें।*[1]

सती प्रथा— पति के देहान्त के अनन्तर स्त्री के कर्त्तव्यों पर विचार करते हुए शुक्रनीति में उसे सती हो जाने तक की भी सलाह दी

---

१. जपं तपस्तीर्थसेवां प्रव्रज्यां मन्त्र साधनम्।
देवपूजां नैव कुर्यात् स्त्रीशूद्रस्तु पतिं विना।
न विद्यते पृथक् स्त्रीणां त्रिवर्गं विधि साधनम् ॥ ५ ॥
पत्युः पूर्वं समुत्थाय देह शुद्धिं विधाय च।
उत्थाप्य शयनीयानि कृत्वा वेश्म विशोधनम् ॥ ६ ॥
मार्जनैर्लेपनैः प्राप्य सानलं यवसाङ्गणम्।
शोधयेद् यज्ञपात्राणि स्निग्धान्युष्णेन वारिणा ॥ ७ ॥
स्मृत्वा नियोगपात्राणि रसन्नद्रविणानि च।
कृतपूर्वाह्न कृत्येयं श्वशुरावभिवादयेत् ॥ १० ॥
ताभ्यां भर्त्रा पितृभ्यां वा भ्रातृमातुल बान्धवैः।
वस्त्रालङ्कार रत्नानि प्रदत्तान्येव धारयेत् ॥ ११ ॥
मनोवाक्कर्मभिः शुद्धा पतिदेशानुवर्तिनी।
छायेवानुगता स्वच्छा सखीव हित कर्मसु।
दासीव दिष्ट कार्येषु भार्या भर्तुः सदा भवेत् ॥ १२ ॥
पतिं च तदनुज्ञाता शिष्टमन्नाद्यमात्मना।
भुक्त्वानयेदहः शेष सदाय व्यय चिन्तया ॥ १४ ॥
द्विजस्त्रीणामयं धर्मः प्रायोन्यासामपीष्यते।
कृषि पण्यादि गृहकृत्ये भवेयुस्ताः प्रसाधिकाः ॥ २६ ॥ (शुक्र० अ० ४. vi.)

गई है- "पति की मृत्यु के बाद स्त्री को उस के साथ सती हो जाना चाहिये अथवा पुनर्विवाह न करके ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए शेष आयु व्यतीत करनी चाहिये।"[1] इस के अगले ही श्लोकों में स्त्री को उपदेश दिया गया है-"स्त्री का पति के समान और कोई मालिक नहीं है, उस के समान और कोई सुख नहीं है अतः स्त्री को चाहिये वह धन दौलत आदि को लात मार कर पति की ही शरण ले।"[2]

स्त्रियों के अन्य अधिकार— स्त्रियों की इतनी दुर्दशा कर दी गई, थी कि उन्हें न्यायालय में साक्षी देने का भी अधिकार नहीं रहा था, वे केवल स्त्रियों के अभियोग में ही साक्षी दे सकती थीं क्योंकि उन अभियोगों में पुरुषों का साक्षी होना कठिन हैं। अन्य अभियोगों के लिये शुक्रनीति में लिखा है— "क्योंकि स्त्रियां स्वभाव से ही पाप करने वाली और झूठ बोलने वाली होती हैं अतः उन की साक्षी नहीं लेनी चाहिये।"[3]

आर्थिक मामलों में भी शुक्रनीति में स्त्रियों को बिल्कुल पराधीन माना गया है, उन की अपनी कमाई पर भी वैयक्तिक स्वामित्व स्वीकार नहीं किया गया। "स्त्री, पुत्र और दास* इन तीनों का किसी धन पर अधिकार नहीं होता, ये लोग जो कुछ कमाते हैं इस पर उनके स्वामी का ही अधिकार हो जाता है।"[4]

परन्तु जब स्त्री अकेली हो, अर्थात् जब तक उस का विवाह न हुवा हो, अथवा वह विधवा हो चुकी हो, तब उसे भी अपने पिता या पति की जायदाद में से कुछ भाग भाग देना आचार्य शुक्र ने स्वीकार किया है— "एक मनुष्य के देहान्त के बाद उस की पत्नी और उस के पुत्रों को उस की जायदाद का एक समान भाग मिलना चाहिये। कन्या को पुत्र की

---

१. मृते भर्तरि संगच्छेद् भर्तुर्वा पालयेद् व्रतम्।
परवेश्म रुचिर्न स्यात् ब्रह्मचर्ये स्थिता सती॥ २८॥

२. नास्ति भर्तृ समो नाथो नास्ति भर्तृ समं सुखम्।
विसृज्य धन सर्वस्वं भर्त्ता वै शरणं स्त्रियाः॥ ३०॥ (शुक्र० अ० ४. iv.)

३. बालोऽज्ञानादसत्यात् स्त्री पापाभ्यासाच्च कूट कृत्॥ १९१॥

४. भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एवाधनाः स्मृताः।
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्यैते तस्य तद्धनम्॥ २९५॥

* इस श्लोक द्वारा उस समय "दास प्रथा" की सत्ता प्रतीत होती है।

अपेक्षा आधा भाग मिलना चाहिए। पिता की मृत्यु के बाद पुत्रों के समान कन्याओं को भी उपर्युक्त अनुपात से दाय भाग देना चाहिये । इस जायदाद पर स्त्रियों का पूर्ण वैयक्तिक अधिकार है, वे इस धन को चाहे जिस कार्य के लिये व्यय कर सकती हैं" [1]

स्त्री का उस धन पर भी पूर्णतया वैयक्तिक अधिकार होता है जो धन कि विवाह के बाद उस के माता पिता उसे उपहार स्वरूप भेजते हैं या स्वयं पति उस के वैयक्तिक व्यय के लिये उसे जो कुछ देता है। [2]

इस प्रकार इस दृष्टि से शुक्रनीतिसार कालीन भारत बहुत अवनत प्रतीत होता है ।

---

१. समान भागिनः कार्याः पुत्रा स्वस्य च वै स्त्रियः ।
स्वभागार्धहरा कन्या दौहित्रस्तु तदर्धभाक् ॥ २९९ ॥
मृतेऽधिपेऽपि पुत्राद्या उक्त भाग हरास्मृताः ॥ ३०० ॥

२. सौदायिकं धनं प्राप्य स्त्रीणां स्वातन्त्र्यमिष्यते ।
विक्रये चैव दाने च यथेष्टं स्थावरेष्वपि ॥ ३०३ ॥
ऊढया कन्यया वापि पत्युः पितृ गृहाच्च यत् ।
मातृ पित्रादिभिर्दत्तं धनं सौदायिकं स्मृतम् ॥ ३०४ ॥ (शुक्र० अ० ४, ५.)
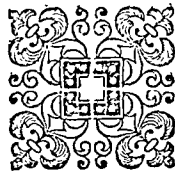
चतुर्थ भाग

भारतीय सभ्यता का विदेशों में प्रसार

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः ॥

(मनु)

* प्रथम अध्याय *

चीन और भारत

पूर्व वचन—महाभारत काल से लेकर बौद्धकाल से पूर्व तक की सभ्यता पर हम पर्याप्त प्रकाश डाल चुके हैं। भौतिक सभ्यता तथा राजनीतिक उन्नति की दृष्टि से इस काल का भारतवर्ष भी प्राचीनतम काल के भारतवर्ष की तरह बाक़ी सम्पूर्ण संसार की अपेक्षा अधिक उन्नत प्रतीत होता है। भारतवर्ष की भौतिक सभ्यता इन दिनों इतनी उन्नत हो चुकी थी कि संसार के अन्य देशों में भी उसका प्रसार प्रारम्भ हो गया था। उस समय भारतवर्ष सच्चे अर्थों में संसार की सभ्यता का गुरु था। सुप्रसिद्ध स्मृतिकार मनु के शब्दों में–"इस देश में उत्पन्न तथा इसी देश में शिक्षित हुए हुए ब्राह्मणों द्वारा ही प्राचीनकाल से संसार के अन्य सब देश सभ्यता और आचार की शिक्षा लेते रहे हैं।"[1]

भारतवर्ष का विदेशों से सम्बन्ध कब प्रारम्भ हुआ, इस सम्बन्ध में हम कुछ नहीं कह सकते। इस देश के प्राचीन से प्राचीन साहित्य में भी जहाज़ों, नौकाओं और समुद्र-यात्रा आदि का वर्णन है। रामायण, महाभारत मनुस्मृति आदि अनेक प्रामाणिक ग्रन्थों द्वारा भारत के साथ अन्य देशों के तत्कालीन सम्बन्धों की सूचना मिलती है। इस सम्बन्ध के रामायण और महाभारत के प्रमाण हम अपने इसी इतिहास में यथास्थान उद्धृत कर चुके हैं, मनुस्मृति के प्रमाण हम इसी अध्याय में आगे चल कर देंगे। उसी प्रकरण में ऐतिहासिक तथ्यों को उद्धृत कर के भी इस स्थापना की पुष्टि की जायगी।

इस विदेशी सम्बन्ध के प्रकरण में चीन और भारत का प्राचीन सम्बन्ध बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। भारतवर्ष की तरह चीन की सभ्यता भी

---

१. एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ मनु;

अत्यन्त प्राचीन है, एक समय चीन भी संसार के सब से अग्रगण्य देशों में गिना जाता था। उस उन्नत दशा में भी चीन भारतवर्ष का सब से बड़ा शिष्य था। भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यता को, उसके धार्मिक और दार्शनिक विचारों को तत्कालीन चीन ने भली प्रकार अपना लिया था। इसके बाद जब मध्य-काल में भारतवर्ष ने बौद्ध-धर्म की दीक्षा ली, तब सम्पूर्ण चीन भी महात्मा बुद्ध के नाम पर चले हुए सम्प्रदाय का अनुगामी हो गया। आज भी आबादी की दृष्टि से चीन संसार भर का सब से बड़ा देश है, और उसके अधिकाँश वासी भारतीय बौद्ध-धर्म के ही अनुयायी हैं। इस अध्याय में हम चीन और भारत के बौद्ध काल से पूर्व के सम्बन्ध का वर्णन करेंगे।

(१)

प्राचीन धर्मों की समानता.

भारत और चीन का प्राचीन साहित्य— तत्कालीन भारत और चीन के पारस्परिक सम्बन्ध का सब से बड़ा प्रमाण दोनों देशों के प्राचीन साहित्य और धर्म में बहुत अधिक समानता का होना है। कई साहित्यिक मुहावरे दोनों देशों के साहित्य में बिलकुल एक ही रूप में पाये जाते हैं—

१. चन्द्रमा में हिरण की कल्पना— चा पिङ्ग नामक चीनी राजा (३३२ ई० पू० से २९५ ई० पू०) ने अपनी "ब्रह्म प्रश्नावली" नामक कविता में कहा है— "चन्द्रमा पर बैठ कर देखता हुवा खरगोश किस चीज़ की आशा करता है ?"

संस्कृत में चन्द्रमा का नाम "शशाङ्क" भी है जिसका अर्थ है "खरगोश के चिन्ह वाला।" श्री हर्ष चरित में आता है—

शशो यदस्यास्ति शशीति चोक्तम्.

अर्थात् क्योंकि चन्द्रमाँ में शशक है इसी लिये उसे "शशी" कहते हैं।

२. कूप मण्डूक— संस्कृत में जिस व्यक्ति का अनुभव बहुत संकुचित हो, उसे "कूप मण्डूक" (कुएं का मेंडक) कहते हैं। इसी प्रकार टोइज्म के १७ वें अध्याय में आता है— "कूएं का मेंडक समुद्र के मेंडकों के सम्बन्ध में कुछ नहीं जान सकता।"

३. शास्त्रों और उपनिषदों में मनुष्य शरीर के अन्दर ही ९ द्वार और सात ऋषि गिनाए गए हैं।

I. पुरमेकं नवद्वारम्। (कठोपनिषद्)
II. सप्तर्षयः प्रहिता शरीरे। (यजुर्वेद)

चीनी साहित्य में आता है— I. "गर्भज योनियों के शरीर में ९ द्वार होते हैं और अण्डज योनियों शरीर में ८ द्वार होते हैं।"[1]

II. "मनुष्य शरीर में देखने सुनने आदि के लिये ७ छेद होते हैं।"

४. रथ पति— संस्कृत में राजा को रथपति कहा जाता है— निरुक्त के तृतीय अध्याय में हम पढ़ते हैं—

यज्ञ संयोगात् राजा स्तुतिं लभते। राज संयोगाद् युद्धोप करणानि। तेषां रथः प्रथम गामी भवति।

चीनी कांग्ज़ी ग्रन्थ के १६ वें खण्ड के द्वितीय भाग में भी राजा को "रथों का स्वामी" कहा है।

दोनों देशों के प्राचीन साहित्य की तुलना करते हुए हम इतने ही प्रमाण देना पर्याप्त समझते हैं।

परम्परा से विद्यादान— जिस प्रकार प्राचीन भारत में एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को परम्परा पूर्वक विद्या दी जाती थी उसी प्रकार विद्यादान करने की प्रथा चीन में भी प्रचलित थी। प्रश्नोपनिशद् में आता है—

ओम् सुकेशा च भरद्वाजः शैब्यश्च सत्यकामः,
सौर्यायणी च गार्ग्यः कौशल्याश्वलायनो।
भार्गवो वेदर्भि कबन्धी कात्ययनस्ते हैग्यं,
ब्रह्म परा ब्रह्मनिष्ठाः परं ब्रह्मन्वेशमाणः।
एष हवै तत्सर्वं वक्ष्यन्तीति तेह समित्पाणयो
भवन्तं पिप्पलादमुपसन्नः॥

(प्रश्नोपनिषद्)

इसी प्रकार चीनी कांग्ज़ी ग्रन्थ के छटे अध्याय में कहा है— "मैने यह विद्या फन्ना से सीखी, उन ने इसे लेज़िङ्ग के पोते से सीखा, लेजिङ्ग के पोते ने चैपटी मिच्चू से..."[2]

अन्य साहित्यक समानताएं— इस के अतिरिक्त चीनी धर्म ग्रन्थों में बहुत से वाक्य ऐसे है जो उपनिषद् वाक्यों के अक्षरशः अनुवाद प्रतीत होते हैं। उदाहरणार्थ—

---

१. Kwangze Book XXII. S. B. E. Part II. Page 63.

२. Text of Toism. S. B. E. Part. II Page 297.

चीनी धर्म ग्रन्थ	उपनिषदें
१. आओ मैं तुम्हें बताऊंगा कि ताओ (प्राचीन चीन का ईश्वर) क्या है। इस का परम तत्व सुगूढ़ रहस्य में छिपा हुवा है। इस को पराकाष्ठा अन्धकार और शान्ति में हैं। जब यह आत्मा को अपनी बाहुओं में निश्चलता पूर्वक पकड़ लेता है तब इस का बाह्य शरीर स्वयं ही ठीक हो जाता हैं। तुम शान्त रहो, तुम पवित्र रहो अपने शरीर को अधिक परिश्रम में डाल कर अपनी जीवन शक्ति को विक्षुब्ध मत करो, इस प्रकार तुम चिरायु हो सकोगे। तुम्हारे अन्दर क्या है इस पर सदैव निगरानी रक्खो, अपनी उस वृत्ति को जो बाह्य विषयों से तुम्हारा सम्बन्ध कराती है बन्द रक्खो। अधिक ज्ञान घातक है।	१. अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्। (मुण्डक २।२।४) यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह। बुद्धिश्च न विचेष्टति तमाहुः परमां गतिम्॥ (कठवल्ली) न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैः तपसा कर्मणा वा। ज्ञान प्रसादेन विशुद्धसत्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः। (मुण्डक ३।१।८) एषो अणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिप्राणः पञ्चधा संविवेश। (मुण्डक ३।१।६) दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।[१]

१. खूब सावधान होकर तीर की तरह तन्मय होने से ही वह प्राप्त किया जासकता है। जब सब इन्द्रियें मन और बुद्धि ज्ञान पूर्वक निश्चल हो जाती हैं तब परम गति प्राप्त होती है। वह आंख से देखा नहीं जा सकता, वाणी से वर्णन नहीं किया जा सकता, वह किसी इन्द्रिय के लिये प्राप्तव्य नहीं है। जब ज्ञान के प्रसाद से आत्मा शुद्ध और निश्चेष्ट हो जाता है तभी उस का अनुभव किया जा सकता है। यह सूक्ष्म आत्मा चित्त से ही जाना जाता है जिस में प्राण पांच प्रकार से प्रविष्ट है। जिस प्रकार धातुओं को पिघलाने पर उन के मल नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार प्रायश्चित करने से मन के मैल नष्ट हो जाते हैं।

चीनी धर्म ग्रन्थ	उपनिषदें
मैं तुम्हारे साथ प्रकाश के उच्च-तम शिखर पर चलूंगा जहां कि हम वास्तविक स्रोत पर पहुंच जायंगे ।	
२. जिस प्रकार कपड़ों से शरीर ढका जाता है उसी प्रकार इस ने सम्पूर्ण जगत को ढका हुवा है । (Part. I. ch. xxx.)	२. ईशावास्य मिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।[1]
३. इसे महान से महान और सूक्ष्म से वस्तुओं में भी पुकारा जा सकता है ।	३. अणोरणीयान् यतो महीयान् ।[2] (कठ०)
४. हम इसे सुनना चाहते हैं पर सुन नहीं पाते अतः इसे 'अश्राव्य' कहते है । हम इसे पकड़ना चाहते हैं पर पकड़ नहीं पाते अतः इसे 'अस्पर्श' कहते हैं । उस का वर्णन नहीं किया जा सकता इसी से हम उस के सब गुणों को इकट्ठा देखने का यत्न करते हैं और "एकत्व" को प्राप्त कर लेते है ।	४. नायमात्मा प्रवचेन लभ्यो न मेधया न बहुधा श्रुतेन । न सन्दृशा तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चिदेनम् । हृदामनीषी मनसाभिक्लृप्तो य एतद्विदु अमृतास्ते भवन्ति । नैव वाचा न मनसा प्राप्तुंशक्यो न चक्षुषा । अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते । (कठ) यद्धावतोऽन्यानत्येति ।[3] (ईश)

१. संसार की प्रत्येक वस्तु में ईश्वर की सत्ता है ।

२. वह सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान से महान है ।

३. वह सुनने से नहीं जाना जा सकता, उसे बुद्धि या विद्या द्वारा भी नहीं जान सकते । उस का रूप किसी को दिखाई नहीं दे सकता, आंखों से उसे किसी ने नहीं देखा । अपने हृदय द्वारा जो विद्वान उसे जान पाते हैं वे अमृत हो जाते हैं । वह वाणी मन या आंखों से प्राप्त नही किया जा सकता । वह है यह कहते हुए भी प्राप्त नहीं होता । वह स्थिर है परन्तु दौड़ने वाले उस से पिछड़ जाते हैं ।

चीनी धर्म ग्रन्थ	उपनिषदें
हम उस से मिलते हैं परन्तु उस का अग्रभाग नहीं देख पाते, हम उस का अनुसरण करते हैं परन्तु उस की पीठ नहीं देख पाते। (Part. I Book vii)	
५. जो उसे जानता है। वह उस का वर्णन नहीं कर सकता, जो उस का वर्णन करता है वह उसे नहीं जानता। तो क्या उस का "न जानना" ही "जानना" नहीं? और "जानना" ही "न जानना" नहीं है? परन्तु कौन कह सकता है कि इसे न जानने वाला अवश्य ही इसे जानता है! (Kwangze book Part I. Book xxii)	५. यो नस्तद्वेद तद्वेद। नो न वेदेति वेद च। यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः। अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्।[४]
६. यह पहले भी ऐसा ही था जैसा कि अब है। यह सब के शरीरों को घड़ता और सजाता है। (Kwangze book xxii. and vi.)	६. गह्वरेष्ठं पुराणम्।[५] (कठ वल्ली) त्वष्टा विश्वकर्मा।[६] (ऋ० ८।१।८)

यज्ञ— भारतवर्ष के प्राचीन तम काल के कर्मकाण्ड का एक बड़ा भाग यज्ञ हैं। चीन के प्राचीन इतिहास में भी यह कर्मकाण्ड इसी रूप में उपलब्ध होते हैं। प्रो० हर्थ का कथन है— "राजा शू-किङ्ग और उसके वंशजों

४. जो उसे नहीं जानता वही उसे जानता है। जो उसे जानता है वह नहीं जानता। जो कहता है कि मैं उसे जानता हूं वह वास्तव में उसे नहीं जानता, जो उसे समझता है वही उसे जानता है।

५. वह प्राचीन काल से रहस्यमय और एक रस है।

६. उसी ने यह संसार और ये शरीर घड़े हैं।

का वृत्तान्त पढ़ने से प्रतीत होता है कि बलिदान की क्रियाएँ चीनी अध्यात्म-जीवन का मुख्य भाग हैं, चाहे ये बलिदान शाँगती (परमात्मा) के नाम पर हों अथवा उसके आधीनस्थ अन्य छोटे देवताओं के नाम पर हों या अपने बापदादाओं की आत्माओं के प्रति हों। इन बलिदान की क्रियाओं ने अब तक भी कुलीन चीनियों के धार्मिक और सामाजिक जीवन पर अधिकार किया हुवा है। अब तक भी वहाँ जो व्यक्ति जितना अधिक कर्मकाण्डी होता है वह समाज में उतना ही ऊँचा समझा जाता है। राजा के लिये भी कर्मकाण्डी होना आवश्यक होता है। वैयक्तिक और सामाजिक जीवन पर इस प्रकार के बलिदानों का प्रभाव चाहुवंश (१२ शताब्दि ई० पू०) के उदय से भी पूर्व से चला आ रहा है। चाहुवंश के राज्य काल में ही ये प्रथाएँ पूर्ण रूप से विकसित होकर स्थिर प्रथाएँ बन गईं।"

प्राचीन आर्य ऋतु सम्बन्धी यज्ञ क्रिया करते थे क्योंकि वे अग्नि को बहुत अधिक पवित्र करने वाला समझते थे। ब्राह्मण ग्रन्थों में मुख्यतया इन्हीं ऋतु सम्बन्धी यज्ञों का वर्णन है। प्रतीत होता है कि प्राचीन चीनी लोग भी ऐसे ही यज्ञ किया करते थे। डाक्टर लेगे ने 'शिकिङ्ग का इतिहास' नामी पुस्तक की भूमिका में लिखा है— "चीन में प्राचीन काल से ही अग्नि अत्यन्त पवित्रता करने वाला समझा जाता है। वहाँ प्रत्येक ऋतु के प्रारम्भ में राष्ट्रीय अग्नि इस उद्देश्य से सुलगाई जाती थी कि उसके द्वारा ऋतु के बुरे प्रभावों से रक्षा हो। इस प्रयोजन के लिये किन्हीं विशेष वृक्षों की लकड़ी ही काम में लाई जाती थी। इन अग्नियों का प्रबन्ध एक मुख्य व्यक्ति के हाथ में होता था। राजा टि कूह काओ सेन (२१६० ई० पू० से २०८५ ई० पू०) के राज्य काल में इस प्रकार का प्रबन्ध प्रारम्भ हुआ था।"

भारतवर्ष के इतिहास में भी एक ऐसा काल आ चुका है जब कि यज्ञ, बलिदान आदि का क्रिया काण्ड,— जिसका उद्देश्य परमात्मा और उसकी इच्छा के अनुकूल वैयक्तिक और सामाजिक कर्म करना था, [1] बिगड़ कर पशुबलि के रूप में परिवर्तित हो गया। सम्भवतः इस का प्रभाव चीन पर भी पड़ा। इस अंश में भी चीन ने अपनी मातृभूमि भारत का अनुकरण किया, डाक्टर लेगे का

१. बौद्धायन गृह्य परिभाषा सूक्त में यज्ञ का यही अभिप्राय बताया है— "स चतुर्धा ज्ञेय उपास्यश्च,— स्वाध्याय यज्ञो, जपयज्ञः, कर्म यज्ञः मानसश्चेति तेषां परस्परादूशगुणोत्तरो वीर्येण। ब्रह्मचारी-गृहस्थ-वानप्रस्थ-यतीनां विशेषेण प्रत्येकः। सर्व एवैतं गृहस्थस्या प्रतिपिद्धाः क्रियात्मकत्वात्। (१।१।२०-२३)

कथन है— "चीन में बलिदानोत्सव करने से पूर्व मुख्यतया राजा तथा उसके साथियों को उपवास आदि पवित्र होने के साधन करने होते थे। इन उत्सवों में सभी आधीनस्थ राजे भी सम्मिलित हुआ करते थे। सुगन्धित द्रव्यों की आहुतियें हृदय को आकर्षित करती थीं। एक कार्यकर्त्ता जो मुख्य द्वार में बैठा होता था प्रत्येक उपस्थित व्यक्ति की सूचना ऊँची आवाज़ से देता जाता था। मुख्य बलि— लाल बैल-का बलिदान राजा स्वयं अपने हाथों से करता था। बलिदान के बहुत से अन्य पशु भी होते थे। यज्ञ के शेष सब कार्यकर्ता अपने २ काम पर लगे होते थे। ये काम थे— मरे हुए पशु को कोड़े लगाना, मांस को उबालना या भूनना, उसको स्टूलों और तख्तियों पर रख कर याज्ञिकों के आगे लाना। राजमहल से राज महिलाएँ आकर गाती बजाती थीं, उस समय शराब का प्याला भी चक्कर लगा रहा होता था।"

भारतीय तान्त्रिक कृत्यों के साथ यह वर्णन पूरी तरह मेल खाता है।

ब्राह्मण ग्रन्थों का कथन है कि यज्ञ पात्र लकड़ी के बनाए जाने चाहिये। इसी प्रकार कांग्ज़ी पुस्तक के बारहवें भाग में लिखा है— "सौ वर्ष पुराने वृक्ष के एक भाग को काट कर एक यज्ञ पात्र घड़ना चाहिये जिसके एक ओर बैल की मूर्त्ति भी बनी हो।"

मृतात्माओं के लिये श्राद्ध— प्राचीन भारत में पितृ यज्ञ या पूज्य व्यक्तियों की सेवा एक गृहस्थी का आवश्यक कर्तव्य समझा जाता था। परन्तु कालान्तर में पितृयज्ञ का अभिप्राय मृत पितरों के नाम पर बलि चढ़ाना और ब्राह्मणों को भोजन देना समझा जाने लगा। शीकिङ्ग पुस्तक के डाक्टर लेगे द्वारा किए गए अनुवाद से प्रतीत होता है कि चीन ने भारत की इस विकृत प्रथा का भी हूबहू अनुसरण किया— "चीनी लोगों में चिरकाल से यह विश्वास चला आता है कि मृत्यु के बाद मनुष्य की आत्मा सूक्ष्म रूप से मौजूद रहती है और उस मनुष्य के वंशजों का कर्तव्य होता है कि वे उस की आत्मा को सन्तुष्ट करने के लिये कुछ धार्मिक क्रियाएँ किया करें। चीनी धर्म ग्रन्थों में राजमन्दिरों में होने वाले इस प्रकार के कर्मकाण्डों के लिये सुगन्धित द्रव्यों की आवश्यकता बताई है। साथ ही इस सम्बन्ध के धन्यवाद पूर्ण गीत और प्रार्थनाएँ आदि भी लिखी हैं। इस श्राद्ध क्रिया के काल, पात्र, विधि स्थान आदि का वर्णन भी विस्तार के साथ किया गया है। इन क्रियाओं द्वारा मृत पितरों की आत्माएँ हवि को स्वीकार करने के लिये बुलाई जाती थीं।"

परमात्मा सम्बन्धी विचार— शीकङ्ग के वृत्तान्तों द्वारा प्रतीत होता है कि प्राचीन चीनी लोग एक ही देवता के उपासक थे। देवराज शाङ्गती की सर्वसाधारण चीनी लोग ईश्वर के समान पूजा करते थे। चीन की प्रत्येक जाति में किसी न किसी नाम से शाँगती की उपासना अवश्य की जाती थी। शीकङ्ग पुस्तक के अनुवाद की भूमिका में डाकृर लेगे ने लिखा है— "प्राचीन चीन में परमात्मा के लिये जो शब्द प्रयुक्त किया जाता था उसका अर्थ "शासक" है। 'शासक' शब्द से परमात्मा की सर्वोच्चता भली प्रकार द्योतित होती है; राजा की आज्ञा मानने से ही ईश्वर प्रसन्न होगा और उसकी आज्ञा भंग करने से ईश्वर का वज्र गिरेगा। जब प्रजाएँ पाप करती हैं तब ईश्वर उन को तूफान, आँधी, दुर्भिक्ष आदि द्वारा दण्ड देता है।"

जिस प्रकार चीनी लोग 'शासक' शब्द द्वारा शाँगती का सम्बोधन करते थे उसी प्रकार निम्नलिखित वेदमन्त्र में भी इसी भाव द्वारा ईश्वर को स्मरण किया है— "जगत के सम्राट् और विख्यात् वरुण की मैं स्तुति करता हूं। वरुण ने सूर्य के सामने पृथ्वी को इस प्रकार फैलाया है जिस प्रकार कि कसाई चमड़े को फैलाता है। उसने वनों में वायु को फैलाया है, घोड़ों में बल और गौओं में दूध दिया है, मनुष्य में बुद्धि और पानी में आग (बादल में बिजली) रक्खी है, आकाश में सूर्य्य और पहाड़ों में सोमलता को पैदा किया है। जब वह भूमि से दूध दुहना चाहता है तब वह उसे और कृषि को सींचता है। उसी के द्वारा पर्वत बादलों में ढके रहते हैं।"

मैकनीकल की "इण्डियन थीइज़्म" पुस्तक का निम्नलिखित उद्धरण वैदिक शाँगती के गुणों को स्पष्ट करता है— "यह वरुण सब से ऊँचे लोकों में विराजमान है और मनुष्यों का निरीक्षण कर रहा है। उस के सहस्रों दूत संसार की सब सीमाओं तक जाते हैं और मनुष्यों के कार्यों की खबर लाते हैं। यद्यपि उसमें अनेक गुण हैं तथापि मुख्यतया वह सामाजिक सदाचार का ही निरीक्षक है। अन्य सब वैदिक देवताओं की तुलना में वह एक ऐसा देवता है जिस के सन्मुख जाते ही भक्त लोग अपना अपराध स्वीकार कर लेते हैं। वह सदैव भलाई और बुराई का निरिक्षण करता रहता है। वह परम रक्षक सब स्थानों को मानो बिलकुल समीप से देखता है। केवल दो व्यक्ति भी जहाँ बड़ी गुप्तता से कोई सलाह कर रहे होते हैं वहाँ यह तीसरा व्यक्ति—वरुण—अवश्य उपस्थित होता है। भूलोक से परे भी कोई ऐसा स्थान नहीं है जहाँ जाकर प्राणी वरुण से छिप सकें।

आध्यात्म सिद्धान्त—भारत और चीन दोनों देशों के आत्मा और प्रकृति आदि के सम्बन्धी प्राचीन दार्शनिक विचार भी एक ही प्रकार के हैं। भारतीय सिद्धान्तों की ध्वनि ही चीनी ग्रन्थों में पाई जाती है। प्रो० विनय कुमार सरकार ने अपनी "Chines Religion through Hindu Eyes" नामक पुस्तक में लिखा है—"चीनी दर्शनों में द्वैत तथा अद्वैत सम्बन्धी विचार और ब्रह्म के सम्बन्ध में असीम पन, अज्ञेयवाद, आदि की कल्पनाएं प्राप्त होती हैं। द्वैत के उदाहरण के लिये चीनी यङ्ग और यिन तथा भारतीय पुरुष और प्रकृति, स्वर्ग और पृथ्वी, स्त्री और पुरुष के उदाहरण लिये जा सकते हैं। सात आठ शताब्दि पूर्व के चीनी और भारतीय कर्मकाण्ड, विचार, आदर्श आदि हूबहू मिलते हैं।"

पुनर्जन्म और कर्म सिद्धान्त—पुनर्जन्म और कर्मफल का सिद्धान्त वैदिक सिद्धान्तों में आधारभूत है। प्राचीन चीन में भी यह सिद्धान्त इसी रूप में प्रचलित था। कांग्ज़ी पुस्तक (१।६।६) में लिखा है—"वह उत्पादक सच-मुच महान है। वह तुम्हें किस रूप में परिवर्तित करे? वह तुम्हें कहां ले जाय क्या वह तुम्हें चूहा या कीट पतङ्ग बना डाले?"

(Text of Toism S.B.E. Part I. Page 244)

II. थेशाङ्ग पुस्तक में लिखा है—"मनुष्य के भाग्य में सुख या दुख के आने का कोई विशेष द्वार नहीं है; वे तभी आते हैं जब उन्हें मनुष्य स्वयं बुलाता है। अच्छे बुरे कामों के साथ छाया की तरह उन का फल लगा रहता है।"

जगत की उत्पत्ति—वेद और शास्त्रों का कथन है यह सब दृश्य जगत अपनी वर्तमान अवस्था की उत्पत्ति से पूर्व अव्यक्त रूप में मौजूद था—

तम आसीत्तमसागूळ्हमग्रे (ऋग्वेद १०.१२६. ३)

"जगत की उत्पत्ति से पूर्व यह सब अन्धकारमय था।" मनुस्मृति के प्रथम अध्याय का पांचवा श्लोक है—

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥

"उत्पत्ति से पूर्व यह जगत अन्धकारमय था; उस समय की अवस्था का लक्षण नहीं किया जा सकता, उसे बुद्धि से जाना नहीं जा सकता। उस का कोई स्थूल रूप नहीं था अतः उसे इन्द्रियों के ज्ञान से समझा ही नहीं जा सकता था।"

इसी प्रकार कांग्ज़ी पुस्तक के सातवें भाग में लिखा है—"सब वस्तुएं क्रमशः अपनी स्वाभाविक अवस्था को प्राप्त होकर अदृश्य हो जाती हैं।"

(Text of Toisms S.B.E. Part I. Page 134)

इसी प्रकार १० वें भाग में आता है—"इस कथन से तुम्हारा क्या अभिप्राय है कि इस का कोई आदि और अन्त नहीं। कांग्ज़ी ने उत्तर दिया—यह परिवर्तन, बनना और बिगड़ना, निरन्तर सभी वस्तुओं में बराबर होता रहता है। परन्तु हम नहीं जानते कि वह कौन सी शक्ति है जो सब वस्तुओं को जारी और स्थिर रखती है।"

यजुर्वेद का कथन है—

"यथा पूर्वमकल्पयत"

"ईश्वर ने संसार को उस रूप में पैदा किया जिस में कि यह पहले था।"

वेदान्त दर्शन का सूत्र है—

न कर्माऽविभागादिति चेन्नानादित्वात् (२ । १ । ३५)

"कर्म ही संसार के जीवों में विषमता और दुःख आदि का कारण नहीं हो सकता क्यों कि सृष्टि के प्रारम्भ में सब जीव कर्म रहित थे—यह युक्ति ठीक नहीं है क्यों कि संसार का प्रारम्भ ही नहीं है।

चीनी विद्वान लिज़ू का कथन है—"जीवन को किसी ने पैदा नहीं किया जीवन में परिवर्तन लाने वाला स्वयं परिवर्तन शील नहीं है। जो स्वयं पैदा न हो वही जीवन को पैदा कर सकता है। स्वयं अपरिवर्तन शील ही दूसरे में परिवर्तन ला सकता है। जीवन उत्पन्न नहीं होता अपि तु परिवर्तित होता है। इसी से उत्पत्ति और विनाश ये दोनों सदैव विद्यामान रहते हैं।"

दोनों सिद्धान्तों में कितनी अधिक समानता है

योग और प्राणायाम—भारत और चीन के प्राचीन तपस्वियों के जीवन का मुख्य भाग योग और प्रायाणाम है। शिवसंहिता में लिखा है—

सुशोभने मठे योगी पद्मासन समन्वितः।
आसीनोऽपि संविशत् पवनाभ्यासमाचरेत्॥
समकायः प्राञ्जलिश्च प्रणम्य च गुरुन् सुधी।
दक्षे वामेच विघ्नेशं जल पलाम्बिका पुनः॥

ततश्च उर्जाङ्गुष्ठेन निरुध्य पिंगला सुधीः ।
ईडया पूरयेद्वायुं यथा शक्त्या तु कुम्भयेत् ॥
ततस्त्यक्त्वा पिंगलया शनैरेव न वेगतः ॥

अर्थात् "योगी एक सुन्दर और रमणीय घर में कुशासन पर बैठ कर पद्मासन लगाए हुए प्राणायाम का अभ्यास करे । पहले वह सीधा बैठ कर अपना शरीर स्थिर कर के हाथ जोड़ कर अपने गुरु को नमस्कार करे, इस के बाद दाएं हाथ के अंगूठे से पिंगला (नाक का दायां छेद) को बन्द करे और इडा (बायां छेद) द्वारा फेफड़ों को भर कर कुम्भक करे और फिर वायु को पिंगला द्वारा धीरे धीरे छोड़े ।"

चीनी ग्रन्थों में लिखा है "(i) मनुष्य अपने स्वास्थ्य धन-प्राण वायु-का निरोध कर के ताओ मार्ग के उच्चतम पदों को प्राप्त कर सकता है । (ii) वह अपना मुख बन्द कर के नाक को बन्द करे और इस प्रकार प्राण वायु को अन्दर बन्द करने से उस के जीवन की श्रम जनक थकावट दूर होगी । (iii) वह अपने होंठ चिपका लेवे, अपने जबड़ों को भींच ले, अपनी आँखों और कानों से न देखे न सुने । इस अवस्था में वह अपने अन्दर के भावों पर विचार करे । वह दीर्घ श्वास ले और उसे एक दम छोड़े ।"

निष्काम कर्म— गीता का कथन है—

युक्तः कर्म फलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः काम चारेण फले सक्तो निबध्यते ॥

"योगी पुरुष कर्म फल की आशा को छोड़ कर स्थिर शान्ति प्राप्त करता है । योग रहित अस्थिर मति मनुष्य फलेच्छा के वश में हो कर बन्धन में बंध जाते हैं ।"

इसी प्रकार कांग्ज़ी पुस्तक के पन्द्रहवें भाग में लिखा है—

"जो मनुष्य सब वस्तुओं को भुला देता है और फिर अपने पास रखता है, जिसकी शान्ति निस्सीम है उसको सब असूल्यवान वस्तुएं प्राप्त होती हैं ।"

पूर्ण योगी और जीवन मुक्त— भारतीय और चीनी योगियों के सम्बन्ध के निम्नलिखित उदारणों द्वारा दोनों की समानता की तुलना भली प्रकार कही जा सकेगी—

चीनी ग्रन्थ	भारतीय शास्त्र
जब हम सोते हैं तब आत्मा अन्दर जागृत रहता है, जब हम जागते हैं तब शरीर स्वतन्त्र हो जाता है। Text of Toims. S.B.E. PartI. P. 336	समाधि, सुशुप्ति और मुक्ति में आत्मा विश्राम करता है और इस का स्वरूप ब्रह्म सा हो जाता है। (सांख्य १।१६)
क्या शरीर को बिखरे हुए वृक्ष की तरह और मन को बुझे हुए चूने की तरह बनाया जा सकता है।	जिस प्रकार गरम पत्थर पर डाला गया पानी चारों ओर से संकुचित होकर सूखता जाता है, उसी प्रकार यह प्राण निरन्तर अन्दर और बाहर आता हुवा अधिक परीश्रम के कारण अपना कार्य छोड़ने लगता है और शरीर अधिक शिथिल पड़ जाता है। (वाचस्पति कृत योग टीका २।५०)
जब विचार बन्द हो जाते हैं तब आत्मा विश्राम करता है, जब आत्मा विश्राम करता है तब प्राण जमा हो जाता है। इस अवस्था में मनुष्य चलते हुए, आराम करते हुए, देखते हुए, सोते हुए, वायु की तरह अपने शरीर को स्थिति व्यापक सा अनुभव करता है वह अपने पेट में बादल की गरज के समान एक शब्द सुनता है। उस के कान किसी साधन की सहायता के बिना ही देवताओं के गान सुनते हैं। वह दैवीय गान बिना शब्दों के गाया जाता है। बिना बाजों के गूंजता है। उस के आत्मा और प्राण का संगम हो जाता है, बालकपन की सी अवस्था फिर लौट आती है। उसे अपने ही अन्दर गुप्त दृश्य दिखाई देने लगते	योगी रूई से लेकर परिमाणु तक की सूक्ष्म वस्तुओं द्वारा ध्यान योग का अभ्यास करके स्वयं सूक्ष्म रूप हो जाता है तब उस में आकाश में उड़ सकने और पानी पर चल सकने की शक्ति आजाती है। वह मकड़ी के जाले पर चल सकता है, वह सूर्य की किरणों पर सैर कर सकता है। इस प्रकार वह अपनी इच्छानुसार सब कहीं जा सकता है।[1] (व्यासकृत योग भाष्य ३।४२) मन का, शरीर की परवाह न कर के, बाह्य स्तम्भन करने को यहां विदेह कहते हैं। इस के द्वारा प्रकाश का आवरण नष्ट हो जाता है और योगी दूसरे मनुष्य शरीर में भी प्रवेश कर सकता है।[2] (योग० ३।४३)

१. कायाकाशयोः सम्बन्ध संयमात् लघुतूल समापत्तेश्चाकाश गमनम्।

२. बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः।

चीनी ग्रन्थ	भारतीय शास्त्र
हैं, वह अपनी अन्तरात्मा से बात करने लगता है। वह शून्य स्थान में भी पदार्थों को देखता है और अपने को देवताओं के साथ रहता हुवा अनुभव करता है। उसे एक अपूर्व आनन्द होता है उस की आत्मा अन्दर ही यथेच्छ भ्रमण कर सकती है। (Text of Toism. S.B.E. II. Pages 270-71.)	वस्तुओं के स्थूल और सूक्ष्म रूप तथा उनके सम्बन्धों पर विचार करने से योगी को सूक्ष्म भूतों का भी ज्ञान हो जाता है, वह भूत और भविष्य को भी जान सकता है। वह दिव्य स्पर्ष करता है, स्वर्गीय सुगन्ध सूंघता है, स्वर्गीय स्वाद लेता है। ये सब आनन्द उसे स्थिर रूप से प्राप्त हो जाते हैं।[१] (योग० ३।४४)
पूर्ण मनुष्य शुद्ध आत्मा के समान हो जाता है। उसे चाहे उबलते हुए पानी वाले तालाब में भी डाल दिया जाय तब भी वह गर्मी अनुभव नहीं करेगा, उसे चाहे बरफ में भी डाल दिया जाय तो भी वह सरदी अनुभव नहीं करेगा। जब वज्रपात से पत्थर टूट रहे हों, समुद्र में भयंकर तूफान आरहा हो तब भी वह भयभीत नहीं होगा। वह बादलों में घूम फिर सकता है, सूर्य और चन्द्र लोक की सैर कर सकता है। (Text of toism. II. P. 192)	उदान पर जय प्राप्त करने से जल और कांटे आदि योगी को नहीं सता सकते, वह आकाश में भी उड़ सकता है।[२] (योग० ३।३९) भावों पर विचार कर के योगी दूसरे के मन की बात जान सकता है।[३] (योग० ३। ३९) आसनों की सिद्धी करके योगी सुख और दुख पर विजय प्राप्त कर लेता है।[४] (योग० ४८)
जिस व्यक्ति ने 'ताओ' के गुण	हे अर्जुन मात्रा, स्पर्ष, सरदी, गरमी, विजय, हार, सुख, दुख, इन सब सब की परवाह छोड़ कर तुम

१. स्थूल स्वरूप सूक्ष्मान्व संयमाद् भूतजयः।
२. उदान जयाज्जल पङ्क कण्टकादिष्वसङ्ग उत्क्रान्तिश्च।
३. प्रत्यस्य पर चित्तज्ञानम्।
४. शीतोष्णदिभिर्द्वन्द्वैरान जयान्तभिभूयते। ततो द्वन्द्वानभिघातः।

चीनी ग्रन्थ	भारतीय शास्त्र
पूर्ण रूप से अपने में धारण कर लिये हैं, वह बालक के समान निष्पाप है। उसे विषैले जीव नहीं काटेंगे । शिकारी जानवर उस पर नहीं टूटेंगे । (Text of Toism.)	सुखी हो सकोगे। [४] (गीता) पूर्ण अहिंसा के पालन और परमात्मा की समीपता से मनुष्य सर्वथा भय रहित हो जाता है। [५] (योग २ । ३५) ऐसे मनुष्य के पास आकर उन जीवों की दुश्मनी भी नष्ट हो जाती है जो कि स्वभाव से ही एक दूसरे के शत्रु होते हैं; उदारणार्थ घोड़ा और भैंस, चूहा और बिल्ली, तथा सांप औरे नेवला अदि। [६] (योग २ । ३५ का वाचस्पति भाष्य)

इस प्रकार सिद्ध होता है कि दोनों देशों के प्राचीन साहित्य और विचारों में बहुत अधिक समानता है। इस समानता को सिद्ध करने के लिए हम दोनों देशों के साहित्य के अन्य भी बीसियों प्रमाण दे सकते हैं परन्तु हमारी स्थापना को पुष्ट करने के लिए इतने ही प्रमाण पर्याप्त होंगे । अब हम इस अध्याय के अगले प्रकरण में ठोस ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयत्न करेंगे कि चीन की मातृभूमि भारत वर्ष है और चीनी सभ्यता का विकास भी भारतीय सभ्यता से ही हुवा है।

४. मात्रा स्पर्शास्तुकौन्तेय शीतोष्ण सुख दुख दाः।
आगमापायिनो नित्या तांस्तितिक्षस्व भारत ॥

५. शाश्वतिक विरोधा अपि अश्व महिष मूषक मार्जाराहि नकुलादयोऽपि भगवतः प्रतिष्ठिताहिंसस्य संनिधानात्तच्चित्तानुकारिणो वैरं परित्यजन्ति ।

(२)

ऐतिहासिक प्रमाण

साधारणतया यह समझा जाता है कि संसार भर के सम्पूर्ण देशों का पारस्परिक सम्बन्ध पश्चिम की इस नई सभ्यता के कारण ही स्थापित हो सका है। आज प्रायः सम्पूर्ण संसार साहित्यिक और आर्थिक दृष्टि से एक हो चुका है, राजनीतिक दृष्टि से भी अन्तर्राष्ट्रीयता स्थापित होने में अब देर नहीं है। इस सभ्यता के विकास से पूर्व विभिन्न देशों में परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं था; उन दिनों अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य का कोई नाम भी न जानता था। खास कर पूर्वीय देशों पर तो यह लाञ्छन और भी अधिक जोर से लगाया जाता है। परन्तु ज्यों ज्यों प्राचीन इतिहास की खोज अधिक होती चली जाती है यह मिथ्या विश्वास, जो कि लगभग एक निश्चित तथ्य की तरह समझा जाने लगा था, खण्डित होता चला जाता है।

दुर्भाग्य से पूर्वीय देशों का प्राचीन गौरवपूर्ण इतिहास आज पूरी तरह प्राप्त नहीं होता। इस लिये उन के प्राचीन सम्बन्धों को विस्तार से जान सकना प्रायः असम्भव हो गया है, तथापि उन के प्राचीन सम्बन्धों की सत्ता सिद्ध करने वाले प्रमाण आज भी बहुत पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते हैं। इस प्रकरण में हमें भारत और चीन के पारस्परिक सम्बन्धों के विस्तार में न जाकर केवल उनकी सत्ता ही सिद्ध करनी है।

प्राचीन काल में एशियाई देशों का सम्बन्ध केवल पूर्व तक ही सीमित नहीं था, अपितु सुदूर अमेरिका तक एशियाई सभ्यता–जिस का केन्द्र भारतवर्ष था—का प्रसार हो चुका था। सुप्रसिद्ध अमेरिकन विद्वान डाक्टर सेपिर वर्षों की खोज के अनन्तर इस परिणाम पर पहुँचे हैं— "अमेरिका के उत्तरीय भाग में रहने वाले मूल निवासियों (Red Indians) की भाषा का विकास प्राचीन चीनी, तिब्बती और स्यामी भाषाओं से ही हुवा है। प्राचीन चीनी भाषा और इन अमेरिका के मूल निवासियों की भाषा में बहुत कम अन्तर है। आश्चर्य है कि प्रशान्त महासागर (Pacific Ocean) के दोनों ओर के सुदूर तटों की भाषा में इतनी समानता क्यों है। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी प्राचीन काल में चीनी लोगों के कुछ जत्थे स्थल भाग से पर्वत और मैदानों को लांघते हुए कैनाडा हो कर अमेरिका पहुंचे होंगे और उन्हीं के द्वारा अमेरिका के मूल-वासी भाषा सभ्यता आदि सीख सके होंगे।"[1] इस उदाहरण द्वारा स्पष्ट प्रतीत

Weekly Litarary Digest. (U. S. A.) 14 November 1925.

होता है कि उस प्राचीन काल में भी चीन और एशिया जैसे सुदूर देशों में परस्पर सम्बन्ध स्थापित हुवा था।

महा कवि कालिदास का समय ईसवी सम्वत के प्रारम्भ होने से पूर्व ही माना जाता है। महाकवि कालिदास के समय तो ऐसा प्रतीत होता है कि चीन और भारत का पारस्परिक व्यापार बहुत अधिक उन्नत अवस्था तक पहुंच चुका था। चीनी रेशम और चीनी कपड़े का भारत में खूब प्रचार हो चुका था। कालिदास के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ शकुन्तला में एक श्लोक आता है जिस का अर्थ है— "मैं अपने शरीर को आगे ले जा रहा हूं परन्तु मेरा अव्यवस्थित चित्त उस प्रकार पीछे भाग रहा है जिस प्रकार कि जहाज़ का चीन देश का बना पाल जहाज़ को वायु से उलटी दिशा में ले जाने पर पीछे की ओर भागता है।"[१]

इसी प्रकार कालिदास के समकालीन रघुनन्दन ने अपनी यात्रातत्व नामक पुस्तक में लिखा है— "यात्रा से पूर्व मृदुद्रव्यों से खूब मालिश करे, सुगन्धित मालाएँ पहने और चीन देश के बने हुए सुन्दर कपड़े धारण करे।"[२]

चीन और भारत का सम्बन्ध कब प्रारम्भ हुआ— भारत और चीन का पारस्परिक सम्बन्ध उस प्राचीन काल से चला आता है जब कि चीन में सब से प्रथम मनुष्यों ने बसना शुरु किया। भारतवर्ष प्राचीन चीन की मातृभूमि है। भारतीय लोग ही चीन देश में जाकर बसे। इस ऐतिहासिक तथ्य का अविष्कार सब से पूर्व रायल एशियाटिक सोसाइटी के प्रधान सर विलियम जोन्स ने ही किया है। इस से पूर्व समझा जाता था कि चीन को आबाद करने का श्रेय तिब्बत या अरब को ही है। वर्तमान चीनी जाति का उद्गम चीन देश में ही हुवा है यह बात मानने वालों की संख्या बहुत कम है।

संस्कृत साहित्य में 'चीन' शब्द बहुत स्थानों पर प्रयुक्त हुवा है, इस का अभिप्राय मौजूदा चीन देश से ही है। मनुस्मृति के अनुसार चीनी जाति के लोग भारतीय क्षत्रिय वर्ण के ही मनुष्य हैं— "पौण्ड्र, ओड, द्रविड़, काम्भोज, यवन, शक, पारद, पल्लव, **चीनी**, किरात, धनद और खश ये

---

१. गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चादसंस्थितं चेतः।
चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य॥ (शाकुन्तल)

२. सर्वाङ्गमनुलिप्येच्च चन्दनेन्दु मदुद्रवैः।
सुगन्धि माल्या भरणैश्चीन चेलैः सुशोभनैः॥ (यात्रा तत्व)

सब जातियाँ एक समय भारतीय क्षत्रिण वर्ण में ही अन्तर्गत थी, उस समय ये जाति भेद न थे। पीछे से जब ये जातियाँ दूर देशों में जाकर बस गईं और भारतीय ब्राह्मण इनके आचार आदि का नियन्त्रण न रख सके तब ये सब जातियाँ शूद्र हो गईं।" [3]

सर विलयम जोन्स ने भारतवर्ष को चीन की मातृभूमि सिद्ध करते हुए एक बहुत मनोरञ्जक प्रमाण दिया है। उनका कथन है— "संस्कृत के एक विद्वान काश्मीरी पण्डित ने मुझे एक "शक्ति संगम" नामक प्राचीन पुस्तक, जो कि काश्मीरी अक्षरों में लिखी हुई थी, दिखाई। इस पुस्तक में एक अध्याय चीन देश पर भी था। इस पुस्तक में बताया हुवा था क चीन देश में भारतीय क्षत्रिय वर्ण के लोग जाकर ही आबाद हुवे हैं। चीन देश २०० भागों में विभक्त है आदि। वह पण्डित वर्तमान भूगोल के सम्बन्ध में बहुत कम ज्ञान रखता था। मैंने उसके सामने एशिया का एक नकशा रख कर उसे काश्मीर का स्थान दिखा दिया और पूछा कि अपनी पुस्तक के आधार पर बताओ कि वह चीन देश कहाँ है? उसने शीघ्रता से अपनी अङ्गुली वर्तमान चीन के पश्चिमोत्तर भाग पर रखकर कहा— चीनी लोग सब से पूर्व इस स्थान पर बसे थे, परन्तु मेरी पुस्तक में वर्णित 'महाचीन' का विस्तार इस स्थान से लेकर पूर्व दक्षिणीय समुद्र तट तक है।" जब भारतवर्ष के प्राचीन साहित्य में जगह २ चीन का वर्णन उपलब्ध होता है और दोनों देशों की प्राचीन सभ्यता और धर्म में इतनी अधिक समानता है तब भारतवर्ष को चीन की मातृभूमि न मानने के लिये कोई कारण प्रतीत नहीं होता।

रामायण में चीन देश के लिये आता है कि उस देश में रेशम के कीड़े पैदा होते हैं। [1]

इस प्रकार इन सब प्रमाणों से प्रतीत होता है कि भारत और चीन का पारस्परिक सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन है।

भारतवर्ष के प्राचीन धर्म, सभ्यता, साहित्य आदि में बहुत अधिक समानता है इसे हम इस अध्याय के पूर्वार्द्ध में सिद्ध कर चुके हैं। दोनों

---

३. शनकैस्तु क्रियालोपादिमा क्षत्रिय जातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणानामदर्शनात्॥
पौण्ड्रकाश्चौडद्रविड़ाः काम्भोजा यवनाः शकाः।
पारदाः पह्लवाश्चीनाः किराता धनदा खशाः। (मनुस्मृति)

१. भूमिश्च कोष कारणां भूमिश्च रजताकराम्। (किष्किन्धा काण्ड ४० । २२)

देशों का व्यवसायिक और व्यापारी सम्बन्ध भी बहुत प्राचीन है-यह सिद्ध हो चुका है। परन्तु अब प्रश्न यह है कि भारतवर्ष को चीन की मातृभूमि क्यों माना जाय, चीन को ही भारत की मातृभूमि क्यों न मान लिया जाय। यह समस्या बहुत जटिल नहीं है। जब स्पष्ट रूप से भारतीय साहित्य में इस बात के प्रमाण उपलब्ध होते हैं कि भारतीय क्षत्रिय वर्ण के लोग ही चीन देश में जाकर आबाद हुवे हैं तब दूसरे पक्ष का कोई प्रमाण उपस्थित न होने से इस स्थापना में शंका करने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता। तथापि इस सम्बन्ध में हम एक और युक्ति देना चाहते हैं।

प्रो० मैक्समूलर का कथन है कि ऋग्वेद संसार का सब से प्राचीन ग्रंथ है; इससे प्राचीन ग्रंथ कम से कम वर्तमान समय में उपलब्ध नहीं होता। वह ऋग्वेद का निमाणकाल कम से कम २५०० वर्ष ई० पूर्व मानते हैं; उनका कथन है कि ऋग्वेद में वर्णित सभ्यता तो २५०० ई० पू० से भी बहुत पुरानी है। इसी प्रकार अन्य पाश्चात्य पुरातत्व वेता और विचारक भी ऋग्वेद को संसार का प्राचीन तम ग्रन्थ मानते हैं। परन्तु ताओ मार्ग की प्राचीनता अधिक से अधिक १००० ई० पू० समझी जाती है। इस अवस्था में वैदिक शिक्षाओं का उद्गम ताओं मार्ग से होना सर्वथा असम्भव प्रतीत होता है।

एक और बात भी है। चीनी और भारतीय साहित्य में जो जो बातें समानता लिये हुए पाई जाती हैं उन का पूर्ण और विकसित वर्णन हमें भारतीय साहित्य में ही प्राप्त होता है। उदाहरण के लिये योग और प्राणायाम को लिया जा सकता है। भारतीय शास्त्रों में इन दोनों की जितनी विस्तृत और विकसित व्याख्या है, चीनी धर्म ग्रन्थों में उस का दशांश भी प्राप्त नहीं होती। ताओ मार्ग में केवल प्राणायाम द्वारा होने वाली थोड़ी सी सिद्धियों का ही वर्णन है परन्तु योग दर्शन में प्राणायाम और योग का विधि सहित पूर्ण वैज्ञानिक रूप से वर्णन प्राप्त होता है। इसी प्रकार ब्रह्मविद्या का जो विस्तृत वर्णन उपनिषदों में है वह ताओ मार्ग के ब्रह्म सम्बन्धी उपदेशों में कहां।

चीन देश को आबाद करने का तथा वहां सभ्यता का प्रकाश फैलने का श्रेय प्राचीन भारतीयों को ही प्राप्त है; चीनी लोगों के प्राचीन आदि पुरुष भारतीय क्षत्रिय ही थे। इस का प्रमाण हम मनुस्मृति द्वारा इस

प्रकरण के प्रारम्भ में हा दे चुके हैं। इस प्रसङ्ग में मनुस्मृति की प्राचीनता के सम्बन्ध में कुछ निर्देश करना अप्रासङ्गिक न होगा । बहुत से ऐतिहासिकों का विचार है कि यद्यपि सुप्रसिद्ध स्मृतिकार मनु के सिद्धान्त भी आचार्य शुक्र के सिद्धान्तों की तरह बहुत प्राचीन हैं परन्तु वर्तमान मनुस्मृति के रूप में उपलब्ध होने वाले ग्रन्थ का निर्माण काल मध्ययुग में, ईस्वी सम्वत प्रारम्भ होने के बाद, ही है। परन्तु हमारी सम्मति में मनुस्मृति का यह स्वरूप भी पर्याप्त प्राचीन है। यह कम से कम महात्मा बुद्ध के जन्म से तो पूर्व का ही रूप है। क्यों कि जहाँ मनुस्मृति में अपने समय के आचार विचार, सिद्धान्तों और आदर्शों का विस्तार के साथ वर्णन है वहां बौद्ध आचार विचारों का जिक्र भी नहीं किया गया; अगर मनुस्मृति का निर्माण काल महात्मा बुद्ध के बाद होता तो यह बात सर्वथा असम्भव थी। इसी प्रकार बौद्ध धर्म ग्रन्थ धम्म पद में कुछ ऐसे श्लोक आते हैं जो मनुस्मृति के श्लोकों का पाली संस्करण मात्र ही प्रतीत होते हैं । अगर मनुस्मृति का निर्माण काल बौद्धधर्म के अर्विभाव के बाद होता तो यह बात भी असम्भव थी। हम उदाहरण के लिये केवल दो श्लोक मात्र देना ही पर्याप्त समझते हैं—

मनु	धम्म पद
अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः। चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम् ॥ १२१) न तेन वृद्धो भवति। येनास्य पलितं शिरः। यौ वै युवाप्यधीयान- स्तं देवाः स्थाविरं विदुः ॥१५६॥ (मनु अ० २	अभिवादन सीलस्स निच्चं वुडदा पचभिनम्। खतारी धर्मावड्ढन्ति आनुयवणपी सुलम् ॥ viii ६ ॥ न तेन चेरो सीहोती चेत्तस्स पालितं सिरो। परिपक्को वचो तस्मं मघिजितोति वुच्चति ॥xix. ५॥

इस का कारण यही प्रतीत होता है कि मनुस्मृति के ये श्लोक बौद्ध काल से पूर्व इतने अधिक सर्वप्रिय हो चुके होंगे कि धम्मपाद के कर्त्ताओं ने भी उन्हें इसी रूप में रखना उचित समझा हागा । इसी प्रकार महाभारत में भी बहुत से स्थानों पर मनुस्मृति के श्लोक हूबहू उसी रूप

में उपलब्ध होते हैं और उनका मनुस्मृति से लिया जाना महाभारत कारने स्वयं स्वीकार किया है। इन युक्तियों के आधार पर मनुस्मृति की प्राचीनता में सन्देह नहीं रहता।

चीन के सम्बन्ध में महाभारत का एक और प्रमाण दे कर हम इस प्रकरण को समाप्त करेंगे। शान्तिपर्व में महाराज युधिष्ठिर भीष्म से प्रश्न करते हैं—"यवन, किरात, कान्धारी, चीनी, शबर, बर्बर, शक, तुषार, कङ्क, पह्लव, आंध्र, मद्रक, पौण्ड्र, पुलिन्द, अरट्ठ, काच और म्लेच्छ जातियां जो कि भारतीय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों के संकरत्व से पैदा हुई हैं किस प्रकार धर्म की रक्षा करेंगी? और इन जातियों को मेरे जैसे राजा किस प्रकार के नियमों में रक्खें?" इन श्लोकों से स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि ये सब देश पहले भारतीय ब्राह्मण क्षत्रिय आदि वर्णों द्वारा उपनिवेशों के रूप में बसाये गए थे, परन्तु धीरे धीरे परिस्थितियों के प्रभाव से इनका अपना मातृभूमि से सम्बन्ध कम होता गया।

प्राग्बौद्ध कालीन भारत का चीन पर प्रभाव— उपर्युक्त प्रकार से से चीन देश भारतीयों द्वारा ही आबाद किया गया। इस का स्वाभाविक परिणाम यह हुवा कि चीन निवासी प्रत्येक दृष्टि से अपनी मातृभूमि के धर्म, आचार, विचार, प्रथाओं आदि को ही आदर्श समझ कर उनका अनुकरण करते रहे। प्राचीन चीन पर भारत वर्ष का यह नैतिक प्रभाव बहुत समय तक कायम रहा। इस सम्बन्ध में बहुत से प्रमाण हम इस अध्याय के पहले हिस्से में दे चुके हैं।

महात्मा बुद्ध के उदय से पूर्व भी भारतवर्ष का चीन देश पर बहुत बड़ा प्रभाव था; चीन देश का साहित्य स्वयं इस का साक्षी है। प्रसिद्ध चीनी

---

१. यवनाः किराता गान्धाराश्चीनाः शबरबर्बराः।
शकास्तुषाराः कङ्काश्च पह्लवाश्चान्ध्रमद्रकाः॥ १३॥
उण्ड्राः पुलिन्दा आरट्टाः काचा म्लेच्छाश्च सर्वशः।
ब्रह्मक्षत्र प्रसूताश्च वैश्या शूद्राश्च मानवाः॥ १४॥
कथं धर्मं चरिष्यन्ति सर्वे विषय वासिनः।
मद्विधैश्च कथं स्थाप्या सर्वे वै दस्युजीविनः॥ १५॥
(महा० शान्ति० अ० ६४)

विद्वान् यांगत्साई ने १५५८ में एक ग्रन्थ लिखा था जिसे हू या ने १७७६ में पुनः सम्पादित किया था। इस पुस्तक के पादरी क्लार्क द्वारा किए अनुवाद का निम्न लिखित उद्धरण हमारी उपर्युक्त स्थापना को पूरी तरह पुष्ट करता है-"यह सम्भव है कि इसी प्रान्त द्वारा वर्त्तमान चीनी साम्राज्य की नींव रक्खी गई हो। अत्यन्त प्राचीन काल में भारतवर्ष के मो·ली·ची राज्य का आह-यू नामक राज कुमार यून्नन प्रान्त में आया। इस राजकुमार के पुत्र का नाम ती-मोंगेङ्ग था। सम्भवतः यह कुमार भी अपने पिता के साथ आया और इस ने अपने पिता को यहां राज्य स्थापित करने में सहायता दी। कालान्तर में राजा ती·मोंगेङ्ग के क्रमशः नौ पुत्र हुए। ये नौ पुत्र बड़े प्रसिद्ध हुए और उन्होंने भिन्न २ जातियों की नींव डाली।

"पहले पुत्र मौङ्ग-कू·फू ने साम्राज्य के सोलहवें भाग को बसाया (मालूम नहीं कि यह स्थान कौन सा है)। दूसरे पुत्र मौङ्ग-कू-लिन ने त्वाफन या तिब्बत का राज्य बसाया। तीसरे पुत्र मौङ्ग-कू-लू ने हैन·रैन या चीन देश को बसाया। चौथे पुत्र मौङ्ग-कू-फू ने मैनत्साई राज्य बसाया। पांचवे पुत्र मौङ्ग-कू-तू ने मौङ्गशी (सम्भवतः मङ्गोलिया) राज्य को बसाया। छटे पुत्र का नाम भी मौङ्ग-कू-तू था, इस ने लीअन (सम्भवतः स्याम) देश को आबाद किया। सातवें पुत्र मौङ्ग-कू-लोन ने अनाम देश बसाया। आठवां लड़का मौङ्ग-कू-सङ्ग प्राचीन यन्नीस जाति का पूर्व पुरुष है। नौवें पुत्र मौङ्ग-कू-नब ने पई-इब या पेह-इब को आबाद किया।

भिन्न २ राजवंशों के साथ ही साथ यून्नन देश का नाम भी बदलता रहा। यह नाम चाहु वंश से लेकर मिङ्ग वंश ११२२ ई० पूर्व से ६६० ई० पश्चात् तक रहा।

इसी पुस्तक में एक हिन्दू प्रान्त की सरकार का वर्णन इस प्रकार किया गया है—'यहां की सरकार की रचना इस प्रकार थी—नियामक विभाग, सिविल और सैनिक कार्यों का नियन्त्रण करने के लिए आठ मन्त्री थे; प्रबन्ध विभाग के नौ मुख्य अधिकारी थे, इन मन्त्रियों पर एक सभापति था; जन संख्या (गणना) का एक अध्यक्ष था; सैनिक कार्यों के लिए एक विज्ञ सलाहकार था; जनता के कार्यों तथा व्यापार-संघों के दो मुख्य अधिकारी थे; सरकारी सम्पत्ति के प्रबन्ध के लिए तीन अधिकारी थे; एक घोड़ों और पशुओं का अध्यक्ष था; एक प्रधान सेनापति और रसद विभाग का अध्यक्ष था। यहां यङ्ग-चैङ्ग-फू आदि नाम के ८ अधिकारी थे। दो ब्रिगेड के अध्यक्ष थे।

१७ अधिकारी भिन्न २ प्रान्तों में नियुक्त थे। ताली राज्य के पूर्वीय भाग में सेना के ३५ अधिकारी नियुक्त थे।"

यह वर्णन एक प्राचीन चीनी हिन्दू प्रान्त की सरकार का है। पाठक इस की तुलना भारतीय नीति ग्रन्थों-मनुस्मृति, शुक्रनीति, शान्ति पर्व, कौटिल्य-अर्थशास्त्र आदि—में वर्णित शासन पद्धति से करें। इन दोनों शासन पद्धतियों में बहुत अधिक समानता है। इस पद्धति में भारतीय अष्ट प्रधान, मन्त्री-सभा आदि हूबहू उसी रूप में पाये जाते हैं। इस प्रकार चीनी साहित्य स्वयं दोनों देशों के प्राग्बौद्धकालीन सम्बन्ध की साक्षी देता है।

भारतीय राजकुमार—श्रीयुत् दलाल का कथन है कि उपर्युक्त भारतीय राजकुमार, जिस ने चीन देश को आबाद किया, का वर्णन पुराणों में भी है—"यङ्गत्साई द्वारा वर्णित भारतीय राजकुमार आह-यू का वर्णन पुराणों में भी प्राप्त होता है। हमारी सम्मति यह राजकुमार आह-यू वास्तव में पौराणिक साहित्य में सुप्रसिद्ध राजा पुरुरवा का पुत्र 'आयु' ही है।[१] टौड के राजस्थान में अब्दुल गाज़ी द्वारा वर्णित उल्लेख से भी इस स्थापना की पूर्णतया पुष्टि होती है। वह उल्लेख इस प्रकार है—

"एक औगक्स के दो लड़के थे, एक का नाम था कियम (सूर्य) और दूसरे का नाम था आय अथवा आयु (चन्द्र)। इन में से आयु तातरि लोगों का पूर्व पुरुष है। आयु या आह-यू के जन्म के सम्बन्ध में पुराणों और चीनी ग्रन्थों में जो वर्णन उपलब्ध होता है उस में भारी समानता है। पुराणों (विष्णु पुराण. IV. I.) के अनुसार बुद्ध ने इड़ा को देखा, जब वह उस के समीप रहने लगी तब उस से पुरुरवा नामक एक पुत्र हुवा, इस पुरुरवा का बड़ा लड़का ही आयु था। चीनी ग्रथों के अनुसार आह-यु भी एक तारे का ही पुत्र था, वह तारा फो (बुद्ध नक्षत्र) था। यह नक्षत्र भी आह-यु की माता पर यात्रा में ही आसक्त हुआ था। इस आह-यु ने २२०७ ई० पू० राज्य किया। इसी सम्राट ने चीनी साम्राज्य को ६ भागों में विभक्त किया।"[२]

भगदत्त— महाभारत में वर्णन आता है कि महाराज युधिष्ठिर के समकाल में चीन देश पर भगदत्त नाम का राजा शासन कर रहा था, यह

---

१. विष्णु पुराण भाग ३. अध्याय ८

2. Modern Revew August. 1916.

राजा महाभारत के भारतीय महायुद्ध में भी सम्मिलित हुवा था । युद्ध में इस ने कौरवों का पक्ष लिया था; इसी युद्ध में ही इस की मृत्यु हुई। इस के कारण कौरवों की बहुत अधिक सेना वृद्धि हुई थी।

उपसंहार— अन्त में हम सर विलियम जोन्स के इन शब्दों के साथ इस अध्याय को समाप्त करते हैं—"हमें अत्यन्त प्राचान चीनी लोगों में ऐसे विश्वास और धार्मिक कृत्य प्राप्त होते हैं जो कि प्राचीन तम भारतीय विश्वासों और धार्मिक कृत्यों के साथ हूबहू मेल खाते हैं। इनको चीनी विचारक और चीनी सरकारें भी प्रोत्साहित ही करती रही हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों और चीनी धर्म ग्रन्थों के बहुत से विधानों में समानता है। प्राचीन हिन्दुओं के मृतक संस्कार, श्राद्ध आदि भी इसी रूप में प्राचीन चीनियों में भी पाये जाते हैं। इतना ही नहीं अपितु बहुत सी प्राचीनतम भारतीय कथाएं और हिन्दू काल की ऐतिहासिक घटनाएँ कुछ बिगड़े हुए रूप में चीनी साहित्य में उपलब्ध होती हैं। ये सब समानताए श्रीयुत् ले जैण्टिल और श्रीयुत बैली ने अनथक खोज के बाद सिद्ध की हैं। यह समझना कि बौद्ध धर्म के साथ ही साथ ये सब बातें चीनी साहित्य और चीनी सभ्यता में प्रवेश कर गई होंगी—भारी भूल होगी। क्योंकि इन में बहुत सी प्रथाएं ऐसी हैं जो बौद्ध सभ्यता के एक दम प्रतिकूल हैं। उदाहरणार्थ यज्ञों में पशुबलि की भारतीय प्रथा अहिंसाप्राण बौद्ध धर्म अपने साथ चीन में ले ही नहीं जा सकता था। ये सब प्रथाएं प्राग्बौध कालीन हिन्दू धर्म के साथ ही पूरी तरह मेल खाती हैं।" "इन सब प्रमाणों से भली प्रकार सिद्ध होता है कि प्राचीन हिन्दू और चीनी लोग प्रारम्भ में एक ही जाति के थे। परन्तु जब उन में से कुछ लोग सुदूर चीन देश में जाकर बस गए तब हजारों वर्षों के बाद क्रमशः चीनी लोग तो अपनी प्राचीन सभ्यता, धर्म, भाषा आदि को प्रायः भूल से गए परन्तु भारत वर्ष में वह सभ्यता अवनत नहीं हुई।"

इस प्रकार भारतवर्ष और चीन के प्राग्बौद्ध कालीन सम्बन्ध की सत्ता, और उनकी पारस्परिक घनिष्ठता भली प्रकार सिद्ध हो चुकी। इस काल के बाद तो, अर्थात् बौद्ध काल में, यह सम्बन्ध और भी घनिष्ठ हो गया। भारतीय प्रचारकों के अनवरत यत्न से सारे का सारा चीन महात्मा बुद्ध के सम्प्रदाय का अनुयायी हो उठा। उस काल का वर्णन हम यथास्थान अपने इतिहास के अगले खण्डों में करेंगे।

* द्वितीय अध्याय *

भारत और ईरान

भारत और ईरान के मध्यकालीन पारस्परिक सम्बन्ध के सब से बड़े जीवित और प्रमाण वर्तमान भारतवासी पारसी लोग ही हैं। ये लोग आज से बहुत कालपूर्व भारत में आकर बसे थे। अब तो भारतवर्ष ही इन लोगों की मातृभूमि बन चुका है। परन्तु प्राचीन काल में भारतीय सभ्यता को ईरान ने बड़ी उत्कण्ठा से स्वीकार किया था तथा भारतीय प्रथाओं और विचारों को अपनाया था—यह बात सिद्ध करने के लिये कुछ प्रमाण देना आवश्यक होगा।

ऐसा प्रतीत होता है कि किसी समय भारतीय आर्य लोग ही ईरान में जाकर आबाद हुए होंगे। इसी से इस देश का नाम "आर्य-स्थान" पड़ा होगा, जो कि अब बिगड़ते बिगड़ते "ईरान" हो गया है। पारसियों का प्राचीन धर्म ग्रन्थ "ज़िन्दावस्था" है। इसी ग्रन्थ को वे ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं। ज़िन्दावस्था में बहुत स्थानों पर 'आर्य' शब्द प्राप्त होता है। उदाहरण के लिये—

"आर्यों के प्रताप के कारण"[1]

"मज़्दा के द्वारा की गई आर्यों की कीर्ति के कारण"[2]

"हम मज़्दा द्वारा स्थापित की हुई आर्यमहिमा के प्रति आहुति देते हैं।"[3]

"आर्यों के देश किस प्रकार उपजाऊ बनेंगे?"[4]

"देखो, आर्यजाति उस के प्रति तर्पण करती है।"[5]

इन उद्धरणों से प्रतीत होता है कि ज़िन्दावस्था में जिन प्राचीन ईरानी लोगों की प्रार्थनाएं वर्णित हैं वे अपने को आर्यजाति का ही मानते थे। इस बात की सिद्धि के लिए कि ईरान के प्राचीनतम महापुरुष ईरान देश

---

1. Serozah. 1; 9. V. II. P.7.
2. " I. Bud. 1. 25. Vol. II. P.11
3. " II. 9. P. 15.
4. " 1 Bud. 9.
5. " 1 " 3. 4. P. 108.

के नहीं थे, एक प्रमाण देना अप्रासङ्गिक न होगा । ज़िन्दवस्था में ऋषि जोराष्ट्र का वर्णन बहुत सम्मान व श्रद्धा के साथ किया गया है। इस ऋषि जोराष्ट्र के सम्बन्ध में विद्वान विचारक स्पीगल का कथन है कि यह ईरानी का न होकर अदन का था।

इसी प्रकार कुछ अन्य पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि ज़िन्दावस्था वास्तव में "छन्दोवस्था" का अपभ्रंश है। अर्थात् उपनिषदों की शिक्षा को ही छन्दोवस्था के रूप में लिखा गया था। इस बात की विवेचना हम आगे चल कर करेंगे।

सम्बन्ध शिथिल कब हुवा ?— हमारी सम्मति में कम से कम महाभारत काल तक तो भारतवर्ष और ईरान का पारस्परिक सम्बन्ध पर्याप्त घनिष्ठ रहा होगा। उस काल के बाद ही इस सम्बन्ध में शिथिलता आनी प्रारम्भ हुई होगी। महाभारत में "पारस" देश का नाम कई स्थानों पर आया है। साथ ही महाभारत तथा अन्य ग्रन्थों की बहुत सी बातें ज़िन्दावस्था के साथ खूब मेल खाती हैं—

१. पारस देश के धर्मग्रन्थ पहलवी भाषा में लिखे हुए हैं। पहलवी भाषा बोलने वालों के लिये संस्कृत साहित्य में "पल्हव" नाम आता है। यह नाम महाभारत में अनेक बार आया है।[१] इसी प्रकरण में पारसीक, यवन, हरद, खश आदि नाम भी साथ ही आये हैं। ये पारसीक फ़ारसी और पल्हव पहलवी भाषा का प्रयोग करते थे।

२. महाभारत में लिखा है कि गौ को नहीं मारना चाहिये ; जो लोग यज्ञों में पशुहत्या करते हैं, वे धूर्त हैं। इसी प्रकार ज़िन्दावस्था में लिखा है कि परमात्मा ने गोरक्षा के लिये ज़रदुष्ट्र को नियुक्त किया।

३. धार्मिक दृष्टि से महाभारत का काल भारत में अवनति का काल था। इसी समय से कलियुग (पापयुग) का प्रारम्भ माना जाता है। ज़िन्दावस्था में लिखा है— "लोग परमात्मा को भूल रहे हैं ; पुराने समय में स्वर्णीय काल था जब कि सब लोग धर्मानुकूल आचरण करते थे।" इससे प्रतीत होता है कि यह वर्णन महाभारत का समकालीन ही है।

---

१. पल्हवा वर्वराश्चैव। [महा० सभा० अ० ३२ । १७.]

४. बहुत से पारसी विश्वास भारतीय विश्वासों के आधार पर ही बनाए हुए प्रतीत होते हैं। उदाहरणार्थ पारसियों में कुत्ता पवित्र समझा जाता है। इस का वास्तविक कारण पारसी ग्रन्थों में यही बताया गया है कि जब चरवाहे सो रहे होते हैं तब कुत्ता गौओं की रक्षा करता है अतः वह पवित्र है। भारतीयों की तरह ईरानवासी भी गोमूत्र को बहुत पवित्र समझते हैं। एक समय वे बच्चे की शुद्धि के लिए उस पर गोमूत्र ही छिड़का करते थे। भारतीय धर्म ग्रन्थों की तरह ज़िन्दावस्था में भी गौ को माता माना गया है।

५. 'यास्ना' पारसीयों की धर्म पुस्तकों में से एक है। इस के ४६ वें और ४७ वें अध्याय में ज़रदुष्ट्र ने ईश्वरीय धर्म के प्राचीन तम स्वरूप का वर्णन किया है। यास्ना के ४३ वें अध्याय में "अङ्गिरा" का भी नाम आता है। भारतीय ग्रन्थों के अनुसार अङ्गिरा एक महर्षि हुवा है, जिसे संसार की उत्पत्ति के प्रारम्भ में अथर्व वेद का ज्ञान हुवा था।

६. पारसी ग्रन्थ 'होवा युष्ट' में अथर्व वेद का वर्णन भी आता है। यहाँ लिखा है— "कृशानु राजा बड़ा दुष्ट था। उसने आज्ञा दी थी कि कोई अथर्व वेद का ज्ञाता "आपय, अविष्टय" आदि न पढ़े। इसी कारण उसे राजसिंहासन से उतार दिया गया। महाभारत के अनुसार अथर्ववेद का प्रारम्भ "शन्नो देवी रभिष्टय आपो—" मन्त्र से होता है। "आपो" और "अभिष्टय" ये दोनों शब्द इसी मन्त्र में आते हैं। अतः सम्भवतः इन दोनों शब्दों के द्वारा उस समय अथर्व वेद का ग्रहण ही किया जाता होगा।

७. ज़िन्दावस्था में "कावा उसा" नामी एक महापुरुष का वर्णन आया है। वैदिक साहित्य में "कवि पुत्र उपना" नामक एक महान व्यक्ति का वर्णन है, संस्कृत साहित्य में इसी को 'काव्य' और 'उपना' नाम दिये गये हैं।

इस प्रकरण में वर्णित ज़रदुष्ट्र का समय भिन्न २ विद्वान भिन्न २ मानते हैं। महाशय ग्ज़ेन्थस के अनुसार वह १८०० वर्ष ई० पू० में हुवा। यूनानी विद्वान एरिस्टोटल और प्लेटो उसे ७००० ई० पू० और महाशय वारेसस २२०० ई० पू० का मानते हैं।

उपर्युक्त तुलनाओं से प्रतीत होता है कि महाभारत काल तक भारत और ईरान का सम्बन्ध पर्याप्त घनिष्ट था, तथा ईरान की सभ्यता और विचार भारतीय सभ्यता और विचारों के आश्रय पर विकसित हुए। साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि महाभारत काल तक ईरान देश तथा ईरानी जाति की

पृथक् सत्ता भली प्रकार मौजूद थी। दूसरे शब्दों में भारतीय सभ्यता महाभारत काल तक उस देश में ईरानी सभ्यता का रूप धारण कर चुकी थी। परन्तु दोनों देशों का सम्बन्ध इस समय भी पर्याप्त घनिष्ट होगा।

ज़िन्दावस्था का निर्माण काल महाभारत ग्रन्थों के निर्माण के समकालीन या उससे कुछ पूर्व प्रतीत होता है, क्योंकि इस में "वियास" (व्यास) का वर्णन भी उपलब्ध होता है।

धर्मों की समानता—पारसी धर्म ग्रन्थों में बहुत सी ऐसी बातें हैं जो स्पष्ट रूप से वेदों से ली गई प्रतीत होती हैं। बहुत से वैदिक देवताओं तथा ईश्वर के नाम ज़िन्दावस्था में उसी रूप में पाये जाते हैं। उदाहरण के लिये—

१. ज़िन्दावस्था में ईश्वर के अनेक नामों में से एक नाम "अहुरमज़्दा" है। यह शब्द वास्तव में वैदिक शब्द "असुरमेधा" का बिगड़ा हुआ रूप है। वेद में अनेक स्थानों पर ईश्वर के लिये "असुर" शब्द प्रयुक्त किया गया है। वहाँ इस का अर्थ "प्राणों को धारण कराने वाला" और "प्रलय कर्त्ता" है।[1] इसी प्रकार ईश्वर के मित्र, नाराशंसी, अर्यमन्, ब्रह्मन्, भग आदि नाम भी ज़िन्दावस्था में प्राप्त होते हैं। ३३ वैदिक देवताओं के अनुसार ज़िन्दावस्था ने भी ३३ देवता ही माने हैं।

२. वैदिक यज्ञों का वर्णन भी ज़िन्दावस्था में प्राप्त होता है। वहाँ "सोम यज्ञ" तथा "गोमेध" को "होम" तथा "गोमेज़" नाम से लिखा है। इन यज्ञों का अभिप्राय कृषिपरक है। इसी प्रकार वैदिक "दर्शेष्टि" यज्ञ को ज़िन्दावस्था में "दास" नाम दिया गया है।

३. चार वैदिक वर्णों के अनुसार ही पारसी धर्म ग्रन्थों में इन चार वर्णों का वर्णन है—

I. हरिस्तरन (Horistoran) — ब्राह्मण.
II. नूरिस्तरन (Nuristoran) — क्षत्रिय.

---

१. अव ते हेडो नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः।
क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि ॥ [ऋ० १।२४।१४.]
यथा रुद्रस्य सूनवो दिवो वशन्त्यसुरस्य वेधसः।
युवानस्तथेदसत ॥ [ऋग्० ८।२०।१७.]

III. सोसिस्तरन (Sositoran) — वैश्य.
IV. रोज़िस्तरन (Rozistoran) — शूद्र.

४. वैदिक ग्रन्थों की तरह पारसी धर्म ग्रंथों में ब्रह्मचर्य पर बहुत बल दिया गया है। उन के अनुसार वीर्यनाश एक भयङ्कर पाप है।

अन्य समानताएं—पारसी लोगों की बहुत सी प्रथाएं भारत-वासियों की प्राचीन प्रथाओं से बिल्कुल मिलती हैं—

भारत वासियों की तरह पारसी लोग भी सोना, चाँदी, पीतल और मिट्टी के बर्तनों को क्रमशः कम पवित्र समझते हैं। ईरान में भी गर्भिणी और ऋतुमति स्त्री से छूत रक्खी जाती थी।

प्राचीन पारसी पुरोहितों के लिए वैदिक पुरोहितों की तरह यज्ञोपवीत पहरना, यज्ञ करना, अध्यापन, अध्ययन, संयमियों की तरह रात्रि जागरण, उपवास आदि व्रत करना आवश्यक होता था। प्राचीन पारसी ब्राह्मण भी भारतीय ब्राह्मणों की तरह निर्धनता का जीवन ही व्यतीत करते थे।

पारसी ग्रन्थ 'महा वू' में लिखा है—"शब्द भी ब्रह्म है।"
'यामा' के अनुसार प्राचीन पारसी लोग गायत्री का जाप करते थे।
'सिरोजा' के अनुसार—"परमात्मा सहस्राक्ष है—"
'यामा' के अनुसार—"परमात्मा के १०१ नाम पूज्य हैं।"

दोनों सभ्यताओं की समानता के लिए इतने प्रमाण देना ही पर्याप्त है।

ज़िन्द अवस्था— यह नाम भी वैदिक नाम है। "ज़िन्द" शब्द "छन्द" का अपभ्रंश है। अवस्था का अर्थ है, ज्ञान। इसका अभिप्राय "छन्द ज्ञान" अर्थात् "मन्त्र ज्ञान" हुवा।

भाषाओं में समानता—

ज़ेन्द भाषा का उद्गम संस्कृत भाषा से ही हुआ है। यह बात सिद्ध करने के लिये विशेष युक्तियां देने की आवश्यकता नहीं है। नीचे दिए हुए कुछ शब्दों द्वारा हमारी यह स्थापना स्वयं पुष्ट होजायगी—

संस्कृत	**ज़ेन्द**	**अर्थ**
	(संस्कृत 'स' जेन्द में 'ह' होगया है।)	
असुर	अहुर	परमेश्वर
सोम	होम	वनस्पति

संस्कृत	जेन्द	अर्थ
सप्त	हप्त	सात
सेना	हेना	फौज

(संस्कृत 'ह' जेन्द में 'ज़' होगया है।)

संस्कृत	जेन्द	अर्थ
हस्त	ज़स्त	हाथ
होता	ज़ोता	हवन कराने वाला
आहुति	आज़ुति	आहुति
बाहु	बाज़ु	बाहु
अहि	अज़ि	सांप

(संस्कृत 'ज' जेन्द में 'ज़' होगया है।)

संस्कृत	जेन्द	अर्थ
जानु	ज़ानु	घुटना
वज्र	वज्र	वज्र
अजा	अज़ा	बकरी
जिह्वा	हिज़्वा	जबान

(संस्कृत 'श्व' जेंद में 'स्प' हो गया है।)

संस्कृत	जेन्द	अर्थ
विश्व	विस्प	संसार
अश्व	अस्प	घोड़ा

(संस्कृत का पहला 'श्व' या 'स्व' जेंद में 'क़' हो गया है।)

संस्कृत	जेन्द	अर्थ
श्वसुर	क़सुर	ससुर
स्वप्न	क़प्न	सपना

संस्कृत 'त' जेंद में 'थ' हो गया है।)

संस्कृत	जेन्द	अर्थ
मित्र	मिथ्र	मित्र
मन्त्र	मन्थ्र	मन्त्र

(संस्कृत 'भ' जेंद में 'फ' हो गया।)

संस्कृत	जेन्द	अर्थ
गृभ	गृफ	पकड़ना
गोमेध	गोमेज़	खेती करना।

संस्कृत	ज़ेन्द	अर्थ
(इन शब्दों में कोई अन्तर नहीं आया ।)		
पशु	पशु	पशु
गो	गाव	गाय
उक्षन्	उक्षन्	बैल
यव	यव	जौ
वैद्य	वैद्य	वैद्य
वायु	वायु	वायु
इषु	इषु	वाण
रथ	रथ	रथ
गन्धर्व	गन्धर्व	गाने वाले
अथर्वन	अथर्वन	यज्ञ ऋषि
गाथा	गाथा	पवित्र पुस्तक
इष्टि	इष्टि	यज्ञ
छन्द	ज़न्द	ज्ञान

वैदिक शब्द--

अस्मै = अहमै		कस्मै = कहमै	
श्वान = स्वान		श्वः = स्व	
शुने = सुने		शूनस् = सूनो	
शुना = शुनाम्		पथिन् = पथात्	
पथ = पथा		पथ्यनक्ष = पन्नानो	
कृणोमि = किरिनाउमि		गमयति = जमयति	
येषाम् = हयूनाम्		श्वान = स्यानम्	
श्वास = श्यास		गृष्णामि = गैरिनामि	
पन्थ = पन्न			

इसी प्रकार अन्य भी बहुत से समान शब्द उद्धृत किये जासकते हैं। कितने काल के व्यवधान में ये शब्द इस रूप में परिवर्तित हुए इस सम्बन्ध में अभी तक शब्दशास्त्रज्ञ चुप हैं।

इन सब प्रमाणों के आधार पर यह स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि पारसी सभ्यता का विकास भारतीय वैदिक सभ्यता से ही हुवा है।

* तीसरा अध्याय *

एसनीज़ लोग और भारतीय आर्य

एसनीज़ लोगों का वास पैलस्टाइन देश में था। एसनीज़ एक विशेष प्रकार के सम्प्रदाय का नाम था, जो कि देश या जन्म के आधार पर संगठित नहीं था। इस जाति की अनेक शाखाएँ थी, इन में से एक मुख्य शाखा का नाम 'थैराप्यूट्स' था। ऐसा प्रतीत होता है कि एसनीज़ सम्प्रदाय ने भी भारतीय सभ्यता और वैदिक विचारों को भली प्रकार अपना लिया था। बहुत से एसनीज़ रीति-रिवाज और विचार भारतीय ही प्रथाओं और विचारों से हूबहू मिलते हैं।

थैराप्यूट्स— थैराप्यूट्स लोगों के सम्बन्ध में विशेषज्ञ बेल्जियन कुमारी फेराजा के अनुसार संक्षेप में कुछ बातें यहाँ लिखी जाती हैं- "सम्पूर्ण एसनीज़ जाति में थैराप्यूट्स लोग ही अपने पास कुछ भी धन नहीं रखते थे। परन्तु फिर भी वे सब से अधिक सम्पन्न थे; क्योंकि उन की आवश्यकताएँ बहुत ही कम थीं। लोभ, जो कि अन्याय की ओर ले जाने वाला है, से वे सर्वथा मुक्त थे। थैराप्यूट्स सदैव ब्रह्मज्ञान की ओर ही अपना ध्यान रखते थे। अपनी जाति की प्राचीन रीति के अनुसार वे दार्शनिक विचारों को भी आलंकारिक रूप में ही लिखा करते थे। वे लोग अतिथि सत्कार के लिये बड़े उत्सुक रहते थे; अन्य देशों से आए हुए लोगों के लिये उनके द्वार सदैव खुले रहते थे। उनकी संस्थाएँ भी धर्म और परोपकार के लिये ही बनाई जाती थीं। वे सदैव खूब प्रसन्न रहते थे। किसी व्यक्ति का सम्मान वे उस के जन्म और जाति के आधार पर नहीं अपितु उस के गुणों के आधार पर ही करते थे।

"थैराप्यूट्स लोग सदैव पैथागोरियन दार्शनिकों के विचारों के आधार पर अनिर्वाच्य परब्रह्म के ध्यान में लीन रहते थे। ईश्वर का यह पवित्र नाम जैट्रग्रमेशन (Jetragrammation) है; आज कल इस का अनुवाद "जहोवा" किया जाता है। इस शब्द के प्रत्येक अक्षर में भिन्न भिन्न भाव भरे हुए हैं; ईश्वर के सब गुण इन भावों में समा जाते हैं। इसी नाम के आधार पर प्राचीन एसनीज़ साहित्य में लिखा है कि ईश्वर के मुख्य नाम के अक्षरों से

ही संसार उत्पन्न हुवा है, और स्थिर हैं । थैराप्यूट्स लोग परमेश्वर के इस नाम के मूलमन्त्र का रहस्य अपने शिष्यों को बहुत गुप्त रीति से बताया करते थे।"

थैराप्यूट्स लोगों के उपर्युक्त वर्णन में भारतीय तपस्वी ब्राह्मणों के वर्णन से कितनी अधिक साम्यता है इसका निर्णय पाठक स्वयं कर सकते हैं। एक बात की ओर हम स्वयं पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। ईश्वर का सर्वोत्तम वैदिक नाम "ओ३म्" है। यह ओ३म् भी चतुष्पाद है इस के प्रत्येक पद में अनेक भाव भरे हुए हैं। मुण्डकोपनिषद् और यजुर्वेद में इस की विस्तृत व्याख्या की गई है। एसनीज़ साहित्य की तरह वैदिक साहित्य की भाषा में हम कह सकते हैं कि ओ३म् के चार अक्षरों से ही संसार की उत्पत्ति हुई है।

एसनीज़ लोग— इस जाति के लोग मृत सागर (Dead Sea) के किनारों पर फैले हुए थे । यह जाति जन्म या देश के आधार पर नहीं थी। इसे एक विशेष सम्प्रदाय कहना ही अधिक उपयुक्त होगा। यह तपस्वियों का एक विशाल समुदाय था। इस के कई विभाग थे, जिन में से थैराप्यूट्स का वर्णन हम कर चुके हैं। एसनीज़ सम्प्रदाय की बहुत सी बातें भारतीय प्राचीन तपस्वियों से बहुत अधिक मिलती हैं। उदाहरणार्थ Encyclopidia of Religion and Ethics के आधार पर एसनीज़ लोगों का संक्षिप्त परिचय हम यहाँ उद्धृत करते हैं—[1] "ये लोग पैलस्टाइन और सीरिया में झोपड़ियाँ डाल कर अथवा वृक्षों के तले रहते थे। ये लोग सदैव ईश्वर भक्ति में मग्न रहते थे; पशु-हत्या या बलिदान कभी न करते थे। शहरों से बाहर छोटे छोटे दल बना कर रहते थे। वे तर्क को व्यर्थ और ज्ञान मार्ग में बाधक समझते थे; आचार शास्त्र के अध्ययन पर बहुत अधिक बल देते थे; प्राचीन प्रथाओं का अक्षरशः पालन करते थे। उपासना के लिये सब ने अलग अलग स्थान ले रक्खे थे। प्रातःकाल ईश्वरोपासना के बाद अपना सारा समय ये लोग आचार शास्त्र के प्राचीन नियमों और व्यवस्थाओं के अनुशीलन में लगाते थे। ये लोग भिन्न भिन्न छन्दों में कविता भी किया करते थे। सप्ताह के अन्तिम दिन अवकाश मनाते थे; उस दिन सब लोग एक स्थान पर जमा होकर अपनी आयु के क्रम से बैठते थे। एक व्यक्ति धर्म-ग्रन्थ को ऊँची आवाज़ में पढ़ता था और शेष सब खूब ध्यान से उसे सुनते

---

१. Encyclopidia of Religion and Ethics.— "Essenes."
by James Moffot.

थे। बीच २ में शंकासमाधान भी किया जाता था। वे लोग तपस्या, दया, पवित्रता, न्याय, भ्रातृभाव आदि के अनुकूल अपने जीवन को ढालने का यत्न करते थे, उन के जीवन का मूलमन्त्र था— मनुष्य, ईश्वर और सत्य से प्रेम। प्रतिदिन वे तपस्या पूर्वक ईश्वर प्राप्ति के लिये यत्न करते थे। अपने पास धन रखने को वे लोग पाप समझते थे, लोभ का समूल नाश करने का यत्न करते थे। यशकामना को बाधक समझ कर वे इन्द्रिय दमन के लिये यत्न करते थे। उन लोगों में पूर्ण रूप से साम्यभाव था। उन की सब वस्तुओं पर प्रत्येक एसनीज़ का समान अधिकार था। यहाँ तक कि भोजन, वस्त्र, बर्तन आदि आवश्यक वस्तुएँ भी सब लोगों की समान सम्पत्ति (Common property) समझी जाती थीं। अपनी आजीविका के लिये शहरों में जाकर वे कुछ घण्टे काम भी करते थे और अपनी सम्पूर्ण आमदनी को प्रतिदिन इकट्ठा कर लेते थे।

"एसनीज़ लोग विवाह से घृणा करते थे। अपने सम्प्रदाय में वे अन्य लोगों के बालकों को, उन की परीक्षा लेकर, शामिल करते थे। धन को वे वाञ्छनीय वस्तु न समझ कर आपस में भ्रातृभाव बढ़ाने का यत्न करते थे। सूर्योदय से पूर्व सांसारिक बातों के सम्बन्ध में वे एक शब्द भी न बोलते थे; इस समय तक वे प्राचीन काल से चली आती हुई प्रार्थनाओं का ही पाठ करते रहते थे। सूर्योदय के बाद वे नित्यकर्म करके ठण्डे पानी से स्नान करते थे। उनकी भोजन शालाएँ खूब स्वच्छ रहती थीं। सब लोगों के बैठने का एक समान ही प्रबन्ध होता था, एक ही प्रकार का भोजन बनता था। भोजन करते हुए वे बिल्कुल शान्त रहते थे। प्रार्थना के कुछ गीत गा कर ही वे भोजन प्रारम्भ करते थे। भोजन समाप्त करने पर पुनः प्रार्थना की जाती थी। उनका वचन शपथ से भी बढ़कर होता था।

"उनके सम्प्रदाय में जो कोई शामिल होना चाहता था, पहले उसकी परीक्षा ली जाती थी। उसे एक सफेद रस्सी और मेखला धारण कराई जाती थी।

"वे ज़रा सा अपराध करने पर स्वयं दण्ड लेने को उत्सुक रहते थे। बड़ों की आज्ञा का वे सम्मानपूर्वक पालन करते थे। अपने कार्यों के अनुसार वे चार श्रेणियों (वर्णों) में विभक्त हुए हुए थे। इन चार वर्णों में से सब से निचले वर्ण का व्यक्ति उत्तम वर्ण के व्यक्ति को छू भी नहीं सकताथा, अगर वह छू ले तो उत्तम वर्ण के व्यक्ति को पवित्र होने के लिये स्नान करना पड़ता था। इनकी आयु खूब लम्बी होती थी। वे अपने शरीर को अत्यन्त कष्ट देते थे। परन्तु इस में वे दुख अनुभव नहीं करते थे।"

"उन का दृढ़ विश्वास था कि शरीर तो नश्वर है परन्तु आत्मा अजर और अमर है। शरीर को वे आत्मा का पिंजरा मात्र ही समझते थे।"

यह उपर्युक्त वर्णन बहुत संक्षिप्त रूप में ही दिया गया है। पाठक सुगमता से इस की तुलना भारतीय तपस्वियों के जीवन से कर सकते हैं। तपस्या, ब्रह्मचर्य, यज्ञोपवीत, मेखला, वर्ण-व्यवस्था, आत्मा की नित्यता आदि सम्पूर्ण बातों द्वारा यही सिद्ध होता है कि एसनीज़ लोग पूर्ण रूप भारतीय सभ्यता के ही अनुयायी थे। यहाँ तक कि एसनीज़ लोगों के चार वर्णों का वर्णन करते हुए विश्वकोश के सम्पादक को स्वयं भारतीय वर्ण-व्यवस्था की याद हो आई है!

इस तुलना की पुष्टि में एक और प्रमाण देकर हम यह अध्याय समाप्त करेंगे। एसनीज़ लोगों के धर्म ग्रन्थों में अधिकाँश रूप से उपनिषदों की वैदिक शिक्षा की ही व्याख्या करने का यत्न किया गया है। इस के लिये एक उदाहरण देना ही पर्याप्त होगा— ईशोपनिषद् में "अहमस्मि" वाक्य आता है। इस की व्याख्या एसनीज़ धर्म ग्रन्थ एक्सोडस (Exodas) के शब्दों में ही इस प्रकार है— "ईश्वर ने मोज़िज़ को बताया—मैं हूं, मैं ही वही हूँ; तुझे इसराइल के बच्चों से कहना चाहिये कि उसने मुझे तुम्हारे पास भेजा है।" [1] इसी प्रकार अन्य भी बहुत से उपनिषद् वाक्यों की व्याख्या एसनीज़ धर्म ग्रन्थों में प्राप्त होती है।

इस प्रकार संक्षेप में हमने एसनीज़ जाति के साहित्य और प्रथाओं में भारतीय प्रथाओं और विचारों का संन्निवेश सिद्ध कर दिया है। एसनीज़ जाति का प्रारम्भिक इतिहास इतना अन्धकारमय है कि उस के प्रारम्भ के सम्बन्ध में किसी प्रकार की ऐतिहासिक स्थापना करना अभी तक लगभग असम्भव है। फिर भी अगर प्राचीन साहित्य और रीतिरिवाजों के आधार पर कोई स्थापना की जा सकती है तो वह यही कि एसनीज़ जाति की सभ्यता का मूल स्रोत ही नहीं अपितु उसका पथ प्रदर्शक भारतीय सभ्यता ही है।

---

१. "I am that I am and God send unto Moses—I am that I am, and he said thou shall say unto the children of Isarail—He hath sent me to you."

Exodas, ch. 3, verse 13, 14.

* चतुर्थ अध्याय *

भारत और पश्चिमी एशिया

पश्चिमी एशिया के प्राचीन देशों में भारतीय संस्कृति के प्रसार से ही सभ्यता का विकास हुवा था। इतना ही नहीं, हमारा विचार है कि इन में से कुछ देश बहुत समय तक भारत के उपनिदेशों के रूप में भी रहे होंगे। हमारे इस विचार की पुष्टी में सब से बड़ा प्रमाण वर्तमान सिन्ध और पञ्जाब में प्राप्त होने वाले प्राचीन नगरों के अवशेष है। पश्चिमी एशिया से हमारा अभिप्राय, बैबलोन, सीरिया और अरब से हैं। प्रारम्भ में ठोस ऐतिहासिक प्रमाण देकर हम इन देशों की सभ्यता पर भारतीय सभ्यता का असर सिद्ध करने के लिये प्राचीन साहित्य में से प्रमाण उद्धृत करेंगे।

मोहन जोदड़ो— यह स्थान वर्तमान सिन्ध प्रान्त के मध्य में अवस्थित है। पिछले कुछ वर्षों से यहां विस्मय कारी प्राचीन अवशेष प्राप्त हो रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कोई बड़ा नगर हज़ारों वर्ष पूर्व किसी दैवीय कोप के कारण भूमि में समा गया होगा। अभी तक इस ऐतिहासिक स्थान की खुदाई बहुत ही कम हुई है, अणकल अन्वेशण का कार्य जारी है; इस लिये इस स्थान पर प्राप्त हुई वस्तुओं द्वारा इतनी शीघ्र कोई निश्चित स्थापना करना अनुचित होगा। इस समय तक जो खोज हुई है; वह इस प्रकार है—

मोहन जोदड़ो का अर्थ है विस्मय कारी टीला। इस की ऊंचाई ३० से लेकर ४० फीट तक है। एक समय सिन्ध नदी इस टीले के पास से ही बहा करती थी। सिन्ध नदी द्वारा लाई गई मिट्टी के कारण ही यह स्थान टीले के रूप में परिवर्तित हो गया है। इस की खुदाई सन् १९२३ से प्रारम्भ हुई है। सब से पूर्व यहां मिट्टी और पत्थर की कुछ मुहरें प्राप्त हुई थीं जिन पर मैसोपोटेमिया की सुमेरियन लिपि से मिलते जुलते अक्षर बने थे। इन मोहरों पर बैल और पीपल के वृक्ष के भी चित्र हैं। खुदाई से निकलने वाले घर बहुत ही अच्छे ढंग से बसाए गए थे। घरों और गलियों का क्रम ऐसा है कि उस के द्वारा सफाई, स्वास्थ्यरक्षा, वायु का आवागमन भली प्रकार हो सके। गन्दे पानी को शहर से बाहर निकालने के लिये नालियों का ढंग भी बहुत उत्तम है। घरों के अन्दर ही स्नानागार और कूप आदि भी उपलब्ध हुए हैं।

इन के अतिरिक्त मिट्टी, पत्थर, पोर्सलीन (चीनी मिट्टी), हाथी दांत, सोना, चांदी, अक़ीक, बिल्लौर, शंख, हड्डी, पकाई हुई मिट्टी के सुन्दर सुन्दर खिलौने हथियार, वर्तन आदि भी प्राप्त हुए हैं।

सफेद पत्थर की बनी हुई मनुष्य की कुछ मूर्तियां भी प्राप्त हुई हैं। इन के मुंह की बनावट प्राचीन असीरियन लोगों से बहुत कुछ मिलती है। कुछ चांदी के चौकोर टुकड़े प्राप्त हुए हैं जिन पर बैबिलोनिया की प्राचीन लिपि से मिलते जुलते कुछ अक्षर बने हैं। उस समय की भौतिक सभ्यता के परिचायक ताम्बे के वर्तन, औजार, आरी आदि तथा चांदी के गहने, सूइयां, करधनी, सोने के मुलम्मे वाले ताम्बे के दाने, सोने के हार, बहुत ही बारीक और सुन्दर बने हुए सोने के आभूषण आदि भी प्राप्त हुए हैं। कुछ घरों में मनुष्यों की ठठरियां भी मिली हैं।

खुदाई से जिस नगर के अवशेष प्राप्त हो रहे हैं, उस नीचे की एक और, उस से भी प्राचीन तम, नगर के अवशेष प्रतीत होते हैं। यह दोहरी खुदाई अभी तक प्रारम्भ नहीं हुई। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी प्राचीन तम नगर के नष्ट हो जाने पर उस के खण्डरातों पर कालान्तर में दूसरा नगर बसाया गया होगा। यह नगर भी नष्ट हो गया। अभी तक इसी नगर के अवशेषों की ही खुदाई हो रही है। यह बाद का बसा हुवा नगर भी आज से कम से कम ५००० वर्ष पुराना है। अर्थात् यह बैबिलोनिया के प्राचीनतम नगर का समकालीन है। इन मकानों के निर्माण में कच्ची और पक्की दोनों प्रकार की ईंटें व्यवहार में लाई गई हैं।

खुदाई में बहुत से मन्दिर (उपासना गृह) भी प्राप्त हुए हैं। इन में सब से बड़े मन्दिर की रचना बैबिलोनिया के प्राचीन मन्दिरों से मिलती है। एक पद्मासन लगाए हुए मनुष्याकार देवता का चित्र भी प्राप्त हुवा है, इस चित्र में दांई और बांई ओर दो मनुष्य खड़े होकर प्रणाम कर रहे हैं।

इन घरों के निर्माण में प्लास्टर का उपयोग भी किया गया है। छत से नालियों में पानी गिराने के लिये मिट्टी के पकाये हुए नल लगे हैं। प्राचीन मिश्र और बैबिलोन के घरों से मुकाबला करने पर यहां की भवन निर्माणकला अधिक उन्नत प्रतीत होती है। कुछ अन्वेशकों का विचार है कि इन घरों में प्रयुक्त किया हुवा प्लास्टर मैसोपोटेमिया से यहां लाया जाता होगा।

हरप्पा—यह स्थान पञ्जाब के मिण्टगुमरी जिले में है। एक समय रावी नदी इस स्थान के समीप बहा करती थी। इस स्थान पर खुदाई करने से अधिकांश उसी ढंग की वस्तुएं प्राप्त हुई हैं जिस ढंग की वस्तुएं मोहन जोदड़ो में प्राप्त

हुई हैं । इस स्थान के आस पास लगभग ५० मील के घेरे में इसी प्रकार के अनेक टीले हैं, इन की खुदाई करने से, अनुमान है कि, ५००० वर्ष पूर्व की सभ्यता का सिलसिलेवार इतिहास प्राप्त हो सकेगा ।

हरप्पा में एक पक्की ईंटों की २० दुहरी दीवारों वाला मकान भी प्राप्त हुवा है । इसी प्रकार यहां के मिट्टी के पकाए हुए नल, रङ्गीन वर्तन, मसालों की बनावट आदि मोहन जोदड़ों में प्राप्त वस्तुओं की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है ।

बहुत से अन्वेशकों, का विचार है कि ये अवशेष प्राचीन भारतवर्ष की द्राविड़ियन जाति की सभ्यता के द्योतक हैं । जब भारतवर्ष में द्राविड़ियन सभ्यता पर्याप्त विकसित हो चुकी तब व्यापार आदि द्वारा, आज लगभग ५००० वर्ष पूर्व, पश्चिमी एशिया,-असीरिया, मैसोपोटामिया, बैबिलोन आदि-में उस का प्रसार प्रारम्भ हुवा । इस के कुछ काल अनन्तर ही उत्तर से आर्य जाति ने भारत पर आक्रमण कर के उस पर अपना अधिकार कर लिया । इस आक्रमण के प्रभाव से भारतवर्ष में से द्रविड़ियन सभ्यता का ह्रास होना प्रारम्भ होगया । कुछ लोगों का विश्वास है कि आज से लगभग ४००० वर्ष पूर्व भारतवर्ष के पश्चिमोत्तर भाग पर असीरियन लोगों ने आक्रमण किया । भारतीय आर्य परास्त हुए और असीरियन लोग इस भाग में अपनी सभ्यता का प्रसार करने में सफलता प्राप्त कर सके, इसी कारण पश्चिमोत्तर भारत और बलोचिस्तान में इस सभ्यता के अवशेष उपलब्ध होते हैं ।

हमारी स्थापना है कि वैदिक सभ्यता संसार की प्राचीन सभ्यताओं में प्राचीनतम है । भारतीय सभ्यता के एक भाग द्वारा ही पश्चिमीय एशिया में सभ्यता का प्रसार हो सका । हम भारतीय इतिहास को अँग्रेजी ऐतिहासिकों के दृष्टिकोण से नहीं देखते । भारतीय इतिहास के प्रारम्भ में ही भारतीय सभ्यता को तुच्छ समझकर कुछ आधार रहित स्थापनाओं को आधार मान लेना हमें पसन्द नहीं है । अभी तक उपर्युक्त ऐतिहासिक स्थानों की खोज बहुत अपूर्ण है । इसलिये उसके आधार पर इस समय तक कोई निश्चित परिणाम नहीं निकाला जा सकता ।

अन्य ऐतिहासिक प्रमाण— असीरिया और बैबिलोन के पुरातत्व ज्ञान में विशेषज्ञ डाक्टर साइस [1] का कथन है कि बैबिलोन और भारत का सम्बन्ध ३००० ई० पू० में भी स्पष्ट रुप से प्रमाणित होता है । जिस समय कि

---

1. His lecture on the origion and growth of Religion among the Babilonious, 1882.

वैबिलोन का सम्राट् उर बनसे चाल्डी लोगों के उर प्रान्त पर भी शासन कर रहा था। इस का सब से बड़ा प्रमाण यह है कि उर में प्राप्त हुए प्राचीन अवशेषों में भारतीय सागून की लकड़ी के टुकड़े भी मिले हैं। सम्भवतः यह लकड़ी मालाबार के जहाज़ों द्वारा वहाँ लेजाई जाती होगी। इसी प्रकार वैबिलोन के प्राचीन वस्त्रों की सूचि में एक प्रकार के रेशमी वस्त्र के लिये "सिन्धु" नाम आता है। यह कपड़ा भारत से वहाँ लेजाया जाता होगा, इसी कारण इसका "सिंधु" नाम पड़ा। श्रीयुत हैविट का विचार है कि इन्हीं वैबिलोन लोगों द्वारा ही भारतीय व्यापारियों का नाम सिन्धु से "हिन्दू" होगया होगा, जिस के द्वारा कि कालान्तर में भारतवर्ष का नाम हिन्दोस्तान होगया।

पश्चिमी एशिया के सम्बन्ध में कतिपय विशेषज्ञों और पुरातत्त्व वेत्ताओं का विचार है कि असीरिया, वैबिलोन और भारतवर्ष आदि देशों का पारस्परिक व्यापार इतने प्राचीन काल से नहीं अपितु ७ शताब्दि ई० पू० से ही प्रारम्भ हुवा है। इस समय भारत और इन देशों के पारस्परिक सम्बन्ध को सिद्ध करने के लिये वे लोग अनेक प्रमाण देते हैं। कोई भी पुरातत्त्व वेत्ता इस समय भारत और पश्चिमी एशिया के पारस्परिक सम्बन्ध से असहमत नहीं है। हम इस काल से प्राचीन काल के सम्बन्ध की सत्ता ही सिद्ध कर रहे हैं, अतः इन लोगों की युक्तियाँ यहाँ देना व्यर्थ होगा।

श्रीयुत कैनेडी का कथन है कि ७ शताब्दि ई० पू० भारत और वैबिलोन में परस्पर समुद्र द्वारा व्यापार प्रारम्भ होगया था। तब भारतीय व्यापारियों ने अरब और अफ्रीका के सामुद्रिक तटों पर अपने उपनिवेश भी बना रक्खे थे। यह व्यापार अरब समुद्र और पर्शिया की खाड़ी के मार्ग से ही होता था। इस समय तक वैबिलोन में भी बहुत से भारतीय उपनिवेश बस चुके थे।

भारत और पश्चिमी एशिया के पारस्परिक सम्बन्ध की साक्षी बाइबल द्वारा भी प्राप्त होती हैं। बाइबल के प्राचीन भाग (Old Testament) में कहा है—[1] "मोज़िक काल (१४६१ ई० पू० से १४५० ई० पू० तक) में लोग हीरों की, विशेष कर भारतवर्ष से लाए गए हीरों की, खूब कदर करते थे। कतिपय उत्तम हीरे सुदूर पूर्व (Far east) से भी आते थे।"

प्राचीन सीरियन साहित्य से भी भारत और सीरिया के प्राचीनतम सम्बन्ध की सत्ता सिद्ध होती है। एक सीरियन ग्रन्थ में लिखा है कि जब

1. Prof. V. Bells article on "A Geologist's contrilbution to the History of India." I. A. August. 1884.

सीरिया पर १०१५ ई० पू० में राजा सोलोमन राज्य कर रहा था उस समय वहाँ भारतवर्ष से हाथीदाँत, कपड़े, कवच, मसाले आदि आया करते थे। एक और पुस्तक में लिखा है कि राजा सोलोमन के समय एक जहाज़ पर भारत से सोना, कीमती लकड़ी, हीरे आदि आए। पादरी टी० फौक[1] का कथन है कि राजा सोलोमन के काल में ये भारतीय जहाज़ भारत के दक्कन प्रदेश से ही जाया करते होंगे।

हैरोडोटस ने लिखा है कि भारतवर्ष में सोना संसार भर के सब देशों से अधिक है। उसने सोना खोदने वाली चींटियों का वर्णन भी किया है। उसके कथनानुसार भारतवर्ष से बैबिलोन में हीरे और बढ़िया कुत्ते जाया करते हैं।

पद्मासन—मैसोपोटेमिया और भारत का प्राचीन सम्बन्ध हम मोहन-जोदड़ो और हरप्पा के वर्णन में सिद्ध कर चुके हैं। मैसोपोटेमिया में एक बड़ी सी मोहर प्राप्त हुई है, पुरातत्व वेत्ताओं का विचार है कि यह मोहर कम से कम २८५० ई० पू० की है। इस मोहर के मध्य में मनुष्य का चित्र है जो कि एक विशेष आसन लगा कर बैठा हुवा है। यह आसन भारतीय "पद्मासन" से बिल्कुल मिलता है। इस मोहर के नीचे अरबी अक्षरों से मिलते जुलते अक्षरों में कुछ लिखा हुवा है।[2]

महाशय आर० एन्थोवन का विश्वास है कि प्राचीन काल में मैसोपोटेमिया से ही भारतवर्ष के लोगों ने पद्मासन लगाना सीखा है। मि० एनथोवन अंग्रेज़ हैं, आप पराधीन भारतवर्ष के प्राचीन गौरव को सह नहीं सके। पद्मासन जैसी भारतवर्ष की प्राचीन चीज़ को अन्य देशों से लिया गया बताना एक चमत्कार नहीं तो क्या है। प्राचीन भारतीय साहित्य में अनेक स्थानों पर पद्मासन का वर्णन प्राप्त होता है। योग दर्शन के एक सूत्र का भाष्य करते हुए ऋषि व्यास ने स्पष्ट शब्दों में पद्मासन का जिकर किया है।[3]

भौतिक सभ्यता—मैसोपोटेमिया के वासियों ने भौतिक सभ्यता की अधिकांश बातें भारतवर्ष से ही सीखी हैं, उदाहरणार्थ-लिखना, ईंटें बनाना,

---

1. Indian Antiquery, Vol. VIII.
2. The Journal of the Royal Asiatic Society for G. B. and I. for October 1922.
३. "स्थिर सुखमासनम् ॥ ४६ ॥" (योग। साधन पाद)
तद्यथा—पद्मासनम्, भद्रासनम् आदि।

ज्योतिष, माप और जल प्लावन की कथा आदि। परन्तु महाशय एन्थोवन का कथन है कि ये सब बातें भी भारतवर्ष ने मैसोपोटेमिया से ही सीखी हैं। उन के कथनानुसार छः या सात शताब्दि पूर्व भारत और मैसोपोटेमिया का पारस्परिक व्यापार प्रारम्भ हुवा। तब जो भारतीय व्यापारी मैसोपोटेमिया गए, उन्हीं के द्वारा भौतिक सभ्यता के उपर्युक्त अंगों का भारतवर्ष में प्रचार हो पाया। उन का यह कथन नितान्त भ्रमपूर्ण है। हम वैदिक साहित्य के प्राचीनतम प्रमाणों द्वारा यह बात बात सिद्ध करेंगे कि उपर्युक्त सब बातें भारतवर्ष ने वैदिक सभ्यता के मूल स्रोत वेदों द्वारा ही सीखी हैं।

वेद के कई मन्त्रों द्वारा लेखन कला का प्रकार स्पष्ट सिद्ध होता है। हम केवल एक ही प्रमाण देना पर्याप्त समझते हैं। अथर्ववेद के एक मन्त्र का अर्थ है—"वेद की पुस्तक को हम जिस स्थान से उठायें उसे फिर उसी स्थान पर रखदें।"[1]

मन्त्र में 'वेद' शब्द आता है, प्रकरण को देख कर यहाँ उस का कोई और अर्थ किया ही नहीं जा सकता। इस मन्त्र से पूर्व जो दो मन्त्र आए हैं उनके द्वारा वेद का अभिप्राय वेद पुस्तक ही सिद्ध होता है।[2]

यजुर्वेद में पकी हुई ईंटों का वर्णन प्राप्त होता है। इसी मंत्र में संख्याएं भी गिनाई गई हैं। मन्त्र का अर्थ है—"इस यज्ञ कुण्ड में, कुण्ड के परिमाण के अनुसार, एक, दस × दस = सौ, सौ × दस = हजार, दस हजार, लाख, दस लाख, करोड़, दस करोड़, अरब, दस अरब, समुद्र, मध्य, अन्त या परार्ध जितनी भी ईंटें लगी हैं वे सब मेरा इस जन्म और अगले जन्म में कल्याण करने में सहायक हों।"[3] इसी मंत्र में परिमाण का वर्णन भी आगया है।

ज्योतिष सम्बन्धी मन्त्र तो वेद में जगह प्राप्त होते हैं; वेद में ज्योतिष सम्बन्धी मंत्रों की सत्ता से कोई इन्कार नहीं करता इस कारण उदाहरणार्थ मंत्र देने की आवश्यकता नहीं है। जल प्लावन की कथाओं में भारतीय ब्राह्मण

---

१. यस्मात् कोशात् उदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरवदध्म एनम्॥ अथर्व १९। ७२। १.

२. अध्यचसश्च व्यचसश्च बिलं विष्यामि मायया।
तथ्यामुद्धृत्य वेदं अथ कर्माणि कृण्महे॥ अथर्व १९। ७१। १.
स्तुता मयावरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्॥ अथर्व १९। ७१। १.

३. इमा मे अग्न इष्टका धेनवः सन्त्वेका च दश च दश च शतं च शतं च सहस्रं च सहस्रं च चायुतं चायुतं च नियुतं च नियुतं च प्रयुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्धश्चैता मे अग्न इष्टका धेनवः सन्त्वमुत्रामुष्मिँल्लोके॥
यजु० १७। २.

ग्रन्थों में वर्णित जल प्लावन कथा की प्राचीनता हम अपने इतिहास के प्रथम खण्ड में सिद्ध कर चुके हैं।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि मैसापोटेमिया और ईरान में भौतिक सभ्यता का प्रसार भारतवर्ष द्वारा ही हुवा। क्योंकि वेदों की प्राचीनता का पांच, छः शताब्दि ई० पू० मानना तो स्वयं ही हास्यास्पद होगा। सरमार्शल की स्थापना है कि भारतवर्ष में भौतिक सभ्यता के उपर्युक्त अंगों का विकास मैसोपोटेमिया और ईरान द्वारा हुवा, धीरे धीरे भारतीयों ने इन सब बातों को पूरी तरह अपना कर भारतीय बना डाला। परन्तु ऊपर दी हुई युक्तियों के आधार पर हम इस से सर्वथा प्रतिकूल स्थापना करते हैं कि भारतवर्ष से भौतिक सभ्यता के उपर्युक्त अंगों का प्रसार मैसोपोटेमिया और ईरान आदि देशों में हुवा। धीरे धीरे उपर्युक्त देशों ने इस भारतीय सभ्यता को भली प्रकार अपना लिया।

चाल्डी और वैदिक साहित्य-- १९ वीं शताब्दि के उत्तरार्ध में मैसोपोटेमिया प्रान्त में जो चाल्डी साहित्य प्राप्त हुवा है, वह पुरातत्व वेत्ताओं के लिये विशेष महत्वपूर्ण वस्तु है। यह साहित्य ईसा से लगभग ५ हज़ार वर्ष पुराना है। बहुत से पाश्चात्य ऐतिहासिकों का विचार है कि इस चाल्डी सभ्यता के सन्मुख भारतीय सभ्यता बहुत ही नवीन है। उनका कथन है कि ईसा से केवल २००० वर्ष पूर्व ही भारतीय आर्यों, जो कि अभी तक मध्य एशिया में ही रहते थे, का असीरियन और वैबिलोनियन लोगों से सम्बन्ध हुवा। इसी समय से ही आर्य लोगों ने खेती करना, धातु के औज़ार बनाना, मकान बनाना, विनिमय मध्यम का प्रयोग, लेखन कला आदि सीखा।

हमारी स्थापना है कि इस प्राचीन चाल्डी साहित्य का आधार वेद हैं। और चाल्डी भाषा बोलने वाली पश्चिमी एशिया की प्राचीन जातियाँ सभ्यता और संस्कृति की शिक्षा के लिए भारतवर्ष की प्राचीन संस्कृति की ऋणी है। इन जातियों का भारतवर्ष से सम्बन्ध आज से छः सात हज़ार वर्ष से भी अधिक प्राचीन है। यह सम्बन्ध कब प्रारम्भ हुवा, इस बारे में हम कुछ नहीं कह सकते। यह चाल्डी साहित्य जिस समय लिखा गया था उस समय तक असीरियन लोग भारतीय सभ्यता के आधार पर अपनी सभ्यता भली प्रकार विकसित कर चुके थे। साथही यह भी सम्भव है कि स्वभाविक रूप से प्राचीन असीरियन सभ्यता का थोड़ा बहुत प्रभाव भारतीय सभ्यता पर भी पड़ा हो। यह कहना कि वैदिक सभ्यता का उद्गम आज से केवल ४००० वर्ष प्राचीन है,

नितान्त भ्रमपूर्ण है ; स्वयं चाल्डी साहित्य में ही बहुत से वैदिक शब्द उसी अभिप्राय में प्राप्त होते हैं जिस में कि वे वेद में प्रयुक्त किये गये हैं। इसके कुछ प्रमाण हम पहले भी उद्धृत करते चुके हैं उनके अतिरिक्त निम्नलिखित वैदिक शब्द चाल्डी साहित्य में कुछ विकृत रूप में प्राप्त होते हैं—

I. सुप्रसिद्ध असीरियन शब्द "जहोवा" वैदिक "यह्व" शब्द का अपभ्रंश है। यह ईश्वर का नाम है। वैदिक साहित्य में "यह्व" वरुणदेव के लिये प्रयुक्त होता है।

II. चाल्डी शब्द "अबजु" वैदिक शब्द "अप्सु" का विकृत रूप है। चाल्डी साहित्य में अबजु का अर्थ जल सम्बन्धी ही है। वैदिक संस्कृत में इन्द्र के लिये "अप्सुजित" (जलों का विजेता) नाम आया है।

III. चाल्डी साहित्य में बड़े के लिये "उरु" शब्द आया है। वेद में भी "उरु" शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। वेद में "उरु क्षय" "उरु गाय" आदि शब्द आते हैं। "उरु लोकं" और "उरु वशी" भी इसी का उदाहरण हैं।

इसी प्रकार बहुत से अन्य शब्द भी उद्धृत किये जा सकते हैं।

पश्चिमी एशिया की जातियों के बहुत से देवी देवता भी भारतीय पौराणिक देवी देवताओं के आधार पर ही कल्पित किये गये हैं। परन्तु यह समानता प्राचीनतम काल की नहीं है। उदाहरणार्थ—

सैमिरेमिस	=	शमीरमा देवी.
निनस	=	लीलेश्वर.
मक्का	=	मोक्षस्थान.
अरकोलन	=	अस्खलन.
मनावेग	=	महाभागा.
अलसीडा	=	अनायासा.

हिब्रू और भारतीय सभ्यता

निम्नलिखित तालिका द्वारा दोनों सभ्यताओं की समानता भली प्रकार प्रदर्शित हो सकेगी—

हिब्रू	भारतीय
१. नियोग— "बोज़ कहता है कि मैं मोलान की स्त्री रथ को अपनी स्त्री बनाता हूं जिससे कि उसके मृत पति का नाम बना रहे, उसकी जायदाद भी उसी के वंश में बनी रहे, और रथ का वंश नष्ट न होजाय।	१. "किसी और व्यक्ति को पति बना कर सन्तान उत्पन्न कर।"[1]
२. पवित्र और अपवित्र जन्तु— मूसा का कथन है कि वे पशु, जिन के खुर चिरे हुए नहीं, यथा सूअर आदि, अपवित्र हैं; पक्षियों में चील अपवित्र है।	२. मनु का कथन है—"विष्ठा खाने वाले, नगरों में रहने वाले और बेचिरे खुरों वाले पशुओं का मांस नहीं खाना चाहिए।"[2]
३. शव स्पर्श— "जो व्यक्ति मृत-देह को छूएगा वह सात दिन तक अपवित्र रहेगा। मृतक के घर में प्रवेश करने से भी मनुष्य अपवित्र होजाता है।"	३. "शव को छूने वाले एक दिन या तीन दिन के बाद पानी से स्नान करके शुद्ध होते हैं।"[3]
४. सूतक— "पुत्र उत्पन्न करने अथवा रजस्वला होने के सात दिन बाद तक स्त्री अपवित्र रहती है। यदि बालिका उत्पन्न हो तो वह १४ दिन अपवित्र रहती है और उस की पूर्ण शुद्धि ६० दिन के बाद होती है।"	४. रजस्वला होने पर अथवा पुत्र उत्पन्न करने पर कुछ दिन तक स्त्री को सूतक रखना चाहिये। सूतक माता पिता का ही होना चाहिये, पिता भी अगर माता को न छूए तो अकेली माता को ही सूतक रखना चाहिये।[4]

१. अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्। वेद

२. क्रव्यादाञ्छकुनान्सर्वांस्तथा ग्रामनिवासिनः।
अनिर्दिष्टांश्चैकशफान् टिट्टिभं च विवर्जयेत्॥ मनु. ५। ११.

३. अन्हा चैकेन रात्र्या च त्रिरात्रैरेव दिनैस्त्रिभिः।
शव स्पृशाविशुद्ध्यन्ति त्र्यहादुदकं दायिनः॥ मनु.

४. यथेदंशावमा शौचं स पिण्डेषु विधीयते।
जननेऽप्येवं स्यान्निपुणं शुद्धिमिच्छता॥ मनु. ५। ६१.
.... माता पित्रोस्तु सूतकम्।
सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः॥ मनु. ५। ६२.

हिब्रू	भारतीय
५. तपस्वी-जहोवा का कथन है कि मैंने भोग विलास हीन तपस्वी सन्तों को सब उपभोग के योग्य वस्तुएँ दी हैं परन्तु वे लोग उन्हें फिर मेरे (परमात्मा) प्रति ही समर्पित कर देते हैं।	५. भारतीय तपस्वियों का वैदिक ग्रन्थों में यही वर्णन प्राप्त होता है।
६. मांस निषेध— "तुम में से जो व्यक्ति, चाहे वह इसराइल वंश का हो अथवा किसी अन्य वंश का, रुधिर या मांस खाएगा उस पर मेरा भारी कोप गिरेगा; मैं उस को नष्ट कर दूँगा।" "क्योंकि खून शरीर का भाग है इस लिये मैं इसराइल के वंशजों को रुधिर भक्षण से रोकता हूं। जो इस का सेवन करेगा वह नष्ट होजायगा।" "अरोन और इसराइल के वंशजों से कहो कि वे परमात्मा की आज्ञा और वचनों पर ध्यान दें। जो व्यक्ति किसी बैल, बकरी, भेड़, या ऐसे ही किसी अन्य जीव को देव-पूजा के अतिरिक्त किसी अन्य अवसर पर मारेगा वह हत्या का पाप करेगा। और यदि वह मांस खाएगा, तो भयंकर दण्ड का भागी होगा।	६. साधारण अवस्थाओं में द्विजों को मांस नहीं खाना चाहिये। आपत्ति काल आने पर भी विधि विहित मांस ही खाना चाहिये, अन्यथा भयंकर दण्ड मिलता है।[1]

इस प्रकार हिब्रू सभ्यता और भारतीय सभ्यता में बहुत अधिक समानता प्रतीत होती है। उपर्युक्त हिब्रू उद्धरण हमने बाइबल के Old Testament में से दिये हैं।

१. नाद्यादविधिना मासं विधिज्ञोनापदि द्विजः।
जग्ध्वाह्यविधिना मांसं प्रेत्यतैरद्यतेऽवशः॥ मनु. ५। ३३.

※ पाँचवाँ अध्याय ※

भारत और यूनान.
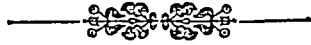
पूर्व और पश्चिम के दो देशों का प्राचीन इतिहास बहुत अधिक महत्वपूर्ण है, पूर्व में भारतवर्ष और पश्चिम में यूनान। भारतवर्ष द्वारा सम्पूर्ण एशिया महाखण्ड ने सभ्यता का पाठ सीखा और यूनान ने यूरोप के देशों को सभ्यता की शिक्षा दी। दोनों देशों ने संसार के इतिहास में सदा के लिये अमर रहने वाले ऋषियों और दार्शनिकों को जन्म दिया है। भारतवर्ष के बाल्मीकि, गौतम, कपिल, कणाद, व्यास आदि ऋषि और यूनान के होमर, सुकरात, अरिस्टोटल, प्लेटो, हैरोडोटस आदि कवि और विचारक सदैव के लिए संसार की सभ्यता के गुरु माने जाते रहेंगे। भारतवर्ष और यूनान क्रमशः पूर्व, पश्चिम के सूर्य, चाँद हैं। इन दोनों द्वारा ही पूर्व और पश्चिम सभ्यता के उज्वल प्रकाश द्वारा प्रकाशित हो पाये हैं। परन्तु हमारा विश्वास है कि यह प्रकाश पाने के लिये पश्चिम का चाँद पूर्व के सूर्य का ऋणी है। भारतवर्ष और यूनान के पारस्परिक व्यापारिक सम्बन्ध के जो ऐतिहासिक प्रमाण प्राप्त होते हैं वे हम अन्त में देंगे, उस से पूर्व यूनान के साहित्य तथा दार्शनिक विचारों में भारतीयता की झलक दिखाने का यत्न किया जायगा।

रामायण और इलियड— रामायण की ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन कविवर बालमीकी ने एक श्रेष्ठतम काव्य के रूप में किया है। इसी की छाया को लेकर यूनान देश के आदिकवि होमर ने इलियड नामी सुप्रसिद्ध काव्य की रचना की। कविकुल गुरु बालमीकी और कविवर होमर के इन दोनों काव्यों में असाधारण समानता है। निम्न तालिका द्वारा यह स्पष्ट हो जायगा कि किस प्रकार रामायण के कथानक को लेकर इलियड की रचना की गई है।

इलियड	रामायण
१. इलियड के मुख्यपात्र दो भाई हैं, जिन में परस्पर अत्यन्त प्रेम है, जो कभी एक दूसरे से जुदा नहीं होते।	१. रामायण के राम और लक्ष्मण की जोड़ी जगत्प्रसिद्ध है।

इलियड	रामायण
२. इन दोनों को इनके पिता आर्गस ने राज्य से निकाल दिया था।	२. पिता की आज्ञा से बन जाते हुए राम के साथ ही लक्ष्मण ने भी राज्य छोड़ दिया था।
३. इलियड की नायिका हैलन नाम की एक रूपवती कन्या है जो माता के पेट से पैदा नहीं हुई।	३. रामायण की नायिका सीता को भी पृथिवी से ही पैदा हुई माना जाता है।
४. इलियड का नायक मैनिलस हैलन को उसके पिता के द्वारा किए गए स्वयंवर में, अन्य सब प्रतिद्वन्द्वियों को नीचा दिखा कर, वरता है।	४. राम ने स्वयंवर में अपने प्रतिस्पर्धी राजाओं को नीचा दिखा कर सीता का वरण किया।
५. राज्य से वहिष्कृत होने पर एक वार मैनिलस की अनुपस्थिति में पेरिस उसके घर आता है, और उस की धर्मपत्नि हैलन को चुरा कर समुद्र पार वसे हुए ट्राय नगर में लेजाता है।	५. राम की अनुपस्थिति में रावण सीता को चुरा कर समुद्र पार लङ्का में लेगया।
६. ट्राय के महल समतल भूमि से बहुत ऊँचाई पर बने हुए थे।	६. लङ्का की राजधानी साधारण भूमितल से बहुत ऊँचाई पर बसी हुई थी।
७. एक ऊँचे महल पर चढ़ कर ट्राय के एक मुख्य व्यक्ति ने ट्राय सेना के सेनापतियों के नाम गिनाए थे।	७. विभीषण ने एक ऊँची पहाड़ी पर चढ़ कर लङ्का के सेनापतियों के नाम भी श्रीराम को बताए थे।
८. ट्राय के युद्ध में यूनानी सेना अनन्त थी। ग्रोटे की सम्मति में उस की संख्या लगभग १ लाख थी। सेना में ११२६ जहाज़ और रथ तथा अश्वारोही आदि भी थे।	८. लंका के युद्ध में राम की वानर सेना अनन्त थी। युद्ध में रथों का वर्णन भी आता है।
९. ट्राय सेना के सेनापति हैक्टर के बाण फिर उस के तर्कस में लौट आते थे।	९. रावण के बाण पुनः उस के तर्कस में लौट आते थे।

इलियड	रामायण
१०. अकिलस के भयानक गर्जन से ट्राय नगर की सेना काँप उठती थी।	१०. हनुमान की भारी गरज से लंका की सेना दहल जाती थी।
११. इलियड में अपशकुन दिखाने के लिये जीयस द्वारा ख़ून की वर्षा कराई जाती है।	११. रामायण में अपशकुन या असाधारण घटना दर्शाने के लिए ख़ून आदि की वर्षा का वर्णन किया गया है।
१२. जीयस का पुत्र मरने को था कि ख़ून बरसा।	१२. रावण की मृत्यु के पूर्व ख़ून की वर्षा हुई।
१३. ट्राय का वीर मार्स जब पलास द्वारा मारा जाकर भूमि पर गिरा तब उसके द्वारा ७ एकड़ ज़मीन घिर गई।	१३. कुम्भकर्ण जब मरकर भूमिपर गिरा तब ऐसा प्रतीत हुवा कि मानो कोई पहाड़ भूमि पर गिर पड़ा है।
१४. इलियडमें जोव (Jove) सोना बरसाता है।	१४. रामायण में कुबेर सोने आदि की वर्षा करता है।
१५. मैनिलस को पुनः उसकी पत्नि हेलन प्राप्त हो जाती है।	१५. राम पुनः सीता को प्राप्त कर लेता है।
१६. ट्राय के युद्ध में देवता लोग आकाश में बैठकर दर्शक रूप से युद्ध देखते हैं।	१६. लंका के युद्ध को देवगण विमानों में बैठ कर देखा करते थे।
१७. एकिलस जब भूख के कारण मरने के करीब था तब इन्द्र ने मिनर्वा के हाथ उसके लिये अमृत भेजा।	१७. सीता ने जब अशोक वाटिका में भोजन का त्याग कर दिया तब स्वयं इन्द्र ने उसे अमृत लाकर दिया।
१८. हैकृर ने ट्राय शहर के मुख्य फाटक का लोहे से बना हुआ विशाल दरवाजा, जो कि पत्थर की दीवार में लगा हुआ था, उखाड़ डाला। ट्राय के युद्ध में कई महारथी बड़ी २ शिलाएँ उठा कर शत्रु सेना पर फेंकते थे।	१८. रामायण में हनुमान द्वारा लंका के विशाल फाटक के तोड़े जाने का वर्णन है। लंका के युद्ध में राक्षस और बानर बड़ी २ शिलाएँ एक दूसरे पर फेंकते थे।
१९. ट्राय में सब से अधिक बुद्धिमान एण्टीनर था जो कि पेरिस के दुष्कृत्य से सहमत न था।	१९. लंका में विभीषण सब से अधिक बुद्धिमान् था ; यह रावण के पापकार्य से सहमत न था।

इलियड	रामायण
(क) ट्राय में जाकर मैनीलस और उसका छोटा भाई ओडेसस दोनों अवश्य मारे जाते यदि वहाँ एएटीनर न होता।	(क) लंका में जाकर हनुमान का बचाव लगभग असम्भव था यदि वहाँ विभीषण न होता।
(ख) एटीएनर ने पूरे यत्न से पेरिस को उपदेश दिया था कि तुम हेलन को लौटा दो।	(ख) विभिषण ने भरसक यत्न किया था कि रावण सीता को लौटा दे।
(ग) हताश होकर एएटीनर पेरिस का पक्ष छोड़कर मैनीलस से मिल गया।	(ग) विभीषण ने निराश होकर रावण का पक्ष छोड़ दिया और श्रीराम की शरण ली।
(घ) पेरिस के मारे जाने पर एएटीनर ही ट्राय का राजा बना।	(घ) रावण के वध हो जाने पर विभीषण ही लंका का राजा बना।
(२०) होमर ने इलियड में ग्रीक सेना का सेनापति एक ऐसा व्यक्ति रक्खा है जिसे कि ग्रीस के राजा ने "विश्वकर्मा" के बनाए शस्त्र दिए थे। इस सेनापति को इन्द्र (Jove) ने अपना रथ, घोड़ा और सारथी भी दिया था।	(२०) राम को ताड़का का वध करने के लिये विश्वामित्र ने दैवीय अस्त्र दिये थे। लंका के युद्ध में भी इन्द्र ने उसे विश्वकर्मा के बनाए अस्त्र तथा अपना रथ, घोड़े और सारथि दिये।

केवल उदाहरण मात्र के लिये ही इलियड और रामायण की थोड़ी सी समानताएँ यहाँ उद्धृत की गई हैं। वस्तुतः सम्पूर्ण इलियड ग्रन्थ ही रामायण की छाया को लेकर लिखा गया प्रतीत होता है। दोनों ग्रन्थों में इतनी अधिक समानता सिद्ध करने से हमारा अभिप्राय कविवर होमर के महाकाव्य की महत्ता कम करना नहीं है; हम केवल यही सिद्ध करना चाहते हैं कि कविकुल गुरु वाल्मीकी का यह "रामायण" काव्य इतना अधिक पसन्द किया गया कि जिन देशों का सम्बन्ध उन दिनों भारतवर्ष से था, उन सुदूरवर्त्ती देशों के प्रतिभाशाली लेखकों ने भी रामायण के आधार पर ही अपने प्रसिद्ध काव्यों की रचना की। यह समानता भारतवर्ष और यूनान का पारस्परिक नैतिक सम्बन्ध सिद्ध करने वाली है।

मनु और मिनौस— सुप्रसिद्ध नीतिकार मनु ने भारतवर्ष में, समाज शास्त्र के सिद्धान्तों का एक विशेष रूप में प्रतिपादन किया है। मनु महाराज के अनन्तर उनके सिद्धान्तों का अनुसरण करने वालों में "मनु" शब्द एक उपाधि के रूप में प्रयुक्त होने लगा। नीति शास्त्र की भाषा में इस समूह को हम "मानव सम्प्रदाय" कह सकते हैं। हमारा अनुमान है कि मानव सम्प्रदाय के कतिपय आचार्य समय २ पर विदेशों में भी गए, और वहाँ जाकर उन्होंने मनु महाराज के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। इसी प्रकार के एक आचार्य यूनान में भी गए, और उन्होंने वहाँ मानव सिद्धान्तों का प्रचार किया। यह आचार्य यूनान देश के इतिहास में मिनौस नाम से प्रसिद्ध हैं। यूनानी ग्रन्थों के अनुसार मिनौस क्रीट प्राँत का प्राचीनतम शासक है। क्रीट के प्राचीनतम राजवंश की नींव इसी ने डाली थी। मिनौस ने क्रीट में एक विशेष प्रकार की नीति को जन्म दिया। इस की जन्मभूमि यूनान नहीं थी। कुछ प्राचीन यूनानी कथाओं के आधार पर वह मनुष्य की सन्तान ही न था; वह सूर्यदेव का पुत्र था।[1] परन्तु वर्त्तमान यूनानी ऐतिहासिक उस के जन्म की खोज करने के लिए यत्न कर रहे हैं।

भारतीय ग्रंथों के अनुसार मनु महाराज भी सूर्यवंशी थे। भारतवर्ष में सूर्यवंश की नीव मनु ने ही डाली थी।

दार्शनिक विचारों में समानता— यूनानी और भारतीय दार्शनिक विचारों में परस्पर इतनी अधिक समानता है कि दोनों देशों के प्राचीन दर्शन शास्त्रों से थोड़ी बहुत परिचिति रखने वाला मनुष्य भी स्वयं इस समानता को अनुभव करने लगता है। भारतीय दार्शनिक सिद्धान्त मुख्यतया छः भागों में विभक्त हैं ये छहों प्रकार मिलते जुलते रूप में प्राचीन यूनानी सभ्यता में भी पाये जाते हैं। हम यहाँ बहुत संक्षेप से उदाहरण के लिये कुछ समानताएँ उद्धृत करेंगे—

यूनानी	भारतीय
१. यूनानी विद्वान हैरोडोटस का कथन है— "वास्तव में ईश्वर एक ही	१. "वह वास्तव में एक है, परन्तु बुद्धिमान् उसे भिन्न २ नामों से याद

1. Incyclopidia Britannica, "Minos".

यूनानी	भारतीय
है; वर्त्तमान देवता-जिनकी पूजा की जाता है-वास्तव में उसी एक महान शक्ति के भिन्न २ रूप हैं। प्राचीन लोग भी यही मानते थे, परन्तु पीछे से इन देवताओं की पृथक् पृथक् पूजा चल पड़ी।" [1]	करते हैं।" [2] यह वैदिक सिद्धाँत है। वर्त्तमान पौराणिक देवताओं का मूल स्रोत ईश्वर के भिन्न नाम ही हैं। स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में इसकी भली प्रकार व्याख्या की है।
२. यूनानी यूसेबियस (Eusebius) का कथन है— "यूनान की वर्त्तमान समय में प्रचलित प्राचीन गाथाएँ (Mythology) प्राचीन धर्म का विकृत और परिवर्तित रूप हैं।" [3]	२. भारतवर्षकी पौराणिक गाथाएँ भी प्राचीनधर्म का विकृत रूप है, बहुत से भारतीय आचार्यों का यही मत है।
३. यूनानी दार्शनिक ग्ज़ैनोफेनस (Xenophanes) का कथन है कि संसार और ईश्वर वास्तव में एक ही हैं; यह एक ही सत्य; स्थिर और परिवर्तनशील है।"	३. वेदान्त का सिद्धान्त है कि प्रकृति और ईश्वर वास्तव में एक है, वही एक अविनाशी है। [4]
४. अरिस्टोफेन की एक सुप्रसिद्ध कविता का अनुवाद निम्नलिखित है— "प्रारम्भ में यहाँ अन्धकार के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। यह अन्धकार स्थिर और गूढ़तम था। तब न पृथवी थी, न आकाश था, न तारे थे-कुछ भी नहीं था। बहुत समय बाद इस सर्वत्र व्याप्त अन्धकार से ही प्रेम (काम) की उत्पत्ति हुई। इस, सब को प्यारी, वस्तु के सुनहरे पङ्ख थे; उनसे यह सब	४. "उस समय न कारण रूप प्रकृति थी, न कार्य रूप, न पृथिवी लोक था, न यह फैला हुआ आकाश था, न यह चमकते हुए तारे थे। तब न मृत्यु थी, न जीवन था, न रात थी, न दिन था; तब वह अकेला ही बिना वायु के श्वास ले रहा था, उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं था। तब केवल अन्धकार था; इस गूढ़तम अन्धकार में ही यह कारण और कार्य रूप प्रकृति तप की

1. History of Greece, vol. i. Page 10.
२. "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।" वेद.
3. Præp. Eevan. Lib. ii. cap. 1.
४. "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" वेदान्त.

यूनानी	भारतीय
ओर फड़फड़ाता था। इसी प्रेम से ही मनुष्यजाति उत्पन्न हुई। इसी से प्रकाश की उत्पत्ति हुई। जब प्रेम नहीं था तब यहाँ न मनुष्य थे, न देवता थे। तब संसार भर की सब वस्तुएँ एक दूसरे में व्याप्त थीं।"	महिमा से विलीन हुई हुई थी। इस से सब से पूर्व इच्छा (काम) की उत्पत्ति हुई; जो कि मन की शक्ति है उसी काम से यह सब संसार पैदा हुवा।[1]
५. एम्पेडोकलीस का कथन है कि "जो चीज़ एक समय विद्यमान नहीं है वह कभी विद्यमान हो ही नहीं सकती, जो चीज़ एक समय उपस्थित है उसका नाश हो ही नहीं सकता।"	५. सुप्रसिद्ध साँख्य सिद्धाँन्त "सत्कार्यवाद" संक्षेप में इस प्रकार है— "निम्नलिखित कारणों से सत्कार्य-वाद सिद्ध होता है—जो चीज़ नहीं है, उससे कुछ नहीं बनाया जा सकता; उपादान का ग्रहण नहीं होता; एक चीज़ से सब कुछ नहीं बनाया जा सकता; जो चीज़ जो कुछ बनाने में समर्थ है उस से केवल वही चीज़ ही बनाई जा सकती है; कारण और कार्य में कोई भेद नहीं है।"[2] गीता में कहा है— "जिस वस्तु की सत्ता है उसका अभाव नहीं हो सकता, जो वस्तु नहीं है उसकी सत्ता असम्भव है।"[3]

१. नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परोयत् ॥ १ ॥
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अन्ह आसीत्प्रकेतः।
आसीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किञ्चनास ॥ २ ॥
तम असीत्तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छेनाभ्यपिहितं तदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम् ॥ ३ ॥
कामस्तदग्रे समवर्त्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ॥ ४ ॥
ऋग्वेद १० । १२९.

२. असदकरणादुपादान ग्रहणात् सर्व सम्भवा भावात्।
शक्तस्य शक्य करणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम् ॥ ९ ॥ सांख्य कारिका.

३. नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। गीता २ । १६.

यूनानी	भारतीय
६. प्रसिद्ध दार्शनिक ब्रूकर का कथन है कि यूनान के प्लूटार्च, क्लेमन्स, एलक्ज़ड्रोनस, औरफ़स आदि विचारकों के मतानुसार यह सम्पूर्ण विश्व एक दिन क्षय होजागया। और पीछे से इसकी राख (अवशेष) से इसी प्रकार के नए जगत की उत्पत्ति होगी। सम्भवतः औरफस ने यह विचार मिश्र के लोगों से लिया था।[1]	६. वैदिक साहित्य तो प्रलय और उत्पत्ति के सिद्धान्त का जन्मदाता ही है। वेद के अनेक मन्त्रों में प्रलय और सृष्टि उत्पत्ति का वर्णन है। अथर्व वेद के एक मन्त्र का अर्थ है— "तब प्रलय हो गया...... तदन्तर ईश्वर ने सम्पूर्ण विश्व को पहले की तरह फिर से बनाया।"[2]
७. टिमोथस के मतानुसार— "औरफस ने अपने ग्रन्थ में घोषणा की है कि ईश्वर वास्तव में एक है, उसी के तीन भिन्न भिन्न नाम हैं।[3] कुडवर्थ का कथन है— "वास्तव में जूपिटर, नैप्चून और प्लूटो—इन तीनों देवताओं की कोई पृथक् सत्ता नहीं है। एक ही सर्वशक्तिमान ईश्वर के ये तीन भिन्न २ नाम हैं। एक प्राचीन मूर्त्ति में जूपिटर की वास्तव में तीन आँखें प्राप्त हुई हैं। यह तीन आँखों वाला ईश्वर ही है। लोग इस से भिन्न कल्पनाएँ करते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि ईश्वर स्वर्ग, पृथवी और समुद्र की रक्षा करता है अतः उसकी तीन आँखें बनाई गई हैं। तीन आँखों का यह अभिप्राय ठीक है या नहीं इस सम्बन्ध में हम कुछ नहीं कह सकते। परन्तु इससे यह अवश्य स्पष्ट होजाता है कि जूपिटर, नैप्चून और प्लूटो वास्तव में एक ही ईश्वर के भिन्न २ नाम हैं।"[4]	७. भारतीय पौराणिक साहित्य में जगह २ त्रिमूर्त्ति और उसकी महत्ता का वर्णन है। यह त्रिमूर्त्ति ही जगत को पैदा करती है, उसे स्थिर रखती है और अन्त में उसका नाश कर देती है। इस त्रिमूर्त्ति में ब्रह्मा, विष्णु, महेश—ये तीन महादेवता सम्मिलित होते हैं। पौराणिक युग में सम्पूर्ण भारतवर्ष में मुख्यतया इन्हीं तीन देवताओं की पूजा होती रही है। वेद में भी ईश्वर की तीन आँखों का वर्णन है— "हम उस तीन आँखों वाले ईश्वर की स्तुति करते हैं।"[5] इन तीन आँखों से ईश्वर की द्युलोक, अन्तरिक्ष लोक और पृथिवी लोक के निरीक्षण करने की शक्ति का अभिप्राय है।

1. Seneca, Natural. Lib. iii. Chap. 30.
२. ततो रात्री अजायत्... असौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्॥ ऋ० १०।१९०।१-३.
3. Intellectual system, book i, chap. iv. sect. 17.
4. Intellectual system, book i. chap. iv. sect. 32.
५. त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिपुष्टि वर्धनम्।

यूनानी	भारतीय
८. कोलब्रुक का कथन है[1]— "यह देख कर हमें आश्चर्य होता है कि पैथागोरस और ओसेलस (Ocellus) के बहुत से सिद्धान्त भारतीय दार्शनिकों से बहुत मिलते हैं। पैथागोरस ने स्वर्ग, पृथिवी और मध्यलोक का वर्णन किया है। उसका कथन है कि मध्यलोक में राक्षस, स्वर्ग में देवता और पृथवीलोक में मनुष्य रहते हैं।"	८. भारतीय शास्त्रों और वेदों में तीन लोकों का वर्णन है— द्यूलोक, मध्यलोक और पृथवी लोक। पौराणिक विश्वासोंके अनुसार तीन भिन्न २ लोकों में देवता, मनुष्य और राक्षस निवास करते हैं। साथ ही वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार मन और आत्मा भिन्न २ हैं। इन में से आत्मा नित्य और स्वभाव से पवित्र है।
"पैथागोरस अनुभव करने वाले भौतिक अंग (मन) को चेतन आत्मा से पृथक समझता है। इसमें से एक शरीर के साथ नष्टहो जाता है, और दूसरा अमर है। साथ ही वह आत्मा के इस स्थूल दृश्य आवरण के अतिरिक्त उसका एक सूक्ष्म अदृश्य आवरण भी स्वीकार करता है।... मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि भारतीय विचारक ही इन ग्रीक दार्शनिकों के गुरु हैं।"	उपनिषदों में सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर का वर्णन किया गया है। आत्मा का यह सूक्ष्म शरीर रूपी आवरण बाह्य दृष्टि से दिखाई नहीं देता।"

इस प्रकार हम ने बहुत संक्षेप में थोड़े से उदाहरण भारतीय और यूनानी दार्शनिक विचारों की साम्यता सिद्ध करने के लिये पेश किये हैं। अन्य भी बहुत से प्रमाण उद्धृत किये जा सकते हैं, परन्तु हमारी स्थापना को पुष्ट करने के लिये इतने ही प्रमाण पर्याप्त हैं। केवल हमारा ही नहीं बहुत से यूरोपियन और अमेरिकन विचारकों का भी यह दृढ़ विश्वास है एक यूनानी दर्शनकार भारतीय दार्शनिकों के ऋणी हैं। अन्त में हम प्रो० रिचर्ड गार्ब के इन शब्दों के साथ इस प्रकरण का समाप्त करते हैं— "यूनानी और भारतीय दर्शनों में इतनी अधिक समानता है कि दोनों देशों के दर्शनों का अध्ययन करने वाला कोई भी विद्यार्थी इसे अनुभव किये बिना नहीं रह सकता। कहीं कहीं तो दोनों के विचार एक ही प्रतीत होने लगते हैं।"[2]

1. Loc. Cit. 44I et. seq.
2. Philosophy of anciant India. by R. garb. Page. 32.

पुनर्जन्म का सिद्धान्त— भारतवर्ष के प्राचीनतम विचारक भी पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं, इस बात को सिद्ध करने के लिए कोई प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं । यूनान के श्रेष्ठतम दार्शनिकों ने भी पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार किया है। प्लेटो का कथन है— "आत्मा ही मनुष्य की अपनी वस्तु है ; शरीर में आत्मा ही मुख्य है ।[1] मृत्यु के बाद आत्मा पुनः इस पृथिवी पर लौट आती है और मनुष्य या किसी अन्य जीव का शरीर धारण करती है।"[2] भारतीय विचारकों के अनुसार आत्मा ज्ञान के बिना मुक्त नहीं हो सकता ।[3] प्लेटो भी इसी सिद्धान्त को मानता है— "कोई व्यक्ति सामाजिक गुणों में पूर्णता प्राप्त करके भी बिना ज्ञान के देवत्व को प्राप्त नहीं कर सकता, वह मनुष्य अगले जन्म में किसी सामाजिक जीव—यथा चींटी, मनुष्य आदि-का शरीर धारण करके चाहे अपनी पूर्ण सामाजिक उन्नति क्यों न करले, परन्तु ज्ञान के बिना वह देवताओं की श्रेणी में नहीं आ सकता।"[4] इसी प्रकार पैथागोरस का कथन है— "यदि पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार न करके यह मान लिया जाय कि मनुष्य का जन्म एक बार ही होता है तो मनुष्य समाज में जो जन्म से ही विषमताएँ प्राप्त होती हैं उनका कोई उत्तर नहीं दिया जा सकेगा । कुछ लोग दीन और क्षीण शरीर के साथ जन्म लेते हैं और कुछ लोग सम्पन्न घरों में सुन्दर तथा बलिष्ट शरीर के साथ जन्म लेते हैं। यह देखकर किसी स्थिर न्यायकारी व्यवस्थापक की सत्ता स्वीकार करनी पड़ती है। यह बात ठीक है कि इस जन्म से पूर्व हमारे अनेक जन्म हो चुके हैं और भावी में भी अनेक जन्म होंगे । आवागमन का यह क्रम सर्वत्र व्याप्त है और आत्माओं की दशा का भेद-भाव पुनर्जन्म का प्रबल प्रमाण है। सब आत्माएँ भूतपूर्व जन्म में अपनी स्वतन्त्रता का असमान उपयोग करती हैं, इसी से इस जन्म में उन में असमानता नज़र आती है। मनुष्य में बुद्धि-भेद इसलिए होता है कि मनुष्य जन्म न मालूम किस आत्मा ने किस ज़ीव-योनि के बाद प्राप्त किया होता है। वास्तव में यह पृथिवी एक जहाज़ के सदृश है और हम सब प्राणी उन यात्रियों के समान हैं जो कि भिन्न २ दिशाओं की ओर जा रहे होते हैं। सभी प्रकार के अनेक श्रेणियों में विभक्त

---

1. Dialogues of Plato, Vol. V. P. 120
2. The Idia of Immortality. Pattison. P. 37.
३. ऋतेज्ञानान्न मुक्तिः ।
4. Phaedo, 82.

शारीरिक तथा मानसिक कष्ट पूर्वकृत मानसिक विकल्पों और कर्मों के फल ही प्रतीत होते हैं, क्योंकि आत्मा पर मानसिक संकल्पों या शारीरिक क्रियाओं के संस्कार पड़ते रहते हैं। क्रमशः काल तथा अवस्था के अनुसार ये पूर्वजन्म के संस्कार लुप्त या प्रकट होते रहते हैं।" पुनर्जन्म की सिद्धि के लिए योग दर्शन में यह युक्ति भी बड़ी प्रबलता से दी गई है। उपनिशदों में भी इन्हीं सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है।

वर्ण व्यवस्था— भारतीय सभ्यता और वर्ण व्यवस्था का परस्पर एक विशेष सम्बन्ध समझा जाता है। इस वर्ण व्यवस्था का वास्तविक आधार सामाजिक श्रमविभाग ही है। यूनानी दार्शनिक प्लेटो ने भी वर्ण व्यवस्था को स्वीकार किया है। देश रक्षक क्षत्रियों के सम्बन्ध में उसने लिखा है— "नगर के सम्पूर्ण निवासियों में से केवल इन्हीं को सोने या चाँदी को छूने का अधिकार नहीं होना चाहिए। सोना, चाँदी उन्हें अपने घरों में भी नहीं रखना चाहिए, न इसे जेब में डाल कर घूमना चाहिए, न इसके द्वारा शराब आदि पीनी चाहिए। जब ये लोग भूमि, मकान और धन के वैयक्तिक रूप से स्वामी होजाते हैं तब वे रक्षकों के स्थान पर व्यापारी और किसान (वैश्य) बन जाते हैं। अन्य नागरिकों के मित्र न होकर कष्टदायी ज़मींदार बन जाते हैं। तब ये लोग बाहर के शत्रुओं की अपेक्षा अन्दर के शत्रुओं से ही अधिक भयभीत रहते हैं, इस प्रकार सम्पूर्ण राष्ट्र विनाश की ओर खिसकता चला जाता है। इसी कारण, मेरा मन्तव्य है कि, हमारे रक्षकों को उपर्युक्त प्रकार से ही रहना चाहिए।"[1]

संस्कार— पैथागोरस न केवल पुनर्जन्म के सिद्धान्त को ही स्वीकार करता है अपितु वह बालक पर अच्छे प्रभाव डालने के लिए संस्कारों को भी महत्त्वपूर्ण समझता है। गर्भाधान के सम्बन्ध में उसका कथन है— "जब माता पिता यह जानते हैं कि बालक की आत्मा यह जन्म लेने से पूर्व भी विद्यमान थी तब उन्हें गर्भाधान को एक आत्मा के नये जन्म लेने का आह्वान मात्र समझ कर ही, उसे एक पवित्र कार्य की तरह करना चाहिये; क्योंकि जन्म लेने वाली आत्मा पर माता का बड़ा प्रभाव पड़ता है। माता और पिता, दोनों को गर्भाधान और ऋतुचर्या की पूर्ण शिक्षा लेनी चाहिए। माता जब गर्भवती हो तब उसके स्वाथ्य पर बहुत ध्यान देना चाहिए। बालक को

---

1. Republic of Plato. P. 107.

ईश्वरीय नियमों के अनुकूल सात वरस तक माता के आधीन ही रखना चाहिये ; इस समय तक पिता का उस पर अधिकार नहीं होना चाहिये।" भारतीय शिक्षाओं के अनुसार भी बालक को पाँच वरस तक "मातृमान" बनाने का यत्न करना चाहिए।

बचपन के लिये वर्णित बहुत से भारतीय संस्कार कुछ विकृत रूप में प्राचीन यूनान में भी पाये जाते हैं। यूनान के एटिक प्रान्त में बालक के जन्म के बाद एम्पिड्रोमिया (Ampidromia) नाम का एक समारोह किया जाता था। इस में परिवार के लोग बालक को गोद में लेकर अग्नि के चारों ओर चक्कर लगाते थे। यह समझा जाता था कि इस के द्वारा बालक पवित्र हो जायगा।[1]

प्राचीन यूनान में गार्हपत्य अग्नि की सत्ता भी प्रतीत होती है— "प्रत्येक घर में एक "पवित्र अंगीठी" होती थी, इस में दिन रात अग्नि प्रज्वलित रखी जाती थी। यह समझा जाता था कि इस के द्वारा घर पवित्र रहेगा। प्रत्येक नगर में भी किसी पवित्र स्थान पर नगर की शान्तिरक्षा के उद्देश्य से सम्पूर्ण नगर की अग्नि प्रति समय प्रज्वलित रखी जाती थी।"[2]

शिक्षा पद्धति— पैथागोरस की पाठशाला का वर्णन भारतवर्ष के प्राचीन गुरुकुलों से बहुत कुछ मिलता है। इस पाठशाला में—"प्रातः काल स्नान के पश्चात् विद्यार्थी फूल हाथ में लेकर उपासनागृह में जाते थे, जिस से कि आत्मा को शान्ति प्राप्त हो। इस के बाद पढ़ाई होती थी। बड़े विद्यार्थी वृक्षों की छाया में बैठ कर ही पढ़ा करते थे। विद्यार्थी प्रतिदिन अपने से बड़ों के लिये ईश्वर से प्रार्थना किया करते थे। ये लोग सूर्य के प्रकाश को उच्च जीवन तथा रात के अन्धकार को पापिष्ठ जीवन का प्रतिनिधि समझते थे। इस पाठशाला में सदैव मधुर रस युक्त सादा भोजन ही विद्यार्थियों को दिया जाता था। भोजन सदैव निरामिश होता था। दोपहर को पुनः प्रार्थनाएं की जाती थीं। दोपहर के बाद विद्यार्थी शारीरिक व्यायाम किया करते थे। व्यायाम के बाद स्वाध्याय और उपासना होती थी; उस के बाद प्रातः काल पढ़े हुए पाठ पर मानसिक मनन किया जाता था। सूर्यास्त हो जाने पर पुनः ईश्वर से उच्च स्वर में प्रार्थनाएं पढ़ी जाती थीं, उपासना के गीत गाए जाते थे। प्रार्थना के अनन्तर कुछ विशेष वृक्षों की लकड़ियां जला कर पवित्र प्रार्थनाओं के उच्चारण के साथ इस में सुगन्धित द्रव्यों की आहुतियां दी जाती थीं। यह कार्य तब

1. Cults, V. P. 356.
2. Op. cit., vol V, PP. 350-354.

तक होता था जब तक आकाश में तारे न निकल आवें। दिन का कार्य रात्रि-भोजन के साथ समाप्त होता था। भोजन के बाद छोटे बालकों को बड़े विद्यार्थी ज़ोर ज़ोर से पाठ याद कराया करते थे।"[1]

इस वर्णन में बहुत स्पष्ट रूप से यज्ञ का वर्णन भी आजाता है।

सतयुग— भारतीय साहित्य के अनुसार प्राचीन काल को सुखपूर्ण काल माना जाता है। यह समझा जाता है कि उस समय लोग शान्त, सच्चे और आपस में प्रेम करने वाले थे। इसी सत्ययुग को पश्चिम के देशों में "गोल्डन एज" नाम से कहा जाता है। प्लेटो ने भी इस सत्ययुग और कलियुग का वर्णन किया है—"एथीनियन ने कहा-'इस पृथिवी पर बीमारियां, अकाल और उपद्रव फैल गए। इन से चरवाहों और पर्वत निवासियों को छोड़ कर और कोई भी नहीं बच सका। ये लोग भी इस लिये बच गए कि इन में धोखेबाज़ी नहीं थी, परस्पर प्रेम था।'

"नोशियन ने कहा—'प्रारम्भ में मनुष्य एक दूसरे को सचमुच प्यार करते थे क्यों कि वे संख्या में कम थे और संसार में उन के लिये बहुत स्थान था। कोई किसी को एक स्थान से हटने के लिये न कहता था। तब न गरीबी थी, न भावों के विकार थे, न सौदे होते थे। वे सोने और चांदी तक के भी लोभी नहीं थे। उन में न कोई धनी था न गरीब। अगर हम उन का कुछ साहित्य प्राप्त कर सकें तो हमें उस में इन बातों के पर्याप्त प्रमाण मिल जावेंगे'।"[2]

शिक्षा के सिद्धान्त— प्लेटो ने शिक्षा के जिन आधारभूत सिद्धान्तों का वर्णन किया है वे भारतीय शिक्षा के प्राचीन सिद्धान्तों से सर्वथा मिलते हैं। हम प्लेटो के कुछ उद्धरण यहां देते हैं, पाठक ऋषि दयानन्द द्वारा उल्लिखित सत्यार्थप्रकाश के शिक्षा सम्बन्धी समुल्लास में इन्हीं सिद्धान्तों को पायेंगे—[3]

१. शिक्षा बाधित होनी चाहिये।

२. शिक्षा देना राष्ट्र का कर्तव्य है।

३. बालक और बालिकाओं को एक ही साथ कदापि शिक्षा नहीं देनी चाहिये।

---

1. Pythagoras. P. 80-81.

2. The Laws of Plato. Book III.

3. १ से ३ तक The Laws of Plato. ४ से ११ तक Plato's Rupeblic.

४. शिक्षा-काल में विद्यार्थियों के आचार पर कठोर नियन्त्रण रखना चाहिये।
५. विद्यार्थियों को अश्लील साहित्य और गन्दी कविताएं नहीं पढ़ानी चाहियें।
६. चाहे राजा के लड़के हों और चाहे किसान के, सब को एक साथ शिक्षा देनी चाहिये।
७. बड़ी अवस्था में विद्यार्थियों को गाना और नाचना भी सिखाना चाहिये।
८. बालक और बालिका को क्रमशः ३० और २० बरस की आयु तक ब्रह्मचारी रहना चाहिये।
९. स्त्री और पुरुष को शिक्षा का समान अधिकार है।
१०. शिक्षा का मुख्य सिद्धान्त 'सादा रहना और उच्च विचार' होना चाहिये।
११. विद्यालय और महाविद्यालय शहर से दूर एकान्त स्थान पर बनाने चाहिये।

देवताओं में समानता— भारतवर्ष में जिन पौराणिक देवताओं का वर्णन प्राग्बौद्धकालीन साहित्य में पाया जाता है, उन में से कतिपय देवताओं का इस से मिलता जुलता वर्णन ही प्राचीन यूनानी साहित्य में भी प्राप्त होता है। इन वर्णनों में इतनी समानता देख कर दोनों देशों के नैतिक सम्बन्ध की सत्ता से इन्कार नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिये यहां कुछ देवताओं का वर्णन दिया जाता है।

यम और प्लूटो— भारतीय साहित्य में इस का वर्णन इस प्रकार है। यम भयंकर काले रंग वाला है; उस की आंखें धधकते हुए अङ्गारे के समान लाल हैं, वह भैंस पर बैठ कर चलता है; उस के सिर पर मुकुट है, हाथ में डण्डा रहता है, इसी से उस का नाम 'दण्डधर' है। वह मृत्यु का देवता है इसी से उस का नाम 'श्राद्धदेव' है। मृतात्माएं वैतरणी नदी पार करके यम के दरबार में पहुँचती हैं।

यूनान के प्लूटो देवता का वर्णन इस प्रकार है-वह भयंकर भूरे शरीर वाला है। उस के चेहरे की मुस्कराहट बहुत भयंकर होती है। उस के हाथ में एक डण्डा रहता है। प्लूटो मृत्यु का देवता है; मृतात्मायें उस के दरबार में पहुँचती हैं।[1]

---

1. Hindoo Religion. Introduction. P. 31.

कृष्ण और अपोलो— कृष्ण का वर्णन इस प्रकार है- कृष्ण गोपाल है, उस के हाथ में एक दिव्य अस्त्र है, उस ने सांप को मारा। कृष्ण संगीत का बड़ा प्रेमी है। उस का रंग श्याम है। हाथ में एक बांसुरी रहती है।

अपोलो के एक हाथ में ढाल और पीठ पर तर्कस है; दूसरे हाथ में एक विशेष वाद्य यन्त्र है। यह भी चरवाहा है, इस ने एक भयंकर सांप को मारा। यह संगीत का विशेष प्रेमी है।[1]

काली और लावर्न— काली देवी की जो मूर्त्ति "कालीघाट" पर स्थापित है उस में केवल उस का सिर ही है शरीर नहीं है। काली को चोरों और डाकुओं से रक्षा करने वाली देवी माना जाता है। लावर्न का भी केवल सिर ही स्वीकार किया जाता है; वह भी चोरों से रक्षा करने वाली देवी है।[2]

बैल— भारतीय देवताओं में महादेव सर्वश्रेष्ठ हैं, बैल महादेव का वाहन है, अतः बैल बड़ा पवित्र समझा जाता है। आज कल मन्दिरों में बैल की भी पूजा की जाती है। प्राचीन एथन्स में बैल को इसी प्रकार बड़ा पवित्र और अवध्य समझा जाता था। बैल का वध करना भारी पाप समझा जाता था। यह कार्य करने पर फांसी तक की सज़ा दी जाती थी।[3]

ऋतुयज्ञ— भारतवर्ष के वैदिककाल में ऋतुयज्ञ किये जाते थे। प्रत्येक ऋतु के प्रारम्भ होने पर उस ऋतु की उपज और फल आदि की आहुतियां यज्ञ में दी जाती थी। प्राचीन यूनान में भी इसी प्रकार के ऋतु यज्ञों का वर्णन उपलब्ध होता है- "प्रत्येक मास के प्रारम्भ में कुछ विशेष वृक्षों के पत्ते और उस ऋतु की उपज के आनाज आदि को शहद में भिगो कर प्राचीन प्रथा के अनुसार आग में डाला जाता था। इस अग्नि में वनस्पतियों की आहुतियां ही दी जाती थीं। एथन्स में रोटी और पके हुए अन्न की आहुतियां दी जाती थी। फल, शहद और बेकती ऊन भी कुछ लोग अग्नि के अर्पण करते थे।"[4]

अन्य समानताएं— यूनानी और भारतीय विचारों की कुछ और समानताएं दिखा कर हम इस प्रकरण को समाप्त करेंगे।

---

1. Hindoo Religion. Introduction. P. 34
2. " " " P. 37.
3. Potter's Antiquities of Greece. Vol. 1. P. 217
4. Greek Vative Offerings. P. 53

अहिंसा— भारतीय विचारकों ने अहिंसा को परम धर्म स्वीकार किया है।[1] यूनानी दार्शनिक ग्ज़ैनोफेनीज़ ने आचार्य पैथागोरस के सम्बन्ध में लिखा है— "एक बार वह किसी मार्ग पर जारहे थे, उन्होंने देखा कि कोई व्यक्ति एक कुत्ते को बड़ी बेदर्दी से मार रहा है; तब दयार्द्र होकर उन्होंने कहा- 'अपना हाथ रोक लो; इसे मारो नहीं। इस की करुणा पूर्ण चीखों द्वारा मैं इस में एक मनुष्य के समान आत्मा को देख रहा हूँ, जो कि तुम्हारी मार से कष्ट अनुभव कर रही है।"[2]

इस वर्णन को पढ़ कर स्वयं अंग्रेज़ विद्वान् डाक्टर कुक को भी इस में भारतीयता की गन्ध आई है।

यूनानी स्मृतिकार ग्ज़ैनोक्रेटीस का कथन है-"अपने बज़ुर्गों का सम्मान करो और देवताओं को फलों की भेंट चढ़ाओ, जानवरों के मांस नहीं।"[3]

सत्य— यूनानी साहित्य में लिखा गया है— "एक बार पैथागोरस से पूछा गया कि मनुष्य देवता किस प्रकार बन सकता है। उसने उत्तर दिया- 'सत्य भाषण द्वारा। सब से बड़े देवता ओरोमगदस (अहुर मज़्दा) के विषय में भी कहा जाता है कि उसका शरीर प्रकाशमय है और उस की आत्मा सत्य स्वरूप है'।"[4]

भारतीय साहित्य में भी सत्य को सब से अधिक महता दीगई है। वेदों में कहा है कि यह पृथ्वी सत्य के आधार पर ही स्थित है।[5] योग दर्शन में आता है कि सत्य द्वारा श्रेष्ठतम अवस्था प्राप्त की जा सकती है।[6]

पञ्चभूत— भारतीय दार्शनिक इस संसार की उत्पत्ति पञ्चभूतों द्वारा हुई मानते हैं। उनका कथन है कि शून्य प्रलयावस्था से आकाश उत्पन्न हुवा, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथिवी पैदा

---

१. अहिंसा परमोधर्मः।

2, K. Cook's The Fathers of Jesus. P. 314.

3. Higher Aspects of Greek Religion P. 45.

4. K. Cook's The Fathers of Jesus. P. 335.

5. सत्येनोत्तभिताभूमिः। (अथर्ववेद.)

६. सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्॥ ३१॥ योग. साधन पाद.

हुई ।[1] पैथागोरस के शिष्य दार्शनिक एम्पेडोकलीस का कथन है— "सब से पहले शून्य (Chaos) से आकाश पैदा हुवा, उससे आग, उसके द्वारा पृथिवी, उससे पानी और वायु पैदा हुए ।[2] दोनों सिद्धान्तों में पञ्चभूत एक समान ही माने गए हैं परन्तु उनके क्रमों में कुछ अन्तर अवश्य है ।

इस प्रकार इन सब समानताओं से यह भली प्रकार सिद्ध होजाता है कि प्राचीन भारतीय सभ्यता, साहित्य तथा रीतिरिवाजों का प्राचीन यूनान पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा हुवा था । इतने प्रमाण उपस्थित होते हुए दोनों देशों के पारस्परिक सम्बन्ध से इन्कार किया ही नहीं जा सकता । ये सब प्रमाण प्राग्बौद्ध काल के हैं । महात्मा बुद्ध के जन्म के अनन्तर तो दोनों देशों का पारस्परिक सम्बन्ध और भी अधिक घनिष्ट होगया । इस समय भारत और यूनान के व्यापारिक सम्बन्धों के पूर्ण ऐतिहासिक प्रमाण भी प्राप्त होते हैं । मौर्यकाल में तो यूनान ने भारतवर्ष पर असफल आक्रमण भी किया था । इन सब बातों का वर्णन यथास्थान अगले खण्डों में किया जायगा ।

---

१. एतास्माद्वा तस्माद्वा आकाशः सम्भूतः, आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथवी ।

2. W. Ward's History, Literature & Mythology of the Hindoos. P. 21.

* छटा अध्याय *

इटली और भारत.
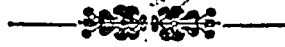
प्राग्बौद्धकालीन भारत और इटली के पारस्परिक सम्बन्धों के ठोस ऐतिहासिक प्रमाण प्रायः प्राप्त नहीं होते। परन्तु दोनों देशों के प्राचीन धर्मों का अनुशीलन करने से उनमें, इतनी अधिक समानता प्रतीत होती है कि इन दोनों देशों के प्राचीन सम्बन्ध की सत्ता स्वीकार करनी ही पड़ती है। इस समानता को सिद्ध करने के लिए हम बहुत संक्षेप में कुछ उदाहरण यहाँ उद्धृत करेंगे। यह मान लेना कि इतनी अधिक समानता अचानक संयोगवश ही होगई है, कदापि उपयुक्त न होगा। दोनों देशों के प्राचीन देवताओं की गाथाएँ (Mythology) तथा उनके स्वरूपों की समानता संक्षेप में यहाँ दी जाती है।

जेनस (Janus) और गणेश— जेनस इटली के मुख्य देवताओं में से एक है। इसके दो सिर माने जाते हैं। रोमन लोग जेनस को पिता मानते थे। यह सब वस्तुओं का उत्पादक माना जाता है। देवताओं में इसकी संख्या प्रथम है। यह मार्गों का रक्षक और मङ्गल कार्यों का प्रवर्तक है। बहुत प्राचीन काल में रोम का वर्ष मार्च मास से प्रारम्भ होता था, परन्तु पीछे से जेनस के नाम पर ही वर्ष का प्रथम मास जनवरी को बना दिया गया। सम्पूर्ण देश में इसके १२ मन्दिर थे। जेनस को ही नये उत्पन्न हुए बालक का अधिष्ठाता माना जाता था।

भारतीय गणेश भी देवताओं में अग्रगण्य हैं। जेनस की अलौकिक बुद्धि दिखाने के लिये उसके दो सिर बना दिये गए हैं परन्तु गणेश की असाधारण बुद्धि बताने के लिए उस पर सब जीवों से बड़े हाथी का सिर लगा दिया गया है। गणेश देवताओं में प्रथम हैं, अतः किसी कार्य को प्रारम्भ करते हुए गणेश का ही आवाहन किया जाता है। इसी कारण, पीछे से कोई भी ग्रन्थ प्रारम्भ करने पर "श्रीगणेशाय नमः" लिखा जाने लगा। सभी मङ्गल कार्यों में गणेश की मूर्त्ति स्थापित की जाती है। मार्गों, मैदानों और मन्दिरों के द्वारों पर भी गणेश की मूर्त्ति स्थापित की जाती है। यात्रा से पूर्व और विवाह के प्रारम्भ में इसी की पूजा की जाती है।

इस प्रकार इन दोनों देवताओं के स्वरूप में बहुत कुछ समानता है।

सैटर्न (Saturn) और सत्यव्रत— पुराणों में शतपथ ब्राह्मण की छाया लेकर जल-प्लावन की एक मनोरञ्जक कथा आती है। इसके सम्बन्ध में विस्तार से हम अपने इतिहास के प्रथम खण्ड में लिख चुके हैं। यहाँ प्रसङ्ग वश उस कथा को संक्षेप में उद्धृत करना अनुचित न होगा। वैवस्वत मनु नदी के किनारे आचमन करने बैठे तो उनके हाथ में एक छोटी सी मछली आगई। मछली ने रोकर कहा—"मेरी रक्षा करो, नहीं तो बड़ी मछलियाँ मुझे निगल जाँयगी।" दयार्द्र होकर मनु ने उसे एक कुण्ड में डाल दिया, परन्तु मछली इतनी बड़ी होगई कि कुण्ड में उसका समाना कठिन होगया, तब मनु ने उसे क्रमशः तालाब, नदी और समुद्र में रक्खा। समुद्र में रखते समय वह समझ गये कि यह मछली नहीं स्वयं देवता हैं! उन्होंने उससे इस रूपपरिवर्तन का कारण पूछा। उत्तर मिला— "अब संसार में जल-प्लावन आने वाला है उसी से मैं तुम्हें सावधान करने आई हूँ।" क्रमशः जल-प्लावन आया और चला गया। सृष्टि फिर से बनी। भागवत और मत्स्य पुराण में लिखा है कि विष्णु की कृपा से उस युग का 'सत्यव्रत' मनु को बनाया गया और सम्भवतः उसी के नाम से उस युग का नाम "सत्य-युग" पड़ा।

रोमन लोगों में यही सत्यव्रत सैटर्न नाम से प्रसिद्ध है। इटली के पुराने सिक्कों पर सैटर्न के लिए जो चिन्ह पाया जाता हैं वह भी विशेष महत्व का है। उन सिक्कों पर सैटर्न का प्रतिनिधि जहाज़ का मस्तूल है। जहाज़ के मस्तूल का सम्बन्ध यदि मनु के जलविप्लव के समय जहाज़ बनाने से जोड़ने का प्रयत्न किया जाय तो यह खेंचातानी न होगी।

पोमी (Pomey) ने एलेग्ज़ैण्डर पोलीहिस्टर से एक उद्धरण दिया है जिससे सैटर्न की कहानी पर बहुत प्रकाश पड़ता है। एलेग्ज़ैण्डर का कथन है कि सैटर्न ने असाधारण वृष्टि होने के विषय में भविष्यद्वाणी करते हुए आज्ञा दी थी कि जलविप्लव से मनुष्यों, पशुओं तथा कीट पतङ्गों को बचाने के लिये एक विशाल नौका (जहाज़) का निर्माण किया जाय।

प्लेटो ने एक स्थान पर एक दन्तकथा का वर्णन किया है जिसके अनुसार सैटर्न और साइबेल दोनों को थेटिस (Thetis)-समुद्र-की सन्तान बताया गया है। इन कथाओं के अनुसार सैटर्न का जल-विप्लव के साथ पूरा पूरा सम्बन्ध जुड़ जाता है। प्लेटो का कथन है कि सैटर्न का अर्थ "समय" है और सैबेल का अर्थ "पृथिवी" (Space) है। जलविप्लव के बाद 'समय' और

'पृथिवी' की लड़की (सिरिस) अन्न की "बहुतायत" उत्पन्न हुई।

सिरिस (Seres) और श्री— सिरिस सैटर्न की लड़की है। यह सौभाग्य और धन सम्पत्ति की प्रतिनिधि है। सिरिस के शब्दार्थ हैं "बहुतायत"-अर्थात् धन सम्पत्ति की बहुतायत। भारतीय साहित्य में भृगु ऋषि की कन्या श्री, जिस के कमला और लक्ष्मी दो और नाम भी हैं, धन सम्पत्ति की देवी समझी जाती है। श्री का अर्थ ही सम्पत्ति है। सिरिस और श्री दोनों स्त्रियां हैं। भारतवर्ष में गया के निकट जो श्री की मूर्त्ति उपलब्ध हुई है वह रोम की सिरिस की मूर्त्ति से बहुत कुछ मिलती है। दोनों ने छाती के नीचे एक सी पेटी बांध रक्खी है।

जूपिटर (Jupitar) और इन्द्र— ओविद् की एक कविता द्वारा यह पता लगता है कि जूपिटर बिजली (वज्रपात), स्वतन्त्रता और अधिकार का देवता है। रोमन लोग अनेक जूपिटरों को मानते थे। इन में से एक जूपिटर स्वयं आकाश का है जिसकी इनियन नामक मूर्त्ति बना कर पूजा की जाती है। जूपिटर सब देवताओं का राजा है। सर विलियम जोन्स के अनुसार जूपिटर शब्द का विकास इस प्रकार हुआ है—

Dives Petir (दिवस पिटर) = (द्यौपितर) आकाश का राजा
Dives petir (दिवस पिटर) = Diespetir (डाइस्पीटर)
Diespetir = (डाइस्पीटर) = Jupiter (जूपिटर)

भारतीय साहित्य में बिजली, अधिकार और स्वतन्त्रता का देवता इन्द्र ही है। इन्द्र ही सब देवताओं का राजा है, इन्द्र का एक नाम है द्यौ पिता, इस का अर्थ "आकाश का राजा" है।

रोमन साहित्य में जूपिटरों के लिये दूसरा शब्द इन्नियस जाव (Ennius Jove) प्रयुक्त हुआ है; यह इन्नियस भी इन्द्र शब्द से बहुत मिलता है। इन्द्र वज्र धारण करता तथा जोव भी वज्रधारी है।

जूनो (Juno) और पार्वती—जूनो एक देवी है जो ओलम्पियस पर्वत पर निवास करती है, इसी से उस का नाम (Olumpian Juno) रक्खा गया है। पर्वत की पुत्री पार्वती कैलास पर्वत पर निवास करती है। दोनों देवियां यूनानी और भारतीय साहित्य में स्त्रीजनोचित उदारता, प्रेम, गम्भीरता आदि गुणों के लिये प्रसिद्ध हैं।

पार्वती का पुत्र मोर पर सवार होकर देव सेना का सेनापति बनता है, उधर जूनो का पुत्र भी देवताओं का रक्षक (Warder) बनता है। छः मुख और बारह आंखों वाला स्कन्द पार्वती की रक्षा करता है, उधर इतने ही मुख और आंखों वाला आर्गस जूनो की रक्षा करता है।

मिनर्वा (Minerva) और दुर्गा— रोमन साहित्य में दो मिनर्वाओं का वर्णन है। प्रथम मिनर्वा हथियारों वाली देवी है। यह ओज और मन्यु पूर्ण देवी है, सदैव दुष्टों और पापियों का संहार करने में तत्पर रहती है। दूसरी ओर दुर्गा भी राक्षसों से युद्ध करती रहती है, युद्ध में विजय प्राप्त कर के वह "चण्डी" कहलाने लगती है। भारतीय साहित्य में दुर्गा ही शक्ति की प्रतिनिधि समझी जाती है।

मिनर्वा (Minerva) और सरस्वती— यह द्वितीय मिनर्वा शस्त्र धारण नहीं करती। यह शान्तिमयी देवी रोमन साहित्य में बुद्धि और विद्या की प्रतिनिधि समझी जाती है। मिनर्वा वाणी की देवी है, रोमन देश का एक प्राचीन व्याकरण इसी देवी के नाम से प्रसिद्ध था। मिनर्वा संगीत कला की प्रेमी है, उस के हाथ में सदैव एक विलायती वीणा (Flute) रहती है। इधर सरस्वती भी विद्या और बुद्धि की प्रतिनिधि है; वह वाणी की देवी है। उस के हाथ में सदैव एक वीणा रहती है, वह संगीत की भी अधिष्ठात्री देवी है।

बहुत से गाथाविज्ञों (Mythologists) विशेष कर गिरील्डस का कथन है कि रोमन "मिनर्वा" और मिश्र की "इसिस" ये दोनों देवियाँ वास्तव में एक ही हैं। प्लूटार्च ने मिश्रीसैस के एक इसिस-मन्दिर पर खुदा हुवा यह वाक्य उद्धृत किया है जो कि भागवत के एक श्लोक के अर्थ से सर्वथा मिलता है— "मैं ही सम्पूर्ण भूत, वर्त्तमान और भविष्य हूँ। मेरा पर्दा अब तक किसी भी मरणधर्मा ने नहीं उठाया।" इस प्रमाण के आधार पर हम कह सकते हैं कि मिश्र का "इसिस" और भागवत का "ईश्वर" एक है।

जूनो (Juno) और भवानी— भवानी और जूनो में बहुत समता है, जूनो रोमन लोगों में संतति की अधिष्ठात्री देवी समझी जाती है। यह मूर्त्ति मनुष्य और स्त्री दोनों आकारों में बनाई जाती है। भारत की भवानी देवी का चित्र अपने पति शिव से सटा हुवा बताया जाता है। यह भवानी संस्कृत साहित्य में जगदम्बा या जगन्माता कहाती है। यह सन्तति की

अधिष्ठात्री देवी है। स्त्री पुरुष के सम्मेलन द्वारा यह अर्धनारीश्वर बनाया गया है।

डायोनीसस (Dianisos) और राम— प्राचीन रोमन साहित्य में डायोनीसस के बहुत से नाम पाये जाते हैं। उसने वहाँ सर्वसाधारण के लिए कानून बनाए, लोगों के झगड़ों का निर्णय किया। सामुद्रिक व्यापार की उन्नति की और समुद्र पार के देशों को विजय किया, भारतीय श्रीराम का चरित्र भी इससे मिलता जुलता है। राम भी एक भारी विजेता था; वानरों की सहायता से उसने समुद्रपार लङ्का का विजय किया। समुद्र पर पुल बाँधा। जिस प्रकार राम के चरित्र को लेकर रामायण की रचना हुई, उसी प्रकार डायोनीसस के चरित्र के आधार पर रोम में भी एक काव्य की रचना की गई। वाल्मीकी की रामायण और नोनस की डायोनीशिया (Dianisica) दोनों समान श्रेणी के ग्रन्थ हैं।

कृष्ण और मूसा— पौराणिक साहित्य के अनुसार कृष्ण गोपियों में विहार करता है। गौओं को चराता है। एक बार उसने गोवर्धन पर्वत को भी उठाया था। रोमन मूसा अप्सराओं (परियों) के साथ आमोद प्रमोद करता है। मूसा ने पर्नेशस (Purnasus) पर्वत को उठाया था। कृष्ण संगीत का प्रेमी है, मूसा को परियाँ गाना सुनाती हैं।

इस प्रकार बहुत संक्षेप से दोनों देशों के कतिपय मुख्य मुख्य देवताओं की तुलना हमने पाठकों के सन्मुख रख दी है। यह स्पष्ट है कि इतने देवताओं में इतनी गहरी समानता यूंही, अचानक नहीं आसकती। इस कारण दोनों देशों के सम्बन्ध की सत्ता प्राचीन काल में भी स्वीकार करनी ही पड़ेगी।

रीतिरिवाज— अब संक्षेप से दोनों देशों के प्राचीन रीतिरिवाजों की तुलना करने का यत्न किया जायगा। प्राचीन इटली के विवाह सम्बन्धी निम्नलिखित नियम भारतीय प्रथाओं से बहुत मिलते थे—

१. विवाह में कन्या का पिता अग्नि की साक्षी रख कर जलाञ्जलि के साथ कन्यादान करे।[1]
२. विवाह के समय वर वधू का हाथ अपने हाथ में ले, और दोनों एकही पात्र में भोजन करें। (भारतवर्ष में एक ही पात्र में मधुपर्क लेने की प्रथा थी।)
३. विवाह से कुछ समय पूर्व ही मँगनी होजाती थी। उसके बाद एक नियत समय के अनन्तर विवाह होता था।

४. मँगनी के बाद कोई विशेष कारण उपस्थित होजाने पर मँगनी और विवाह में दो से पाँच वर्षों तक का अन्तर पड़ जाता था।

५. पूर्ण युवावस्था आने से पूर्व अगर विवाह हो भी जाय तो कन्या अपने पिता के घर में ही रहती थी।[२]

६. विवाह की अन्तिम प्रथा यह थी कि कन्या एक बार अवश्य पति के घर जाती थी। इस समय खूब गाना बजाना होता था। (भारत की "गौने" की प्रथा इससे मिलती है।)

७. एक वंश के वंशजों में परस्पर विवाह न होसकता था। वर की सात पीढ़ियों और वधु की पाँच पीढ़ियों से बाहर ही विवाह किया जासकता था। मँगनी करके विवाह न करना बहुत लज्जा जनक समझा जाता था।

८. व्यभिचारिणी स्त्री का अपने दहेज पर अधिकार न रहता था, पति भी उसकी जायदाद लौटाने को बाधित न होता था।

९. स्त्री इन अवस्थाओं में पति को त्याग सकती थी—पति नपुंसक हो, अपराधी हो, नीच हो, कोढ़ी हो, चिरप्रवासी हो या किसी स्पर्श रोग का रोगी हो।

भारतवर्ष में भी विवाह के सम्बन्ध में यही प्रथाएँ प्रचलित थीं। मनु का कथन है— "कन्यादान पानी के साथ होना उचित है। पुरोहित की उपस्थिति में यज्ञाग्नि के सन्मुख कन्या को वस्त्राभूषणों से सजाकर पति के अर्पित करना चाहिए। विवाह एक गोत्र या एक कुल में नहीं करना चाहिए।"[३]

राज नियम— दोनों देशों के बहुत से प्राचीन राज नियमों में भी पर्याप्त समानता है। रोम के निम्नलिखित राज नियम प्राचीन भारतीय नियमों से बहुत समानता लिये हुवे हैं—

---

1. Leg. 66, i. Digest of Justinion.

2. Sec. 10. De, Sposabious.

३. अद्भिरेव द्विजाग्र्याणां कन्यादानं विशिष्यते ॥ ३५ ॥
यज्ञे तु वितते सम्यग् ऋत्विजे कर्म कुर्वते ।
अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते ॥ ३८ ॥
असपिण्डा च या मातुः असपिण्डा च या पितुः ।
स प्रशस्ता द्विजातीनां दार कर्मणि मैथुने ॥ ५ ॥ मनु० अ० ३.

१. परोपकारार्थ लिये हुए धन पर व्याज नहीं होता।

२. उधार ली हुई वस्तु यदि स्वयं ही नष्ट होजाय, उसमें उधार लेने वाले का दोष न हो तो वह उसकी हानी का उत्तरदाता नहीं।

३. यदि कोई वस्तु एक निश्चित समय के लिए उधार ली गई हो ; और लेने वाला उस अवधि के समाप्त होने से पूर्व ही उसे लौटा देना चाहे तो वस्तु का स्वामी उसे लेने को वाधित नहीं है।

४. यदि उधार दी हुई वस्तु की विशेष आवश्यकता होने से उसके वास्तविक स्वामी की कोई हानी होरही हो, तो उधार लेने वाला अवधि से पूर्व भी उस वस्तु को लौटाने के लिए बाधित किया जा सकता है।

५. किसी व्यक्ति को विश्वासपात्र समझ कर यदि उसके पास कोई वस्तु रखी जाय तो उसे धरोहर समझना चाहिए।

६. यदि विश्वास पर रखी हुई धरोहर को चोर चुरा कर लेजाय या उसे राजा छीन ले अथवा वह किसी और आकस्मिक कारण से नष्ट होजाय, तो वह व्यक्ति उस वस्तु को लौटाने के लिए बाधित नहीं किया जा सकता। परन्तु यदि यह आपत्ति आने से पूर्व वस्त का स्वामी अपनी वस्तु माँग चुका हो तो उस व्यक्ति को उस वस्तु का मूल्य और देरी का दण्ड भी देना होगा।

७. बिना स्वामी की आज्ञा के उसकी धरोहर को काम में लाने वाला व्यक्ति दण्ड का भागी होगा। ऐसा करने पर उसे उस वस्तु का मूल्य व्याज सहित देना होगा।

याज्ञवल्क और मनु ने भी ऋण और धरोहर के सम्बन्ध में इन्हीं नियमों का प्रतिपादन किया है। मनु का कथन है— "यदि धरोहर पर रक्खी हुई वस्तु चोर चुरा ले, पानी में डूब जाय अथवा वह आग से जल जाय या किसी और कारण से नष्ट होजाय तो वह व्यक्ति उसे लौटाने को बाधित नहीं।"[1] "यदि धरोहर रक्खी हुई वस्तु का कोई व्यक्ति उपभोग करले तो उसे उस वस्तु का व्याज सहित मूल्य लौटाने को वाधित किया जा सकता है।"[2]

---

१. चौराहृतं जलेनोढमग्निना दग्धमेव वा।
नष्टः स्याद्यदि तत्मात्स न संहति किंचन॥

२. न भोक्तव्यो बलादधि भुञ्जानो वृद्धिमुत्सृजेत्।
मूल्येन तोषयेच्चैनमधिस्तेनोन्यथा भवेत्॥

चतुर्वर्ण— भारत की तरह प्राचीन रोम में भी समाज चार भागों में विभक्त था—

१. पुरोहित (Priests) = ब्राह्मण.
२. शासक (Senators) = क्षत्रिय.
३. साहूकार (Patricions) = वैश्य.
४. दास (Pleabions) = शूद्र.

धार्मिक आचार विचार— प्राचीन रोम के बहुत से धार्मिक आचार विचारों में भारतीयता की गन्ध आती है—

१. प्राचीन रोमन लोग पुरोहित का बहुत सम्मान करते थे। उनके कथन का लोगों पर जादू के समान असर होता था। उन्हें रोमन उत्सवों में दान में मिले हुवे वस्त्र पहिन कर ही सम्मिलित होना होता था। उनके अग्निकुण्ड की आग पवित्र समझी जाती थी, उस आग को साधारण कार्यों के लिए प्रयुक्त नहीं किया जा सकता था।

भारतवर्ष में भी ब्राह्मण पुरोहितों के घर में सदैव यज्ञाग्नि प्रज्वलित रखी रहती थी। समाज में पुरोहितों का बहुत सम्मान था। उनके बिस्तरों पर और कोई व्यक्ति नहीं सो सकता था; उनकी प्रत्येक वस्तु को पवित्र समझा जाता था।

२. प्राचीन रोमन न्यूमिना (Numina) तथा कतिपय अन्य देवताओं की पूजा बिना कोई मूर्त्ति बनाए किया करते थे। राजकीय फोरम के निकट पवित्र अग्नि सदैव जलती रहती थी।

प्राचीन भारत में भी देवताओं की पूजा बिना प्रतिमा के ही कीजाती थी, गृहस्थी लोग गार्हपत्याग्नि प्रज्वलित रखा करते थे।

३. प्रत्येक रोमन नियत समय पर यज्ञ अथवा अपने इष्ट देवता की पूजा किया करता था। इन पूजाओं को विधिपूर्वक करते हुए ही कोई व्यक्ति धार्मिक समझा जाता था। भारत में भी यज्ञ विधान के लिए समय निश्चित था। यज्ञ करने वाले व्यक्ति पुण्यवान् समझे जाते थे।

४. भोजन के समय एक थाली में पवित्र भोजनों को रखकर उस पर, घर में सर्वदा जलने वाली अग्नि का कुछ भाग डाला जाता था। इसमें सभी

देवताओं के नाम पर एक एक आहुति दी जाती थी, साथही कुछ सुगन्धित द्रव्य भी डाला जाता था।

यह क्रिया भारतीय बलिवैश्वदेवयज्ञ से मिलती है।

५. अमीर लोग भोजन करने से पूर्व एक विशेष थाली में भोजन की प्रत्येक वस्तु का थोड़ा थोड़ा भाग रख कर एक नौकर के हाथ उसे, घर के सामने सदैव जलते रहने वाले, अग्निकुण्ड में डालने के लिये भेजते थे। नौकर वापिस आकर जब तक यह नहीं कह देता था कि देवता प्रसन्न हैं, तब तक वे भोजन न करते थे।

यह क्रिया भी भारत की "बलि क्रिया" की प्रथा से मिलती है।

६. रोमन लोगों का यह विश्वास था कि गर्भ स्थित बच्चे तथा उसकी माता की रक्षा जूनो लूसीनो (Juno-Lucino) देवता के अतिरिक्त अन्य २० देवता भी करते हैं। अतः पुत्र उत्पन्न होते ही संस्कार किया जाता था।

भारतवर्ष में बालक या बालिका के उत्पन्न होने पर जातकर्म करने की प्रथा थी।

७. बालक के जन्म से १० दिन के अन्दर और कन्या के जन्म से ८ दिन के अन्दर उन का नाम रखा जाता था।

प्राचीन आर्यों में नामकरण संस्कार ११ वें दिन किया जाता था।

८. बालक अपनी आयु के सत्रहवें वर्ष के बाद किसी गृह देवता के मन्दिर में जाकर अपने पुराने कपड़े उतारता था। इस समय कुछ दान, पूजा की जाती थी, पुरोहित को कुछ भेंट भी दी जाती थी, कुछ धन जूपिटर के सन्दूक में डाला जाता था।

यह त्योहार भारतीय समावर्तन संस्कार से काफ़ी मेल खाता है।

९. स्वर्गीय पितरों की स्मृति में उनकी मृत्यु के दिन एक सहभोज किया जाता था। यह प्रथा श्राद्ध से मिलती है।

१०. विवाह के समय वर और वधू भेड़ की खालों से ढकी हुई कुर्सियों पर बैठते थे। इस समय जूपिटर को रक्तहीन बलि दी जाती थी; सब लोग एक विशेष प्रकार की रोटी खाते थे। भोजन के बाद लोग एक दूसरे से हाथ मिलाते थे। वर के साथी उससे हँसी मज़ाक करते थे। ये प्रथाएँ भी भारतीय विवाहों की प्रथाओं से कुछ अंश तक मेल खाती हैं।

३१. लोगों का विश्वास था कि मृतक का अन्त्येष्टि कर्म विधिपूर्वक करने से उसकी आत्मा को एक विशेष सुख अनुभव होता है। मृतक के वंशजों का यह कर्तव्य था कि वे उसका अन्तिम संस्कार करें। यह न करने वाला व्यक्ति पापी समझा जाता था।

३२. मृतक को गाड़ देने के बाद, उस क्रिया में सम्मिलित होने वाले लोग अपने को तब तक अपवित्र समझते थे जब तक वे एक विशेष संस्कार न कर लेते थे।

महाभारत में रोम निवासियों का वर्णन आया है; महाराज युधिष्ठिर के यज्ञ में ये लोग भी अपनी भेंट लाए थे।[1]

ये सब प्रथाएँ भारतवर्ष की प्राचीन प्रथाओं के परिवर्तित और विकृत-रूप प्रतीत होती हैं। इन प्रमाणों के आधार पर हम बड़ी दृढ़ता के साथ यह स्थापना कर सकते हैं कि प्राचीन काल में भी ये दोनों देश पर्याप्त घनिष्ठ सम्बन्ध से जुड़े हुए थे। साथ ही भारतीय सभ्यता का प्रभाव इस सुदूर देश पर भी पड़ा था। अन्यथा इतनी अधिक समानताओं का होना सर्वथा असम्भव था।

---

१. औष्णीकामन्तवासांश्च रोमकाञ्च पुरुषादकाञ्च। महाभारत सभा०

❋ सातवाँ अध्याय ❋

ड्रूइड लोग तथा आर्यजाति.

प्राचीन समय में, जब कि इङ्गलैण्ड में एँग्लो-सैक्सन आदि जातियाँ आबाद नहीं हुई थीं, तब वहाँ कैल्ट (Celt) जाति के लोग रहा करते थे। वर्तमान ऐतिहासिकों का विचार है कि आज से लगभग ढाई हज़ार वर्ष पहले पूर्व दिशा से आकर ये लोग यहाँ आबाद हुवे थे। इस कैल्ड जाति के पुरोहितों और धर्माचार्यों को 'ड्रूइड' कहा जाता था। ये ड्रूइड लोग प्राचीन भारतीय ब्राह्मणों की तरह समाज के आचार तथा रीतिरिवाज़ों का निरीक्षण किया करते थे। इनका एक विशेष सम्प्रदाय समझा जाता था। ड्रूइड लोगों तथा भारतीय ब्राह्मणों में अत्यधिक समानता है। धर्म, रीतिरिवाज़, संगठन आदि सभी दृष्टियों से इन दोनों में बहुत कम भेद प्रतीत होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कैल्ट लोगों के ये धर्माचार्य किसी समय भारतीय सभ्यता तथा रीतिरिवाज़ों के अनुयायी होंगे। इस अध्याय में अत्यन्त संक्षेप से इन दोनों में पारस्परिक समानता दिखाने का यत्न किया जायगा।

दार्शनिक विचार और रीतिरिवाज़— ड्रूइड लोगों तथा भारतीय ब्राह्मणों के धार्मिक और दार्शनिक विचारों तथा प्रथाओं की समता इस तालिका द्वारा भली प्रकार स्पष्ट होजायगी—

ड्रूइड	वैदिक
१. "ड्रूइड लोग आत्मा को अमर मानते थे। उन का विश्वास था कि आत्मा अपने कर्मों के प्रभाव से विभिन्न योनियों में जन्म लेता है। रोमन लोगों का कथन है कि ड्रूइड लोग, इस आत्मा की अमरता के सिद्धान्त की बदौलत ही मौत से नहीं डरते थे।"[1]	१. मनु का कथन है—"सात्विक कर्म करने वाले दैवीय योनि प्राप्त करते हैं, राजसिक कार्य करने वाले मानुषीय और तामसिक आचरण वाले पाशविक योनि प्राप्त करते हैं।"[2]

1. Historian's Hitsory of the world vol. xviii.

२. देवत्वं सात्विका यान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः।
तिर्यक्त्वं तामसा नित्यं इत्येषा त्रिविधा गतिः॥ मनु १२. ४०

ड्रूइड	वैदिक
२. डायोडोरस सिक्यूलस ने ड्रूइडों के इस सिद्धान्त की ओर विशेष ध्यान आकर्षित किया है कि आत्माएं अमर हैं, वर्षों की नियत संख्या के बाद वे फिर जन्म लेती हैं, और दूसरा शरीर धारण करती हैं।[1]	२. "यह आत्मा न जन्म लेता है न मरता है, न यह कहीं से आया है न इस ने कोई रूप परिवर्तन किया है; यह जन्म नहीं लेता, नित्य है, प्राचीन है; इस मर जाने वाले शरीर में इस की मृत्यु नहीं होती।"[4]
३. स्ट्रैबो (Strabo) का कथन है कि हमारे देश के प्राचीन ड्रूइड लोग आत्मा और संसार के अमरत्व को स्वीकार करते थे। उनका यह भी विश्वास था कि अग्नि और जल इस संसार में सब कहीं व्याप्त है।"[2]	३. "न यह मारता है, न मारा जाता है।"[5] "सब ओर जल ही जल था।"[6] "जिस प्रकार आग सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है।"[7]
४. ड्रूइड लोगों के अनुसार धर्म का उद्देश्य वैयक्तिक आचार का सुधार, शान्ति-प्रचार, परोपकार तथा अच्छे कार्यों के लिये उत्साहित करना था। निम्नलिखित साधनों से मनुष्य अपने उद्देश्य को पूरा कर सकता है— क. ईश्वर पर विश्वास रखना ख. सत्याचरण ग. धैर्य का कभी त्याग न करना। धार्मिक उन्नति के लिये ये आधार भूत सिद्धान्त हैं।[3]	४. आत्मिक उन्नति के लिये यम नियमों का पालन आवश्यक है। अहिंसा सत्य, चोरी न करना, अपरिग्रह ये यम हैं। तप, स्वाध्याय ईश्वर भक्ति ये नियम हैं।[8]

1. Celtic Religion by Prof. Edward Anwyll.
२. Prof. E. Anwyll's Celtic Religion.
३. Historian's History of the World.
४. न जायते म्रियते वापि कश्चित् नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ कठ. २ : १८
५. नायं हन्ति न हन्यते । कठ २ । १९
६. अप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् । ऋग्वेद १०।१२९ । ३
७. अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टः । काठोपनिषद्
८. अहिंसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥ योग दर्शन।
शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥

ड्रूइड	वैदिक
५. ड्रूइड लोग बड़ी अवस्था हो जाने पर नगर से दूर जंगलों में जाकर निर्जन गुफाओं और कुटियों में रहा करते थे।	५. आयु के तीसरे भाग में नगर छोड़ कर वन में चले जाना चाहिये। वहां एकान्त में रह कर नित्यकर्म नियम पूर्वक करते हुए जितेन्द्रिय हो कर रहना चाहिये।[1]
६. वनों में निवास करने वाले ड्रूइड लोग अपने आचरण की पवित्रता के कारण समाज में विद्वानों की अपेक्षा भी अधिक मान प्राप्त करते थे।	६. किसी वृक्ष के नीचे रहते हुए वानप्रस्थी को सुखों की इच्छा छोड़ कर ब्रह्मचर्य पूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहिये।[2]
७. ड्रूइड लोग कुछ उच्च विद्याओं को बिलकुल गुप्त रखा करते थे, ये रहस्य अपात्र लोगों पर प्रगट नहीं किये जाते थे।	७. अयोग्य अपात्र को रहस्यपूर्ण विद्या देने की अपेक्षा वह विद्या साथ लेकर मर जाना ही अच्छा है। विद्या ने ब्राह्मण के पास जाकर कहा—"मैं तेरा ख़ज़ाना हूँ; मेरी रक्षा कर। मुझे अयोग्य को मत दे।"[3]
८. उच्च धार्मिक विद्या विद्यालयों में भी विशेष उच्च कुलों के योग्य बालकों को ही दी जाती थी।	८. विद्या ने ब्राह्मण से कहा-मुझे पवित्र जितेन्द्रिय और ब्रह्मचारी ब्राह्मणों को ही दे।[4]
९. ड्रूइड लोग न केवल अपने को धार्मिक विद्याओं के विद्वान ही समझा करते थे अपितु वे प्राकृतिक विद्याओं,	९. राजा को चाहिए कि वह ब्राह्मणों से वेद, दण्डनीति (Politics) तर्कशास्त्र और ब्रह्म विद्या आदि सब

१. संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम्।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत् सहैव वा ॥ ३ ॥
अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्नि परिच्छदम्।
ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः ॥ ४ ॥ मनु अ० ६

२. अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः।
शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूल निकेतनः ॥ २६ ॥ मनु० ६.

३. विद्ययैव समं कामं कर्तव्यं ब्रह्मवादिना।
आपद्यपि हि घोरायां न त्वेनामिरिणे वपेत् ॥ ११३ ॥
विद्या ब्राह्मणमेत्याह शेवधिष्टेस्मि रक्ष माम्॥
असूयकाय मां मादास्तथा स्यां वीर्यवत्तमा ॥ ११४ ॥ मनु० २.

४. यमेव तु शुचिं विद्यान्नियतं ब्रह्मचारिणाम्।
तस्मै मा ब्रूहि विप्राय निधिपायाप्रमादिने ॥ ११५ ॥ मनु० अ० २

ड्रूइड	वैदिक
नक्षत्र विद्या, विज्ञान, चिकित्सा आदि में भी अपने को अत्यन्त प्रवीण समझते थे। वे इन सब विद्याओं को भी, जितना उन का ज्ञान था, अपने शिष्यों को पढ़ाया करते थे।	विद्याएं सीखे ।[1] ब्राह्मणों का कर्तव्य है कि वे दण्डनीति, आदि उपाङ्गों सहित वेद विद्या का अध्ययन करें ।[2]
१०. तत्कालीन कैल्ट जाति के धार्मिक कार्य और समारोह बिना ड्रूइड लोगों की उपस्थिति के न हो सकते थे। इन्हीं ड्रूइड पुरोहितों द्वारा ही लोग देवताओं के प्रति वलियां चढ़वाया करते थे ये लोग कविता भी किया करते थे। देश में सदैव, लड़ाई और शान्ति दोनों कालों में, इन की अत्यन्त आवश्यकता समझी जाती थी। अगर कभी लड़ाई इन लोगों की अनुमति के बिना प्रारम्भ कर दी जाती थी तो ये उसे बीच में ही रुकवा भी देते थे।	१०. पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना कराना, दान देना. लेना—ये ब्राह्मणों के कार्य हैं। राजा को चाहिये कि वह सदैव ब्राह्मणों को वज़ीफे देता रहे।[3] सदैव प्रत्येक कार्य को ब्रह्मणों की सलाह लेकर ही करना चाहिये, उन्हें प्रत्येक बात में प्रामाणिक समझना चाहिये।[4]
११. ड्रूइड लोगों की सभाओं द्वारा ही कैल्ट जाति के लोग अपने पारस्परिक विवादों का निर्णय करवाया करते	११. राजा जब स्वयं किसी मामले का निर्णन न करना चाहे तब उसे इस कार्य के लिए किसी विद्वान ब्राह्मण

१. त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम् ।
आन्वीक्षकीं चात्मविद्यां वार्तारम्भांश्च लोकतः ॥ ४३ ॥ मनु अ० ७.

२. धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिबृंहणः।
ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥ १०० ॥ मनु अ० १२.

३. अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ मनु १, ८८.
म्रियमाणोऽप्याददीत न राजा श्रोत्रियात्करम् ।
न च क्षुधास्य संसीदेच्छ्रोत्रियो विषये वसन् ॥ १३३ ॥
श्रुतवृत्ते विदित्वास्य वृत्तिं धर्म्यां प्रकल्पयेत् ।
संरक्षेत्सर्वतश्चैनं पिता पुत्रमिवौरसम् ॥ १३५ ॥ मनु ७.

४. अनाम्नातेषु धर्मेषु कथं स्यादिति चेद्भवेत् ।
यं शिष्टा ब्राह्मणा ब्रूयुः स धर्मः स्यादशंकितः ॥ मनु १२, १०२

ड्रूइड	वैदिक
थे। ये सभायें एक तरह से अदालतों का काम भी करती थीं।	को नियुक्त करना चाहिए। यह ब्राह्मण तीन अन्य ब्राह्मणों की सभा के साथ इस मामले पर विचार करे।[२]
१२. ये लोग नक्षत्रों की गति पृथिवी की स्थिति आदि समस्याओं पर खूब विचार करते थे। प्रत्येक कार्य में नक्षत्रों की स्थिति का ख़्याल रखा जाता था।	१२. वैदिक क्रियाओं में भी नक्षत्रों की गति और स्थिति की ओर भी ध्यान आकर्षित किया जाता है।
१३. ड्रूइड बालकों को २० वरस की आयु तक ब्रह्मचर्य पूर्वक रखा जाता था; इस समय में वे तप पूर्वक विद्याभ्यास किया करते थे।	१३. वेदों का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा वाले विद्यार्थी को ३६ वरस गुरु के पास रह कर ब्रह्मचर्य पूर्वक वेदाभ्यास करना चाहिये।[३]
१४. ड्रूइड लोग ही कैल्ट बालकों को शिक्षा दिया करते थे। शिक्षा के ग्रन्थ प्रायः छन्दों में बद्ध थे। ड्रूइड लोग इस कार्य को बहुत पसन्द करते थे। वे बालकों को मुफ्त पढ़ाया करते थे; बालकों के पिता अपनी इच्छानुसार उन्हें भोजनादि दिया करते थे उसी से इनका निर्वाह होता था।[१]	१४. प्राचीन भारत में भी बालकों की शिक्षा ब्राह्मणों के हाथ में ही थी। पाठ्यग्रन्थ भी प्रायः छन्दों में बद्ध होते थे। ब्राह्मण इस कार्य को बहुत पसन्द करते थे। इन ब्राह्मणों का निर्वाह भी अपने यजमानों के इच्छापूर्वक दिये गये दान द्वारा ही होता था।
१५. यदि कोई ड्रूइड अपने किसी अधिकार का अनुचित उपयोग करता था तो उसे धार्मिक कृत्यों से बहिष्कृत करने का दण्ड दिया जाता था,	१५. धार्मिक कार्यों से अपराधियों को बहिष्कृत करने की प्रथा भारत में भी थी—"बीमार, गुरु के विरुद्ध आचरण करने वाले, व्याजखोर तथा

१. Celtic Literature by E. Anrvyll.

२. यदा स्वयं न कुर्यात्तु नृपतिः कार्य दर्शनम् ।
तदा नियुञ्जीयाद्विद्वान्सं ब्राह्मणं कार्य दर्शने ॥ ९ ॥
सोऽस्य कार्याणि संपश्येत्सभ्यैरेवत्रिभिर्वृतः ।
सभामेव प्रविश्याग्र्यामासीनः स्थित एव वा ॥ १० ॥ मनु अ० ८

३. षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम् ।
तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा ॥ १ ॥ मनु० ३

ड्रूइड	वैदिक
यह दण्ड इन लोगों में सब से कठोर माना जाता था । इस दण्ड द्वारा दण्डित लोग बड़ी बुरी हालत में हो जाते थे । समाज के सब अधिकारों से वे वञ्चित रह जाते थे।[1]	यज्ञों का त्याग करने वाले ब्राह्मण को धार्मिक कृत्यों में सम्मिलित नहीं करना चाहिये।"[2] इस के अन्य बहुत से प्रमाण भी स्मृति ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं।

इन सब प्रमाणों द्वारा प्राचीन इङ्गलैण्ड के ड्रूइड और भारतीय ब्राह्मणों में बहुत अधिक समानता सिद्ध होती है। ड्रूइड लोग भी कैल्ट लोगों के दिमाग़ पर ठीक उसी प्रकार शासन करते थे जिस प्रकार कि प्राचीन भारतीय जाति के मस्तिष्क पर तत्कालीन ब्राह्मण लोग। सर्वसाधारण जनता के प्रत्येक सामाजिक या वैयक्तिक कार्यों में इन से सलाह ली जाती थी, लोग इन्हीं के आदेशों का पालन करते थे। ये लोग समाज में व्यवस्था और शान्ति बनाए रखने के लिये पूर्ण यत्न करते थे। इन की आज्ञा मान कर लोग द्वेष, शत्रुता आदि का भी त्याग कर देते थे। युद्ध प्रारम्भ होजाने पर भी यदि ड्रूइड लोग उस लड़ाई को अच्छा न समझ कर उसे रोक देने की आज्ञा देते थे तो लड़ाई वन्द कर दी जाती थी। इनका अपना आचार बहुत अच्छा होता था। सीज़र का कथन है कि ड्रूइड लोग एक अलग वर्ण (Caste) की तरह थे, जो वर्ण कि क्षत्रियों से भिन्न था। ये लोग तत्कालीन इङ्गलैण्ड के कवि, धर्माचार्य, पुरोहित, शिक्षक, न्यायकर्त्ता आदि होते थे। कुछ लोगों का विश्वास है कि शक्तिशाली गौल लोगों के दार्शनिक और तत्ववेत्ता इन्हीं ड्रूइड लोगों के शिष्य थे।

हमारा विचार है कि महाभारत के युद्ध के वाद भारतवर्ष की कोई जाति, या भारतीय सभ्यता के प्रभाव से पूर्णतया प्रभावित हुई कोई अन्य एशियाई जाति इङ्गलैण्ड में जाकर आबाद हुई, और उस ने अपनी सभ्यता तथा आचार की बदौलत वहां के कैल्ट निवासियों से श्रद्धा व सन्मान प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की।

1· Historian's History of the World.

२. प्रेष्यो ग्रामस्य राज्ञश्च कुनखी श्यावदन्तकः ।
प्रतिरोद्धा गुरोश्चैव त्यक्ताग्निर्वार्धुषितस्था ॥ १५३ ॥ मनु० अ० ३.

* आठवाँ अध्याय *

भारत और अमेरिका
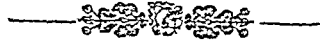
सन् १४६२ में जेनेवा के प्रसिद्ध पर्यटक कोलम्बस ने अमेरिका का 'अनुसन्धान' किया था। इससे पहले यूरोप के निवासी इस विस्तृत महाद्वीप के सम्बन्ध में कुछ भी न जानते थे। परन्तु प्राच्य देशों के 'अर्धसभ्य' लोग १५ वीं सदी से बहुत पूर्व अमेरिका से परिचित थे। डे गिग्नेस के अनुसार चीनी साहित्य से ज्ञात होता है, कि प्राचीन चीनी लोगों को अमेरिका का परिज्ञान था। वे ऐशिया की सीमा से बहुत दूर चीन के पूर्व में 'फाङ-सन्ग' नाम के एक प्रदेश की सत्ता मानते थे और इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह 'फाङ-सन्ग' अमेरिका के सिवाय और कोई न था।[1] प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता पारावे के अनुसार 'फाङ-सन्ग' चीन से २०००० ली की दूरी पर स्थित था। मोशिये पोथियक के अनुसार एक 'ली' ४८६ गज़ के बराबर होता है। इस प्रकार हिसाब लगाने से ज्ञात होता है, कि 'फाङ-सन्ग' कैलिफोर्निया को कहते थे। इस सम्बन्ध का एक प्रमाण हम चीन के अध्याय में २७२ पृष्ठ पर उद्धृत कर चुके हैं।

प्राचीन जापानी लोग भी अमेरिका से परिचित थे। वे इस देश को 'फाङ-सो' कहते थे। इन प्राच्यदेशों का अमेरिका के साथ व्यापारिक और धार्मिक सम्बन्ध स्थापित था। चीनी और जापानी लोग व्यापार के निमित्त वहाँ आया जाया करते थे। पाँचवीं सदी के अन्त में चीन के अन्तर्गत 'की-पिन' देश से बौद्ध-प्रचारक 'फाङ-सन्ग' में बौद्धधर्म का प्रचार करने के लिए गये थे।[2]

केवल चीन और जापान का ही नहीं, भारत और अमेरिका का पारस्परिक सम्बन्ध भी बहुत प्राचीन है। प्राचीन साहित्य में अनेक स्थानों पर पाताल देश और उसके निवासियों का वर्णन है। महाभारत काल में दिग्विजय करता हुवा अर्जुन पातालदेश में भी पहुँचा था, और वहाँ 'नागों' पर विजय प्राप्त कर

---

1. The Human Species by A. De Quatrefages, P. 202
2. Ibid, P. 204-5

पातालदेश की राजकन्या उलूपी के साथ उसने विवाह किया था ।[1] भारतीय साहित्यमें अन्यत्र भी बहुत से स्थानों पर पातालदेश का वर्णन आया है। परन्तु इस अध्याय में हम भारतीय साहित्य के आधार पर प्राचीन भारत और अमेरिका का सम्बन्ध प्रदर्शित नहीं करेंगे, अपितु अमेरिका के वास्तविक निवासियों की सभ्यता और धर्म के आधार पर यह सिद्ध करेंगे, कि भारत और अमेरिका में बहुत प्राचीन समय से सम्बन्ध स्थापित था।

मैक्सिको के प्राचीन निवासियों को 'एज़्टेक' कहते थे। जब कोलम्बस ने अमेरिका का 'अनुसन्धान' किया, तो सब से पूर्व स्पेनिश लोगों ने वहाँ पर अपने उपनिवेश स्थापित किये। स्पेनिश लोगों ने 'एज़्टेक' सभ्यता को नष्ट कर अपना प्रभुत्व जमाने की कोशिश की। 'एज़्टेक' लोग सभ्यता की दृष्टि से बहुत पिछड़े हुवे न थे। वे बड़े बड़े नगरों में निवास करते थे। उन्होंने विशाल इमारतों का निर्माण किया था। उनका धर्म बहुत उन्नत और विकसित था। यद्यपि 'एज़्टेक' लोगों की सभ्यता अब बहुत कुछ नष्ट होचुकी है, परन्तु उसके विषय में हमें बहुत सी बातें मालूम हैं। यदि हम इस आश्चर्यजनक सभ्यता का ध्यान पूर्वक अनुशीलन करें, तो हमें भारतीय सभ्यता और धर्म से बहुत कुछ एकता ज्ञात होगी। हम दोनों सभ्यताओं के सम्बन्ध और सादृश्य को प्रदर्शित करने के लिये कुछ उदाहरण उद्धृत करते हैं—

१. **चतुर्युग की कल्पना**— प्राचीन मैक्सिकन या 'एज़्टेक' लोग संसार को अनादि मानते हुवे सम्पूर्ण काल को चार युगों में विभक्त करते थे। उनके मत में, प्रत्येक युग हज़ारों वर्षों का होता था। वे मानते थे कि, प्रत्येक युग के अन्त में किसी महाभूत या मूलतत्त्व के द्वारा सम्पूर्ण मनुष्य जाति का विनाश होजाता है, और उसके बाद फिर सृष्टि की उत्पत्ति होती है।[2] चतुर्युगी का यह विश्वास भारतीय साहित्य में अनेक स्थानों पर पाया जाता है।[3] मनुस्मृति में चारों युगों का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है।[4] मैक्सिकन लोगों और भारतीयों की इस कल्पना में स्पष्टतया सादृश्य दृष्टिगोचर होता है।

---

१. महाभारत–सभापर्व.

2. History of the Conquest of Mexico by W, H. Prescott P. 31

३. भारतीय साहित्य में चतुर्युगी के वर्णनों के लिये Asiatic Researches, Vol. II का सातवां अध्याय देखिये।

४. मनुस्मृति अध्याय १ श्लोक ७९–८६

२. जलप्लावन का विश्वास— 'एजटेक' लोग जलप्लावन पर विश्वास रखते थे। प्राचीन अनेक जातियों में जलप्लावन सम्बन्धी विश्वास उपलब्ध होते हैं। बाइबल की पुरानी गाथाओं, काल्डियन लोगों के प्राचीन अवशेषों और यूनानियों के विस्तृत साहित्य में जलप्लावन की बात मिलती है। 'एजटेक' लोगों का विश्वास था कि जलप्लावन के पश्चात् दो व्यक्ति जीवित बचे थे। पहले व्यक्ति का नाम 'कोक्सकोक्स' था और दूसरी उसकी धर्मपत्नी थी। जलप्रलय के बाद जब सम्पूर्ण पृथिवी जलाप्लावित हो गयी, तब ये व्यक्ति ही एक नौका में बच सके। एक पर्वत की उपत्यका में इन्हें आश्रय मिला। पीछे से इन्हीं के द्वारा सम्पूर्ण मानव जाति की उत्पत्ति हुई।

'एजटेक' लोगों के प्राचीन अमरीकन पड़ौसी 'मिचाँ अकेन' लोग थे। वे भी जलाप्लावन पर विश्वास रखते थे। यह भी मानते थे कि जलप्रलय के बाद सब प्राणियों के नष्ट हो जाने पर केवल एक ही व्यक्ति बचा इस का नाम 'टेज्पी' था। जिस नौका पर यह बचा, उस में इस के सिवाय सब प्रकार के प्राणियों और पक्षियों का भी एक एक प्रतिनिधि बचाया गया था। पीछे से इन्हीं के द्वारा सब जीवों की उत्पत्ति हुई।[1]

यह दिखलाने की आवश्यकता नहीं, कि प्राचीन अमरीकन लोगों की ये गाथायें भारतीय विश्वासों से कितनी अधिक मिलती जुलती हैं। हम अपनी पुस्तक के पहले खण्ड में भारतीय साहित्य में जो भी जल प्लावन सम्बन्धी गाथायें मिलती हैं, उनका विस्तार के साथ उल्लेख कर चुके हैं।[2] अतः उन्हें यहां फिर उद्धृत करने की आवश्यकता नहीं। मत्स्य, अग्नि, भागवत आदि पुराणों तथा महाभारत और शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रन्थों के वृत्तान्त इस से बहुत मिलते हैं। इस में कोई सन्देह नहीं कि प्राचीन यूनानी, हिब्रू और काल्डियन लोगों की तरह अमेरिकन लोगों ने भी जलप्लावन का विश्वास भारतीय साहित्य से ही लिया था।

३. चोलुला का बुर्ज— वर्तमान पैबला नगरी के समीप अमेरिका में एक विशाल स्तम्भ वा बुर्ज उपलब्ध होता है, जिसे कि 'चोलुला का बुर्ज' कहते हैं। यह १८० फीट ऊंचा है और कच्ची ईंटों का बना हुवा है। प्राचीन विश्वासों के अनुसार इस बुर्ज का निर्माण दैत्य लोगों ने प्रलय के पश्चात् किया था। वे लोग समझते थे कि इस बुर्ज के द्वारा वे अन्तरिक्ष वर्ती बादलों के समीप पहुँच

---

1. Prescaott Conquest of Mexico P. 561–2

२. भारतवर्ष का इतिहास प्रथम खण्ड (द्वितीय संस्करण) पृ० १८०–१८८

सकेंगे। पर देव लोग इसे न सह सके। उन्होंने इस प्रयत्न को नष्ट करने के लिये आकाश से अग्नि वर्षा प्रारम्भ की, और दैत्यों को अपना प्रयत्न छोड़ना पड़ा।[1]

अमेरिकन लोगों की यह गाथा अनेक रूपों में प्राच्यदेशों में भी उपलब्ध होती है। हिब्रू लोगों का 'बेबल का बुर्ज' चोलुला के बुर्ज से बहुत कुछ मिलता है। सर विलियम जोन्स के अनुसार यह बुर्ज का विश्वास भारतीय साहित्य में भी उपलब्ध होता है कि पुराणों में वर्णित बलि राजा की कथा; स्तम्भ फाड़ कर शेर का निकलना आदि रूपान्तर द्वारा बुर्ज सम्बन्धी प्राचीन विश्वास के सादृश्य को सिद्ध करते हैं।

४. मृतकों का दाह—प्राचीन मैक्सिकन लोग मृतकों का दाह किया करते थे। पीछे से अस्थियां और राख को एक बरतन में सञ्चित कर के उसे एक स्थान पर रख कर ऊपर से समाधि बना दी जाती थी। कार्ली लिखता है कि "निस्सन्देह मृत लाशों को जलाने का यह तरीका, अवशिष्ट राख को एक बर्तन में सञ्चित करना, फिर उसके ऊपर एक समाधि का निर्माण करना...... ये सब बातें ईजिप्ट और हिन्दुस्तान के रिवाजों का स्मरण करा देती हैं।"[3]

इसी सम्बन्ध में विचार करते हुये ऐतिहासिक प्रेस्कोट लिखते हैं—"मृत शरीर को जलाना कोई विशेष बात नहीं है। शरीर को किसी न किसी प्रकार समाप्त तो करना ही है। परन्तु जब हम देखते हैं कि पीछे से अवशिष्ट राख को एक बर्तन में एकत्रित किया जाता है............. तब सादृश्य बहुत बढ़ जाती है। इतनी सूक्ष्म सदृशता का पाया जाना सामान्य बात नहीं है। यद्यपि केवल इस एक बात का मिल जाना अपने आप में कोई बड़ा प्रमाण नहीं है, पर जब इसे अन्य बातों के साथ मिला कर देखा जाता है, तो प्राच्य देशों के साथ पारस्परिक सम्बन्ध की सम्भावना बहुत बढ़ जाती है।"[4]

---

1. Prescaott. Conquest of Mexico. P. 582
2. Asiatic Researches Val III. P. 486.
   'This event also seems to be recorded by ancient Hindus in two of their Puranas, and it will be proved, I trust, on some future occasion that the lion bursting from a pillar to destroy a blasphening giant, and the dwarf who beguiled and held in derision the magnificent Beli, are one and the same story related in a symbological style."
3. See the quotalion of Carli in. Prescott–conquest of Mexico. P. 586 Foot note 37.
4. Prescott–'Conquest of Mexico.' P. 587.

५. भाषा की समानता— प्राचीन अमेरिका में अनेक प्रकार की भाषायें बोली जाती थीं । ये परस्पर एक दूसरे से बहुत भिन्न थीं । परन्तु इन में अनेक समानतायें भी विद्यमान थीं और आश्चर्य यह है, कि ये समानतायें भारतीय भाषाओं में भी बहुत कुछ पाई जाती हैं । उदाहरणार्थ, समास के द्वारा बहुत बड़े भाव को एक छोटे से शब्द वा पद में ले आना संस्कृत व सभी प्राचीन भारतीय भाषाओं की बड़ी भारी विशेषता है । यही बात अमेरिकन भाषाओं में भी पाई जाती थी । इसी प्रकार शब्द रचना, ईडियम आदि के विषय में भी अनेकविध समानतायें ध्यान देने योग्य हैं ।"[1]

६. वैज्ञानिक सादृश्य— ऐतिहासिक प्रेस्कोट ने प्रदर्शित किया है कि मैक्सिकन लोगों की वर्षगणना, मासविभाग, मासों और दिनों के नाम-आदि प्राच्य देशों की वर्षगणना आदि से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं । इसे वे 'वैज्ञानिक सादृश्य' के नाम से पुकारते हैं । इन वैज्ञानिक सादृश्यों का भी संक्षेप के साथ उल्लेख कर देना आवश्यक है । प्राचीन मैक्सिकन लोग चन्द्रमा के अनुसार अपनी वर्षगणना करते थे । दिनों और मासों को सूचित करने के लिये मैक्सिकन लोग अनेक पशु पक्षियों के नाम प्रयुक्त करते थे । भारत तथा अन्य प्राच्य देशों में भी इस कार्य के लिये प्राणियों के नाम प्रयुक्त किये गये हैं ।[2] मेष, वृष, कर्क, सिंह, वृश्चिक, मकर, मीन आदि भारतीय नाम इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है ।

७. अनुश्रुति Tradition—प्राचीन मैक्सिकन या एज़टेक लोगों में यह अनुश्रुति विद्यमान थी कि उनकी सभ्यता का मूल पश्चिम या उत्तर पश्चिम में है । सम्पूर्ण अमेरिका महाद्वीप में निवास करने वाली जातियों में यह अनुश्रुति किसी न किसी रूप से विद्यमान थी । एज़टेक लोगों में तो यह लिखित रूप से भी पाई जाती है ।[3] यह ध्यान रखना चाहिये, कि अमेरिकन लोगों के लिये पश्चिम या उत्तर पश्चिम एशियाटिक देश वा प्राच्य देश ही होंगे । अमेरिकन अनुश्रुति के अनुसार 'क्वेट्साल कटल' नाम का एक शुभ्र व्यक्ति प्राच्य देशों से उन के देश में आया था । इस की दाढ़ी बहुत लम्बी थी, कद ऊंचा, बाल काले और रङ्ग शुभ्र था । इस ने अमेरिका निवासियों को कृषि की शिक्षा दी, धातुओं का प्रयोग सिखलाया और शासन व्यवस्था की कला में निपुणता प्राप्त कराई ।

1. Ibid. P. 588-9
2. Ibid. P. 587.
3. Ibid. P. 589.

'केट्सालकटल' अमेरिकन लोगोंके लिये इतना अधिक लाभकारक और उपयोगी सिद्ध हुवा कि पीछे से उसकी देवता की तरह पूजा होने लगी । इस रहस्य-मय व्यक्ति ने अमेरिका में सतयुग (Golden age) का प्रारम्भ किया । इस के प्रभाव से पृथिवी पुष्पों और फलों से परिपूर्ण हो गई। इतना बड़ा अनाज होने लगा कि एक व्यक्ति एक सिट्टे से अधिक न उठा सकता था । नानाविध रंगों की कपास उगने लगी । अभिप्राय यह है कि उस दैवी पुरुष के प्रभाव से अमेरिका में नवीन युग प्रारम्भ हो गया ।[1]

परन्तु यह 'केट्सालकटल' बहुत समय तक अमेरिका में न रह सका। किसी देवता के प्रकोप से— कारण क्या था, इसका हमें पता नहीं है— इसे देश छोड़ कर जाना पड़ा । जब वह मैक्सिकन खाड़ी के समीप पहुंच गया, तब उसने अपने अनुयाइयों से विदा ली और समुद्र पार करके वापिस चला गया ।[2]

यह 'केटसालकटल' कौन था ? इस में सन्देह नहीं कि यह प्राच्यदेशों का रहने वाला था और इस का वर्णन सूचित करता है कि यह आर्यजाति का था। हम केवल अनुमान नहीं कर रहे हैं। हमारे पास इसके लिये दृढ़ प्रमाण विद्यमान हैं । यह 'केटसालकटल' कौन था, इसे स्पष्ट करने के लिये रामायण का अनुशीलन करना चाहिये । बाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड में एक बड़ी मनोरञ्जक और उपयोगी कथा मिलती है। इस में राक्षसों की उत्पत्ति की कथा लिखते हुवे 'सालकटंकट' वंश के राक्षसों की उत्पत्ति का वर्णन किया है। इन का विनाश विष्णु ने किया और उस से पराजित होकर 'सालकटंकट' वंश के राक्षस लोग— जिनका मूल निवास स्थान लङ्काद्वीप था— पाताल देश में चले गये । इनका नेता सुमाली था । रामायण में लिखा है—

"हे कमलेक्षण राम ! इस प्रकार वे राक्षस सम्मुखयुद्ध में विष्णु के द्वारा पराजित होगये और उनके बहुत से नायक युद्ध में मारे गये ।

"जब वे लोग विष्णु के साथ युद्ध न कर सके, तो अपनी पत्नियों को लेकर अपना देश लङ्काद्वीप छोड़ कर पाताल चले गये ।

"हे रघुसत्तम ! वे राक्षस सालकटङ्कट वंश के थे, उन का पराक्रम बहुत प्रख्यात है। उनके नेता का नाम 'सुमाली' था ।

---

1. Prescott. Conquest of Mexico. P. 21.

2. Ibid- P. 30

"जिन राक्षसों का तुम ने विनाश किया है, वे 'पौलस्त्य राक्षस' हैं। सुमाली, माल्यवान्, माली आदि जिन राक्षसों के नेता थे, वे रावण के राक्षसों से अधिक शक्ति शाली थे।"[1]

इस तरह स्पष्ट है कि विष्णु द्वारा पराजित होकर सालकटंकट राक्षस पाताल देश या अमेरिका में चले गये। मैक्सिकन 'क्वेटसालकटल' और भारतीय 'सालकटंकट' में कितनी समानता है। ये दोनों एक ही शब्द के रूपान्तर हैं। मैक्सिकन इतिवृत्त के अनुसार जो 'क्वेटसालकटल' देवता प्राच्य देशों में उस देश के निवासियों को कृषि, धातुविद्या तथा शासनव्यवस्था सिखाने में समर्थ हुवा था, वह 'सालकटंकट सुमाली' के सवाय अन्य कोई न था।

यह बतलाने की आवश्यकता नहीं, कि राक्षसलोग प्राचीन भारत की एक जाति विशेष ही थे। वे भी अन्य लोगों की तरह से थे। रावण आदि राक्षसों का वेद, शास्त्र आदि आर्य साहित्य में कुशल होना हम अपने इतिहास के प्रथम खण्ड में प्रदर्शित कर चुके हैं। अभिप्राय यह है कि राक्षस लोग भारतीय ही थे, वे अन्य भारतीयों की तरह सभ्यता आदि की दृष्टि से बहुत उन्नत थे। भौतिक सभ्यता की दृष्टि से तो वे अन्य भारतीयों की अपेक्षा भी आगे बढ़े हुवे थे। यदि उन का नेता अमेरिका वा पाताल देश में जाने के लिये राजनीतिक कारणों से बाधित हुवा हो, और वहां उस के द्वारा सभ्यता का प्रचार हुवा हो, तो इस में आश्चर्य ही क्या है?

'क्वेटसालकटल' या 'सालकटंकट' के फिर पातालदेश वा अमेरिका से लौट कर आने की कथा भी रामायण में लिखी है। रामायण के अनुसार—

"बहुत समय तक विष्णु के भय से डरा हुवा सुमाली पातालदेश में विचरण करता रहा। इसके पश्चात् वह लौट आया और पुत्रों पौत्रों के साथ

१. 'एवं ते राक्षसा राम हरिणा कमलेक्षण।
बहुशः संयुगे भग्ना हतप्रवर नायकाः॥ २१॥
अशक्नुवन्तस्ते विष्णुं प्रतियोद्धुं बलार्दिताः।
त्यक्त्वा लङ्कां गता वस्तुं पातालं सहपत्नयः॥ २२॥
सुमालिनं समासाद्य राक्षसं रघुसत्तम।
स्थिताः प्रख्यातवीर्यास्ते वंशे सालकटंकटे॥ २३॥
ये त्वया निहतास्ते तु पौलस्त्या नाम राक्षसाः।
सुमाली माल्यवान् माली ये च तेषां पुरः सराः।
सर्व एते महाभागा रावणाद्बलवत्तराः॥ २४॥
वाल्मीकीरामायण, उत्तर काण्ड, अष्टम सर्ग,

लङ्का में निवास करने लगा ।"[1]

इस विषय को बहुत विस्तार से लिखने की आवश्यकता नहीं है । इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय और अमेरिकन इतिवृत्त एक दूसरे से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं । भारत का 'सालकटंकट' ही अमेरिका का 'केटसालकटल' है ।

इस प्रकार इस विवेचना के पश्चात् यह परिणाम निकालना असङ्गत नहीं है कि अमेरिकन सभ्यता का मूल भारतवर्ष ही है । ऐतिहासिक प्रेस्कोट अमेरिकन सभ्यता का मूल ढूंढने का प्रयत्न करते हुवे इस परिणाम पर पहुंचे हैं—

"The Reader of the preceding pages may perhaps acquiesce in the general conclusions–not startling by their novelty.

First, that the coincidences are sufficiently strong to authorize a belief that the civilization of Anahuae was in some degree influenced by that of Eastern Asia.

And, secondly, that the discrepancies are such as to carry back the communication to a very remote period ; so re.note that this foreign influence has been too feeble to interfere materially with the growth of what may be regarded in its essential features as a peculiar and indigenous civilization."[2]

हम श्रीयुत प्रेस्कोट के इस उपसंहार से सामान्यतया सहमत होते हुवे केवल इतना और कहना चाहते हैं, कि पूर्वीय एशिया नहीं–अपितु भारतीय सभ्यता ने प्राचीन अमेरिकन सभ्यता पर प्रभाव डाला था । निस्सन्देह, पूर्वीय एशिया का भी अमेरिका के साथ सम्बन्ध था, और इस सम्बन्ध में भी अमेरिका के धर्म और सभ्यता पर बहुत प्रभाव डाला, परन्तु पूर्वीय एशिया की सभ्यता और धर्म का आदिस्रोत भी तो भारतवर्ष ही है । 'सालकटंकट' द्वारा भारत की जो सभ्यता अमेरिका पहुंची, उसका ही सबसे अधिक प्रभाव हुवा ।

---

१. 'चिरात्सुमाली व्यचरद्रसातलं स राक्षसो विष्णुभयार्दितस्तदा ।
पुत्रैश्च पौत्रैश्च समन्वितो बली ततस्तु लङ्कामवसद्धनेश्वरः ॥
रामायण उत्तरकाण्ड अष्टमसर्ग श्लो. २९.
तथा उत्तरकाण्ड का नवमसर्ग देखिये.

2. Prescott. Canquest of Mexico. P. 598.

* नौवाँ अध्याय *

भारत और अफ्रीका.
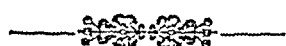
अफ्रीका के मूल निवासी आजकल नितान्त असभ्यता की दशा में पाए जाते हैं। लोग उन्हें असभ्य, वर्बर, और जंगली कहते हैं। वे प्रायः नग्नावस्था में रहते हैं, किसी किसी प्रान्त में तो पुरुष और स्त्रियें बिल्कुल नंगी रहती हैं, वे अपनी लज्जा बचाने के लिए केवल विशेष अङ्गों के सन्मुख एक पत्ता लटका कर ही सन्तुष्ट हो लेते हैं। उन लोगों में कोई लिपि नहीं है। सभ्यता की साधारण वस्तुओं से भी वे कोसों परे हैं। इसी कारण क्रमशः उनकी जन-संख्या घटती चली जारही है।

परन्तु इन असभ्य नीग्रो लोगों में भी कुछ ऐसे विशेष गुण वैयक्तिक और सामूहिक रूप से पाये जाते हैं कि उन्हें देखकर सभ्यताभिमानी लोगों को भी अत्यन्त आश्चर्य होता है। इन नीग्रो लोगों में कुछ ऐसी प्रथाएँ हैं जिन्हें देख कर यह प्रतीत होने लगता है कि ये असभ्य लोग भी एक समय संसार की किसी उच्च सभ्यता के सम्पर्क में रहे होंगे। स्वयं नीग्रो लोगों का यही विश्वास है कि प्राचीनतम काल में उनकी जाति बहुत सी ऐसी बातों को जानती थी जिन्हें कि वे लोग आजकल नहीं जानते। हमारा विचार है कि किसी सुदूर प्राचीन काल में हिमालय के निकट से ही वर्तमान नीग्रो लोगों के पूर्वज क्रमशः ईरान और अरब को पार कर अफ्रीका में प्रवेश कर पाये होंगे। अथवा कुछ प्राचीन भारतीय आर्यों ने इस देश में पहुंच कर इन लोगों को सभ्य बनाने का यत्न किया होगा। बाद में प्राचीन शिक्षाओं को भूल कर नीग्रो जाति क्रमशः वर्तमान दशा को पहुंच गई। आज इस सम्बन्ध में कोई भी ऐतिहासिक प्रमाण हमें प्राप्त नहीं होता, अतः निश्चित स्थापना करना सर्वथा असम्भव ही होगा। परन्तु भारतीय और नीग्रो सभ्यता की परीक्षा करके हम यह स्थापना पूर्णतया निश्चित रूप से कर सकते हैं कि ये दोनों सभ्यताएँ एक ही श्रेणी की हैं, और नीग्रो सभ्यता का स्रोत भारतीय सभ्यता है। इस सम्बन्ध में संक्षेप से कुछ प्रमाण और युक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जाँयगी।

संस्कारों की प्रथा— भारतीय सभ्यतामें मनुष्य जीवन पर संस्कारों का बहुत बड़ा प्रभाव स्वीकार किया गया है। वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन में आने वाले सब छोटे बड़े परिवर्तनों का प्रारम्भ संस्कारों से ही होना चाहिए, इसी सिद्धान्त के आधार पर द्विजों के लिये १६ संस्कारों का विधान किया गया है। इन आवश्यक संस्करों के अतिरिक्त समय २ पर आवश्यकनुसार अन्य संस्कारों के लिए भी निर्देश किया गया है। अगर कभी नया घर बनाना हो तो उसके लिए भी संस्कार करना आवश्यक है।

वर्तमान अफ्रीकन लोगों में जो प्रथाएँ विकृतरूप में आजकल प्राप्त होती हैं उनके अनुसार एक अफ्रीकन व्यक्ति के जीवन में भी संस्कारों की अत्यन्त महत्ता है। वहाँ बालक के जन्म से लेकर उसके पूर्ण जीवन में समय समय पर अनेक समारोह किये जाते हैं। इन में से बहुत से समारोह भारतीय संस्कारों के विकृत और परिवर्तित रूप ही प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिये यहाँ कुछ संस्कारों का निर्देश किया जायगा।

जातकर्म— नीग्रो लोगों में बालक के उत्पन्न होते ही एक साधारण सा परिवारिक उत्सव किया जाता है। दाई बालक की नाभी की नाड़ी को काट डालती है; और उसके अङ्गों को अपनी रुचि के अनुसार ढालने का प्रयत्न करती है। इसके बाद आशीर्वाद सम्बन्धी कुछ प्राचीन गीत बोल कर उस पर थोड़ा सा पानी छिड़का जाता है।[1]

अफ्रीका के एक ट्राइब में यह प्रथा है कि जब पहला बालक पैदा होता है तब एक विशेष उत्सव किया जाता है। एक स्थान पर चारों ओर चूना डाला जाता है। बालक के उत्पन्न होने पर आग जलाई जाती है और बालक को शीघ्रता से उसके धूएँ में से निकाला जाता है। इस समय प्रार्थना के शब्द भी बोले जाते हैं।[2]

वैदिक जातकर्म संस्कार भी बालक के उत्पन्न होते ही किये जाने वाला एक परिवारिक संस्कार है।

अन्न प्राशन— अफ्रीकन बालक को तब तक स्थूल भोजन करने को नहीं दिया जाता, जब तक कि किसी वस्तु को स्वयं पकड़ कर उठा सकने की

---

1. The Life of a South African Tribe. Vol. I. P. 36.
2. Customs of the World. Vol. I, P. 6.

शक्ति बालक में नहीं आजाती। कुछ लोग इस समय भी बालक को स्थूल भोजन देना पसन्द नहीं करते; वे इस प्रकार का भोजन उसे तभी देते हैं जब कि वह स्वयं घर से बाहर निकलने लायक होजाता है। इस समय भी एक साधारण परिवारिक उत्सव किया जाता है।[1]

मुण्डन— जब नीग्रो बालक कुछ बड़ा होजाता है, उसके प्रथम बार बाल काटे जाते हैं। बाल काटने से पूर्व बालक की माता उसके माथे पर अपने दूध की कुछ बूंदे डालती है, तब स्वयं अपने हाथों से उसके बाल काटती है। इन बालों को जंगल की घनी घास में फेंक दिया जाता है[2]— कई प्रान्तों में मुण्डन करते हुए सिर पर बालों का एक गुच्छा (चोटी) छोड़ दिया जाता है।[3]

मेखला— वैदिक प्रथाओं के अनुसार बालक को बहुत छोटी अवस्था में ही मेखला धारण कराई जाती थी। इस मेखला का वर्णन अथर्व वेद के ब्रह्मचर्य सूक्त में भी आता है। अफ्रीका में बालक को मेखला धारण कराने की प्रथा है। जब बालक घुटनों के बल चलने लायक होजाता है तब उसकी कमर में रूई का एक तागा बाँध दिया जाता है; वहाँ इस तागे को 'पुरी' कहते हैं। यह प्रायः एक वर्ष की अवस्था में बाँधा जाता है। जब तक बालक को 'पुरी' धारण नहीं कराई जाती तब तक पति पत्नि के लिए समागम करना अत्यन्त निन्दनीय समझा जाता है। बालक जब तक तीन वर्ष की आयु का नहीं होजाता तब तक माता ही उसका पालन करती है। इस समय तक सन्तान पैदा करना अच्छा नहीं समझा जाता। इस प्रकार दो बालकों के जन्म में प्रायः कम से कम तीन वर्ष का अन्तर अवश्य रक्खा जाता है।[4]

यह सब प्रथाएं पूरी तरह भारतीय प्रथाओं से मेल खाती हैं।

वेदारम्भ— वैदिक प्रथा के अनुसार शिक्षा प्रारम्भ करने पर यह संस्कार करना चाहिये। अफ्रीका में भी कुछ ऐसे पेशे हैं जिन्हें प्रारम्भ करते हुए एक विशेष संस्कार करवाना होता है। इन में से एक पेशा गड़रिये का है। इन बालकों को आबादी से दूर रखा जाता है; इनका बस्ती में आना मना होता है। गांव की स्त्रियें भोजन लेकर इन्हें उसी स्थान पर दे आती हैं।

---

1. Customs of the World. Vol. I. P. 47.
2. Ibid P. 12.
3. Ibid P. 50.
4. Ibid P. 55. & 59.

जिस दिन यह संस्कार किया जाता है उस दिन सड़क पर कुछ विशेष सुगन्धित लकड़ियों द्वारा आग जलाई जाती है। बालकों को जब इस की गन्ध आती है तब वे वहां आते हैं और उस आग के ऊपर से कूद जाते हैं। इस दिन उन के बाल भी काटे जाते हैं। इसी प्रकार अन्य भी बहुत से कार्य किये जाते हैं।[1]

ये सब बातें भारतीय वेदारम्भ संस्कार से बहुत मिलती हैं। इस प्रथा में तो यज्ञाग्नि का विकृत रूप भी आज तक पाया जाता है। आग पर से कूदना सम्भवतः यज्ञ कुण्ड के चारों ओर परिक्रमा करने का विकृत रूप हो।

इन बालकों के नित्य कर्मों में से एक कार्य अग्नि के चारों ओर बैठना भी है, शायद यह प्रथा दैनिक अग्निहोत्र का विकृत रूप है।

मृतक संस्कार— अफ्रीकन लोगों में यद्यपि मुरदे को गाड़ने की ही प्रथा है तथापि इसी अवसर पर किये जाने वाले एक कार्य से प्रतीत होता है कि सम्भवतः किसी प्राचीन काल में ये लोग शव को जलाया करते होंगे। आज कल जब शव को गाड़ा जाता है तब उस के निकट ही अग्नि भी प्रज्वलित की जाती है। यह अग्नि शोक का चिन्ह समझी जाती है। जब किसी बड़े आदमी की मृत्यु होती है तब एक साल तक भी इस आग को प्रज्वलित रखा जाता है।[2]

इसी प्रकार बहुत से अन्य नीग्रो त्यौहारों की भी भारतीय संस्कारों से तुलना की जा सकती है। परन्तु हमारी स्थापना पुष्ट करने के लिये इतने ही प्रमाण पर्याप्त हैं।

चन्द्र दर्शन— अफ्रीकन लोगों में बालक को पूर्णचन्द्र के दर्शन कराने की प्रथा है।[3] कई प्रान्तों में यह प्रथा है कि माता बालक के सन्मुख एक जलती हुई लकड़ी लेकर उसे चाँद की ओर फेंकती है और कहती है—"यह तुम्हारा चाँद है।"[4]

भारतवर्ष में भी बालकों को चन्द्र के दर्शन कराने की प्राचीन प्रथा है।

---

1. The Life of a South African Tribe. Vol. I. P. 15.11.
2. Ibid. P. 341
3. Customs of the Warld. Vol. 1. P. 1.
4. The Life of a South African Tribe, Vol. I. Page 51.

निरामिष भोजन— भारतीय आर्य शाकाहारी होते थे; वे मांस भक्षण को घृणित कार्य समझते थे। दक्षिण अफ्रीका के वन्तू नामक प्रान्त में लोग प्रायः अभी तक निरामिषभोजी ही हैं; वे मांसभक्षण को बुरा समझते हैं। उन में कम लोग ही कभी कभी मांस खाते हैं।[1]

अग्नि पूजा— यज्ञ विकृत होकर यहां अग्नि पूजा के रूप में परिवर्तित हो गए हैं। अग्नि को ये लोग पवित्र समझते हैं। भारतीय मन्तव्यों के अनुसार भी अग्नि पावक है। विशेष कर "न्त्योफा" वृक्ष की लकड़ी के द्वारा प्रज्वलित की हुई अग्नि बहुत पवित्र समझी जाती है। त्योहारों में इस लकड़ी की आग को काम में लाया जाता है।[2]

ब्रह्मचर्य— वेदों में ब्रह्मचर्य की बड़ी महिमा गाई गई है। अथर्ववेद में कहा है—"ब्रह्मचर्य से देवता लोग मृत्यु को भी जीत लेते हैं।"[3] प्राचीन भारत में ब्रह्मचर्य साधन के लिये बालकों पर विशेष ध्यान दिया जाता था। जिस से कि वे सुगमता से ब्रह्मचर्य का पालन कर सकें। इस के लिये उन्हें तपस्या, सादगी, सात्विक भोजन आदि का अभ्यास कराया जाता था। अफ्रीका के लोगों में आज भी ब्रह्मचर्य की महिमा उसी प्रकार गाई जाती है। पूर्व अफ्रीका के नीग्रो लोगों की एक कहावत का अर्थ है— "मृत्यु तुम्हारे हाथ में है, अगर दिन रात तुम संयम पूर्वक रहो तो यह तुम्हारी आज्ञा मानेगी।"[4]

इस ब्रह्मचर्य व्रत की साधना के लिये अफ्रीका के कुछ प्रान्तों में नीग्रो लोग विशेष यत्न करते हैं। वे अपने बालकों, को कुछ बड़ी आयु हो जाने पर आबादी से दूर रखते हैं। उन्हें पेड़ों की छालों के कपड़े पहनने को देते हैं।[5] जिस प्रकार कि प्राचीन भारत में ब्रह्मचारियों को वल्कल वस्त्र पहिनने को दिये जाते थे। ये कपड़े कुछ विशेष पवित्र वृक्षों की छाल से बने होते हैं।

एक प्रान्त में प्रथा है कि बालकों को आबादी से दूर किसी के निरीक्षण में रखा जाता है। उन्हें नमकीन पानी से सिर धोने की आज्ञा नहीं होती क्यों

---

1. The Life of South African Tribe, Vol ii. P. 32
2. " " " ii. P. 32
३. ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत् ॥ अथर्व० ब्रह्मचर्य सूक्त
4. To Khastum. by Rev. G. Lloyd.
5. " " "

कि वहां साबुन का काम नमकीन पानी से ही लिया जाता है । उन्हें अपने मां बाप से भी नहीं मिलने दिया जाता। वे किसी स्त्री को देख नहीं सकते । जब ये बालक अवधि पूरी कर के घरों को वापिस आते हैं तब एक विशेष त्योहार किया जाता है ।[१]

विवाह— अफ्रीकन लोगों के विवाह के सम्बन्ध की बहुत सी बातें भारतीय विवाहों से समानता लिए हुवे हैं। थोङ्ग प्रान्त में आदर्श विवाह की अवस्था २५ बरस मानी जाती है । उनका कथन है— "प्राचीनकाल में नौजवान निश्चिन्तता और प्रसन्नता से आयु व्यतीत करते थे। वे २५ बरस तक नाच आदि में सम्मिलित न होते थे। कोई लड़का २५ बरस की आयु से पूर्व विवाह न करता था।"[२] वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार भी विवाह की आयु २५ बरस ही है।

अफ्रीकन लोगों में एक व्यक्ति के गोत्र से समीप सम्बन्ध रखने वाले आठ गोत्रों में परस्पर विवाह नहीं हो सकता। विवाह के लिए गांव और समूह (Tribe) का बन्धन नहीं है।[३]

ये लोग विवाह को एक अत्यावश्यक और महत्वपूर्ण कार्य मानते हैं। बिना विवाह के सन्तान उत्पन्न करना घोर पाप समझा जाता है। यदि किसी कुमारी बालिका से सन्तान उत्पन्न हो जाय तो उसे भयंकर दण्ड दिया जाता है। कई स्थानों पर तो इस अपराध पर मृत्यु दण्ड भी दिया जाता है।[४]

विवाह से पूर्व एक विशेष संस्कार किया जाता है, जिस में सब आस पास के लोग मिल कर सहभोज करते हैं। जिस व्यक्ति का विवाह होना होता है, वह धर्माचार्य के पास जाकर आशीर्वाद लेता है।[५] यह प्रथा भारतीय समावर्तन संस्कार से मिलती है।

ये सब प्रथाएं भारतीय विवाह सम्बन्धी सिद्धान्तों से मिलती हैं।

यज्ञाग्नि की साक्षी— प्राचीन भारत में यज्ञ एक पवित्र कार्य समझा जाता था, अतः जब ब्राह्मण लोगों से कभी न्याय कराया जाता था

1. The Customs of the World. vol. II. P. 17.
2. The Life of a South African Tribe Vol. ii. P. 100.
3. Ibid P. 246.
4. Customs of the World. Vol. 1. P. 10.
5. To Khastum. by Rev. G. Llyd.

तब वे यज्ञाग्नि के सन्मुख बैठ कर ही उस मामले पर विचार किया करते थे। अफ्रीका में भी इस से मिलती जुलती प्रथा ही प्रचलित है। वहां जब किसी मामले का निर्णय करना होता है तब एक विशेष स्थान पर गांव के लोग और उन के मुखिया एकत्र होते हैं। इस शुद्ध स्थान के मध्य में एक विशेष लकड़ी की पवित्र अग्नि जलती रहती है। इस के चारों ओर बैठ कर ही किसी मामले का निर्णय किया जाता है।[1]

शिखा— प्रारम्भ में उन बालक के केश काटे जाते हैं तब उस पर बालों का एक गुच्छा छोड़ दिया जाता है। परन्तु पीछे से बड़े होने पर प्रायः लोग इस गुच्छे को भी काट देते हैं। सम्पूर्ण अफ्रीका में किसूमू प्रान्त के नीग्रो लोगों का एक समूह अपने सिर पर सम्पूर्ण जीवन के लिए बालों की चोटी (शिखा) रखते हैं। वे इसे सुन्दरता के लिये रखे हुवे बाल ही कहते हैं; परन्तु सुन्दरता के लिये सिर के मध्य में बालों की चोटी छोड़ने की आवश्यकता नहीं थी। ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्वकाल में सम्पूर्ण अफ्रीका के लोग शिखा रखा करते होंगे परन्तु पीछे से मुसलमानी प्रभाव के कारण अन्य सब समूहों ने चोटी कटवा डाली; केवल इन लोगों की चोटी ही बाकी बची है।

भिक्षा—प्राचीन भारत में गुरुकुलों के विद्यार्थी स्वयं भिक्षा मांग कर उसी के द्वारा अपना निर्वाह करते थे। ब्रह्मचारी जिस घर के द्वार पर "माता, भिक्षा दो!" का नाद करते थे; उस घर की गृहपत्नि अपने अच्छे से अच्छे भोजन के साथ उस याचना का उत्तर देती थी। अफ्रीकन मसाई लोगों में कुछ विकृत रूप में आज भी यह प्रथा पाई जाती है। मसाई नौजवान नवयौवन काल में घर छोड़ कर चल देते हैं। वे जिस गाँव में जाते हैं वहाँ की स्त्रियाँ पूरे यत्न से उनका आतिथ्य करती हैं। अगर उन से पूछा जाय कि तुम इन नौजवानों को इतने प्रेम से क्यों भोजन देती हो, तो वे उत्तर देती हैं कि हमारा पुत्र भी किसी दूसरे गांव में इसी प्रकार भिक्षा मांग रहा होगा। इस देशाटन काल में मसाई नौजवान पूर्णरूप से संयम का जीवन व्यतीत करते हैं।

इसी प्रकार इन असभ्य लोगों में भी अतिथि सत्कार आदि कुछ अन्य उत्तम गुण भी पूर्ण रूप से पाते जाते हैं।

---

1. To Khastum, by Rev. G. Lloyd.

प्रार्थनाएं-किसूमू से लगभग २० मील दूर एक 'नन्दी' पहाड़ी है। यहां के लोगों में तलाक की प्रथा भी नहीं है, ये लोग केवल एक बात पर ही तलाक करते हैं— अगर पत्नि सर्वथा वन्ध्या हो। इस पर्वत पर एक मन्दिर है। इस में नीग्रो लोग अपने संस्कार किया करते हैं। इस अवसर पर एक प्रार्थना की जाती है, जिसका अर्थ है—"ईश्वर, हमें स्वास्थ्य दो, हमें दूध दो, हमें शक्ति दो, हमें उत्तम अन्न दो, हमें सब कुछ उत्तम दो, हमारे बच्चों और पशुओं की रक्षा करो।"[1] इस का भाव एक वेद मन्त्र के इस अर्थ से बहुत कुछ मिलता है—"हे अन्नों के स्वामी ! हमें अन्न दो, वह अन्न उत्तम और शक्ति उत्पन्न करने वाला हो, हमें सामर्थ्य दो, अपने आशीर्वाद से हमारे परिवार और पशुओं की रक्षा करो।"[2]

अफ्रीकन लोगों के सम्बन्ध में केवल हमारी ही यह धारणा नहीं है। स्वयं अफ्रीकन लोगों का विश्वास है कि आज से हज़ारों वर्ष पूर्व हमारे पूर्वज बहुत कुछ जानते थे; वे बहुत सुखी और सम्पन्न थे; उनकी बातों को आज हम भूल चूके हैं।[3]

इस प्रकार इन उपर्युक्त प्रमाणों से भारत और अफ्रीका प्राचीन सम्बन्ध भली प्रकार पुष्ट होता है।

---

१. असिस कोनेच सपोन.
असिस कोनेच चेको.
असिस कोनेच उइन्दो.
असिस कोनेच पाक
असिस कोनेच को तुकल नेमिई.
असिस तुक-व-इच लकोक अक तुका.

२. अन्नपते अन्नस्य नोदेहि अनमीवस्य शुष्मणः,
प्रप्रदातारं तारिश उर्जन्नो देहिद्विपदे चतुष्पदे ॥

3. The Life of South African Tribe. vol. II. P. 409.

* दसवाँ अध्याय *

भारत और मिश्र.
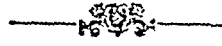
अर्वाचीन पाश्चात्य पुरातत्व वेत्ताओं के लिये मिश्र संसार के अन्य सब देशों से अधिक महत्वपूर्ण देश है। मिश्र में हज़ारों वर्षों के पुराने जो अवशेष उपलब्ध हुए हैं वे अत्यन्त विस्मयजनक हैं। संसार के यात्री इस गौरवपूर्ण देश में जाकर इसकी अवशिष्ट प्राचीन स्मृतियों को देखकर सम्मान और कौतुहल के भावों से भर जाते है। इस देश के आज से हज़ारों वर्ष पूर्व बने हुए पौने पाँच सौ फीट ऊँचे पिरामिड सचमुच आश्चर्य की वस्तुएँ हैं। मिश्र में ऐसी अनेक लाशें पाई गई हैं जिनकी खाल अभी तक सुरक्षित रूप से उनके पिञ्जर पर जड़ी हुई है ; अनुमान है कि ये लाशें कम से कम ४ हज़ार वर्ष पुरानी हैं। इन प्राचीन अवशेषों को देखकर इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं रहता कि एक समय मिश्र देश की सभ्यता बहुत उन्नत हो चुकी होगी।

उस काल में जबकि मिश्र सभ्यता की उन्नत दशा में था, भारतवर्ष संसार की सभ्यता का गुरु था। उन दिनों संसार भर में भारत और मिश्र इन दोनों देशों का भाग्य सूर्य्य प्रचण्ड तीक्ष्णता से चमक रहा था। उस समय तक पश्चिम का यूनान देश भी उन्नत अवस्था प्राप्त नहीं कर सका था।

पुरातत्त्व वेत्ताओं के सन्मुख यह एक समस्या है कि मिश्र देश की सभ्यता का विकास कहाँ से हुवा। हमारी यह दृढ़ स्थापना है कि मिश्र की सभ्यता का विकास वैदिक सभ्यता के आधार पर ही हुवा है। भारतवर्ष को यह गौरव प्राप्त है कि वह एक प्राचीन सभ्यतम देश की सभ्यता का भी गुरु है। अपनी यह स्थापना पुष्ट करने के लिये कुछ प्रमाण हम यहां उपस्थित करेंगे।

प्रलय और उत्पत्ति— मिश्र के प्राचीन साहित्य में प्रलय का जो वर्णन किया गया है वह वैदिक साहित्य के प्रलय के वर्णन से बहुत मिलता है। "बज" का कथन है— "मिश्री साहित्य के अनुसार एक समय था जब न यह आकाश था, न यह पृथिवी थी ; तब सब ओर केवल अनन्त पानी ही पानी था, यह गाढ़तम अन्धकार से आवेष्टित था। यह प्रारम्भिक जल बहुत समय तक इसी अवस्था में रहा। इसी जल में सब वस्तुओं के मूलतत्त्व विद्य-

मान थे, जिन के द्वारा बाद में सब वस्तुओं तथा इस संसार की उत्पत्ति हुई। अन्त में इस प्रारम्भिक जल ने उत्पत्ति की इच्छा अनुभव की। उत्पत्ति का दूसरा कार्य कीटाणु या अण्डे की रचना था। इस अण्डे से "रा" (सूर्य्यदेव) की उत्पत्ति हुई। इसकी चमकती हुई आकृति में सर्वव्यापक की दैवीय शक्ति विद्यमान थी।"[1]

वेद में सृष्टि उत्पत्ति और प्रलय के सम्बन्ध में कहा है— "तब न सत था न असत, न वायु था न यह आकाश। तब सब ओर गाढ़तम अन्धकार था; ये सब वस्तुएँ इसी गाढ़तम अन्धकार में प्रच्छन्न थीं। इसी अन्धकार में सब कुछ बिना किसी पहिचान के व्याप्त था। बाद में "इच्छा" की उत्पत्ति हुई। यह इच्छा ही उत्पत्ति का प्रारम्भिक मूल है।"[२] "तब केवल मात्र निस्तब्ध जल ही विद्यमान था। इस जल में सब वस्तुएँ अणु रूप से विद्यमान थी। वह सर्वशक्तिमान इस जल के अन्दर, बाहर सब कहीं व्याप्त था।"[३]

इन दोनों वर्णनों में आश्चर्यजनक समानता है। प्रसङ्ग वश यह कह देना भी अनुचित न होगा कि बहुत से वर्त्तमान वैज्ञानिकों का भी यही विश्वास है कि संसार की उत्पत्ति की प्रथमावस्था जल ही थी।

मात (Maat) और ऋत — मिश्री लोगों का विश्वास है— "मात, जो कि नियम, व्यवस्था, क्रम आदि की देवी है, सूर्य को प्रतिदिन नियत समय पर पैदा करती और नियत समय पर अस्त करती है, इसमें कभी बाधा उपस्थित नहीं होती।"[४] यह मात वास्तव में ईश्वर की एक शक्ति है। श्रीयुत वेलिस के कथनानुसार "वैदिक साहित्य में ऋत ईश्वर की वह शक्ति है जिसके द्वारा ब्रह्माण्ड में व्यवस्था कायम है।"[५] एक वेद मन्त्र में आता है कि ईश्वर ने सृष्टि के प्रारम्भ में ऋत और सत्य को पैदा किया।[६] वहाँ ऋत का अभिप्राय संसार के नियमों की स्थिरता और व्यवस्था ही है।

---

1. Egiptian Religion. by Bagde.
२. तम आसीत्तमसा गूढमग्रे अप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ॥ ३ ॥
   कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ॥ ४ ॥ ऋग्वेद १० । ११९.
३. आपो अग्रे विश्वमावन् गर्भं दधाना अमृता ऋतज्ञाः ।
   यासु देवेष्वधि देव आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ६ ॥ अथर्व. ४ । २.
4. Egiptian Relegion. Badge.
5. The Cosmology of the Rig Ved. by Wallis.
६. ऋतञ्च सत्यञ्चाभिद्धात्तपसः" आदि। ऋग्वेद. दशम मण्डल.

प्राचीन मिश्री साहित्य और वेद— निम्नलिखित तालिका द्वारा प्राचीन मिश्री साहित्य में वैदिक ऋचाओं की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होजायगी—

मिश्री [1]	वैदिक
१. जब यहाँ कुछ नहीं था, तब वह अकेला यहाँ उपस्थित था।	१. उससे पूर्व यहाँ और कुछ भी नहीं था।[2]
२. ईश्वर एक है। उस अकेले ने ही इस सम्पूर्ण जगत की उत्पत्ति की है।	२. वह पहले अकेला ही था, और कोई वस्तु नहीं थी। उस अकेले सूक्ष्म से यह विद्यमान जगत उत्पन्न हुवा।[3]
३. ईश्वर की सत्ता व्यक्त नहीं होती, कोई मनुष्य उसके स्वरूप को नहीं जानता।	३. वह सब भूतों में छिपकर प्रकाशित हो रहा है।[4]
४. वह अपने प्राणियों में स्वयं एक रहस्य है।	४. वह देवों में विचित्र हैं।[5]
५. ईश्वर सत्य स्वरूप है, वह सत्य द्वारा ही रहता है।	५. पूर्ण सत्य द्वारा ही वह सब कहाँ व्याप्त है।[5]
६. ईश्वर ही जीवन है। उसी के द्वारा मनुष्य जीता है।	६. प्राण ऊपर विराजमान रहता है, उसी प्राण द्वारा सब प्राणी जीवित हैं।[6]
७. ईश्वर देव और देवियों का पिता है।	७. ईश्वर के उच्छिष्ट (यज्ञ शेष) पर ही सब देव आश्रित हैं।[7]
८. आकाश उसके सिर पर आश्रित है, यह पृथिवी उसके पैरों का सहारा है।	८. द्युलोक उस विराट् ब्रह्म का शिर स्थानीय है और यह पृथिवी उसके पादस्थानीय।[8]

१. ये प्रमाण Badge के Egiptian Religion से उद्धृत किये गये हैं।
२. तस्माद्धयनन्य परः किञ्चनास। छान्दोग्य.
३. सोम्येदमग्रआसीदमेकमेवाद्वितीयं ; तस्मादसतः सज्जायत। छान्दोग्य.
४. स सर्वेषु भूतेषु गूढात्मानं प्रकाशते। कठ०
५. चित्रं देवानाम्। वेद.
६. सत्येनोर्ध्वनयति। अथर्ववेद.
७. प्राणोर्ध्वमेति अजानात्, प्राणेन जातानि जीवन्ति। छान्दोग्य उपनिषद्.
८. उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देव उपाश्रिताः। अथर्व०
९. शीर्ष्णो द्यौ समवर्तत पद्भ्यः भूमिः। ऋग्वेद.

वर्ण व्यवस्था— पादरी रूसेल का कथन है कि भारतवर्ष और मिश्र दोनों देशों में एक समानता बहुत ही स्पष्ट रूप में पाई जाती है ; यह समानता वर्णव्यवस्था की है । उनका कथन है— "दोनों देशों के निवासी विविध श्रेणियों में बटे हुए हैं ; इन सब श्रेणियों के अधिकार, सम्मान, स्थिति आदि एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। ये वर्ण अपरिवर्तनीय हैं, पीढ़ियों तक जाने वाले हैं। हिन्दुओं का विश्वास है कि ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से, क्षत्रिय बाहुओं से, वैश्य जंघा से और शूद्र पैरों से पैदा हुए । यूनानी ऐतिहासिक हैराडोटस के अनुसार मिश्री लोग भी प्राचीन काल में इसी प्रकार चार वर्णों को स्वीकार करते थे। उसने स्वयं भी समाज के चार विभाग किये हैं।......पीछे से समाज में तीन वर्ण सम्माननीय माने जाने लगे— पुरोहित तथा धर्माचार्य, सैनिक लोग और शिल्पी तथा व्यापारी। यह स्पष्ट ही है कि मज़दूर आदि इन तीन वर्णों में अन्तर्गत नहीं होते, उनका एक अलग चौथा वर्ण मानना ही होगा।"[1] भारतवर्ष में भी पीछे से समाज में केवल द्विज-ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य-ही सम्मान योग्य समझे जाने लगे ; शूद्रों को घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा।

धीरे धीरे मिश्र में वर्णव्यवस्था के बन्धन बहुत कठोर होगये थे। यूनानी ऐतिहासिकों का कथन है— "मिश्र में एक पेशे के लोग दूसरे पेशे में शामिल नहीं किए जाते थे। उनमें समाज के मुख्यतया तीन भाग थे— पुरोहित, सैनिक, और किसान। ये सब लोग भिन्न २ स्थानों पर रहते थे। इन्हें भूमि समान रूप से बटी हुई थी।"[2] पीछे से भारतवर्ष में भी वर्णव्यवस्था के बन्धन इतने ही कड़े हो गये थे।

सामाजिक और पारिवारिक जीवन— मिश्री तथा भारतीय परिवारों के रीतिरिवाज और संगठन परस्पर बहुत मिलते हैं। मिश्र निवासियों के साधारण जीवन की बहुत सी छोटी छोटी बातें भारतीयों के जीवन से बहुत कुछ मिलती हैं। इनमें से किसी अकेली बात का कोई बड़ा महत्व नहीं है, परन्तु जब हम ऐसी छोटी छोटी अनेक बातों में अत्यन्त सादृश्य देखते हैं तब दोनों देशों के पारस्परिक सम्बन्ध की सत्ता से इन्कार नहीं किया जा सकता। श्रीयुत पेट्री की "सोशल लाइफ़ इन एन्शएट ईजिप्ट" नामक पुस्तक के आधार पर मिश्री जीवन से सम्बन्ध रखने वाली कुछ बातें यहाँ उद्धृत की

---

1. Ancient and Modern Egipt. Introduction by Rev. Michael Russel. P. 24–25.
2 Social Life in Ancient Egipt. by W. M. F. Petrie. P. 11. & 12.

जाती हैं— "पुरुष आजीविका का कार्य करते थे और स्त्रियाँ खाली समय मिलने पर चरखा चलाती थीं, कपड़े बुनती थीं और संगीत का अभ्यास करती थीं।"[1] "देवताओं को जब बलि अर्पित की जाती थी तब राजा को भी मुख्य पुरोहित के सन्मुख खड़े रहना होता था। पुरोहित कुछ विशेष प्रार्थनाएँ पढ़कर राजा के स्वास्थ्य तथा राज्य के लिए प्रार्थना करता था, अन्त में राजा की स्तुति के कुछ वाक्य भी पढ़े जाते थे।"[2] "राजा माँस भक्षण किया करता था; इस कार्य के लिए उसकी जो पशुशाला थी उसमें एक भी गाय न थी, कारण यह था कि गाय का माँस खाना पाप समझा जाता था।"[3] मिश्री लोगों के धार्मिक कर्तव्यों में से एक कर्तव्य यह भी था— "देवताओं को अन्न की बलि देने में कभी कमी मत करो।"[4] ऐसा प्रतीत होता है कि अन्न को बलि के लिए पवित्र समझा जाता होगा। पशुओं को चरागाहों से भगा देना बुरा समझा जाता था। मिश्री लोगों के पुरोहित बहुत साफ़ रहते थे; वे प्रायः पेड़ के रेशों (सन आदि) से बुने हुए कपड़े पहिनते थे। उनके वस्त्र सदैव उजले रहते थे।[5]

चार ऋषि— भारतीय लोगों का यह विश्वास है कि संसार के प्रारम्भ में जब मनुष्य सृष्टि बनी, तो उसमें सबसे पूर्व चार ऋषि पैदा हुए। इन चारों को ही ईश्वर ने एक एक वेद का ज्ञान दिया। मिश्री प्राचीन गाथाओं के अनुसार भी सृष्टि के प्रारम्भ में चार ही मनुष्यों की उत्पत्ति का वर्णन मिलता है— "सब से पूर्व यह पृथिवी चारों ओर जल से ढकी हुई थी; जब कुछ जल सूखा तो शेष जल में एक अण्डा या एक फूल पैदा हुवा, इस अण्डे से "रा" की उत्पत्ति हुई, उससे चार बालक पैदा हुए। उनके नाम केब, नट, शू, और टेफनट हैं। इन्हीं चारों से वर्त्तमान मनुष्य जाति पैदा हुई।[6] भारतीय प्राचीन पौराणिक गाथाओं के अनुसार भी ब्रह्मा की उत्पत्ति कमल पुष्प से हुई, इसी ब्रह्मा ने अग्नि, वायु आदि चारों ऋषियों को जन्म दिया। इस प्रकार दोनों गाथाओं में बहुत अधिक समानता है।

---

1. Social Life in Ancient Egipt, by Flinders Patrie. P. 27.
2. Ibid. P. 35.
3. Ibid. P. 55.
4. Ibid. P. 67.
5, Ibid. P. 1000.
6. Ancient Egipt from Records, by M. E. Monkton Jones. P. 26. और History of Ancient Egiptians, by Breasted. P. 47.

यम की तुला— भारतीय साहित्य के अनुसार यम मृत्यु का देवता है। जो आत्माएँ यह लोक छोड़कर जाती हैं, उनका वह न्याय करता है। उसके पास एक पाप और पुण्य तोलने की तराज़ू है; इसी तराज़ू के आधार पर वह आत्माओं का न्याय करता है। प्राचीन मिश्री लोग भी अपने मृत्यु देव मात (Maat) के पास एक ऐसा ही तराज़ू मानते थे जिससे वह आत्माओं के पाप पुण्य को तोल कर न्याय किया करता है।[1]

यज्ञाग्नि— भारतीय शास्त्र यज्ञाग्नि की पवित्रता प्रतिपादित करते हैं। उनके अनुसार यज्ञाग्नि में बाधा देना अनुचित है। प्राचीन मिश्री दण्ड विधान को देखने से यह प्रतीत होता है कि वे लोग भी किसी विशेष अग्नि को इतना पवित्र समझते थे कि उस के बुझाने को पाप माना जाता था। वहाँ बहुत से अपराधों को गिनाते हुए एक विशेष पवित्र आग को बुझाना भी पाप माना गया है।[2] ऐसा प्रतीत होता है कि यह, किसी विशेष अग्नि के प्रति इस प्रकार सम्मान का भाव यज्ञाग्नि का, विकृत रूप है।

सूर्यवंश— पौराणिक ब्राह्मण कथानकों के अनुसार भारतवर्ष का सर्व प्रथम पुरुष सुप्रसिद्ध स्मृतिकार मनु है। यह सत्यव्रत मनु प्रलयकारी जलप्लावन में स्वयं भगवान की कृपा से बच पाया था। इसी ने दुबारा इस पृथिवी पर मनुष्य जाति की बुनियाद डाली। यह आदि मनु सूर्य वंशी था। इसके वंशज इसी कारण सूर्यवंशी कहाये। मिश्री विश्वासों के अनुसार मिश्र का आदि पुरुष 'रा' भी सूर्यदेव का ही पुत्र था। इसने मिश्र में अपने वंश की नींव डाली।[3] जलप्लावन की कथा भी मिश्री साहित्य में पाई जाती है। मिश्री साहित्य के अनुसार 'रा' का जन्म नील नदी की भयङ्कर प्रलयकारी बाढ़ के के दिन हुवा था। मिश्री लोग उसी दिन से अपना वर्ष प्रारम्भ करते हैं।[4]

इभ और इबु— हाथी का एक संस्कृत नाम "इभ" है। प्राचीन मिश्र में हाथी दाँतको "इबु" कहा जाता था। इन दोनों शब्दों में बहुत अधिक समानता है। प्रो० लासेन (Lassen) का कथन है— "संस्कृत के 'इभ' तथा मिश्र के 'इबु' इन दोनों शब्दों में इतनी अधिक समानता है कि इन दोनों का मूल

---

1. The Teaching of Amen-em-apt. by E. A. Wallis Badge. P. 32.
2. Ibid. P. 39.
3. History of the Ancient Egiptians. by Breasted. P. 267.
4. Children of the Sun. by W. J. Perry. P. 442.

एक ही स्वीकार किये बिना कार्य नहीं चल सकता। सम्भवतः यह नाम भारतवर्ष से भारतीय हाथी दाँत के साथ ही मिश्र में पहुंचा हो।"[1]

नाग पूजा— पौराणिक कथाओं के अनुसार यह पृथिवी शेषनाग के सिर पर ठहरी हुई है। शेषनाग सर्पों का राजा है। यही मान कर भारत में शेषनाग की पूजा भी की जाती है। शेषनाग भी भारतीय देवताओं में गिने जाते हैं। इसी प्रकार प्राचीन मिश्र में एक समय यह विश्वास भी था कि यह संसार "सर्पदेव" से पैदा हुवा है। यह मान कर सर्पदेव की वहाँ पूजा भी की जाती थी।[2] यह सर्पदेव भारतीय शेषनाग के मिश्री अवतार प्रतीत होते हैं।

आदिम और अतुम— संस्कृत साहित्य में "आदिम" संसार के प्रथम पुरुष को कहते हैं। इसका अर्थ ही है— "प्रारम्भ में पैदा होने वाला।" भारतीय विश्वासों के अनुसार यह प्रथम पुरुष 'आदिम' बिना मैथुन के स्वयं पैदा हुवा। मिश्र में प्रथम उत्पन्न हुवे पुरुष को 'अतुम' कहते हैं। यह "अतुम" शब्द "आदिम" से बहुत मिलता है। यह अतुम भी स्वयं ही पैदा हुवा। अतुम कहता है— "मैं अतुम हूँ; मैंने यह आस्मान, ये प्राणी और यह दुनियाँ बनाई है। मैं ही वंशों को चलाता हूँ, मैं जीवन का स्वामी हूं, देवों को उन की अभीष्ट वस्तुएं देता हूँ।"[1]

भाषाओं में समानता—संस्कृत और मिश्री भाषा के बहुत से शब्द परस्पर बहुत मिलते हैं। ये शब्द इतने अधिक हैं कि उनकी समानता को देखकर उस बात से इन्कार किया ही नहीं जा सकता कि मिश्री भाषा का उद्भव संस्कृत भाषा से ही हुवा है। स्थानाभाव से हम बहुत कम समान शब्दों की सूची यहाँ उद्धृत करते हैं—[2]

संस्कृत			मिश्री		
शब्द		अर्थ	शब्द		अर्थ
आदि	—	आरम्भ	आत	—	जिस से आरम्भ होता है,

1. Our Past, Present and Future, by Gurudatta Vidyarthi. M. A. P. 19.
2. India in Primitive Christianity. by Lillie. P. 36.
3. Book of the Beginning. by Vol. I. by Gerald Massey. P. 145.
4. The Natural Genisis. Vol. II. by Gerald Massey P. 507-519.

संस्कृत			मिश्री		
शब्द		अर्थ	शब्द		अर्थ
अक	—	मोड़ना	अक	—	मोड़ना
अक्ष	—	आंख	अख	—	देखना
अन्ति	—	सीमा	अन्नू	—	सीमा
अन्त	—	समाप्ति, सीमा	अन्तू	—	विभाग, भूमि की सीमा
आपः	—	पानी	आप या आब—पानी		
अपूप	—	पूआ	पूप	—	रोटी
अर्क	—	धूप	रेख	—	गरमी
अर्म	—	आंख की बीमारी	रेम	—	रोना
आरुह	—	चढ़ना	अरू	—	चढ़ना
असु	—	श्वास, पानी	अश	—	गीला
आत्मा	—	आत्मा	आत्मु	—	सातवीं सृष्टि की रचयिता आत्मा
बहु	—	अधिकता	बहु	—	देना
भेक	—	मेंडक	हेका	—	मेंडक के सिर वाला देवता
कन्दू	—	वानर	कान्त	—	बन्दरी
दन्श	—	काटना	टन्श	—	काटना
दाव	—	अग्नि	देव	—	अग्नि
दिति	—	काटना	तत	—	काटना
दिव	—	आकाश	तेप	—	आकाश
कार्मर	—	लोहार	फार	—	लोहार
खन	—	खोदना	फन	—	खोदना
माता	—	माता	मत या मात—माता		
मन्यु	—	साहस	मेन	—	दृढ़ता
नाग	—	सांप	नेक	—	सांप
नर	—	मनुष्य	न्रा	—	मनुष्य
नाश	—	नाश	नशेष	—	नाश
नत	—	झुकना	नत	—	झुकना
पच	—	पकाना	पेख	—	पकाना
परि	—	चारों ओर	परि	—	चारों ओर
पूर	—	बाढ़	पूर	—	बाहर निकला

संस्कृत			मिश्री		
शब्द		अर्थ	शब्द		अर्थ
पुष्प	—	फूल	पुप	—	फूल
राज	—	राज्य	रेक	—	राज्य करना
रसना	—	जिह्वा	रस	—	जिह्वा
रथ	—	रथ	उर्त	—	रथ
सम	—	साथ	सम	—	इकट्ठे होना
शान्त	—	शान्त	स्नातम	—	शान्त
सत	—	सर्वोतम	सत	—	उत्तम
सेवा	—	पूजा	सेव	—	पूजा
शिला	—	चट्टान	सेर	—	चट्टान
स्ना	—	स्नान	सन्ता	—	स्नान
स्वप	—	आराम	सुव	—	शान्ति
श्वास	—	श्वास	सास	—	श्वास
श्वेत	—	सफेद	हृत	—	सफेद
तन	—	खींचना	तुन	—	खींचना
उरु	—	बड़ा	उरु	—	बड़ा
उषा	—	प्रातःकाल	उषा	—	प्रातःकाल
वास	—	घर	आस	—	घर

इसी प्रकार के सैंकड़ों शब्द उद्धृत किये जा सकते हैं, परन्तु हमारी स्थापना पुष्ट करने के लिए इतने उदाहरण ही पर्याप्त हैं।

आत्मा की अमरता में विश्वास—भारतीय साहित्य में आत्मा की अमरता पर जितना अधिक बल दिया गया है, उतने बल से संसार के किसी अन्य देश के साहित्य में इस का प्रतिपादन नहीं होगा। इस कारण इस बात को सिद्ध करने के लिए वैदिक साहित्य में से कोई उद्धरण देने की आवश्यकता नहीं हैं। प्राचीन मिश्री लोगों का भी आत्माकी अमरता में विश्वास था। वे आत्माको "का" (Ka) कहा करते थे। उनका विश्वास था कि मृत मनुष्य का आत्मा डूबते हुए सूर्य या 'रा' के साथ नीचे की ओर चला जाता है। मिश्र की प्राचीन पुस्तक "मृतकी की पुस्तक" द्वारा उनके परलोक सम्बन्धी विश्वास ज्ञात होते हैं। इस पुस्तक में मृतकों के लिए की जाने वाली प्रार्थनाएँ अङ्कित हैं। इस से यह भली प्रकार ज्ञात होता है कि प्राचीन मिश्री लोगों का

आत्मा की अमरता पर पूर्ण विश्वास था । साथ ही वे कर्मफल के सिद्धान्त को भी मानते थे।

एक ईश्वर में विश्वास— वेदों की शिक्षा के अनुसार ईश्वर एक है। उस की भिन्न भिन्न शक्तियों के कारण उस के अनेक नाम हैं—"वह एक ही है। विद्वान् लोग उसी एक को इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, रथ, सुपर्ण, गुरुत्मन, यम, मातरिश्वा-आदि विविध नामों से पुकारते हैं।"[1] प्रायः मिश्री लोग भी एक ईश्वर की सत्ता ही स्वीकार करते थे। उन का कथन था कि अन्य देवता उसी एक सर्व शक्तिमान ईश्वर के अङ्ग रूप ही हैं। दूसरे शब्दों में ईश्वर की विभिन्न शक्तियों के कारण उस के विभिन्न नाम हैं। इस बात की पुष्टि के लिये श्रीयुत ली पेज की पुस्तक में से मिश्री लोगों की कुछ प्रार्थनाएं उद्धृत करना ही पर्याप्त होगा। परमात्मा का कथन है-- "मैं आकाश और पृथवी का बनाने वाला हूँ। मैंने देवताओं को वह आत्मा दी है जिस से वह जीवन देते हैं। जब मैं आंख खोलता हूँ तब रोशनी हो जाती है, और जब मैं आंख बन्द करता हूँ तब अन्धेरा हो जाता है।"

"सब देवता एक बड़े स्वामी को स्वीकार करते हैं। वह बड़ा स्वामी अपनी इच्छा के अनुसार जगत का शासन करता है। वह मनुष्यों को ; वर्तमान, भविष्य और भूत को ; मिश्र निवासियों और परदेशियों को आज्ञा देता है। सूर्य मण्डल उस के आधीन है; वायु, जल, वृक्ष और औषधियां– सब उसी के शासन में हैं।"

"उसी की कृपा से हाथ काम करता है, पैर चलते हैं, आँखें देखती हैं, हृदय उत्साहित होता है, हाथ शक्तिसम्पन्न होता है और देवताओं, पुरुषों तथा अन्य प्राणियों के शरीर तथा मुख में चेष्टा भी उसी की प्रेरणा से होती है। बुद्धि और भाषा, हृदय ओर जिह्वा सब उसी के अनुग्रह के फल हैं।"

"आओ, हम उस देवता की प्रशंसा करें जिसने आकाश को ऊपर उठाया है, जो "नट" की छाती पर अपने प्रकाश मण्डल को फैलाता है, जिसने देवताओं और पुरुषों की सन्तति को पैदा किया है, जिसने सब भूमियों, सब देशों और सब महासमुद्रों को बनाया है।"

"हे सब जड़ चेतन के निर्माता ! नियम के चलाने वाले ! देवताओं के पिता ! मनुष्यों के रचयिता ! पशुओं के कारीगर ! अनाज के स्वामी ! खेत के प्राणियों के लिये भोजन तैयार करने वाले ! अद्वितीय ! एक मात्र स्वामी !

---

१. इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यस्स सुपर्णो गुरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ वेद.

देवताओं के अधिपति! अनन्त नामधारी!....इत्यादि।"

इन सब प्रार्थनाओं से यह भली प्रकार सिद्ध होजाता है कि मिश्री लोग एक सर्वशक्तिमान ईश्वर को मानने वाले थे। ये प्रार्थनाएँ ऋग्वेद के हिरण्यगर्भ सूक्त की स्तुतियों से बहुत मिलती हैं।

सदाचार के सिद्धान्त— मिश्री लोगों के सदाचार के सिद्धान्त भी भारतीय सदाचार के नियमों से बहुत मिलते हैं। इस बात की पुष्टी के लिये यहाँ मिश्री लोगों के सदाचार सम्बन्धी मुख्य मुख्य नियमों को लिख देना मात्र ही पर्याप्त होगा—

१. किसी को डराना अनुचित है क्योंकि ईश्वर डराना पसन्द करता।
२. ग़रीबों की सहायता करनी चाहिए।
३. अपने माल पर सन्तुष्ट रहो। जो ईश्वर ने दूसरों को दिया है उसे छीनने का यत्न मत करो।
४. पूर्ण मनुष्य के सामने यदि सिर झुकाओगे तो ईश्वर तुम से प्रसन्न होगा।
५. अगर तुम विद्वान् हो तो अपने पुत्र को ऐसा बनाओ कि परमात्मा उस से प्रसन्न हो।
६. जो तुम पर आश्रित है उसे प्रसन्न रखो।
७. अगर तुम छोटे से बड़े या निर्धन से धनी बन गये हो तो दूसरों पर कठोरता मत करो। ईश्वर ने तुम्हें जो कुछ दिया है उस की रक्षा करो।
८. परमात्मा आज्ञा पालन को पसन्द करता है।
९. अच्छा पुत्र परमात्मा की कृपा से प्राप्त होता है।

कर्नल आल्काट का मत—भारत और मिश्र दोनों देशों के धार्मिक विचारों में इतनी अधिक समानता देखकर कर्नल आल्काट इस परिणाम पर पहुंचे हैं— "हमारे पास यह मानने के लिये काफी पुष्ट प्रमाण हैं कि ८ हज़ार वर्ष पूर्व भारतवर्ष ने कुछ यात्रियों को रवाना किया; जिन यात्रियों ने वर्तमान ईजिप्ट के तत्कालीन वासियों को सभ्यता और कलाओं में दीक्षित किया। ईजिप्ट के प्रसिद्ध पुरातत्व वेत्ता मि० ब्रूस की भी यही सम्मति है। उन की राय है, कि वे लोग इण्डो जर्मन जाति के काकेशस परिवार से सम्बन्ध रखने वाले थे और वे इतिहास के प्रारम्भ काल से बहुत पूर्व स्वेज़ के उस अन्तर्जातीय पुल को लांघ कर नील नदी के किनारे जा बसे थे। मिश्र निवासियों का कथन है कि वे किसी पवित्र लोक से यहाँ आये थे।"[1]

---

1. The Theosophist. March. 1881.

कुछ अन्य विद्वानों के मत—श्रीयुत वेलिस बज़ का कथन है—"मेरी सम्मति में मिश्र की सभ्यता का विकास पश्चिमी एशिया के पूर्वीय भाग और उससे भी दूरस्थ देश (भारत) से हुवा ।"[1]

श्रीयुत ब्जर्नस्ट्रेज्ना का भी यही मत है कि भारतीय सभ्यता द्वारा ही मिश्र में सभ्यता का प्रसार हो पाया।[2] इसके लिये वे निम्नलिखित युक्तियाँ देते हैं—

"१. हेराडोटस, प्लेटो, सोलन, पैथागोरस, फिलोस्ट्रेटस आदि सुप्रसिद्ध यूनानी विचारकों का भी यही मत है कि मिश्र ने भारत से ही धर्म की दीक्षा ली।

"२. अनेक अन्य विद्वानों की भी यही राय है कि मिश्र का धर्म दक्षिण से प्रारम्भ हुवा। मिश्र के प्राचीनतम मन्दिरों की रचना से भी यही बात सिद्ध होती है। उन मन्दिरों की रचना भारत के प्राचीन मन्दिरों से बहुत मिलती है। दक्षिण में उस समय भारत के सिवाय कोई और ऐसा देश नहीं था जिससे कि मिश्र धर्म और सभ्यता की दीक्षा ले सके।

"३. जैसोदस, जूलियस, अफ्रीकेनस और यूसीबियस ने अबीदोस और सायस के मन्दिरों के जो पुराने चिट्ठे सुरक्षित दशा में हम तक पहुंचाये हैं, उनमें यह लिखा है कि मिश्र का धर्म भारत से आया।

"४. हिन्दुओं का इतिहास मिश्र के इतिहास से बहुत पुराना है।"

इन तथा ऐसे ही अन्य प्रमाणों के आधार पर श्रीयुत प्रिन्स भी इसी परिणाम पर पहुँचे हैं कि मिश्रने सभ्यता और धर्म की दीक्षा भारतवर्ष से ही ली थी। हम भी बिना किसी टिप्पणी के उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर श्रीयुत प्रिन्स का अनुमोदन करते हैं।

---

1. The Teaching of Amen–am–apt. Introduction. by Wallis Budge. P. XV.

2. Theogomy of the Hindoos. by Comet Bjornstjerna.

शब्दानुक्रमणिका.

ख

ग

भ

म

अग्निवीर - एक परिचय

अग्निवीर आईआईटी - आईआईएम शिक्षा प्राप्त, डेटा वैज्ञानिक, और योगी श्री संजीव नेवर द्वारा स्थापित एक आंदोलन है। सत्य, आध्यात्म और पुरुषार्थ से संसार और स्वयं के लिए सुख बढ़ाना इस आंदोलन का उद्देश्य है। वेद, गीता और योग की शक्तियों से आज की समस्याओं के समाधान में अग्निवीर कार्यरत है। 'शिकायत करने वाले कभी नहीं जीतते, कर्म करने वाले कभी नहीं हारते', इस मंत्र को लेकर अग्निवीर ने समाज में धर्म और कर्म की नयी धारा प्रवाहित की है। अग्निवीर के सम्पर्क में आकर हज़ारों प्रशंसकों के अपने जीवन के लिए बदला नज़रिया उनके पत्रों और संदेशों से झलकता है। अग्निवीर के जीवन बदल देने वाले संदेशों को पढ़ कर आत्महत्या के लिए जाने वाले निराश लोगों का वापस जीवन में लौटना इसी चमत्कार का हिस्सा है।

डर, शर्म और अन्य कारणों से समाज में कभी ना उठाए जाने वाले मुद्दों को अग्निवीर के प्रचंड पुरुषार्थ ने इस छोटे से समय में सबके सामने ला खड़ा किया है। सदियों से जात-पात के बंधनों में ख़ुद को जकड़ कर रखने वाले हिंदू समाज में दलित-यज्ञ की शुरुआत करके धार्मिक और जातियों की एकता का बिगुल फूँका। असामाजिक तत्त्वों द्वारा हिंदू महिलाओं को बहला-फुसला कर धर्म-परिवर्तन करके शादी करने के बड़े घिनौने लव जिहाद रैकेट का पर्दाफ़ाश किया। जिहादी चंगुल में फँसी महिलाओं (कई नाबालिग़ बच्चियों समेत) की रक्षा की। मुस्लिम महिलाओं के समान अधिकारों के लिए चार शादी, ३ तलाक़, हलाला, जिस्माना-ग़ुलामी की जंगली प्रथाओं के ख़िलाफ़ ज़बरदस्त संघर्ष किया। इन सभी मुद्दों पर अग्निवीर के अनथक प्रयास निरंतर जारी हैं।

अग्निवीर ने भारत के संवेदनशील क्षेत्रों में निःशस्त्र आत्मरक्षा कार्यक्रम आयोजित किए हैं ताकि विषम समय में असहाय लोगों की रक्षा की जा सके। भारत और दुनिया में तेज़ी से फैल रहे इस्लामी कट्टरवाद से युवाओं को बचाने के लिए अग्निवीर के Deradicalisation कार्यक्रम देश रक्षा में अहम स्थान रखते हैं। मज़हबी कट्टरवाद से बहुत से युवाओं को छुड़ाकर सनातन धर्म की मुख्यधारा में लाने का श्रेय अग्निवीर को है। भारत के स्कूलों में पढ़ाए जा रहे झूठे इतिहास को अग्निवीर की चुनौती के बाद सच्चे इतिहास को लेकर लोगों की उत्सुकता और माँग सकारात्मक प्रभाव का प्रमाण है।

अग्निवीर की बीस से ज़्यादा किताबें हिंदू धर्म, आध्यात्म, वेद, योग, प्रेरणा, हिंदू धर्म पर आक्षेप और उनके उत्तर, सामाजिक, जाति, स्त्री-पुरुष एकता, मानव अधिकार, भारत में आक्रमणकारियों का सच्चा इतिहास, मत-सम्प्रदाय-मज़हब, कट्टरता और कई झकझोर देने वाले मुद्दों पर छपी हैं जो अपने विषय पर अद्वितीय हैं और पाठकों में अत्यंत लोकप्रिय हैं।

अग्निवीर भविष्य का सूर्य है। आइए, जुड़िए। परिवार, देश और धर्म की सेवा कीजिए। जीवन को एक मतलब दीजिए। मोक्ष मार्ग पर आरूढ़ हो जाइए।

अधिक जानकारी के लिए देखें-

वेबसाइट: http://www.agniveer.com/

फेसबुक: http://www.facebook.com/agniveeragni

यूट्यूब: http://www.youtube.com/agniveer

ट्विटर: http://www.twitter.com/agniveer

अग्निवीर का सदस्य बनने के लिए, यहां सदस्यता फॉर्म भरें:

http://www.agniveer.com/membership-form/

अग्निवीर को सहयोग प्रदान करने के लिए, यहां जाएँ:

पेमेंट पेज : http://www.agniveer.com/pay/

पेपाल : give@agniveer.com

अग्निवीर

राष्ट्र सेवा | धर्म रक्षा